UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180277

UNIVERSAL
LIBRARY

संस्कृत साहित्य का इतिहास

मूल लेखक
वे० वरदाचार्य, एम० ए०, पी० एच-डी०

अनुवादक
कपिलदेव द्विवेदी, एम० ए०, डी० फिल्०

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891.209 V28S Accession No. G. H280

Author वरदाचार्य, वे.

Title संस्कृत साहित्य का इतिहास

This book should be returned on or before the date last marked below. 1962

संस्कृत साहित्य का इतिहास

Hindi Version of V. Vardachary's History of Sanskrit Literature

मूल लेखक

वे० वरदाचार्य एम० ए०, पी० एच-डी०

संस्कृत-प्राध्यापक

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय कालेज

तिरुपति

अनुवादक

डा० कपिलदेव द्विवेदी एम० ए०, डी० फिल्०

अध्यक्ष संस्कृत-विभाग

गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल

संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O. U.

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीप्रसाद

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद–२

१९६२

[मूल्य ५ रुपया

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
इलाहाबाद-२

३ म ७६२

मुद्रक
रामबाबू अग्रवाल
ज्ञानोदय प्रेस
इलाहाबाद—२

प्राक्कथन

इस ग्रन्थ में प्रयत्न किया गया है कि संक्षेप में संस्कृत साहित्य का पूरा विवरण दिया जाए । यह संस्करण मुख्यरूप से कालेज के छात्रों की एतद्-विषयक आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रस्तुत किया गया है । इस विषय पर आजकल जो पुस्तकें उपलब्ध हैं, उनमें से अधिकांश पुस्तकें १३वीं या १४वीं शताब्दी तक के साहित्य का ही परिचय देती हैं । वैदिककाल, श्रेण्यकाल, नाटक और दर्शनों आदि का पृथक्-पृथक् पुस्तकों में वर्णन किया गया है । अभी तक ऐसी कोई पुस्तक नहीं लिखी गई है, जिसमें उपर्युक्त सभी विषयों का एक ही ग्रन्थ में विवेचन हुआ हो । यह ग्रन्थ इस न्यूनता की पूर्ति करता है । इसमें वैदिककाल से लेकर गत शताब्दी तक लिखे गये सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का संक्षेप में विवेचन है । इस छोटे से ग्रन्थ में यह संभव नहीं है कि इस ग्रन्थ में वर्णित सभी विषयों का विस्तृत विवेचन और वर्णन हो सके । तथापि कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर यथासंभव विस्तृत प्रकाश डाला गया है, जैसे—वाल्मीकीय रामायण का लेखक कौन है, कालिदास का समय, दण्डी का समय, त्रिवेन्द्रम् नाटकों का लेखक भास इत्यादि । संगीत, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि विषयों पर केवल लेखकों और उनके मुख्य ग्रन्थों के नाम का ही उल्लेख किया गया है ।

विषय-विवेचन में कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं । रामायण का विवेचन महाभारत से पूर्व हुआ है । तेरहवे अध्याय में काव्य की पद्धतियों पर लिखे गए ऐतिहासिक काव्य का भी विवेचन हुआ है । गीतिकाव्य का वर्णन १४वें अध्याय में हुआ है । १६वें अध्याय में सुभाषित-ग्रन्थों का वर्णन किया गया है । उनमें संगृहीत श्लोक काव्य-ग्रन्थों से उद्धृत किए गए हैं, अतः उनका पृथक्-वर्णन ही उचित था । अध्याय १७ और १८

में गद्यकाव्य तथा चम्पू-ग्रन्थों का वर्णन हुआ है । ये साहित्य के दो स्वतन्त्र विभिन्न रूप हैं । अध्याय १९ और २० में कथा-साहित्य और नीति-कथाओं का वर्णन है। ये ग्रन्थ-गद्य और पद्य दोनों रूप में हैं। ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थ काव्य, गद्य और नाटक इन तीनों रूपों में लिखे गए हैं, अतः उनका वर्णन नाटकों के बाद २४वें अध्याय में किया गया है। आस्तिक दर्शनों और धार्मिक दर्शनों का वर्णन अध्याय ३५ में हुआ है, क्योंकि ये सभी दर्शन आस्तिक-दृष्टिकोण के हैं ।

इस विषय को लेकर लिखे गये ग्रन्थों में कतिपय त्रुटियों का दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक ही है । समय-निर्धारण-सम्बन्धी कठिनाइयों को पार करना प्रायः कठिन ही है । इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ असम्पुष्ट सिद्धान्तों का समर्थन किया है और बहुत से भारतीय विद्वान् भी उन मतों का समर्थन करते हैं । इस ग्रन्थ में जिन विषयों का विवेचन किया गया है, आशा है समालोचकवर्ग उदारतापूर्वक उन पर विचार करेंगे । प्रस्तुत नव-संस्करण का संशोधन और परिवर्धन श्री देवेन्द्र मिश्र ने किया है । मूल लेखक के अंग्रेजी संस्करण में अनेक नवीन ऐतिहासिक वस्तुएँ जोड़ दी गई हैं अतः हिन्दी संस्करण में भी उनको संशोधित और परिवर्धित करना आवश्यक जान पड़ा । अब तक की खोजपूर्ण नयी ऐतिहासिक सामग्रियों को प्रस्तुत करने के कारण ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ गई है । आशा है प्रस्तुत ऐतिहासिक रचना सुधी पाठकजनों की आवश्यकता की पूर्ति कर उनकी ज्ञानवृद्धि करेगी और उन्हें संतोष होगा ।

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

१. भूमिका १–१४

संस्कृत––वैदिककाल तथा श्रेण्यकाल––बोलचाल तथा साहित्य की भाषा––प्राकृतभाषा तथा उसकी विभाषाएं––प्राचीन भारत में लेखनकला––संस्कृत और प्राकृत साहित्य की कुछ विशेषताएँ ––पाश्चात्य विद्वानों की भारतीय साहित्य को देन ।

२. वेद १५–१७

वैदिक संहिताओं का विभाजन––उनके अध्ययन की विभिन्न पद्धतियाँ ।

३. वेद और पाश्चात्य विद्वान् १८–२५

वेद और जेन्दअवेस्ता की कतिपय समानताएँ––वेदों का रचना स्थान––वेदों का संकलन––वेदों की व्याख्याएँ––वैदिक सभ्यता ।

४. पाश्चात्य विद्वानों के विचारों की समीक्षा २६–३२

वेदों के विषय में भारतीयों का मत––वेदों के रचयिताओं के विषय में दृष्टिकोण––वदों के भाष्यकार––वेदों की व्याख्या के लिए आवश्यक साधन––वेदों का रचनास्थान ।

५. वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण-ग्रन्थ और आरण्यक-ग्रन्थ ३३–३८

चारों वेदों की विभिन्न शाखाएँ ।

६. उपनिषद् ३९–४३

मुख्य तथा गौण उपनिषदें––उनका वर्गीकरण ।

७. वेदांग ४४–५१

६ वेदांग––शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प––प्रत्येक वेदांग के विभिन्न ग्रन्थ––वैदिक अनुक्रमणिकाएँ ।

अध्याय पृष्ठ

८. ऐतिहासिक महाकाव्य—रामायण ५२–७२

ऐतिहासिक महाकाव्य की विशेषताएँ—रामायण का रचयिता—उसका रचनाकाल—उसकी प्रसिद्धि—रामायण के टीकाकार।

९. महाभारत ७३–८६

महाभारत के विकास की ३ अवस्थाएँ—जय, भारत और महाभारत—रचनाकाल—महत्त्व— हरिवंशपर्व— उपाख्यान—टीकाकार—रामायण और महाभारत की तुलना।

१०. पुराण ८७–९५

पुराण का लक्षण—पुराणों का महत्त्व—पुराणों का वर्गीकरण और उनके लेखक—पुराणों का संक्षिप्त विवरण—उपपुराण।

११. काव्य-साहित्य का काल—कालिदास से पूर्व का काल ९६–९८

महाकाव्य की विशेषताएँ—कालिदास के पूर्ववर्ती कवि—वाल्मीकि, पाणिनि, वररुचि और पिंगल।

१२. काव्य-साहित्य—कालिदास ९९– १०९

कालिदास का समय—उनके ग्रन्थ—रघुवंश और कुमारसम्भव।

१३. काव्य-साहित्य, कालिदास के बाद के कवि ११०–१३८

अश्वघोष—मैक्समूलर का पुनरुद्धारवाद—भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवि—इस काल के काव्यों की विशेषताएँ।

१४. गीतिकाव्य १३९–१५३

गीतिकाव्य की विशेषताएँ—गीतिकाव्य के दो भेद—शृंगारिक गीतिकाव्य और धार्मिक गीतिकाव्य।

१५. नीति-विषयक और उपदेशात्मक काव्य १५४–१६०

इस काव्य की विशेषताएँ—इस काव्य की उत्पत्ति और विकास—अन्योक्ति काव्य।

अध्याय पृष्ठ

१६. **सुभाषित-ग्रन्थ** १६१–१६४

सुभाषित-ग्रंथों का महत्त्व—गाथासप्तशती आदि ग्रन्थ ।

१७. **गद्य-काव्य** १६५–१७६

गद्यकाव्य का लक्षण—विशेषताएँ—दो भेद, कथा और आख्यायिका—उत्पत्ति—बाण, दण्डी, सुबन्धु आदि लेखक ।

१८. **चम्पू** १८०–१८६

विशेषताएँ—उत्पत्ति और विकास ।

१९. **कथा-साहित्य** १८७–१९५

उत्पत्ति—वृहत्कथा आदि ग्रन्थ ।

२०. **नीति-कथाएँ** १९६–२०१

विशेषताएँ—पंचतन्त्र और हितोपदेश ।

२१. **संस्कृत नाटक, उनकी उत्पत्ति, उनकी विशेषताएँ और उनके भेद** २०२–२१७

नाटकों की उत्पत्ति के विषय में परम्परागत मत—नाटकों का प्रारम्भ—प्रारम्भिक ग्रन्थ—संस्कृत नाटकों के यूनानी उद्भव पर विवेचन—संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ—नाटकों के भेद —उपरूपक ।

२२. **संस्कृत नाटक—कालिदास के पूर्ववर्ती और कालिदास के समकालीन** २१८–२३७

त्रिवेन्द्रम् नाटक और उनका लेखक—भास के नाटक—कालिदास के नाटक—कालिदास नाटककार, कवि और गीतिकाव्य लेखक के रूप में ।

अध्याय पृष्ठ

२३. कालिदास के परवर्ती नाटककार २३८–२७२

मृच्छकटिक का लेखक––विशाखदत्त, हर्ष, भट्टनारायण, भवभूति आदि नाटककार––रूपकात्मक नाटक––छायानाटक––संस्कृत नाटकों का ह्रास ।

२४. इतिहास २७३–२७८

ऐतिहासिक ग्रन्थों का अभाव––हर्षचरित और राजतरंगिणी आदि ग्रन्थ ।

२५. काव्य और नाट्यशास्त्र के सिद्धान्त २७९–३०१

साहित्य, अलंकार––विभिन्नवाद, रीतिवाद, रसवाद, अलंकार-वाद, ध्वनिवाद, वक्रोक्तिवाद, गुणवाद, अनुमानवाद और औचित्यवाद––रीति के भेद, वैदर्भी, गौडी, पांचाली आदि––रसों की संख्या––शान्तरस––ध्वनि-सिद्धान्त काव्यलेखन के उद्देश्य ।

२६. शास्त्रीय ग्रन्थ––शास्त्रीय ग्रन्थों की विशेषताएं और व्याकरण ३०२–३१६

शास्त्र का लक्षण––शास्त्रों की विशेषताएँ––व्याकरण शास्त्र ––पाणिनि, पतंजलि आदि––स्फोटसिद्धान्त––पाणिनि के अति-रिक्त अन्य व्याकरण की शाखाएँ––प्राकृत-व्याकरण ।

२७. छन्दःशास्त्र और कोशग्रन्थ ३१७–३२१

छन्द––वृत्त और जाति––कोशग्रन्थ––समानार्थक और नाना-र्थक ।

२८. ज्योतिष ३२२–३३०

ज्योतिष––गणित ज्योतिष, फलित ज्योतिष, गणित, हस्तरेखा शास्त्र––यनानी और भारतीय गणित ज्योतिष ।

अध्याय पृष्ठ

२९. धर्मशास्त्र ३३१–३३५

धर्म––धर्म का क्षेत्र––स्मृतिग्रंथ––स्मृतियों के सारग्रन्थ ।

३०. उपवेद––आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र और सहायक शास्त्र ३३६–३५३

आयुर्वेद––चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि––पशुओं, वृक्षों आदि के रोगों पर वैद्यक के ग्रन्थ––कामशास्त्र––गान्धर्ववेद, नृत्य और संगीत––धनुर्वेद––अर्थशास्त्र, कौटिल्य, कामन्दक आदि––अन्य शास्त्र––शिल्पकला, चित्रकला, रत्नशास्त्र, चौरविद्या, वनस्पति-विज्ञान और रसायन-विज्ञान ।

३१. भारतीय दर्शन और धर्म––सामान्य सिद्धान्त और विभिन्न दर्शन ३५४–३५८

दर्शन और धर्म––इनका परस्पर सम्बन्ध––इनकी विशेषताएँ ––दर्शनों का आस्तिक और नास्तिक दो भागों में विभाजन ।

३२. नास्तिक-दर्शन ३५९–३७१

चार्वाक्-दर्शन––बौद्ध-दर्शन––बौद्धधर्म की चार शाखाएँ––वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक––महायान और हीनयान––जैनधर्म––रत्नत्रय, स्याद्वाद––जैनधर्म की दो शाखाएँ––श्वेताम्बर और दिगम्बर ।

३३. आस्तिक-दर्शन––न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग ३७२–३८३

६ दर्शन––न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त––न्याय और वैशेषिक-दर्शन––प्रमाणविवेचन और परमाणुवाद––सांख्य-दर्शन, सत्कार्यवाद––योग-दर्शन, अष्टांग, राजयोग और हठयोग ।

अध्याय पृष्ठ

३४. मीमांसा-दर्शन ३८४–३८९

इस दर्शन की विशे ताएँ—तीन शाखाएँ—कुमारिल, प्रभाकर और मुरारिमिश्र ।

३५. आस्तिक-दर्शन और धार्मिक-दर्शन ३९०–४१५

वेदान्त-दर्शन—आधार ग्रन्थ, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्-गीता और आगम—द्वैतमत—अद्वैतमत—विशिष्टाद्वैतमत—शुद्धाद्वैतमत— निम्बार्कमत — भास्करमत — यादवप्रकाशमत—चैतन्यमत—शिवाद्वैतमत—शैवमत की धार्मिक शाखाएँ—पाशुपतमत, शैवमत, कश्मीरी शैवमत और शाक्तमत—दर्शनों का इतिहास ।

३६. उपसंहार

परिशिष्ट

अनुक्रमणिका

———

संस्कृत साहित्य का इतिहास

अध्याय १

भूमिका

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से धार्मिक और लौकिक कार्यों के लिए जिस भाषा का उपयोग किया जाता रहा है, उसे **संस्कृत** कहते हैं। इस भाषा का यह नाम लगभग ७०० ई० पू० में पड़ा है, जब प्रमुख वैयाकरण **पाणिनि** ने इस भाषा के नियमों का निर्माण किया। इस समय से पूर्व इसको **दैवी वाक्** (**देववाणी**) कहते थे। यह संस्कृत नाम इस बात को स्पष्ट करता है कि यह भाषा परिष्कृत और संशोधित है। इस भाषा का उपयोग बोलचाल के कामों में भी होता था। इसी भाषा में भारतीयों का समस्त प्राचीन वाङमय लिखित है। **बहुत बाद में संस्कृत और प्राकृत से निकली हुई भाषाओं का उपयोग साहित्यिक कार्यों के लिए हुआ।** इस काल में भी संस्कृत का स्थान प्रमुख रहा।

इस भाषा के विकास में दो अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। (१) **वैदिक काल** (२) **श्रेण्य काल**। इनमें से पहली अवस्था में भाषा सरल, स्वाभाविक और ओजयुक्त थी। वैदिक काल का अधिक साहित्य इसी में लिखा गया है। द्वितीय काल की बहुत सी विशेषताएँ इस भाषा में दिखाई देती हैं। इसमें व्याकरण के रूपों की विभिन्नता विशेष रूप से दिखाई देती है। जैसे, क्रिया सम्बन्धी रूपों में परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों का ही अबाध प्रयोग और दोनों का परस्पर परिवर्तन। तुमन् (को, के लिए) के अर्थ में कृदन्त रूपों में से, तवे, तवै आदि प्रत्यय, जिनसे वक्षे, सूतवे, मादयितवै आदि रूप बनते हैं। इसी प्रकार त्वा (करके) के स्थान पर त्वाय प्रत्यय, जैसे-गत्वा के स्थान पर गत्वाय। देवासः, विप्रासः, कर्णेभिः, पूर्वेभिः, देवेभिः तथा अन्य इस प्रकार के प्रयोग शब्दों के रूपों की विचित्रता प्रकट करते हैं। इसी प्रकार

तुमुन् (को, के लिए) और क्त्वा (करके) प्रत्यय के विभिन्न विचित्र रूप प्राप्त होते हैं, जैसे—परादै, भूवे, समिधम्, संदृशि तथा कर्त्वा और वक्त्वा। ये सभी रूप श्रेव्य काल में सर्वथा लुप्त हो गये हैं।

वैदिक काल में यह भाषा धार्मिक और बोलचाल दोनों कार्यों के प्रयोग में आती थी। पुरोहित आदि यज्ञ के समय इसका शुद्ध प्रयोग करते थे, किन्तु बोलचाल में इसमें वे अशुद्धियाँ भी कर देते थे। भाषा की इस अव्यवस्था को नियमों के द्वारा रोकने के लिये कई वैयाकरणों ने विभिन्न समयों में प्रयत्न किए, किन्तु यह उद्देश्य सातवीं शताब्दी ई० पू० में ही पूर्ण हुआ, जब **पाणिनि** ने **अष्टाध्यायी** की रचना द्वारा इस भाषा के निश्चित नियमों का निर्माण किया। तत्पश्चात् पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में **कात्यायन** हुए जिनका दूसरा नाम **वररुचि** भी है। इन्होंने अष्टाध्यायी पर 'वार्तिक' लिखे। इन वार्तिकों में पाणिनि के नियमों की समीक्षा है। द्वितीय शताब्दी ई० पू० में पतंजलि हुए। इन्होंने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य नामक ग्रन्थ लिखा। इन दोनों वैयाकरणों ने पाणिनि के नियमों की विस्तृत व्याख्या की तथा आवश्यक संशोधन और परिवर्तन भी किए। इन वैयाकरणों ने जो नियम बनाए, उनसे यह भाषा पूर्ण हुई। यही अवसर है जब इस भाषा ने संस्कृत नाम प्राप्त किया। किन्तु इसका यह भाव नहीं है कि वैदिक काल की समाप्ति के बाद ही **श्रेण्य भाषा** का प्रादुर्भाव हुआ। श्रेण्य भाषा के रूपों की सत्ता वैदिक काल की समाप्ति से पूर्व भी दृष्टिगोचर होती है, जैसा कि पाणिनि के सूत्रों से स्पष्ट है। क्योंकि उन्होंने जो सूत्र बनाये हैं, उनमें से कुछ वैदिक भाषा पर लागू होते हैं और कुछ श्रेण्य भाषा पर। बाद की भाषा को पाणिनि ने भाषा नाम दिया है। यह भाषा वैदिक भाषा से कुछ अन्तर रखती थी और वैदिक काल में ही श्रेण्य भाषा के प्रादुर्भाव को सूचित करती है।

श्रेण्य काल में संस्कृत भाषा की बहुत उन्नति हुई। धार्मिक और लौकिक सभी प्रकार के विषयों का इस भाषा में विवेचन हुआ। काव्यकला और दार्श-

निक विचारों का इस भाषा में सुन्दर समन्वय दीखता है। वस्तुतः ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जिसका इस भाषा में विवेचन न हुआ हो।

इस काल के विकास-क्रम में **पाणिनि** के कठोर नियमों के होते हुए भी इस भाषा में कुछ नवीन विशेषताएँ आईं। **पाणिनि** के प्रभाव के कारण भाषा, जो कि विकास की ओर उन्मुख थी, इस काल में विकसित न हो सकी। जिसका परिणाम यह हुआ कि विभाषा-सम्बन्धी विभिन्नताएँ, जो कि वैदिक काल से चली आ रही थीं, न रहीं। पाणिनि के नियमों के विरुद्ध धातु-रूपों के स्थान पर कृदन्त रूपों का व्यवहार होने लगा। ऐसे वाक्यों की रचना हुई, जिसमें क्रिया का अभाव था और उसका केवल अध्याहार किया जाता था। संक्षेप के लिए गौण वाक्यों के स्थान पर लम्बे समासों को स्थान दिया गया। **पाणिनि** ने भूतकाल के लकारों के विषय में जो विशेष नियम बनाए थे, उनकी उपेक्षा की गई। उदात्त आदि स्वर जो कि पाणिनि के मतानुसार संगीतात्मक थे, उनके स्थान पर बलाघात वाले स्वरों को स्थान मिला। १५ वीं शताब्दी के बाद लिखे गए विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थों में क्रियाओं के गणों वाले रूपों का प्रायः अभाव मिलता है।

संस्कृत भाषा के विकास और उन्नति के साथ-साथ एक भाषा और चालू थी, जिसको **प्राकृत** कहते हैं। यह जनसाधारण की भाषा थी। प्राकृत शब्द प्रकृति शब्द से निकला है जिसका अर्थ है जनता। (प्रकृतौ भवं प्राकृतम्)। इस प्राकृत भाषा का प्रयोग वे व्यक्ति करते थे, जो बोलचाल की संस्कृत को ठीक समझ लेते थे, परन्तु अपने भावों को प्रकट करने के लिए इसे ठीक बोल नहीं सकते थे। यद्यपि इसका स्वतंत्र अस्तित्व था, परन्तु संस्कृत से बहुत मिलती हुई थी और इस पर संस्कृत का प्रभाव भी बहुत अधिक था।[1] इस प्राकृत की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें आत्मनेपद का सर्वथा अभाव है।

१· काव्यादर्श १-३३

यह संस्कृत, जिसको पाणिनि ने भाषा नाम से सम्बोधित किया है, बोलचाल की भाषा थी। इसके कतिपय प्रमाण मिलते हैं। पाणिनि ने वैदिक और लौकिक भाषा के लिए अपने नियम बनाए हैं। **पतंजलि** का कथन है कि व्याकरण का उद्देश्य यह नहीं है कि नए शब्दों का निर्माण किया जाय, अपितु शब्दों के शुद्ध प्रयोग की शिक्षा देना व्याकरण का उद्देश्य है। इस वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि व्याकरण से पहले बोलचाल की भाषा विद्यमान रहती है और उसी के लिए वैयाकरण व्याकरण के ग्रन्थों का निर्माण करते हैं। पतंजलि ने लिखा है कि बड़े-बड़े विद्वान् ऋषि भी 'यद् वा नः, तद् वा नः' इस शुद्ध प्रयोग के स्थान पर बोलचाल में यर्वाणः, तर्वाणः इस प्रकार के अशुद्ध प्रयोग करते थे, किन्तु यज्ञ आदि कार्यों में वे किसी प्रकार का अशुद्ध प्रयोग नहीं करते थे। पतंजलि का कथन है कि—

एवं हि श्रूयते—यर्वाणस्तर्वाणो नाम ऋषयो बभूवुः प्रत्यक्षधर्माणः परावरज्ञा विदितवेदितव्या अधिगतयाथातथ्याः। ते तत्र भवन्तो यद्वा नस्तद्वा न इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाण इति प्रयुञ्जते। याज्ञे पुनः कर्मणि नापभाषन्ते। (महाभाष्य १–१–१) इसके अतिरिक्त पतजलि ने एक संवाद का भी उल्लेख किया है, जो कि सूत शब्द की व्युत्पत्ति पर एक वैयाकरण का एक सारथि से हुआ था। उसमें दिखाया गया है कि वैयाकरण शब्द के शुद्ध प्रयोग को ठीक नहीं जानता था और एक साधारण सारथि उसके शुद्ध प्रयोग को जानता था।[1] ऊध, तेर, चक्र, पेच आदि जैसे कतिपय शब्दों का विशेष अर्थ में प्रयोग होता था।[2] **पतंजलि** ने यह भी उल्लेख किया है कि उस समय लोग कुछ शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करते थे, जैसे—शश के स्थान पर षष, पलाश के स्थान पर पलाष, मंचक के स्थान पर मंजक इत्यादि।[3] **पाणिनि** और पतंजलि दोनों

---

१. महाभाष्य–२–४–५६

२. ,, –१–१–१

३. ,, –१–१–१

संस्कृत की विभाषाओं का भी उल्लेख करते हैं, जिसका उन्होंने अपने ग्रन्थों में वर्णन किया है। देश के विभिन्न भागों में बोले जाने वाले प्रयोगों का भी उल्लेख किया है।

शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एनमार्या भाषन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रंहतिः प्राच्यमध्यमेषु, गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु। महाभाष्य १–१–१। शब्दों के अन्त में लगने वाले प्रत्ययों में से कुछ पूर्वीय लोगों को रुचिकर थे, कुछ उतर वालों को और कुछ **कम्बोज** (हिन्दुकुश पर्वत के पास रहने वाले) लोगों को।[1] दक्षिण के व्यक्तियों को तद्धित प्रत्यय वाले प्रयोग अधिक रुचिकर थे।

प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः। महाभाष्य १–१–१। पाणिनि ने पुत्रादिनी और पुत्रादिनी के अर्थों में अन्तर का उल्लेख किया है कि इस प्रकार इनका प्रयोग करें।[2] इसमें से प्रथम शब्द घृणा-सूचक है और दूसरे का अर्थ है वस्तुतः पुत्र को खाने वाली, जैसे सर्पिणी। दूर से सम्बोधन में व्यक्ति के नाम का अन्तिम स्वर प्लुत उच्चारण किया जाता है।[3] इसी प्रकार पाणिनि ने द्यूत के पारिभाषिक शब्दों[4], ग्वालों की बोली[5] और स्वरों के प्रयोग के विषय में विस्तृत विवरण दिया है। यदि संस्कृत बोलचाल की भाषा न होती तो ये सभी नियम निरर्थक होते। निम्नलिखित कारणों से भी ज्ञात होता है कि संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। युष्मद् शब्द के स्थान पर भवत् शब्द का प्रयोग,[6] दास्याः पुत्रः आदि निन्दार्थक शब्द जिनमें षष्ठी का अलुक है,[7] अनुकरणात्मक

---

१. अष्टाध्यायी ४–१–१७, ७–३–४६, ४–१–४३
२. अष्टाध्यायी ८–४–४८
३. " ८–२–८४
४. " ३–३–७०
५. " ४–२–३९, ७–१–१, ४–२–४७
६. " १–४–१०८
७. " ६–३–२२, ६–३–२१

शब्दों की रचना[1] एनम्, एनेन आदि अन्वादेश वाले प्रयोग,[2] नमः स्वस्ति आदि के साथ होने वाली विशेष विभक्तियाँ[3]। इसके अतिरिक्त नाटकों में उच्च श्रेणी के पुरुष पात्रों के द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग और निम्न श्रेणी के पुरुष पात्रों तथा स्त्रियों के द्वारा प्राकृत का प्रयोग, इस बात के मानने पर ही उचित प्रतीत होता है कि नाटकों के अन्दर भाषाओं के प्रयोग में अन्तर दैनिक व्यावहारिक जीवन से ही लिया गया है। **रामायण, महाभारत** और **पुराणों** की भाषा भी इसी निर्णय की सूचक है।

श्रेण्यकाल में संस्कृत बोलचाल और साहित्यिक भाषा के रूप में बहुत लोकप्रिय हुई। संस्कृत में सभी विषयों पर ग्रन्थ लिखे गए। यह राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। प्राचीन समय से लेकर १९ वीं शताब्दी ई० तक शिला-लेख, स्तम्भ-लेख, दानपत्र, राजकीय शासन-पत्र और प्रशस्तियाँ आदि प्रायः संस्कृत में ही लिखी गईं। बौद्ध और जैन, जो कि प्राकृत का प्रयोग अधिक उचित मानते थे, उन्होंने भी ईसवीय शताब्दी के प्रारम्भ के बाद साहित्यिक कार्यों के लिए संस्कृत को अपनाया। बौद्ध दार्शनिक **अश्वघोष** (प्रथम शताब्दी ईसवीय) ने बौद्ध विचारों के प्रचारार्थ संस्कृत का ही आश्रय लिया। प्रसिद्ध वैद्यराज **चरक** (प्रथम शताब्दी) ने वैद्यों के वार्तालाप में संस्कृत भाषा के प्रयोग का उल्लेख किया है। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री **ह्वेनसाँग** ने भारत भ्रमण के समय तत्कालीन बौद्धों के द्वारा संस्कृत भाषा के प्रयोग का उल्लेख किया है। ९०६ ई० में जैन लेखक **सिद्धर्षि** ने जैन भावों को लेकर '**उपमिति-भावप्रपंचकथा**' नामक ग्रन्थ संस्कृत में लिखा। इस ग्रन्थ में उसने प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत भाषा के प्रयोग के लाभों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है।

---

१. " १–३–९०

२. " २–४–३२, २–४–३४

३. " २–३–१६, २–३–१७

उसका कथन है कि—

संस्कृता प्राकृता चेति भाषे प्राधान्यमर्हतः,
तत्रापि संस्कृता तावद दुर्विदग्धहृदि स्थिता ॥
बालानामपि सद्बोधकारिणी कर्णपेशला,
तथापि प्राकृता भाषा न तेषामपि भासते ॥

उपमितिभावप्रपंचकथा १-५१, ५२,

कश्मीरी कवि **बिल्हण** (११ वीं शताब्दी ई०) का कथन है कि कश्मीरी स्त्रियाँ संस्कृत, प्राकृत और कश्मीर की भाषा को ठीक समझती थीं।[1]

संस्कृत वैयाकरणों के ग्रन्थों ने इस भाषा के दुरुपयोग को अवश्य रोका, परन्तु इसके द्वारा भाषा को निश्चल बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि **पाणिनि** के समय में **संस्कृत** और **प्राकृत** में जो अन्तर था, वह दिन प्रति-दिन बढ़ता गया। कुछ काल पश्चात् जब व्याकरण के नियमों से बद्ध कवियों ने इसको कृतिम रूप देना प्रारम्भ किया और अप्रचलित प्रयोगों को स्थान देना प्रारम्भ किया, तबसे यह अन्तर और बढ़ गया। ज्यों-ज्यों प्राकृत बढ़ती गई, बोलचाल के रूप में संस्कृत भाषा का प्रयोग कम होता गया और धीरे-धीरे समाज पर उसका प्रभाव कम हो गया। साहित्यिकों ने संस्कृत भाषा की इस अवनति की ओर ध्यान दिया और प्रयत्न किया कि यह पुनः उसी स्थिति को प्राप्त हो। **हितोपदेश** और **पंचतंत्र** इसी प्रकार के प्रयत्नों के परिणाम हैं। धार्मिक कृत्यों के लिए छोटे '**प्रयोग**' नामक ग्रन्थ भी इसी उद्देश्य से लिखे गए थे। इन प्रयत्नों के द्वारा यद्यपि पूर्ण सफलता नहीं मिली, तथापि इनके द्वारा अवनति की गति कम अवश्य हो गई।

आजकल संस्कृत को मातृभाषा कहा जाता है। इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि यह संपूर्ण भारतवर्ष या किसी एक प्रदेश की दैनिक बोल-चाल की भाषा नहीं थी और इस अर्थ में कभी भी जीवित भाषा नहीं थी, अपितु यह उच्च श्रेणी के व्यक्तियों की ही बोलचाच की भाषा थी। किसी भी

१. विक्रमांकदेवचरित १८-६

भाषा को मृत तभी कहा जाता है, जब वह जनता पर तथा अन्य भाषाओं पर अपना प्रभाव सर्वथा छोड़ दे। जब इस अर्थ की दृष्टि से हम विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि संस्कृत मातृ-भाषा नहीं है। यह अब भी भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं को अनुप्राणित और संपुष्ट करती है तथा भारतीय जनता को एक सूत्र में बाँधने के लिए एकमात्र साधन है। इस दृष्टि से यह अब भी जीवित भाषा है। इसके अतिरिक्त संस्कृत विद्वानों के द्वारा पहले की तरह आज भी लौकिक और धार्मिक कार्यों के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

प्राकृत भाषा, जो कि जनसाधारण की भाषा थी, साहित्यिक भाषा हो गई और ईसवीय शताब्दी के पहले से ही बोलचाल की भाषा रही। छठी शताब्दी ई० पू० में **गौतम बुद्ध** और **महावीर** ने प्राकृत में ही अपने सिद्धान्तों का उपदेश दिया। महाराज **अशोक** के समय में प्राकृत राजभाषा हुई। प्राकृत में ही शिलालेख आदि लिखे गए। ईसवीय शताब्दी के आरम्भ के समय प्राकृत साहित्यिक-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित न रह सकी और प्राकृत के समर्थकों ने भी हिन्दुओं के साथ विवादों और शास्त्रार्थों में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग प्रारम्भ किया। इस समय के पश्चात् बौद्धों और जैनों के लिए भी संस्कृत ही साहित्यिक भाषा के रूप में रही। प्राकृत के प्रयोग का सर्वथा अभाव नहीं हुआ। विशेष-रूप से जैन लेखक इसका प्रयोग करते थे।

बोलचाल की भाषा के रूप में प्राकृत की कई विभाषाएँ थीं। उनमें से मुख्य हैं:—(१) **मागधी**, जिसमें गौतम बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों का उपदेश दिया है। (२) **अर्धमागधी**, इसके प्राचीन रूप में महावीर ने अपने सिद्धान्तों का उपदेश दिया है। (३) **शौरसेनी**। जिन प्रदेशों में ये भाषाएँ विकसित हुई हैं, वे क्रम से ये हैं:—(१) **बिहार**, (२) **बनारस** और उसके समीप का प्रदेश, (३) **मथुरा** का प्रदेश। **मराठी** और **बंगला** मागधी से निकली हैं। **पूर्वी पंजाबी हिन्दी** और **गुजराती** शौरसेनी से निकली हैं।

४००ई० के लगभग प्राकृत की एक विभाषा हुई, जिसका नाम अपभ्रंश पड़ा। साहित्य प्राकृत और आधुनिक प्रचलित भाषाओं के बीच में इसकी

स्थिति है। इसका शब्दकोष सीमित था। यह वर्तमान भाषाओं की उत्पत्ति में मुख्य कारण है। इसने पूर्वप्रचलित विभाषाओं को प्रभावित किया तथा कुछ नई भाषाओं को जन्म दिया। अपभ्रंश के प्रभाव के कारण ही **बिहारी, उड़िया** और अन्य भाषाओं का जन्म हुआ।

भारतवर्ष में अति प्रचीन समय में **लेखन-कला** का अभाव था। मौखिक ही शिक्षण आदि कार्य होता था। वेदों के लिए **श्रुति** शब्द, धार्मिक पुस्तकों के लिये **स्मृति** तथा सूक्त, अनुवाद इत्यादि जो कि ग्रन्थ के विभागों का निर्देश करते हैं, इसी का समर्थन करते हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वा-मूलीय, उपध्मानीय इत्यादि शब्द इसी का समर्थन करते हैं। व्याकरण के ग्रन्थों तथा रामायण और महाभारत में लेखन-कला का निर्देश मिलता है। **लिपि** शब्द का प्रयोग लिखित **वर्णमाला** के अर्थ में हुआ है। लिख् धातु का प्रयोग वर्णों के विन्यास या पत्थर और पत्र आदि पर लिखाई के अर्थ में हुआ है।[1] इन उल्लेखों के साथ ही **अशोक** के शिलालेखों आदि से सिद्ध होता है कि भारतवर्ष में लेखन-कला प्रचलित थी और सम्भवतः इसका प्रचलन ३००० ई० पू० से है।

अशोक के शिलालेखों से यह बात सिद्ध होती है कि भारतवर्ष में द्वितीय शताब्दी ई० पू० में लेखनकला बहुत उन्नत अवस्था में थी। लिखने की पद्धति बाईं ओर से दाहिनी ओर की थी। यद्यपि एक मुद्रा ऐसी भी प्राप्त हुई है, जिसमें दाईं ओर से बाईं ओर लेख है। लेखन कार्य के लिए वृक्षों की छाल और ताड़पत्रों का उपयोग होता था। छाल आदि पर अक्षरों के लिखने के लिए नोकीले लोहे का उपयोग किया जाता था। स्याही के लिए मसी शब्द का प्रयोग द्वितीय शताब्दी ई० पू० में हुआ। लेखन कार्य के उपयोग में आने वाले ताड़पत्रों को क्रमबद्ध करके एक धागे से बाँध दिया जाता था। इस कार्य के लिए पत्तों में निश्चित स्थान पर छेद किया जाता

---

१. कालिदास के ग्रन्थों में इस अर्थ में लिख् धातु का प्रयोग मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तल अंक ३, रघुवंश ३–२८, कुमारसंभव १–७।

था। इसीलिए पुस्तकों आदि को ग्रन्थ कहा जाता था। पत्तों के स्थान पर कागज का प्रयोग ११ वीं शताब्दी ई० में मुसलमानों के भारत में आगमन के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। सबसे प्रचीन हस्तलेख वाला ताड़पत्र जो प्राप्त होता है, वह ८वीं शताब्दी ई० का है और सब से प्रचीन कागज पर लिखित हस्तलेख १२२३ ई० का है। कागज का व्यवहार प्रारम्भ होने के पश्चात् भी दक्षिण भारत में ताड़पत्रों का प्रयोग प्रचलित रहा। उत्तरी भारत में **देवनागरी** लिपि का प्रयोग प्रचलित है, परन्तु दक्षिण भारत में **आन्ध्र, कन्नड़, मलयालम** और **ग्रन्थ** लिपियों का प्रयोग होता है।

संस्कृत में और प्राकृत में प्राप्त साहित्य में कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—(१) कलात्मक रचनाओं और नैतिक रचनाओं में कोई भेद नहीं किया गया है। कुछ ग्रन्थ जो कि सर्वथा कलात्मक हैं, उनमें नैतिक विचार वाले वक्तव्य भी पाए जाते हैं और जो नैतिक दृष्टि से महत्त्व वाले ग्रन्थ हैं, उनमें कलात्मक रूप भी पाया जाता है। (२) रचना-सम्बन्धी कोई नियन्त्रण नहीं पाया जाता है। कोई भी रचना गद्य या पद्य में हो सकती है, जैसे व्याकरण, कोश, वैद्यक, ज्योतिष, दर्शन इत्यादि गद्य और पद्य दोनों रूपों में पाए जाते हैं। (३) भारतीय लेखकों की प्रवृत्ति थी कि वे विषय का विवेचन और उसकी मीमांसा बड़ी सावधानी से करते थे। यह प्रवृत्ति वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले लेखकों से प्रारम्भ हुई। क्रमशः यह प्रवृत्ति सभी विषय के लेखकों में फैल गई और इसका परिणाम यह हुआ कि व्याकरण, काव्य, राजनीति, संगीत, नाट्य-कला आदि विषयों की इसी प्रकार विस्तृत विवेचना और मीमांसा हुई। (४) अपने पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों की व्याख्या और टीका की प्रवृति विद्वानों में हुई। इसी कारण प्रामाणिक ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी गईं। भारतवर्ष के प्रत्येक ग्रन्थ पर धर्म का प्रभाव है।

भारतीय साहित्य के गंभीर और आलोचनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें कतिपय न्यूनताएँ भी हैं। लेखकों और उनके ग्रन्थों के विषय में कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती है। कवि और लेखक अपना परिचय

देने के विषय में सर्वथा उदासीन हैं । इस विषय में अन्य किसी स्थान से भी कोई सूचना नहीं मिलती अतएव किसी भी कवि का पूर्ण परिचय, उसकी जन्मतिथि, उसकी रचनाए, उसके समकालीन लेखकों के विषय में कुछ परिचय नहीं मिलता । निश्चित सूचना के अभाव में कतिपय विषयों पर संदेह होना संभव ही है । **वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, दण्डी** इत्यादि नाम व्यक्ति-विशेष की अपेक्षा उपाधि-सूचक शब्द के तुल्य प्रतीत होते हैं । कुछ कवियों जैसे **भट्टार-हरिचन्द्र, मेंण्ठ** इत्यादि का केवल नाममात्र मिलता है और उनकी रचनाएँ नष्ट हो चुकी हैं । एक नाम वाले कुछ कवियों के नाम से कुछ ग्रन्थों का नामोल्लेख किया जाता है, परन्तु वे वस्तुतः उनके लिखे हुए नहीं है । किन्तु यह भी नहीं कह सकते कि उनके लिखे हुए नहीं हैं, क्योंकि इस प्रकार के निषेध का कोई आधार नहीं है ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह कालिदास तथा अन्य बहुत से कवियों के विषय में लागू होता है । भवभूति तथा अन्य कुछ कवियों ने अपने विषय में कुछ उपयोगी सूचनाएँ दी हैं । जो जितने प्राचीन कवि हैं, उनके विषय में परिचय पाने में उतनी ही कठिनाई पड़ती है । **वेद, रामायण, महाभारत, पुराण** तथा अन्य कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री वस्तुतः उपलब्ध होती है । इनमें से कुछ में राजद्वार का विशद चित्रण तथा समसामयिक घटनाओं का उल्लेख है ।

इन न्यूनताओं के साथ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का नाश भी हुआ है। यूनानी और मुसलमान बहुत से ऐसे अप्राप्य ग्रन्थ अपने साथ ले गए, जो कि अब न उनके पास हैं और न भारतवासियों के पास । हिन्दू समालोचकों से अपनी रक्षा के लिए बौद्ध अपने बहुमूल्य ग्रन्थों को तिब्बत और चीन ले गए और वहाँ पर **तिब्बतीय** और **चीनी** भाषा में उनका अनुवाद किया। अंग्रेज और जर्मन विद्वान् भी बहुत से दुर्लभ ग्रन्थों को यहाँ से ले गए हैं । इनमें से कुछ ग्रन्थों के प्राप्त होने से भी प्राचीन भारत के साहित्यिक इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है ।

सौभाग्य से कुछ चीजें प्राप्त हैं, जिनकी सहायता से भारतीय साहित्य को समझ सकते हैं। ४८५ ई० पू० में **गौतम बुद्ध** का स्वर्गवास हुआ। सिकन्दर ने ३२६ ई० पू० में भारतवर्ष पर आक्रमण किया। मौर्य राजा **चन्द्रगुप्त** ने ३२०-२९८ ई० पू० तक राज्य किया। यह समय विशेष महत्त्व का है, क्योंकि यूनानी दूत **मेगस्थनीज** चन्द्रगुप्त के समय में था और उसने चन्द्रगुप्त के राज्य का विवरण अपने भारत-यात्रा के वृत्तान्त में दिया है। **अशोक** ने २६९-२३२ ई० पू० तक राज्य किया। उसके शिलालेख भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तथा धार्मिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण हैं। चीनी यात्री **फाह्यान, ह्वेनसांग** और **इत्सिंग** ने भारतयात्रा क्रमशः ३९९-४१४, ६२९-६४५ तथा ६७२-६७५ ई० में की। इन्होंने अपने भारतयात्रा के महत्त्वपूर्ण वृत्तांत लिखे हैं। **अल्बेरुनी** १०३० ई० के लगभग भारत में आया था। उसका भ्रमणवृत्तान्त भी विशेष महत्व का है। इसके अतिरिक्त सिक्के, शिलालेख, स्तंभलेख और ताम्रपत्र वाले दान, ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डालने में पर्याप्त सहायता करते हैं। रचनाओं की शैली भी उसके समय-निर्धारण में सहायक होती है। सुभाषित-संग्रह तथा साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों से भारतीय साहित्य के समयक्रम के निर्धारण के लिए उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है।

संस्कृत भाषा और साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन १६ वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है, जबकि यूरोपीय यात्री और मिश्नरी यूरोप से भारत में आए। यूरोप में संस्कृत के सर्व-प्रथम पहुँचने तथा यूरोपीय भाषाओं ग्रीक, लेटिन आदि के साथ इसकी विशेष समता को देखकर यूरोपीय विद्वानों की संस्कृत भाषा के अध्ययन में विशेष अभिरुचि हुई। तुलनात्मक भाषाविज्ञान का जन्म जर्मन विद्वान् **श्लेगल** के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप हुआ। उसने १८०८ ई० में भाषा तथा भारतीयों की बुद्धिमत्ता पर एक ग्रन्थ लिखा। इन विद्वानों ने वेदों और वैज्ञानिक ग्रन्थों के अध्ययन में विशेष अभिरुचि दिखाई। अंग्रेजी विद्वानों में **सर विलियम जोन्स** और **एच० टी० कोलब्रुक**, जर्मन

विद्वानों में **ब्यूलर, कीलहार्न, फ्रांसिस बॉप, ग्रिम, ग्रासमान, येस्पर्सन, वाकर नागल, रॉठ, मेक्समूलर, वेबर** तथा अन्य विद्वान् हैं। इन्होंने भारतीय साहित्य की समृद्धि में बहुमूल्य देन दी हैं। इन्होंने भारतीय ग्रन्थों के उत्तम संस्करण निकाले हैं और साथ ही यूरोपीय भाषाओं में उनका अनुवाद भी किया है। १६५१ ई० में **अब्राहम रोगर** ने डच भाषा में **भर्तृहरि** की कविताओं (**भर्तृहरिशतक**) का अनुवाद किया। १७८९ ई० में सर विलिमय जोन्स ने इंग्लिश् में **अभिज्ञानशाकुन्तल** का अनुवाद किया, जिसकी प्रशंसा **हेर्डर** और **गेटे** ने की। **चार्ल्स विल्किन्स** ने १७८५ ई० में **भगवद्गीता** और १७९४ में **मनुस्मृति** प्रकाशित की। **मैक्समूलर** ने चारों वेदों की मूलप्रति प्रकाशित की और **ऋग्वेद** का अनुवाद भी किया। यूरोपीय विद्वानों ने ऐतिहासिक अध्ययन के लिए जिन ग्रंथों का आश्रय लिया है, उनमें से कुछ उपर्युक्त हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन का प्रारम्भ किया और उसी मार्ग पर चलते हुए भारतीय विद्वानों ने भी भारतीय साहित्य के वास्तविक रूप को समझने के लिए जो जीवनोत्सर्ग किया है, उसका फल विभिन्न रूपों में हुआ है। पाश्चात्य विद्वानों ने ही वैज्ञानिक अनुसंधान का द्वार खोला है और भारतीयों का इस विषय में पथ-प्रदर्शन किया है। यूरोपीय विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे कुछ सीमा तक ही स्वीकार करने योग्य हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसंधान में प्रवृत्त इन विद्वानों ने उन परिस्थितियों पर ध्यान नहीं दिया है, जिन परिस्थितियों में भारतीय विद्वानों ने अपने ग्रन्थ लिखे हैं। इस तथ्य पर विचार किए बिना किसी भी साहित्यक ग्रन्थ का निष्पक्ष मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य में प्राप्य धार्मिक-भावना और सहिष्णुता की भावना को वास्तविक त्रुटि मानी है और इसके द्वारा कलात्मक प्रभाव और साहित्य की वास्तविकता का अभाव मानते हैं। उन्होंने कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं और वे अपने ढंग से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। उनके ये सिद्धान्त अधिकतर वास्त-

विकता से सर्वथा विपरीत हैं, विशेषरूप से कतिपय ग्रन्थों के लेखक का निर्णय, मूल-ग्रंथ का वास्तविक स्वरूप, कवियों की जन्मतिथि आदि पर उनके निष्कर्ष एकांगी हैं, अन्तिम निष्कर्ष नहीं हैं।

अतएव संस्कृत-साहित्य का अध्ययन पाश्चात्य आलोचकों की पद्धति पर होना चाहिये। साथ ही उनकी पद्धति में जो त्रुटियाँ हैं, उनका परित्याग करना चाहिये। भारतीय-साहित्य के विद्यार्थी के सन्मुख ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव के कारण जो अपूर्णता रह जाती है, उसका भी ध्यान रखना चाहिये और उन्हीं के प्रकाश में अपने निष्कर्ष निकालने चाहिए, तभी संस्कृत साहित्य के वास्तविक रूप को समझ सकते हैं।

अध्याय २

वेद

वैदिक साहित्य में वेद और उनसे संबद्ध साहित्य की गणना होती है। वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जानना'। अतः वेद का अर्थ है जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाय। भारतीय वेदों को ज्ञान का पवित्र स्रोत मानते हैं।

वेद चार हैं—**ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद** और **अथर्ववेद**। ऋग्वेद में मन्त्र हैं, जिनको ऋचा कहते हैं। ये पद्य में हैं। ये मन्त्र प्रायः चार पंक्ति के हैं। कहीं-कहीं पर तीन या दो पंक्ति वाले भी हैं। गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती आदि प्रसिद्ध छन्द हैं, जिनमें मन्त्रों की रचना हुई है। ये मन्त्र देवताओं की प्रार्थना के रूप में हैं। इनमें से कुछ यज्ञ-सम्बन्धी तथा कुछ दार्शनिक भाव वाले हैं। यजुर्वेद का अधिकांश भाग गद्य में लिखा गया है। यजुष् शब्द का अर्थ है, प्रार्थना। इसमें कुछ ऋग्वेद के भी मन्त्र हैं। इस वेद का उद्देश्य है विभिन्न यज्ञों के महत्व को स्पष्ट करना तथा उसका वर्णन करना और उन यज्ञों के समय ऋग्वेद के मन्त्रों का यथास्थान पाठ करना। इस वेद की दो शाखाएँ हैं, **शुक्ल यजुर्वेद** और **कृष्ण यजुर्वेद**। सामवेद गान-युक्त वेद है। सामन् शब्द का अर्थ है, प्रसन्न करना। इसमें अधिक मन्त्र ऋग्वेद के ही हैं। इस वेद में जो मन्त्र आए हैं वे गान के लिए हैं। इनके गान के दो प्रकार है, **ऊह-गान** और **उह्यगान** जिनको क्रमशः **ग्राम-गान** और **आरण्य-गान** कहते है। अथर्ववेद में संहारात्मक और रक्षात्मक मन्त्र हैं, जिनको इन अवसरों पर पढ़ना चाहिए। इसमें ऐसे मन्त्र हैं, जो आयुवृद्धि के लिए, प्रायश्चित्त के लिए तथा पारिवारिक एकता के लिए हैं। दुष्ट प्रेतात्माओं के निवारण के लिए तथा राक्षसों के शाप के लिए भी इसमें मन्त्र दिए गए हैं। इसमें आध्या-

त्मिक भाव वाले मन्त्र भी हैं। इसमें भी ऋग्वेद के मन्त्र हैं। यह वेद यज्ञों के सम्बन्ध में विशेष उपयोगी नहीं है। उक्त तीनों वेदों में यज्ञों का वर्णन मुख्यरूप से है, परन्तु इसमें उसका अभाव है। अतएव अन्य तीनों वेदों के साथ इसकी गणना बहुत समय तक नहीं की गई। पुरुष सूक्त में अन्य तीनों वेदों का उल्लेख है, परन्तु इसका उल्लेख नहीं है।[1] त्रयी शब्द अन्य तीनों वेदों के लिए ही प्रयोग में आता है। बाद के समय में अन्य तीन वेदों के साथ उसकी भी गणना समान रूप से की गई और इसको चौथा वेद माना गया।[2]

प्रत्येक वेद चार भागों में विभक्त है, अर्थात् **संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक** और **उपनिषद्**। संहिता भाग में मन्त्रों का वह भाग है, जिसमें देवस्तुति है तथा जिसको विभिन्न यज्ञों के समय पढ़ा जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में वह अंश है, जो मन्त्रों के विधिभाग की व्याख्या करता है। आरण्यक ग्रन्थों में वह अंश है, जिन विधियों को वानप्रस्थ की अवस्था में मनुष्य को वन में करना चाहिए। उपनिषदों में दार्शनिक सिद्धान्त हैं, जो कि योग्य शिष्यों को ही बताने योग्य हैं।

चारों वेदों के संहिता भाग, शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ और कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् स्वर-चिह्नों से युक्त हैं। इन मूलग्रन्थों में संगीतात्मक स्वर हैं। **स्वर** तीन हैं—**उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित**। उदात्त का अर्थ है उठी हुई ध्वनि, , अनुदात्त का अर्थ है नीची ध्वनि और स्वरित का अर्थ है दोनों की मिश्रित ध्वनि। **ऋग्वेद** में उदात्त वर्ण पर कोई चिह्न नहीं है। अनुदात्त का चिह्न वर्ण के नीचे सीधी लकीर है और स्वरित का चिह्न वर्ण के ऊपर सीधी खड़ी लकीर है। इन वेदों में इन स्वरों के चिह्न विभिन्न रूप से लगाये गए हैं।

---

१. ऋग्वेद १०–९०–९ (देखो ऐतरेय ब्राह्मण ५–३२)।

२. मुण्डकोपनिषद् १–१–५, गोपथ ब्राह्मण २–१६।

इन मूलग्रन्थों का साधारणतया पाठ होता था और गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा शिष्यों को पढ़ाया जाता था। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि विद्यार्थी मूलग्रन्थों को कंठस्थ करें और उसमें उच्चारण और स्वर-सम्बन्धी एक भी त्रुटि न होने पावे। इस परंपरा के कारण ही वेदों को **श्रुति** नाम दिया गया है।

वेदों में किसी प्रकार की त्रुटि न रहे, इसके लिए कई उपाय किए गए थे। इन उपायों में से पाँच मुख्य थे। **संहिता पाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ** और **घनपाठ**। संहितापाठ में वेद का मन्त्र जैसा है, उसका वैसा ही पाठ किया जाता है। पदपाठ में मन्त्र को विभिन्न पदों में विभक्त करके उसका पाट किया जाता है। यदि संहितापाठ को प्रतीक-रूप से कखग कहें तो इसका पदपाठ होगा क, ख, ग। जो पद पृथक् किए गए हैं, उनमें प्रारम्भ और अन्त में स्वर-सम्बन्धी परिवर्तनों के लिए विभिन्न नियम बनाए गए और उनका पालन किया गया। इन नियमों की सहायता से पदपाठ से संहितापाठ पूर्णतया शुद्ध रूप में बनता था, जैसा कि मन्त्र को पदपाठ में विभक्त करने से पहले था। क्रमपाठ में पदपाठ के शब्दों को एक-एक बार लिया जाता था और प्रत्येक बार पहले पद के शब्द को भी लिया जाता था और अगले पद के शब्द को भी। जैसे क्रमपाठ का रूप ऐसा होगा :—कख, खग, गघ। जटापाठ क्रमपाठ के तीनों मेल को मिलाने से होता है। जैसे जटापाठ का ऐसा रूप होगा :—कख, खक, कख, खग, गख, खग,। घनपाट उपर्युक्त मेलों के मिलाने से पाँच रूप में बनता है। जैसे घनपाठ का रूप इस प्रकार होगा :—कख, खक, कखग, गखक और कखग। इन उपायों के द्वारा संहिता पाठ चार प्रकार के विभागों में बांटा गया था और चार पाठों के द्वारा पुनः संहिता पाठ बनाया जा सकता था। इस प्रकार से वेदों को इतने वर्षों तक पूर्णतया शुद्ध रूप में रखा जा सका है। यद्यपि ये वेद मौखिक रूप से शिष्य-परंपरा के द्वारा शिष्यों को दिए गए, तथापि इनमें एक स्वर या एक वर्ण का भी अन्तर नहीं होने पाया है।

अध्याय ३

वेद और पाश्चात्य विद्वान्

पाश्चात्त्य विद्वानों ने वेदों के आलोचनात्मक अध्ययन के समय पारसियों की धर्मपुस्तक **जेन्दअवेस्ता** से इनका तुलनात्मक अध्ययन किया और उनको **वेद** तथा **जेन्दअवेस्ता** में बहुत-सी समताएँ दृष्टिगोचर हुईं। कुछ स्थानों पर दोनों ग्रन्थों में प्राप्त होने वाले शब्दों के अर्थ और रूप में समानता थी। जैसे, वेद में 'मित्र' जेन्दअवेस्ता में 'मिहिर' शब्द सूर्य अर्थ में है। वेद में 'वृत्रहन्' और जेन्दावेस्ता में 'वेरेयघ्न' युद्ध के देवता के लिए हैं और ध्वनि विचार की दृष्टि से समान हैं। वेद का 'असुर' शब्द जेन्दावेस्ता के 'अहुर' शब्द से ध्वनि-विचार की दृष्टि से समान हैं। किन्तु दोनों के अर्थ में अन्तर है। असुर शब्द का अर्थ है 'राक्षस' और अहुर का अर्थ है देवता। वेद में 'सोम' और जेन्दावेस्ता में 'हओम' दोनों पेय पदार्थ के अर्थ में हैं। दोनों धर्मग्रन्थों में उपनयन संस्कार का वर्णन है। इन समानताओं के आधार पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि फारस और उसके समीपवर्ती क्षेत्र में जो लोग रहते थे, उसका एक भाग पूर्व की ओर चला और वह तीन हजार ई० पू० के लगभग भारत में प्रविष्ट हुआ। ये आर्य लोग थे। सर्वप्रथम वे पंजाब में बसे और वहाँ शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत किया। इस प्रसन्नता के कृतज्ञता स्वरूप उन्होंने प्रकृति की उपासना प्रारम्भ की और उसको देवता की श्रेणी में लाए। इन अवसरों पर उन्होंने जो प्रार्थनाएँ बनाईं, उसमें फारस और उनकी समीपवर्ती क्षेत्र के निवास के समय के अनुभवों को स्थान दिया। समय के प्रभाव के कारण उनकी भाषा में ध्वनि-सम्बन्धी कुछ परिवर्तन हो गए। इन प्रार्थनाओं के संग्रह को **ऋग्वेद** नाम दिया गया। पंजाब में निवास के समय ऋग्वेद का कुछ भाग ही बना था, शेष भाग जब वे पूर्व की ओर पहुँचे तब बना। इसमें गगा

नदी, शेर और चावल के उल्लेख का अभाव है, अतः उपर्युक्त निर्णय किया गया है। बाद वाले अंश में इन चीजों का उल्लेख मिलता है। इन प्रदेशों में मंडल २ से ७ बने थे। शेष मंडल १,८,९,१० बाद में विभिन्न स्थानों पर बने थे। **यजुर्वेद** और **सामवेद** यमुना नदी के किनारे के प्रदेशों में बने हैं। **अथर्ववेद** आर्यों के बंगाल में स्थिर होने के बाद बना है। **ऋग्वेद** अन्य वेदों की अपेक्षा बहुत समय पूर्व बना था, यह इस बात से सिद्ध होता है कि ऋग्वेद के बहुत से मन्त्र अन्य वेदों में प्राप्त होते हैं।

न केवल ये वेद विभिन्न स्थानों पर बने हैं, अपितु प्रत्येक के विभिन्न अंश भिन्न-भिन्न स्थानों पर बने हैं। सर्वप्रथम आने वाले आर्यों ने ऋग्वेद के मंत्रों के रूप में जो देवताओं की स्तुति की है, उसके द्वारा वे कठिनाइयों के समय में इन मंत्रों के पाठ के द्वारा देवताओं की सहायता चाहते थे। कुछ समय पश्चात् उन्होंने अनुभव किया कि केवल प्रार्थना के द्वारा कार्य पूर्णतया सिद्ध नहीं होगा और देवताओं की प्रसन्नता के लिए प्रार्थना के अतिरिक्त कुछ और करना आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने यज्ञ करना आवश्यक समझा। "एक समय था जब मनुष्य के हृदय की स्वतंत्र इच्छा के आधार पर यज्ञों का प्रारम्भ हुआ। इसके द्वारा वे अज्ञात देवता को धन्यवाद देना चाहते थे और जीवन के प्रारम्भ से एकत्र हुए ऋण को कृतज्ञता के भाव से शब्दों और कार्यों के द्वारा उतारना चाहते थे।"[1] अग्नि की पूजा, सोमरस का पान तथा अन्य विधियाँ इन यज्ञों के विशेष उल्लेखनीय कार्य थे। यज्ञों के समय ऋग्वेद के मंत्रों का पाठ होता था। वैदिक यज्ञों की विधि को शुद्ध रखने के लिए वेद के कुछ अंश एकत्र किए गए, जिनमें उस विधि के करने का कुछ संकेत प्राप्त होता था और उनकी इस प्रकार व्याख्या की गई जिससे उन्हें सरलतापूर्वक विधियों में स्थान मिल सके। इनको उसी प्रकार के मंत्रों के साथ एक स्थान पर संग्रह किया गया, उसी को यजुर्वेद कहा गया। इन सभी अवसरों पर ऋग्वेद के मंत्रों का

1 History of Ancient Sanskrit Literature *by Max Muller.* Page 525.

पाठ होता था और इन मंत्रों में विशेष प्रभाव और संगीत-संबंधी सफलता के लिए **सामवेद** का निर्माण हुआ। इसमें **ऋग्वेद** के मंत्र हैं, साथ ही संगीत में उपयोग के लिए आवश्यक निर्देश दिये गए हैं। जब इस प्रकार कर्मकाण्ड वाला अंश उन्नति पर था, यजमान की शत्रुओं से सुरक्षा के लिए कुछ कार्यवाही की आवश्यकता थी। ये शत्रु वे थे जो कि इन विधियों के लिए सहयोग न देते थे या जो यजमान को दबा देना चाहते थे। ये शत्रु वस्तुतः जंगली जाति के व्यक्ति थे, जो भारतभूमि में विदेशियों के निवास को रोकने का प्रयत्न करने वाले भारत के आदिवासी थे। ऐसे शत्रुओं पर आक्रमण और उनको वश में करने के लिए उपाय किए गए। इन प्रयत्नों ने मंत्र का रूप धारण किया और विभिन्न देवताओं से संबद्ध विभिन्न विधियों का रूप धारण किया। इन सबका संग्रह **अथर्ववेद** में हुआ है।

जितने देवता थे और जितने उद्देश्य थे, उतनी ही विधियाँ हुईं। इन विधियों का जो भाग व्याख्यात्मक था, उसने **ब्राह्मण ग्रन्थों** का रूप धारण किया। प्रत्येक वेद से मंत्रों और विधियों का सम्बन्ध आवश्यक समझा गया, अतएव प्रत्येक वेद के साथ में ब्राह्मण ग्रन्थों का भी प्रादुर्भाव हुआ।

इन विधियों में से अधिकांश विधि एक व्यक्ति अपने परिवार के लोगों या अपनी जाति के व्यक्तियों के साथ संपन्न करता था। एक व्यक्ति जिसने अपने जीवन का अधिकांश भाग अपने परिवार के व्यक्तियों के साथ व्यतीत किया है, जब वह वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करना चाहता था, तब यह उचित समझा गया कि वह सहसा इन विधियों का परित्याग न कर दे। वानप्रस्थ के जीवन में उसके लिए कुछ विधियों का करना आवश्यक समझा गया। इस प्रकार वानप्रस्थियों के लिए मंत्र तथा विधियाँ **आरण्यक ग्रन्थों** में दी गईं। ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य **आरण्यक ग्रन्थ** भी बहुत से हैं और उनका सम्बन्ध प्रत्येक वेद से है।

जो व्यक्ति इस प्रकार वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करने लगे थे, उनकी इच्छा हुई कि इन वैदिक विधियों के क्रियाकलाप का आधार जानना चाहिए।

कौन इन विधियों को करे, इसका स्वरूप जानना चाहिये तथा जिस देवता को प्रसन्न करते हैं उसका स्वरूप तथा अन्य विवरण भी जानना चाहिए। व्यक्तियों में से कुछ वैदिक विधियों के कार्य से ऊब भी गए होंगे, उन्होंने प्रयत्न किया होगा कि आत्मा के स्वरूप को जानें। इन विषयों पर इस काल में प्रश्नोत्तर भी हुए होंगे। इन सब बातों का संग्रह किया गया और इनको **उपनिषद्** नाम दिया गया। इन उपनिषदों की भी गणना वैदिक साहित्य में की जाती है और ये आरण्यक ग्रन्थों के अन्तिम भाग हैं। इनमें जो विचार रखे गए हैं उससे प्रकट होता है कि उनमें से कुछ बहुत प्राचीन हैं।

यद्यपि वेदों का विभाजन उपर्युक्त रूप से है, तथापि यह प्रगट होता है कि इनमें से विभिन्न भाग विभिन्न समयों में बने हैं। **कृष्ण यजुर्वेद** से बहुत समय पूर्व **सामवेद** की रचना हो चुकी थी।

ऋग्वेद के मंत्र पृथक्-पृथक् तथा सामूहिक रूप में विभिन्न ऋषियों के नाम के साथ संबद्ध हैं। इन ऋषियों को इन मंत्रों का रचयिता कह सकते हैं। कुछ स्थलों पर लेखक का नाम भूल गया है। इस प्रकार ऋग्वेद का सम्पूर्ण मूल-ग्रन्थ विभिन्न समय में विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा लिखा गया है। यही अन्य वेदों के मूलग्रन्थ के विषय में कहा जा सकता है। ऋग्वेद का सबसे पुराना अंश लगभग ३००० (तीन सहस्र) ई० पू० में लिखा गया था। संपूर्ण वेद ६०० ई० पू० से पूर्व प्राप्त थे, जब कि **गौतम बुद्ध** ने वेदों की सत्ता मानकर उनमें प्राप्त कतिपय सिद्धान्तों का विरोध किया और अपने सिद्धान्त का प्रचार किया।

पाश्चात्त्य विद्वानों ने जब वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया तो उन्होंने भारतीय विद्वानों द्वारा लिखी गई वेदों की टीकाओं की सहायता ली। इन टीकाओं में जो व्याख्या दी गई है, उनमें से कुछ स्थलों की व्याख्या भ्रमात्मक तथा असंतोषजनक है। अतएव पाश्चात्त्य विद्वानों ने यह उचित समझा कि मूल ग्रन्थ की व्याख्या प्रकरण के आधार पर की जाय। वेद, विशेषरूप से **ऋग्वेद**, उनको साधारण भाषा में लिखे हुए प्रतीत हुए। उसमें उन्हें कठिन

या अप्रचलित शब्द दिखाई नहीं पड़े, जिसके लिए टीकाओं की सहायता आवश्यक हो । यद्यपि उन्होंने इन टीकाओं की सहायता ली है, परन्तु वेदों की व्याख्या के लिए उन्होंने इन टीकाओं को पूर्णरूप से आधार नहीं माना । जहाँ पर कठिन या विशेष प्रकार के अंश मिले, उसके लिए उन्होंने ग्रन्थ के ही द्वारा उसकी व्याख्या करना उचित समझा। उन्होंने वेदों को ठीक समझने के लिए तुलनात्मक पद्धति की सहायता ली ।

उनके मतानुसार वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत के आदिनिवासी चरागाह पर आजीविका-निर्वाह करने वाले थे । उनके घर लकड़ी के बने हुए थे । उनके भोजन में घी, दूध, अनाज, साग और फल सम्मिलित थे । बर्तन धातु या मिट्टी के बने हुए होते थे। पीने के बर्तन लकड़ी के बने होते थे । मदिरापान नियन्त्रित था । प्रारम्भिक समय में पशुपालन उनकी मुख्य आजीविका थी । बाद में कृषि और मृगया का भी उन्होंने अभ्यास किया । शत्रुओं के आक्रमण से अपने बचाव के लिए उन्होंने युद्धकला का अभ्यास किया । इस कार्य के लिए धनुष और बाण हथियार के रूप में प्रयोग में आए । कवच धातु का बना हुआ होता था । नदियों को पार करने के लिए नावों का उपयोग होता था । एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु का देना यही आदान-प्रदान की विधि थी । द्यूत प्रचलित था । नृत्य और संगीत बहुत उच्च अवस्था में थे । ढोल, बाँसुरी और सितार ये संगीत के लिए वाद्य थे । घरेलू पशुओं में गाय का स्थान मुख्य था । 'गाय की पवित्रता भारतवर्ष में अब तक केवल अवशिष्ट ही नहीं रही है, अपितु धीरे-धीरे उसका महत्त्व बढ़ता ही गया है ।' 'अन्य किसी पशु का मनुष्यमात्र ने इतना ऋण नहीं माना है । यह ऋण भारतवर्ष में गोपूजा के द्वारा अच्छे प्रकार से उतारा गया है । यह गोपूजा अन्य देशों में प्रचलित नहीं है ।' *

---

* A History of Sanskrit Literature *by A. A. Macdonell* पृष्ठ ११०

पारिवारिक पद्धति में पिता की प्रधानता होती थी । पुरोहित उनके परिवार का पथप्रदर्शक होता था । विवाह की प्रथा प्रायः ऐसी ही थी, जैसी कि आज कल प्रचलित है। परिवार में स्त्रियों का स्थान उच्च था। उनको गृह-स्वामिनी कहा जाता था । पुत्र की उत्पत्ति शुभ घटना मानी जाती थी । जो सन्तान-हीन होते थे, वे दूसरे के पुत्र को गोद ले लेते थे ।

वर्ण-व्यवस्था ने इस समय एक स्थिर रूप धारण किया । ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करते थे । क्षत्रिय राज्य करते थे । वैश्य व्यापार करते थे । शूद्र उपर्युक्त तीनों वर्णो की सेवा का कार्य करते थे। समाज के उच्च स्तर को स्थित रखने के लिए यह व्यवस्था बनाई गई थी । यह मनुष्यों के आजीविका के कार्यो के आधार पर स्थित थी । लोहार, बढ़ई, जुलाहे, रस्सी बनाने वाले, सुनार, अभिनेता तथा अन्य कितने ही प्रकार की विभिन्न आजीविका वाले व्यक्ति थे ।

आर्य कई भागों में बँटे । प्रत्येक शाखा ने एक राजनीतिक रूप धारण किया । राजा शासनकर्ता होता था । राजत्व वंश-परम्परागत होता था । जनता की इच्छा के अनुसार राजा की शक्तियाँ नियन्त्रित होती थीं । युद्ध में रथों का उपयोग होता था । यद्यपि वेद के प्राचीन अंशों में घोड़े और हाथियों का उल्लेख है, तथापि युद्ध में उनका उपयोग प्रायः नहीं होता था ।

इस समय नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था । परपुरुष-गमन तथा परस्त्री-गमन और बलात्कार महापाप समझे जाते थे । एक विवाह और इसका महत्त्व पूर्णरूप से माना जाता था । तथापि बहुविवाह भी कहीं-कहीं प्रचलित था ।

शव को जलाना और गाड़ना, ये दोनों प्रथाएँ थीं । शव को जलाना अधिक प्रचलित था । शव को गाड़ना, विशेषतः बाद के काल में, कुछ विशेष वर्गों के लिए ही नियन्त्रित था ।

ऋग्वेद, **यजुर्वेद**, और **सामवेद** ये तीनों वेद आदिनिवासियों के धार्मिक और लौकिक कार्यों पर प्रकाश डालते हैं, किन्तु **अथर्ववेद** अकेला ही लौकिक पक्ष पर बहुत अधिक प्रकाश डालता है । शत्रुओं और रोगों को दूर करने के

लिए विभिन्न प्रकार के मन्त्र-तन्त्र आदि प्रचलित थे। यह वेद वैद्यक, गणित ज्योतिष और फलित ज्योतिष के विषय में भी प्रर्याप्त सूचना देता है। इसमें पारिवारिक और व्यापारिक समृद्धि के लिए मन्त्रादि दिए गए हैं।

वेदों में प्रार्थना और वैदिक कर्म-काण्ड के निर्देशों के अतिरिक्त विवाह, अन्त्येष्टि तथा अन्य संस्कारों के लिए भी मन्त्र दिए गए हैं। सृष्टि-उत्पत्ति तथा नीति-सम्बन्धी मन्त्र भी बहुत बड़ी संख्या में हैं। शुनःशेप, पुरुरवा और उर्वशी, यम-यमी आदि के जीवन से संबद्ध घटनाओं का भी इसमें उल्लेख मिलता है।

प्रारम्भिक समय में आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे और उनकी शक्तियों को शारीकि रूप देते थे। वेद में मूर्तियों का वर्णन नहीं है। देवताओं में अग्नि, वरुण और इन्द्र मुख्य थे। वरुण न्याय का रक्षक था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, वह गौण होता गया और अन्त में समुद्र का देवता रह गया। इन्द्र ने भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान छोड़ दिया और वर्षा के अधिष्ठातृ-देवता के रूप में विद्यमान न रहा। वह देवताओं के राजा के रूप में रह गया। इन्द्र के पश्चात् महत्व की दृष्टि से अग्नि का स्थान है। उसका स्थान उसी प्रकार बना रहा, क्योंकि वैदिक कर्मकाण्ड से उसका विशेष सम्बन्ध था। सविता, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि वेद के प्रारंभिक अंशों में मुख्य रूप से हैं। ये वैदिक काल के अन्त में और अधिक प्रचलित हुए। मित्रावरुण, अश्विनी, वसु, आदित्य आदि सामूहिक देवता हैं। रात्रि, पृथिवी, सरस्वती आदि स्त्री देवता हैं। देवताओं के समूह को विश्वेदेव कहा जाता था। ये वैदिक काल के मध्य भाग में अधिक प्रचलित हुए। श्रद्धा, मन्यु, काम, आदि गुणों को देवता का रूप दिया गया। एक विशेषता यह भी है कि विशेष प्रकरणों में प्रत्येक को ही सर्वोच्च देवता माना गया है। मैक्समूलर ने इस विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "जब यज्ञ के देवता अग्नि को कवि सम्बोधन करता है तो वह उसको सर्वोच्च देवता कहता है। वह इन्द्रसे भी न्यून नहीं है। जब अग्नि को सम्बोधन किया जाता है तो

इन्द्र को भुला दिया जाता है। दोनों में किसी प्रकार की स्पर्धा नहीं है और न उनमें प्रतियोगिता ही होती है। वेदोक्त धर्म में यह बहुत बड़ी विशेषता है।" †

वैदिक साहित्य के दार्शनिक दृष्टिकोण के दो रूप थे। एकदेवतावाद और बहुदेवतावाद। बाद के काल में ईश्वर को व्यक्ति और सृष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार किया गया। यह कहा जा सकता है कि पूर्वकाल के बहुदेवतावाद ने बाद में एकदेवतावाद को स्थान दिया। ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्वीकार किया गया है।

वेदों में आत्मा के अस्तित्व के विषय में कोई विचार-विनिमय नहीं मिलता है। जीवात्मा बहुत समय तक परीक्षाओं के बाद शाश्वत मुक्ति के लिए प्रयत्न करता रहा। अतएव वर्तमान की उपेक्षा करके भविष्य को विशेष महत्त्व दिया गया। अतएव आदि निवासियों ने मृतात्माओं के लिए दो मार्ग स्वीकार किए, अर्थात् देवयान और पितृयाण। पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वास होने के कारण उन्होंने जीवात्मा की सत्ता पर कोई सन्देह नहीं किया अतएव वेद के प्राचीन अंश आशावाद से पूर्ण हैं। इस प्रकार वे सिद्ध करते हैं कि आदि-निवासी मृत्यु के बाद उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते थे।

---

† History of Ancient Sanskrit Literature *by Max Muller.* पृष्ठ ५४६

अध्याय ४

पाश्चात्य विद्वानों के विचारों की समीक्षा

पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनका संक्षिप्त विवरण पिछले अध्याय में दिया गया है। उन्होंने वेदों के सम्बन्ध में जो कुछ विचार किया है, उसको बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया गया है। इस विषय में भारतीय विद्वानों की भी सम्मति का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनका परीक्षण भी यहाँ पर करना उचित है।

वैदिक साहित्य के विषय में हिन्दुओं की विचार-धारा पाश्चात्यों से भिन्न है। जो ग्रन्थ इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते है।* दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है, यह वेद ही बताता है। ये उद्देश्य प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा प्राप्त नहीं किए जा सकते थे। अतः शब्द प्रमाण वेद की आवश्यकता हुई।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

इस विषय में वेद स्वतः प्रमाण हैं। वे हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ हैं।

वेदों के दो भाग हैं—**कर्मकाण्ड** और **ज्ञानकाण्ड**। कर्मकाण्ड में संहिता भाग, ब्राह्मण और आरण्यक आते हैं और ज्ञानकाण्ड में उपनिषद्। कर्म-काण्ड वैदिक यज्ञों के करने से विशेष सम्बन्ध रखता है। ये यज्ञ चार प्रकार के हैं—नित्य (प्रतिदिन किए जाने वाले), नैमित्तिक (विशेष निमित्त से

---

* इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः॥
तैत्तिरीय संहिताभाष्य की भूमिका में सायण का कथन।

किए जाने वाले), काम्य (किसी विशेष कामना से किए जाने वाले) और निषिद्ध (वर्जित कार्य) । उपनिषदों में प्रकृति, जीव और परमात्मा के स्वरूप तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन है । ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के लक्ष्य और उद्देश्य के विषय में पाश्चात्य विद्वानों की जो सम्मति है, वही भारतीयों की भी है ।

प्राचीन आर्यों ने धर्म के विषय में जो उच्च कार्य किए हैं, उनका संकलन वेदों में है । भारतवर्ष में जीवन के धार्मिक और लौकिक अंशों को पृथक् नहीं किया गया था । वेद पूर्णतया धार्मिक भावना से लिखे गये हैं, अतः उनमें भी कुछ लौकिक विषय आ गए हैं । अतएव भारतीय विचारों के अनुसार वेदों को आदिनिवासियों के लौकिक जीवन-वृत्त का आधार नहीं माना जा सकता है ।

वेदों के कर्तृत्व के विषय में हिन्दुओं में तीन विचार प्रचलित हैं । प्रथम विचार है कि वेदों का कर्ता कोई व्यक्ति नहीं है । सृष्टि के आदि में मनुष्य-मात्र के हित के लिए परमात्मा ने उनका प्रकाश किया ।[1] वे किसी व्यक्ति की रचना नहीं हैं, अतः वे स्वतः प्रमाण हैं । यह विचार उपनिषदों के मत को मानने वाले वेदान्तियों का है । दूसरा विचार यह है कि यह संसार न कभी बना है और न कभी नष्ट हुआ है । वेद अनादिकाल से इसी रूप में विद्यमान हैं । वे नित्य और स्वतः प्रमाण ज्ञान के ग्रन्थ हैं । उनकी प्रामाणिकता सर्वोच्च है । यह विचार वेद के कर्मकाण्ड भाग को मानने वाले मीमांसकों का है । तीसरा विचार है कि वेदों का कर्ता परमात्मा है । वे ईश्वरकर्तृक होने के कारण प्रमाण-स्वरूप हैं । यह विचार न्यायशास्त्र को मानने वाले नैयायिकों का है । वेदों में जो विश्वामित्र, गृत्समद, वसिष्ठ आदि नाम कुछ सूक्तों के साथ आए हैं, उनका अभिप्राय यह समझना चाहिए कि ये नाम उन ऋषियों के हैं, जिन्होंने इन सूक्तों का विशेष रूप से प्रतिपादन किया और वेदोक्त धर्म का प्रचार किया । इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दू वेदों को किसी व्यक्ति की रचना

---

१ ऋग्वेद १०-९-९

नहीं मानते और न वे वेदों के विभिन्न भागों को विभिन्न समयों में लिखा हुआ मानते हैं।

समाख्यानं प्रवचनाद् वाक्यत्वं तु पराहृतम्।
तत्कर्त्रनुपलम्भेन स्यात् ततोऽपौरुषेयता॥

जैमिनीयन्यायमाला १-२-८

जहाँ तक वेदों की व्याख्या का सम्बन्ध है, यह मानना पड़ता है कि वेदों की व्याख्या का परम्परागत रूप अविच्छिन्न नहीं है। कितने ही विद्वान् हुए हैं जिन्होंने वेदों के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। **यास्क** (८०० ई० पू०) ने वैदिक शब्दों के निर्वचन के रूप में **निरुक्त** ग्रंथ लिखा है। उसका कथन है कि उससे पूर्व वेदों की व्याख्या करने वाले १७ विद्वान् हो चुके हैं। इनमें से कोई भी ग्रंथ उसको प्राप्य नहीं थे। वैदिक शब्दों को व्युत्पत्ति देते हुए यास्क ने कतिपय स्थानों पर एक से अधिक भी व्युत्पत्ति दी है और इसके द्वारा वैदिक शब्दों की व्याख्या के लिए उसने अपना हार्दिक प्रयत्न भी प्रकाशित किया है। इससे स्पष्ट है कि यास्क परम्परागत वेदों की व्याख्या के विषय में पूर्णतया असन्दिग्ध नहीं थे। यास्क के पश्चात् वेदों के कई भाष्यकार हुए हैं। ऋग्वेद का भाष्य **स्कन्दस्वामी** (६०० ई०), **माधव भट्ट** (९ वीं शताब्दी ई०) **वेंकटमाधव** (११ वीं शताब्दी ई०) **आनन्दतीर्थ, सायण, भट्ट भास्कर, षड्गुरुशिष्य, स्वामी दयानंद** आदि ने किया है। **शुक्ल यजुर्वेद** का भाष्य सातवीं शदाब्दी में **हरिस्वामी** ने नवीं शताब्दी में **उदय** ने, ११ वीं शताब्दी में **उव्वट** ने, **सायण** ने, **महीधर** ने, जिसका दूसरा नाम **महीदास** है तथा **स्वामी दयानंद** आदि ने किया है। **कृष्ण यजुर्वेद** का भाष्य **भट्ट भास्कर** और **सायण** आदि ने किया है। **सामवेद** का भाष्य **सायण, माधव, भरतस्वामी**, आदि ने किया है और **अथर्ववेद** का भाष्य **सायण** आदि ने किया है। **सायण** १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। सायण ही अकेला ऐसा विद्वान् है, जिसने चारों वेदों का भाष्य किया है। अन्य विद्वानों ने एक वेद का या वैदिक साहित्य के किसी एक अंश का भाष्य किया है। सायण का लिखा हुआ **वेदार्थप्रकाश** नामक भाष्य तथा कुछ अन्य विद्वानों के लिखे हुए भाष्य आजकल पूर्णतया प्राप्त हैं और कुछ अपूर्ण रूप में प्राप्य हैं।

इन टीकाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वेदों की परम्परागत व्याख्या का क्रम अविच्छिन्न नहीं रहा है। तथापि इन भाष्यकारों ने अपनी पूर्ण योग्यता के अनुसार वेदों की व्याख्या का प्रयत्न किया है। जहाँ पर वे अपनी व्याख्या से संतुष्ट नहीं थे, वहाँ पर वे अन्य व्याख्या भी देते हैं। ये भाष्यकार उन वैदिक विद्वानों के वंशज हैं, जिन्होंने वेदों का अध्ययन और मनन किया था तथा वेदोक्त पद्धति से यज्ञों को करते थे। अतएव वैदिक शब्दों से पूर्णतया परिचित थे और वैदिक साहित्य के विशेषज्ञ थे। वेद के मन्त्रों के अर्थ ठीक जानने के कारण वे वेद के भाष्य के पूर्ण अधिकारी थे। अतएव वे वैदिक परम्परा के विश्वसनीय व्याख्याता हैं। उदाहरणार्थ-- **सायण** ने वेदभाष्य की भूमिका में वेदों और उनकी व्याख्या के संबंध में बहुत-सी बहुमूल्य बातें बताई हैं। उसने उन समालोचकों की युक्तियों का भी उल्लेख किया है, जो वेदों पर विश्वास नहीं रखते थे, अतएव वेद के भाष्य को भी व्यर्थ समझते थे। सायण ने उनकी युक्तियों का उत्तर बहुत हृदयंगम रूप से दिया है और अन्त में वेदों के अध्ययन और उनकी व्याख्या के महत्व पर बल दिया है। वैदिक मन्त्रों की व्याख्या में उसने **मीमांसा-दर्शन** के सिद्धांतों के ज्ञान का भी पूर्ण उपयोग किया है। वेदों के अर्थ को ठीक जानने के लिए इन सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है। उसने **वेद के ६ अंगों** से भी बहुमूल्य सहायता प्राप्त की है।* अन्य भाष्यकारों के भाष्यों में भी वैदिक-साहित्य के विषय में बहुत सो बहुमूल्य बात प्राप्त होती हैं। इन भाष्यों को सारहीन नही कहा जा सकता है। इन भाष्यों की सहायता के बिना पाश्चात्य विद्वान् भी वेदों के अर्थ तथा वैदिक परम्परा को समझने में असमर्थ रहते।

पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों की जो व्याख्या की है, उससे लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती है, क्योंकि उन्होंने वैदिक परम्परा का उल्लेख करने वाले इन भाष्यों

---

*--**वेद के ६ अंग** ये हैं--१. शिक्षा (ध्वनि-विज्ञान), २. व्याकरण, ३. छन्द, ४. निरुक्त (वैदिक शब्दों का निर्वचन), ५. ज्योतिष्, ६. कल्प (यज्ञों की विधि)।

की ओर पूर्ण ध्यान नहीं दिया है और स्वतन्त्र रूप से मन्त्रों का अर्थ किया है। भारतीय भाष्यकारों की सहायता के बिना वेदों के शब्दों का वास्तविक अर्थ नहीं जाना जा सकता है। संस्कृत में एक ही शब्द विभिन्न स्थानों पर एक से अधिक अर्थों में प्रयोग में आता है। अतः वैदिक साहित्य के विद्यार्थी को परम्परागत वैदिक व्याख्या पर निर्भर होना पड़ता है। वेदों के अध्ययन को जो ऐतिहासिक पद्धति है, वह भी पूर्ण संतोषजनक नहीं है, क्योंकि वह भारतीय भाष्य की व्याख्याओं पर पूर्ण ध्यान नहीं देती है। अतः वेद के मन्त्रों का जो वास्तविक अर्थ लेना चाहिए, वह नहीं लिया जाता है और जो अभीष्ट अर्थ नहीं है वह मान लिया जाता है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने **रामायण, महाभारत** और **पुराणों** की ओर भी पूरा ध्यान नहीं दिया है और इनको काल्पनिक कहकर छोड़ दिया है। वस्तुतः इनके विषय वेदों पर आधारित हैं। ये ग्रन्थ वेदों के सहायक ग्रन्थ के रूप में है।* अतएव इन सहायक ग्रन्थों की सहायता के बिना वेदों की व्याख्या से वास्तविक अर्थ ज्ञात नहीं हो सकता है। वेदों के अध्ययन की वही ऐतिहासिक पद्धति वेदार्थ को स्पष्ट कर सकती है, जिसका आधार सायण के भाष्य, रामायण, महाभारत, पुराण, ६ वेदांग तथा मीमांसा के सिद्धान्त हैं। इस पद्धति पर कई भारतीय विद्वानों ने वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों की उत्पत्ति तथा वैदिक काल के व्यक्तियों के मूल निवास-स्थान के विषय में जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे भी पूर्णतया ठीक नहीं हैं। उनका यह कथन है कि ३००० (तीन सहस्र) ई० पू० में फारस तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशों से कुछ जातियाँ भारतवर्ष में आईं और इसका आधार उन्होंने ज़ेन्दअवेस्ता और वेद में प्राप्य कुछ समान वाक्य और शब्द माने हैं, जो दोनों स्थानों पर प्रायः एक अर्थ में हैं। साधारणतया कहा जा सकता है कि दो भिन्न भाषाओं में पाए जाने वाले एक प्रकार के वाक्य आदि इस बात को पुष्ट करते हैं कि इन दोनों भाषाओं को बोलने वाले या तो एक ही

*—इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। महाभारत, आदिपर्व १-२६३।

प्रदेश में साथ रहते थे या वे विभिन्न प्रदेशों में रहते थे और उनका परस्पर सांस्कृतिक सम्बन्ध विद्यमान था, जिसके आधार पर इस प्रकार के समान अर्थ वाले वाक्य प्राप्त होते हैं। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है, जो यह सिद्ध करे कि जेन्दअवेस्ता और वेद को मानने वाले एक ही जाति के व्यक्ति थे और वे फारस तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशों में रहते थे। पाश्चात्य विद्वानों का यह मत केवल काल्पनिक ही है। यदि इस युक्ति के आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि आर्य लोग बाहर से भारतवर्ष में आए तो इसके विपरीत इसी युक्ति द्वारा यह सिद्ध करना संभव है कि आर्य लोग भारतवर्ष से बाहर गए और फारस आदि में बस गए। आर्यों के भारतवर्ष में आने के समर्थन में जो युक्तियाँ दी गई हैं, वे इस बात का समर्थन करने के लिए पर्याप्त हैं कि आर्य लोग भारतवर्ष से ही बाहर गए। आर्यों के भारतवर्ष में आगमन के समर्थन मे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। अतः यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि आर्य लोग भारतवर्ष के ही निवासी हैं। उनका सम्बन्ध फारस के लोगों से भी था। इस सम्बन्ध के कारण दोनों स्थानों के निवासियों में बहुत से एक प्रकार के वाक्य और एक प्रकार के व्यवहार पाए जाते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति में इस प्रकार के सम्बन्ध दृष्टिगोचर होते हैं। यूरोप के देशों के संपर्क का प्रभाव भारतवासियों के वेश, भूषा, भाषा व्यवहार तथा रीति आदि में दिखाई देता है। यदि इस विचार को निराधार माना जाय तो मिस्र की सभ्यता के विषय में कोई स्पष्ट उत्तर नहीं हो सकता है, क्योंकि उनकी फारसी सभ्यता आर्य और तामिल सभ्यता से बहुत मिलती हुई है। अतः यह मानना अधिक उचित है कि आर्यों का मूलदेश भारतवर्ष ही है। वेदों के रचना-स्थान के विषय में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। परन्तु वेद, रामायण, महाभारत और पुराणों के भौगोलिक वर्णन से ज्ञात होता है कि जो वैदिक परम्परा के अनुयायी थे, वे भारतवर्ष के पश्चिमी भाग के मूल निवासी थे, जिसके पश्चिम में सिन्ध और उत्तर में कश्मीर का प्रदेश था।

यहाँ पर यह कथन असंगत नहीं होगा कि पाश्चात्य विद्वानों ने आर्य शब्द का प्रयोग भारतवर्ष में सर्वप्रथम आकर बसने वालों के लिए किया है।

संस्कृत भाषा में आर्य शब्द का अर्थ है, उच्च आचार वाला व्यक्ति। आर्य शब्द किसी जाति या देश का वाचक नहीं है। पाश्चात्त्य विद्वानों ने जिसको आर्य कहा है, वह यदि सदाचारहीन होगा तो वह आर्य नहीं कहा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्यों के एक समूह के लिए आर्य शब्द का प्रयोग पाश्चात्य विद्वानों को ही सृष्टि है। उन्होंने आर्य शब्द का जो प्रयोग किया है, वह अशुद्ध अर्थ में प्रयोग किया है। आर्य शब्द उस अर्थ का बोध नहीं करा सकता है।

आर्यों के बाहर से भारतवर्ष में आने का समर्थन किसी पुष्ट प्रमाण से नहीं किया जा सकता है। अतः उनके भारत में आगमन के समय का भी प्रश्न नहीं उठता है। तथापि वेदों के रचनाकाल के विषय में ध्यानपूर्वक विचार करना आवश्यक है। वेदों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उससे यह निश्चय करना कठिन है कि वेद की रचना कब हुई। अन्य साधनों से कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, परन्तु वे निर्णयात्मक नहीं हैं। बुद्ध के उपदेश वैदिक ग्रन्थों की सत्ता को पूर्णरूप से स्वीकार करते हैं। **महाभारत** की रचना ३१०० ई० पू० में हुई है और वह चारों वेदों की ही नहीं, अपितु वेदांगों की सत्ता को भी स्वीकार करता है। **महाभारत** के रचयिता का **व्यास** नाम इसीलिए पड़ा कि उन्होंने वेद को क्रमबद्ध किया। महाभारत **रामायण** को **वाल्मीकि** की रचना बताता है। व्यास ने वाल्मीकि को एक प्राचीन ऋषि कहा है और रामायण का लेखक कहा है। इससे स्पष्ट है कि रामायण महाभारत से बहुत समय पूर्व बन चुका था। रामायण वेदों की कतिपय शाखाओं को बहुत प्रचलित बताता है। इससे सिद्ध होता है कि वेद रामायण से बहुत पूर्व बन चुके थे। अतः वेदों के विषय में कोई निश्चित समय का उल्लेख नहीं किया जा सकता है। सम्प्रति इतने से ही सन्तुष्ट रहना उचित प्रतीत होता है कि वेद भारतवर्ष के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं।

———

अध्याय ५

वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण-ग्रन्थ और आरण्यक-ग्रन्थ

ऋग्वेद में १०१७ सूक्त है और बालखिल्य सूक्त को लेकर कुल १०२८ सूक्त हैं। यह दस भागों में विभक्त है, जिन्हें मण्डल कहते हैं। इसका एक दूसरा विभाजन आठ भागों में है। इनमें से प्रत्येक विभाग को अष्टक कहते हैं। इनमें से अष्टक वाला विभाजन अधिक प्रचलित है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि विभिन्न समय में विभिन्न ऋषियों ने ऋक्संहिता को बनाया है। द्वितीय से लेकर सप्तम तक ६ मण्डल एक-एक ऋषि के नाम से हैं। इन मंडलों में बाह्य और आन्तरिक क्रम-बद्धता तथा समानता है। अतः ये ऋग्वेद के आधारभूत अंश हैं। अष्टम मण्डल के सूक्त दो ऋषियों के नाम से हैं और नवम मण्डल के सूक्त सोम पवमान के नाम से हैं। अन्य मण्डलों के सूक्त विभिन्न ऋषियों के नाम से हैं। प्रथम और अन्तिम तीन मण्डल ये बाद में विभिन्न ऋषियों ने बनाये होंगे और मूल ग्रन्थ के साथ जोड़ दिया होगा।

प्रारम्भ में ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ थीं। उनके नाम हैं—शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांख्यायन और माण्डूकेय। इनमें से केवल प्रथम शाखा प्राप्य है। द्वितीय में प्रथम से केवल आठ सूक्त अधिक हैं। शेष तीन में कोई विशेष अन्तर नहीं है और उनका स्वतन्त्र अस्तित्व भी नहीं है।

ऋग्वेद में विभिन्न देवताओं की प्रशंसा वाले सूक्त, यज्ञिय कार्यों के उपयोगी मन्त्र, कर्मकाण्ड की विधि वाले मन्त्र, उपासना सूक्त, दार्शनिक सूक्त, विवाह-सम्बन्धी स्वस्तिवाचन तथा आरोग्य-कारक मन्त्र आदि हैं।

यजुर्वेद में ऋग्वेद के बहुत से मन्त्र हैं। साथ ही उनकी वैदिक यज्ञों से संबद्ध व्याख्या गद्य में है। अतः यह वेद कुछ पद्यात्मक है और कुछ गद्य रूप में है। पतंजलि ने इसकी १०१ शाखाओं का उल्लेख किया है। इनमें से अधिकांश अब अप्राप्य हैं।

यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—**शुक्ल यजुर्वेद** और **कृष्ण यजुर्वेद**। प्रथम शाखा को शुक्ल यजुर्वेद इसलिए कहा गया, क्योंकि इसमें मन्त्र ठीक क्रम से रखे गए हैं। इसको शुक्ल यजुर्वेद इसलिए भी कहा जाता है, क्योंकि परम्परा के अनुसार इसको सूर्य ने प्रकट किया है। दूसरी शाखा को कृष्ण यजुर्वेद इसलिए कहते हैं, क्योंकि इसके मन्त्रादि ठीक क्रमबद्ध नहीं हैं। शुक्ल यजुर्वेद में वैदिक यज्ञों के समय बोले जाने वाले मन्त्र ही हैं, किन्तु कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ ही यज्ञ-विषयक विचार-विनिमय भी हैं।

शुक्ल यजुर्वेद-संहिता को **वाजसनेयी-संहिता** भी कहते हैं। इसकी दो शाखाएँ प्राप्त होती हैं—**काण्व** और **माध्यन्दिन**। दोनों में बहुत थोड़ा अन्तर है। इसमें ४० अध्याय हैं। इनमें से १५ बाद में सम्मिलित किए गए माने जाते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार २६ से ३५ तक के अध्याय खिल अध्याय (बाद में मिलाए गए) माने जाते हैं। इस वेद में वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध आदि प्रमुख यज्ञों का वर्णन है। अन्तिम अध्याय में **ईशोपनिषद्** है।

कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएँ हैं। १. **काठकसंहिता**, २. **कापिष्ठल कठसंहिता**, यह अपूर्ण प्राप्त होती है, ३. **मैत्रायणी संहिता**, इसका दूसरा नाम **कालाप संहिता** है, ४. **तैत्तिरीय संहिता**, दक्षिण भारत में इसके अनुयायी अधिक हैं। तैत्तिरीय संहिता की दो शाखाएँ हैं—**आपस्तम्ब** और **हिरण्यकेशी**। इन दोनों में अन्तर केवल यज्ञिय-विधि सम्बन्धी है। प्रारम्भिक तीन शाखाओं का एक सामूहिक नाम '**चरक**' है। पतञ्जलि ने प्रथम और तृतीय शाखा को प्रचलित बताया है। वाल्मीकि का कथन है कि अयोध्या में इनका बहुत आदर था। तृतीय शाखा में चार काण्ड और चतुर्थ में सात काण्ड हैं।

सामवेद संहिता में अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के हैं। इस वेद में केवल ७५ मन्त्र अपने हैं, शेष सब मन्त्र ऋग्वेद के हैं। इस वेद में १,८१० मन्त्र हैं। इनमें से बहुत से कई बार आए हैं। ये दो भागों में विभक्त हैं, (१) आर्चिक अर्थात् ऋचाओं का संग्रह, (२) उत्तरार्चिक अर्थात् उत्तरार्ध की ऋचाओं का संग्रह। पुनरावृत्ति वाले मन्त्रों को छोड़ने पर पूर्वार्ध में ५८५ मन्त्र हैं और उत्तरार्ध में ४०० मन्त्र। उत्तरार्ध में मन्त्रों के संग्रह में इस बात का ध्यान रखा गया है कि एक छन्द वाले मन्त्र एक स्थान पर रहें, एक देवता वाले मन्त्र एकत्र हों, जिस यज्ञ में जिन मन्त्रों का गान होता है, वे एक स्थान पर हों। इस संहिता में गान-सम्बन्धी बहुत-सी पुस्तकें हैं, इनको गण कहते हैं। इनमें मन्त्रों के गान के समय मात्राओं को दीर्घ या प्लुत करना, पुनरावृत्ति या अन्य परिवर्तनों के लिए नियम दिए गए हैं। यह कहा जाता है कि प्रारम्भ में इसकी एक सहस्र शाखाएँ थीं। इस समय केवल तीन शाखाएँ उपलब्ध हैं। उनके नाम हैं—**राणायनीय**, **कौथुम** और **जैमिनीय**, इसका दूसरा नाम **तलवकार** भी है। प्रथम और तृतीय संहिताएँ प्राप्त होती हैं परन्तु द्वितीय का केवल सप्तम अध्याय प्राप्त होता है, शेष अंश नष्ट हो गया है।

अथर्ववेद को **अथर्वाङ्गिरा**, **भृग्वङ्गिरा** और **ब्रह्मवेद** भी कहते हैं। पाश्चात्य आलोचकों का कथन है कि अथर्वा शब्द का अभिप्राय है—मन्त्र-प्रयोग जिसके द्वारा रोगों को दूर किया जा सकता है और इस प्रकार यह शब्द रचनात्मक उद्देश्य के लिए है। अंगिरा शब्द हानिकारक और विनाशात्मक कार्यों के लिए है। अथर्वा शब्द का अर्थ है पुरोहित और मन्त्रादि के प्रयोग में सिद्ध व्यक्ति। अथर्ववेद की दो शाखाएँ प्राप्त होती हैं—**शौनक** और **पैप्पलाद**। इनमें से प्रथम अधिक प्रचलित है और दूसरे की केवल एक हस्त-लिखित प्रति प्राप्त होती है। प्रथम में ७३१ सूक्त हैं और २० काण्ड हैं। पूरे ग्रन्थ का $\frac{1}{6}$ भाग गद्य में है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के विभिन्न मुख्य प्रश्नों पर वैदिक विद्वानों ने जो अपने विचार प्रकट किए हैं, उनका संकलन है। कर्मकाण्डों की विभिन्नता के अनुसार उन पर प्रगट किए गए विचारों में विभिन्नता है और तदनुसार ही विभिन्न ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। ये विवरण ही बताते हैं कि किस यज्ञ में किस मन्त्र का विनियोग है तथा मन्त्रों और यज्ञों में परस्पर क्या सम्बन्ध है। इनमें यज्ञ की विधि के सम्बन्ध में बहुत विस्तार और सूक्ष्मता के साथ निर्देश दिए गए हैं, जैसे—यज्ञवेदी के किस ओर कौन पुरोहित बैठे, कुशा किस स्थान पर रक्खी जाए, इत्यादि। इन विवरणों और निर्देशों के समर्थन में वे कतिपय कथाओं का उल्लेख करते हैं। प्रत्येक यज्ञ के लिए चार पुरोहितों की आवश्यकता होती है—होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। इन पुरोहितों का क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से संबंध है। इनमें से अध्वर्यु वस्तुतः यज्ञ करता है। होता उच्च और स्पष्ट स्वर में बहुत शुद्धता के साथ ऋग्वेद के मन्त्रों का पाठ करता है। उद्गाता गान के नियमों के अनुसार सामवेद के मन्त्रों का गान करता है। ब्रह्मा का कार्य यह है कि वह अन्य पुरोहितों के कार्यों का निरीक्षण करे और जहाँ पर कोई त्रुटि हो, उसे ठीक करे। ब्रह्मा के लिए आवश्यक है कि वह चारों वेदों का पूर्ण ज्ञाता हो और वैदिक यज्ञों का पूर्ण विवरण विस्तार के साथ जानता हो।

जिस प्रकार वेदों की विभिन्न शाखाएँ हैं, उस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों की विभिन्न शाखाएँ नहीं हैं। वेदों की शाखाओं और यज्ञों की विभिन्नता के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थ कई हैं।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं—१. **ऐतरेय ब्राह्मण**, इसमें ४० अध्याय हैं, २. **कौषीतकि ब्राह्मण**, इसका दूसरा नाम **शांख्यायन ब्राह्मण** है। इसमें ३० अध्याय हैं। **शुक्ल यजुर्वेद** का **शतपथ ब्राह्मण** है। इसकी दो शाखाएँ हैं—**काण्व** और **माध्यन्दिन**। इसमें १४ काण्ड और १०० अध्याय हैं। शतपथ ब्राह्मण के प्रारम्भिक ९ काण्डों में शुक्ल यजुर्वेद के प्रारम्भिक १८

अध्यायों की व्याख्या है। इसके रचयिता **याज्ञवल्क्य** ऋषि हैं। इसका अन्तिम भाग **बृहदारण्यक उपनिषद्** है। इसमें मत्स्य, शकुन्तला, पुरूरवा और उर्वशी आदि की कथाएँ हैं। इसकी काण्व शाखा में १८ काण्ड हैं। **तैत्तिरीय ब्राह्मण** कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का ब्राह्मण है और यह **तैत्तिरीय-संहिता** का ही आगे चालू रूप है। इस वेद की अन्य शाखाओं का कोई ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं है। **सामवेद** की ताण्ड्य और तलवकार शाखा के ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्य हैं। **कौथुम शाखा** का कोई ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं है। **ताण्ड्य शाखा** के दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं--**पंचविंश ब्राह्मण** और **षड्विंश ब्राह्मण**। पंचविंश ब्राह्मण को **ताण्ड्य ब्राह्मण** और **प्रौढब्राह्मण** भी कहते हैं। पंचविंश ब्राह्मण में २५ अध्याय हैं, अतः उसका यह नाम पड़ा है। षड्विंश ब्राह्मण में पंचविंश ब्राह्मण से एक अध्याय अधिक है, अतः उसका यह नाम पड़ा है। षड्विंश ब्राह्मण के अन्तिम ६ अध्यायों को **अद्भुत ब्राह्मण** कहा जाता है। इसमें असाधारण अवसरों पर विघ्न रूप में उपस्थित होने वाले दुष्परिणामों को दूर करने के लिए विधियाँ दी गई हैं। **तलवकार शाखा** का **तलवकार ब्राह्मण** है। इसमें ५ अध्याय हैं। इनके चतुर्थ अध्याय को **उपनिषद् ब्राह्मण** कहते हैं। इसमें सामवेद की परम्परा के गुरुओं की दो सूचियाँ हैं। इसमें **केनोपनिषद्** भी है। अन्तिम अध्याय को **आर्षेय ब्राह्मण** कहते हैं। इसमें सामवेद के विशेष प्रकार के मन्त्रों के रचयिताओं की सूची दी हुई है। सामवेद की ताण्ड्य शाखा का एक ब्राह्मण **छान्दोग्य ब्राह्मण** है, परन्तु इसमें ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य बातें बहुत कम हैं। प्रारम्भिक अंश को छोड़कर यह **छान्दोग्य उपनिषद्** ही है। इसके अतिरिक्त सामवेद के तीन और ब्राह्मण हैं। ये तीनों केवल नाममात्र से ब्राह्मण हैं, इनमें ब्राह्मण ग्रन्थों की बात कोई नहीं है। इनमें और ही बातें हैं। इन ग्रन्थों के नाम हैं--१. **वंश ब्राह्मण**, इसमें सामवेद के गुरुओं की सूची दी हुई है, २. **सामविधान ब्राह्मण**, इसमें गान की विधि है, ३. **देवताध्याय ब्राह्मण**, इसमें सामवेद के देवताओं का वर्णन है। **अथर्ववेद** का **गोपथ ब्राह्मण** है। यह दो भागों में है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों में तैत्तिरीय ब्राह्मण ही केवल तैत्तिरीय संहिता का संलग्न भाग है। अन्य ब्राह्मण

ग्रन्थ स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मणों में स्वर-चिह्न हैं, अन्यों में स्वर-चिह्न नहीं हैं।

आरण्यक ग्रन्थ

ऋग्वेद के दो आरण्यक-ग्रन्थ हैं—१. **ऐतरेयारण्यक**, इसमें १८ अध्याय हैं। इसके लेखक **आश्वलायन** हैं। २. **कौषीतक्यारण्यक**, इसमें १५ अध्याय हैं। शतपथ ब्राह्मण के १४ वें काण्ड का $\frac{1}{3}$ प्रारम्भिक भाग शुक्ल यजुर्वेद का आरण्यक है। **तैत्तिरीयारण्यक** तैत्तिरीय ब्राह्मण का ही संलग्न भाग है। इसमें स्वर-चिह्न हैं। यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। **छान्दोग्य उपनिषद्** का प्रथम अध्याय सामवेद की ताण्ड्य शाखा का आरण्यक समझना चाहिये। तलवकार शाखा का **उपनिषद्-ब्राह्मण** इस शाखा का आरण्यक ही समझना चाहिए। अथर्ववेद का कोई आरण्यक नहीं है।

वेदों के ये तीनों भाग अर्थात् वेद, ब्राह्मण और आरण्यक कर्मकाण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तीनों भागों में जो साहित्य है, वह कर्मकाण्ड की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा गया है, अर्थात् मन्त्र, विधि और अर्थवाद। मन्त्र भाग में यह वर्णन किया जाता है कि किस यज्ञ में कौन से मन्त्रों का पाठ होगा। विधि भाग में यह वर्णन किया जाता है कि किस प्रकार कौन सा यज्ञ करना चाहिये, उसमें कौन से कार्य करने चाहिएँ और कौन से नहीं करने चाहिएँ। अर्थवाद भाग में वेदों के उन स्थलों का उल्लेख होता है जो विधिभाग के निर्देशों का स्पष्टीकरण करते हैं और साथ ही इस भाग में उन कार्यों के करने का उद्देश्य और लाभ आदि का वर्णन किया जाता है। उपर्युक्त विभाजन से यह ज्ञात है कि वेदों का संहिता भाग मन्त्र भाग है। ब्राह्मण ग्रन्थ विधि भाग हैं और आरण्यक-ग्रन्थ अर्थवाद भाग हैं।

पाश्चात्य विद्वान् वेदों के संपूर्ण कर्मकाण्ड-साहित्य को रचना-कालक्रम की दृष्टि से निम्नलिखित रूप से स्थान देते हैं—ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, पंचविंश ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण।

अध्याय ६

उपनिषद्

जो व्यक्ति कर्मकाण्ड में वर्णित विधियों को करते हैं, वे स्वर्ग को जाते हैं और निश्चित समय के पश्चात् पृथिवी पर लौट आते हैं। स्वर्ग स्थायी आनन्द का स्थान नहीं है। अतः जो शाश्वत आनन्द चाहते हैं उन्हें सांसारिक विषयों से अपने मन को क्रमशः हटाना होता है। **आरण्यक-ग्रन्थ** शाश्वत आनन्द के इच्छुक व्यक्तियों के लिए प्रारम्भिक शिक्षाएँ देते हैं। इसके बाद अगली स्थिति तब आती है, जब विवेकात्मक ज्ञान की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा ज्ञान मार्ग के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का महत्त्व ज्ञात हो सके। ज्ञान-मार्ग के सिद्धान्त अन्य गौण सिद्धान्तों से सर्वथा भिन्न हैं। मनुष्य-जीवन में ज्ञान-मार्ग पर प्रवृत्ति का महत्त्व **उपनिषदों** में वर्णन किया गया है। वे ज्ञानकाण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं। मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार अन्य जीवन को प्राप्त होता है। इस प्रकार के जीवन की परम्परा जीवात्मा को बन्धन में डाले रखती है और वह अगले जीवन में भी भौतिक सुख के लिए निरन्तर कर्मरत रहता है। उपनिषदों में इन बातों का वर्णन है और वे भौतिक वाद की ओर से अपनी आत्मा को रोकने में सहायक होते हैं। अतः उपनिषदों में जीवात्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त की उत्पत्ति और विकास प्राप्त होता है। "उपनिषदों में दो विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन मूर्त उदाहरणों और सैद्धान्तिक निर्देशों के साथ दिया हुआ है। जीवन का एक मार्ग अज्ञान, संकीर्ण भावना और स्वार्थ से पूर्ण है, जिसके द्वारा मनुष्य अस्थायी, अपूर्ण और अवास्तविक आनन्द को चाहता है। दूसरा मार्ग वह है, जिसके द्वारा वह परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करता है और सामान्य जीवन के दुखों से मुक्त होकर अनन्त

आनन्द को प्राप्त करता है।"[1] इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपनिषदों में ईश्वर, जीव और प्रकृति के स्वरूप का वर्णन किया गया है और उनके पारस्परिक सम्बन्ध का रूप बताया गया है। व्यक्तिगत आत्मा को जीव और आत्मा कहा गया है। ईश्वर को ब्रह्म और परमात्मा नाम से सम्बोधित किया गया है। उपनिषदों में कर्मकाण्ड का खण्डन या निषेध नहीं किया गया है। उनका मत है कि आवश्यक यज्ञ आदि ज्ञान-प्राप्ति के केवल साधन हैं। मोक्ष की प्राप्ति केवल ज्ञान से ही होती है।

ऐतरेय उपनिषद् का सम्बन्ध **ऋग्वेद** से है। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है और बताया गया है कि तात्त्विक ज्ञान से ही जीवात्मा आवागमन के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। **कौषीतक्युपनिषद्** का भी सम्बन्ध ऋग्वेद से है। इसमें आत्मज्ञान का वर्णन है। **बृहदारण्यकोपनिषद्** का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है। इसमें जीवात्मा के जीवन के प्रारम्भ के विषय में विवेचन है और जीव के भय और आनन्द का विस्तृत वर्णन है। इसमें ईश्वर-चिन्तन की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल दिया गया है। इसमें आत्मा के स्वभाव और आत्म-प्राप्ति के साधन विषय पर ऋषि याज्ञवल्क्य और राजा जनक आदि का संवाद भी दिया हुआ है। **तैत्तिरीयोपनिषद्** का सम्बन्ध तैत्तिरीय संहिता से है। इसमें वरुण और उसके पुत्र भृगु के संवाद के रूप में ब्रह्म के स्वभाव का वर्णन किया गया है। **महानारायणीयोपनिषद्** का दूसरा नाम **याज्ञिकोपनिषद्** है। इसका सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है। **कठोपनिषद्** और **श्वेताश्वतरोपनिषद्** का भी सम्बन्ध तैत्तिरीय शाखा से है। इनमें से प्रथम में दो अध्याय हैं और प्रत्येक में तीन वल्ली (अध्याय) हैं। इसमें यम और नचिकेता का संवाद है। यम ने नचिकेता को ब्रह्म का उपदेश दिया है। इसमें जीवात्मा से वास्तविक स्वरूप, ब्रह्म-ज्ञान के साधन और दोनों के सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। जीवात्मा अज्ञान के कारण शरीर से

---

१. Preface VII. Translation of the Thirteen Principal Upanisads by Robert Ernest Hume.

पृथक् अपना अस्तित्व नहीं समझता है। मृत्यु के स्वरूप को जानकर मनुष्य जीवात्मा पर अधिकार कर सकता है। आत्मचिन्तन ब्रह्म और जीव के वास्तविक स्वभाव के अनुभव में सहायक होता है। **श्वेताश्वतरोपनिषद्** में ऋषि श्वेताश्वतर ने अपने आश्रम के व्यक्तियों को जो उपदेश दिया है, उसका वर्णन है। इस उपनिषद् का उद्देश्य यह है कि सांख्य-योग और वेदान्त के सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित किया जाय। इसमें माया, जीवात्मा और ब्रह्म के पारस्परिक सम्बन्ध का भी वर्णन किया गया है। **मैत्रायणीयोपनिषद्** का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणीय शाखा से है। **ईशोपनिषद्** वाजसनेयीसंहिता का ४०वाँ अध्याय ही है। इसका कथन है कि तत्त्वज्ञानी व्यक्ति आत्मा को सर्वत्र देखता है और आत्मा में सब कुछ देखता है। **छान्दोग्योपनिषद्** का सम्बन्ध सामवेद की ताण्ड्य शाखा से है। यह उपदेश रूप में है। इसमें ऋषि उद्दालक और उनके पुत्र श्वेतकेतु के कई संवाद हैं। इसमें सर्वव्यापी परमात्मा का विवेचन किया गया है। **केनोपनिषद्** का सम्बन्ध सामवेद की तलवकार शाखा से है। इसका कथन है ब्रह्म ही पूर्ण है। ब्रह्म ही संसार की समस्त शक्तियों का आदि स्रोत है। ब्रह्म का स्वभाव ज्ञात और अज्ञात सभी वस्तुओं से सर्वथा पृथक् है। **मुण्डक, प्रश्न** और **माण्डूक्य उपनिषदों** का सम्बन्ध अथर्ववेद से है। वास्तविक रूप से ये तीनों उपनिषदें वेद की किसी शाखा से सम्बद्ध नहीं हैं। मुण्डक का कथन है कि ईश्वर सारे जीवों के हृदय में विराजमान रहता है। ज्ञान दो प्रकार का है, परा और अपरा। परा का सम्बन्ध ब्रह्मज्ञान से है और अपरा का सम्बन्ध वेदों के ज्ञान से है। **प्रश्नोपनिषद्** में प्रश्न और उत्तर हैं। छः विद्यार्थी पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न करते हैं और वह उनका उत्तर देते हैं। इस उपनिषद् में प्रकृति की उत्पत्ति, प्राण की उत्पत्ति, जीवन की तीन अवस्थाएँ—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति; ओम् का ध्यान आदि का वर्णन किया गया है। **माण्डूक्य** में ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का वर्णन किया गया है।

प्रायः सभी उपनिषद् ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों के संलग्न रूप में हैं। **तैत्तिरीय** और **महानारायणीय उपनिषद्** में स्वर-चिह्न हैं। **बृहदारण्यक,**

छान्दोग्य, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, मैत्रायणीय और **कौषीतकि** उपनिषदें ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य गद्य में हैं। **ईश, कठ, श्वेताश्वतर, मुण्डक** और **महानारायणीय** उपनिषदें पद्य में हैं। **केन** और **प्रश्न** उपनिषदों का कुछ भाग गद्य में है और कुछ पद्य में है ।

भाषा और भावों की दृष्टि से यह माना जाता है कि **प्रश्न मैत्रायणीय** और **माण्डूक्य** उपनिषदें बाद की रचना हैं और **ऐतरेय, बृहदारण्यक, छांदोग्य, तैत्तिरीय, कौषीतकि** और **केन** उपनिषदें सबसे प्राचीन काल की उपनिषदें हैं।

इन १४ उपनिषदों के अतिरिक्त और भी उपनिषदें हैं । उनमें से कुछ बहुत प्राचीन और कुछ बहुत नवीन हैं। वेदान्त के प्रमुख आचार्यों ने इनमें से कुछ की टीका की हैं तथा कुछ के उद्धरण अपने ग्रन्थों में दिए हैं। इन उपनिषदों में से बहुत से धार्मिक भावना से युक्त हैं। उनमें दार्शनिक भाव बहुत कम हैं। सब मिलाकर कुल १०८ उपनिषदें हैं । इस १०८ में उपर्युक्त १४ उपनिषदें भी हैं। विषय की दृष्टि से इन उपनिषदों को ६ भागों में बाँट सकते हैं—(१) वेदान्त के सिद्धान्तों पर निर्भर—२४, (२) योग के सिद्धान्तों पर निर्भर—२०, (३) सांख्य के सिद्धान्तों पर निर्भर—१७, (४) वैष्णव-सिद्धातों पर निर्भर—१४, (५) शैव-सिद्धान्तों पर निर्भर–१५ और (६) शाक्त तथा अन्य सिद्धान्तों पर निर्भर—१८। विभिन्न विषयों पर इतनी छोटी उपनिषदों के उद्भव का कारण यह है कि सभी धर्मों और मतों के अनुयायियों का यह प्रयत्न रहा है कि उनके विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाली स्वतन्त्र उपनिषद् होनी चाहिए ।

उपनिषदों की प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध किसी वेद से है। उनमें से कुछ का सम्बन्ध किसी एक ही वेद से है । उनमें से बहुत-सी उपनिषदें ऐसी भी हैं, जिनका वेदों के मन्त्रों से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है । प्रत्येक उपनिषद् का किसी वेद से सम्बन्ध स्थापित करने का परिणाम यह हुआ कि सभी वेदों के साथ कुछ उपनिषदें सम्बद्ध की गई हैं।

जैसे—ऋग्वेद के साथ १०, शुक्ल यजुर्वेद के साथ १९, कृष्ण यजुर्वेद के साथ ३२, सामवेद के साथ १६ और अथर्ववेद के साथ ३१ उपनिषदें सम्बद्ध हैं।

उपनिषदों के विषय के अध्ययन से प्रकट होता है कि कुछ बातों में किसी एक वेद से सम्बद्ध होने के अतिरिक्त उनमें ऐसी कोई विशेष बात प्रकट नहीं होती कि उनका सम्बन्ध किसी एक वेद से ही माना जाए। उनके विषय और वर्णन की पद्धति में ऐसी बात नहीं है कि किसी एक वेद के अनुयायी ही उनमें वर्णित शिक्षाओं को मानें, अन्य नहीं। उनके वर्णन सभी वेदानुयायियों के लिए समानरूप से मान्य हैं। वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों के मानने वाले इन उपनिषदों को अपने मत के समर्थन के लिए प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं। वेदों का यह ज्ञानकाण्ड वेदों के कर्मकाण्ड भाग से सर्वथा पृथक् है। इनसे सभी मतों के अनुयायी अपने मत के समर्थन के लिए केवल सूचनाएँ ही नहीं प्राप्त करते हैं, अपितु सभी मतों के अनुयायी इनको समान रूप से प्रमाण मानते हैं। उपनिषदों के किसी भी उद्धरण को इस आधार पर कोई अमान्य नहीं कह सकता है कि यह किसी विशेष मत की उपनिषद् का उद्धरण है। इन उपनिषदों की आधारशिला पर ही भारतवर्ष के विभिन्न दार्शनिक मत स्थिर हैं।

अध्याय ७

वेदाङ्ग

वेदों के अध्ययन, उनका अर्थ ठीक जानने और उनकी ठीक व्याख्या करने के लिए तथा यज्ञादि के समय उनका ठीक विनियोग के लिए वेद के सहायक ग्रन्थों की आवश्यकता हुई। इनको **वेदाङ्ग** कहते हैं। ये ६ हैं--१. **शिक्षा (ध्वनि-विज्ञान)**, २. **व्याकरण**, ३. **छन्द**, ४. **निरुक्त** (वेदों की निर्वचनात्मक व्याख्या), ५. **ज्योतिष** ६. **कल्प** (कर्मकाण्ड की विधि)।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरूक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः ।।

ये विभिन्न ग्रन्थ नहीं हैं। ये केवल ६ विषयों का उल्लेख करते हैं, जिनके ज्ञान से वेदों के मन्त्रों का अर्थज्ञान तथा वैदिक परम्परा का ज्ञान होता है और मन्त्रों का उचित विनियोग ज्ञात होता है। **शिक्षा** और **छन्द** वेदों के अध्ययन और पाठ में सहायक होते हैं। **व्याकरण** और **निरुक्त** उनके अर्थज्ञान में सहायक हैं। **ज्योतिष** और **कल्प** वेदों के द्वारा प्राप्त ज्ञान को क्रियात्मक रूप देने में सहायक होते हैं। इन वेदांगों की उत्पत्ति वैदिक ग्रन्थों में ही प्राप्त होती है। मुख्यरूप से ब्राह्मण ग्रन्थों में इनकी उत्पत्ति दिखाई पड़ती है।

शिक्षा का वैदिक संहिताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें वैदिक संहिताओं के शुद्ध उच्चारण और उनके स्वर-संचार के लिए नियम दिए हुए हैं। इस विषय का विशेष रूप से वर्णन **प्रातिशाख्य** ग्रन्थों में है। जैसा कि इनके नाम से प्रकट होता है कि ये वेद की विभिन्न शाखाओं के साथ संबद्ध हैं। ये सूत्रों के रूप में लिखे हुए हैं। विभिन्न वेदों के ये प्रातिशाख्य ग्रन्थ हैं--ऋग्वेद की शाकल शाखा का **शौनकरचित ऋक्प्रातिशाख्य** है, शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का **कात्यायन**-रचित **वाजसनेयी प्रातिशाख्यसूत्र** है, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा का **तैत्तिरीय प्रातिशाख्य-सूत्र** है। सामवेद के **सामप्रातिशाख्य**,

पुष्पसूत्र और **पंचविधसूत्र** तथा अथर्ववेद का **प्रातिशाख्यसूत्र** है, इसका दूसरा नाम **चातुरध्यायिका** है। इनमें से कुछ के लेखक अज्ञात हैं। इन प्रातिशाख्यों में स्पष्ट संकेत है कि किस प्रकार इनसे व्याकरण सम्बन्धी अध्ययन का प्रारम्भ और विकास हुआ।

इनके अतिरिक्त इस विषय पर छोटे ग्रन्थ हैं, जिनको **शिक्षा** कहते हैं। इनके लेखक साधारणतया **भरद्वाज, व्यास, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य** आदि हैं। इनका सम्बन्ध किसी विशेष प्रातिशाख्य से है। इनमें से एक **व्यासशिक्षा** है जिसका सम्बन्ध तैत्तरीय प्रातिशाख्य से है।

व्याकरण वेद का एक अंग है, क्योंकि वेदों के शब्दों का ठीक अर्थ न ज्ञात होने पर उनका ठीक अध्ययन और अर्थज्ञान नहीं हो सकता है। अष्टाध्यायी पर अपनी व्याख्या करते हुए वररुचि ने एक वार्तिक लिखा है—'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्' पतंजलि ने इस वार्तिक की व्याख्या करते हुये उदाहरणों के साथ व्याकरण के अध्ययन के लाभ दिए हैं। व्याकरण के अध्ययन का प्रारम्भ प्रातिशाख्यों से होता है। प्रारम्भिक काल में संज्ञा-शब्दों की उत्पत्ति के विषय में वैयाकरणों के सर्वथा विपरीत दो मन्तव्य थे। **शाकटायन** का मत था कि सभी संज्ञा-शब्द धातुओं से बने हैं। **यास्क** और **पाणिनि** इसी मत को मानते हैं। **गार्ग्य** तथा कुछ अन्य वैयाकरणों का मत है कि सभी संज्ञा-शब्द धातुओं से नहीं बने हैं, जिनमें धातु और प्रत्यय बताए जा सकते हैं, वे ही धातुज हैं। दुर्भाग्यवश इन लेखकों के ग्रन्थ इस समय प्राप्य नहीं हैं। व्याकरण पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ **पाणिनि** की **अष्टाध्यायी है**। उसने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरण **पुष्करसादि, शाकटायन,**[1] **सेनक,**[2] **शाकल्य**[3] तथा अन्यों का नामोल्लेख किया है। पाणिनि के इस ग्रन्थ के द्वारा ही उससे पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का ज्ञान होता है। पाणिनि ने यह व्याकरण वैदिक भाषा और अपने समय में बोलचाल में प्रचलित 'भाषा' अर्थात् संस्कृत भाषा

१. अष्टाध्यायी ८-४-५०, २. अष्टाध्यायी ५-४-११२,
३. अष्टाध्यायी ८-४-५१।

के लिए लिखा है। इन वैयाकरणों ने जो कार्य किया है, वह बहुत उच्च कोटि का है। **मैकडानल** का कथन है--"भारतीय वैयाकरणों ने ही विश्व में सर्वप्रथम शब्दों का विवेचन किया है, प्रकृति और प्रत्यय का अन्तर पहचाना है, प्रत्ययों के कार्य का निर्धारण किया है, सब प्रकार से परिपूर्ण और अति विशुद्ध व्याकरण-पद्धति को जन्म दिया है, जिसकी तुलना विश्व के किसी देश में प्राप्य नहीं है।"[१]

छन्द का सम्बन्ध वृत्त से है। वैदिक मन्त्रों में प्रयुक्त छन्दों के विषय में इसमें नियम दिये हुए हैं। **निदानसूत्रों** में वैदिक छन्दों के नाम और उनके लक्षण दिए हुए हैं। इसमें १० अध्याय है। इसमें अन्त में वैदिक मन्त्रों में प्रयुक्त छन्दों की अनुक्रमणिका दी हुई है। **पिंगल** का **छन्दःसूत्र** यद्यपि प्राचीन है, परन्तु उसमें वैदिक छन्दों का वर्णन नहीं है।

निरुक्त में वेदों की व्याख्या के प्रथम प्रयास का उल्लेख है। सबसे प्राचीन **निरुक्त यास्क** (८०० ई० पू० से पूर्व) का ही प्राप्य है। उसने अपने पूर्ववर्ती १७ निरुक्तकारों का उल्लेख किया है, परन्तु उनके ग्रन्थ उसको भी उपलब्ध नहीं हुए थे। इसमें वेदों से व्याख्या के लिए जिन शब्दों का संग्रह किया गया है, वे तीन भागों में विभक्त होते हैं--१. नैघण्टुककाण्ड, इसमें पर्यायवाची शब्दों की सूची दी गई है। २. नैगमकाण्ड या ऐकपदिक, इसमें वेद के कठिन और अस्पष्टार्थक शब्दों का संग्रह है। दैवतकाण्ड. इसमें पृथ्वी, आकाश और द्युलोक के देवताओं के नाम की सूची दी गई है। यास्क को अपने पूर्व विद्यमान वैदिक शब्दों की एक सूची उपलब्ध हुई थी, जिसे **निघण्टु** कहते हैं। **यास्क** ने उस पर **निरुक्त** नाम की टीका की है।

यज्ञों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए **ज्योतिष्** का जन्म हुआ। सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों और नक्षत्रों की गति का निरीक्षण करना पड़ता था। उनकी गति के आधार पर शुभ मुहूर्त पर यज्ञों का समय निर्धारित किया जाता था। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उनकी गति की गणना आवश्यक

---

१. India's Past by A. A, Macdonell. पृष्ठ १३६

हुई । ऐसा ज्ञात होता है कि चान्द्र गणना को विशेष महत्त्व दिया गया था । ज्योतिष् के प्रमुख ग्रन्थों में सौर और चान्द्र दोनों प्रकार की गणना प्राप्त होती है और मलमास की भी गणना प्राप्त होती है । एक अज्ञात लेखक का **ज्योतिषवेदांग** नामक ग्रंथ प्राप्त हुआ है । इसमें ४३ श्लोक यजुर्वेद से संबद्ध हैं और ३६ श्लोक ऋग्वेद से संबद्ध हैं ।

कल्पसूत्रों की उत्पत्ति वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थों से हुई है । कल्प का अर्थ है कि इसके द्वारा यज्ञ के प्रयोगों का समर्थन किया जाता है । कल्प्यते समर्थते याग-प्रयोगोऽत्र इति व्युत्पत्तेः । (सायण के ऋग्वेदभाष्य की भूमिका) इस विषय से सम्बद्ध ग्रन्थ सूत्ररूप में हैं । इन सूत्रों का अर्थ व्याख्याओं के द्वारा ही समझा जा सकता है । ब्राह्मण ग्रन्थों में जो लम्बे और क्लिष्ट विवरण दिए गए हैं, वे यज्ञों के समय पूर्णरूप से स्मरण नहीं रह सकते थे । अतः इसके लिए सूत्ररूप को अपनाया गया ।

इस विषय को स्थूल रूप से चार भागों में बाँटा जाता है—**श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्व** । **श्रौत सूत्रों** में दक्षिण, आहवनीय और गार्हपत्य इन तीन अग्नियों की पूजा और दर्शपूर्णमास सोम, आदि यज्ञों के करने का वर्णन किया गया है । **गृह्य सूत्रों** में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक समस्त संस्कारों का वर्णन किया गया है । साथ ही समाज में प्रचलित प्रथाओं आदि का भी वर्णन है । मुख्य संस्कारों में ये हैं—जातकर्म (पुत्रोत्पत्ति के समय के कार्य), उपनयन और वेदारम्भ संस्कार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों के ब्रह्मचर्य और गृहस्थ समय के कर्त्तव्य आदि, गुरु और शिष्य के कर्त्तव्य, विवाह-संस्कार, दैनिक किये जाने वाले पंचयज्ञ,[1] गृह-निर्माण, पशुपालन, रोगनाशक विधियाँ,

---

१. पंच यज्ञ ये हैं—१—ब्रह्मयज्ञ, वेदों का अध्ययन और अध्यापन २—पितृयज्ञ, पितरों की पूजा ३—देवयज्ञ, देवों की पूजा, यज्ञ आदि ४—भूतयज्ञ, सभी प्राणियों को अन्नादि देना ५—नृयज्ञ, अतिथियों की पूजा ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो, बलिर्भौतो, नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।। मनुस्मृति ३–७०

अन्त्येष्टि संस्कार आदि। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि इन सूत्रों में गृहस्थ-जीवन से संबद्ध सभी संस्कारों का वर्णन है, जो कि एक गृहस्थ को करने चाहिएँ। **धर्मसूत्रों** में नीति, धर्म, रीति और प्रथाएँ, चारों वर्णों और आश्रमों के कर्त्तव्यों आदि का वर्णन है। **शुल्वसूत्रों** में यज्ञवेदी के निर्माण से संबद्ध नाप आदि का तथा वेदी के बनाने आदि के नियमों का वर्णन है। ये **श्रौतसूत्रों** से सम्बद्ध विषय का वर्णन करते हैं। ये भारतीय ज्यामिति का प्रारम्भिक रूप प्रदर्शित करते हैं।

श्रौत और **गृह्य सूत्रों** में यज्ञों की विधि के नियम हैं। इनमें यज्ञों के समय प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का विनियोग भी वर्णित है। प्रत्येक **कल्पसूत्र** का किसी एक वेद से सम्बन्ध है। कल्पसूत्रों के सहायक ग्रंथ के रूप में **मन्त्रब्राह्मण** और **मन्त्रपाठ** नामक दो ग्रंथ हैं। इनमें मन्त्रों का संग्रह है। ये दोनों क्रमशः **गोभिलगृह्यसूत्र** और **आपस्तम्बगृह्यसूत्र** के अनुयायियों के द्वारा विशेष उद्देश्य के लिए उपयोग में लाए जाते हैं।

बौधायन और **आपस्तम्ब** ५०० ई० पू० से पूर्व हुए थे। दोनों अपनी परम्परा के अनुसार कल्पसूत्रों अर्थात् श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्व सूत्रों के रचयिता हैं। ये सूत्र कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध हैं। **सत्याषाढ हिरण्यकेशी** के गृह्य और श्रोत सूत्रों का संबन्ध तैत्तिरीय शाखा की एक शाखा से है। **हिरण्यकेशी** के **धर्मसूत्र आपस्तम्ब** के धर्मसूत्रों से बहुत अधिक मिलते हैं। उनमें अन्तर नहीं के बराबर है। **अग्निवेशगृह्यसूत्र** और **वादूल** तथा **वैखानसों** के कल्पसूत्रों का सम्बन्ध तैत्तिरीय शाखा से है। कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा के **मानवश्रौतसूत्र, मानवगृह्यसूत्र** और **मानवशुल्वसूत्र** हैं। **काठकगृह्यसूत्रों** का भी सम्बन्ध मानव शाखा से ही है। **भरद्वाज** के **कल्पसूत्रों** का भी सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद से ही है।

अन्य वेदों के श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्व सूत्र बहुत कम हैं। ऋग्वेद के साथ संबद्ध **आश्वलायन** और **शांख्यायन** के श्रौत और गृह्यसूत्र हैं तथा **शाम्भव्य** और **शौनक के गृह्यसूत्र** हैं। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के साथ संबद्ध

कात्यायन के श्रौत और शुल्व सूत्र तथा **पारस्कर** के गृह्यसूत्र हैं। सामवेद की कौथुम शाखा के साथ संबद्ध **कात्यायन** के **श्रौतसूत्र** हैं। सामवेद की राणायनीय शाखा के साथ संबद्ध **द्राह्यायण** के **श्रौत्रसूत्र** हैं। ये दोनों श्रौतसूत्र **ताण्ड्यब्राह्मण** पर निर्भर हैं। **जैमिनि** के गृह्य और श्रौतसूत्र, **गोभिल** के गृह्यसूत्र और **खादिर** के गृह्यसूत्रों का सम्बन्ध द्राह्यायण शाखा से है और ये **राणायनीय शाखा** में भी उपयोग में आते हैं। इसके अतिरिक्त इस वेद से संबद्ध ये ग्रन्थ हैं :—१ **आर्षेय कल्प**, इसका दूसरा नाम **मशककल्पसूत्र** है। इसमें ताण्डच शाखा वालों के द्वारा सोम यज्ञ के समय गाए जाने वाले मन्त्रों की सूची भी है। २. **अनूपसूत्र**, ये ताण्डचब्राह्मण की व्याख्या करते हैं, ३. **निदानसूत्र**, इनमें छन्दों का वर्णन है, ४. **उपग्रन्थसूत्र**, सामवेद से संबद्ध यज्ञों की विधि का वर्णन करते हैं, ५. **क्षुत्रसूत्र**, सामवेद की विधियों का वर्णन करता है, ६. **ताण्डलक्षणसूत्र**, ७. **कल्पानुपदसूत्र**, ८. **अनुस्तोत्रसूत्र**, ९. **द्राह्यायण के गृह्यसूत्र**। अथर्ववेद से संबद्ध **वैतानश्रोतसूत्र** और **कौशिकसूत्र** हैं। इनमें गृह्यसूत्रों का विषय वर्णित है। अथर्ववेद का वैदिक यज्ञों से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, अतः इसके अन्य सूत्र नहीं हैं।

गृह्यसूत्रों के पश्चात् **श्राद्धकल्प** और **पितृमेधसूत्र** आते हैं। इनमें पितरों से संबद्ध श्राद्ध और तर्पण का वर्णन है। **मानवश्राद्धकल्प, कात्यायानश्राद्धकल्प बोधायनपितृमेधसूत्र** आदि इसी विषय से संबद्ध हैं। **कल्पसूत्र** में जिन विधियों का वर्णन संक्षेप में है, उनका विस्तृत वर्णन '**परिशिष्ट**' ग्रन्थों में है। **कात्यायन के छान्दोग्य** और **अथर्व परिशिष्ट, ऋतुसंग्रह, विनियोगसंग्रह** और **शौनक का चरणव्यूह** इसी विषय के ग्रन्थ हैं। **चरणव्यूह** में वैदिक शाखाओं का वर्णन है। **गोभिलपुत्र** के **गृह्यसंग्रहपरिशिष्ट** और **कर्मप्रदीप** का सम्बन्ध **गोभिलगृह्यसूत्र** से है। **प्रायश्चित्तसूत्रों** का सम्बन्ध अथर्ववेद के **वितानसूत्रों** से है। **प्रयोग ग्रन्थ, पद्धतियों** और **कारिकाओं** का सम्बन्ध कल्पसूत्रों से है।

वेदांगों का महत्त्व निम्नलिखित श्लोक में अच्छे प्रकार से प्रकट किया गया है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥

पाणिनीय शिक्षा ४१–४२

इन वेदांगों के अतिरिक्त **अनुक्रमणिकाएँ** हैं । इनमें ऋषियों के नामों के साथ वेदों की पूरी विषयसूची दी हुई है । वेदों के मन्त्रों के देवताओं के नाम तथा मन्त्रों के छन्दों के नाम भी इनमें दिये हुए हैं । **शौनक** ने ऋग्वेद से संबद्ध ये ग्रन्थ लिखे हैं––१. **आर्षानुक्रमणी**, ऋषियों की सूची, २. **छन्दोऽनुक्रमणी** छन्दों की सूची, ३. **देवतानुक्रमणी**, देवताओं की सूची, ४. **सूक्तानुक्रमणी**, सूक्तों की सूची, ५. **पदानुक्रमणी**, पदों की सूची, ६. **अनुवाकानुक्रमणी**, अनुवाकों की सूची, ७. **बृहद्देवता**, देवताओं की सूची तथा उनसे संबद्ध कथाएँ, ८. **ऋग्विधान**, कुछ विशेष सूक्तों का उल्लेख, जिनके पाठ से आश्चर्यजनक लाभ होते हैं । इन अनुक्रमणिकाओं के द्वारा ज्ञात होता है कि **ऋग्वेद** में १०१७ सूक्त, १०५८०$\frac{1}{2}$ मन्त्र, १५३८२६ शब्द और ४३२००० वर्ण हैं । पाश्चात्त्य विद्वानों का मत है कि इनमें से कुछ **शौनक** के बनाए हुए नहीं हैं । शौनक के शिष्य **कात्यायन** ने **सर्वानुक्रमणी** बनाई है । इसमें इन सबकी अनुक्रमणिका सूत्र रूप में दी गई है । यह **सर्वानुक्रमणी ऋग्वेद** की है । शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा की **यजुर्वेदानुक्रमणी** कात्यायन ने ही बनाई है । **आत्रेयशिक्षा** और **चारायणीय** का सम्बन्ध **कृष्ण यजुर्वेद** की **तैत्तिरीय** शाखा से है । **चारायणीय** का दूसरा नाम **मन्त्ररहस्याध्याय** है । **आत्रेयशिक्षा तैत्तिरीय संहिता, ब्राह्मण** और **आरण्यक** की अनुक्रमणिका है । **आर्षेय ब्राह्मण** वस्तुतः सामवेद की अनुक्रमणिका ही है । **बृहत्सर्वानुक्रमणी अथर्ववेद** की अनुक्रमणिका है । इसके अतिरिक्त **परिशिष्ट** नामक ग्रन्थ हैं । ये २१ हैं । इन सबका सम्बन्ध **सामवेद** से है ।

६ वेदाँगों के तुल्य ही पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र भी वेदार्थज्ञान में सहायक माने गए हैं।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।।

याज्ञवल्क्यस्मृति १-३

अध्याय ८

ऐतिहासिक महाकाव्य

रामायण

ऐतिहासिक महाकाव्य—ऐतिहासिक महाकाव्यों का समय वैदिक और श्रेण्यकाल के मध्य में पड़ता है। यह बात इस समय के साहित्य में प्राप्त कतिपय विशेषताओं से स्पष्ट है। इन महाकाव्यों में शब्दों के प्राचीन रूप, सरल भाषा, आत्मनेपद और परस्मैपद का विभक्तियों से युक्त धातुरूपों का स्वतन्त्र प्रयोग तथा अन्य कतिपय विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, जो श्रेण्यकाल की भाषा की अपेक्षा वैदिक काल की भाषा से अधिक समानता रखती हैं।

ऐतिहासिक महाकाव्य प्राचीन हिन्दुओं के लौकिक जीवन को प्रकट करते हैं। इस साहित्य का प्रारम्भ वैदिक काल में ही हो चुका था। आख्यान, पुराण, इतिहास शब्द वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। पुरुरवा और उर्वशी, शुनःशेप तथा अन्य कथाएं, जो वैदिक साहित्य में प्राप्त होती हैं, ऐतिहासिक महाकाव्यों के प्रारम्भ को सूचित करती हैं। इतिहास शब्द इति + ह + आस से बना है और इसका अर्थ है कि ऐसा वस्तुतः हुआ था। अतः यह शब्द इस बात को सूचित करता है कि ऐसी घटना बहुत समय पूर्व घटित हुई थी।

इति हेत्यव्ययं पारम्पर्योपदेशाभिधायि। तस्यासनम् आसः अवस्थानमेतेष्विति इतिहासाः पुरावृत्तानि।

इतिहास का लक्षण किया गया है कि जिसमें प्राचीन समय की कथाएँ हों और जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में आवश्यक उपदेश दे।

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

अतः इतिहास को प्राचीन घटनाओं का संकलन समझना चाहिए। अतएव इनकी कथाएँ काल्पनिक गाथाएँ नहीं मानी जा सकती हैं, जैसा कि पाश्चात्त्य विद्वान् मानते हैं।

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद शाश्वत माने जाते है या वे सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा के द्वारा उपदिष्ट माने जाते हैं। वैदिक ऋषियों ने वेदार्थ की पुष्टि के लिए कुछ उपाख्यान रचे होंगे। ये उपाख्यान ही इतिहास, आख्यान और उपाख्यान कहे गए। ऐसे उपाख्यानों आदि की संख्या बहुत रही होगी। इनमें से अधिकांश रामायण, महाभारत और पुराणों में सम्मिलित किए गए। तत्पश्चात् रामायण और महाभारत इतिहास कहे गए। इनमें बहुत सा इतिहास भरा हुआ है।[१] अतएव ऐतिहासिक महाकाव्यों का समय बहुत प्राचीन समय से मानना चाहिए।

ये महाकाव्य लौकिक भावों से युक्त होने पर भी ऐतिहासिक वातावरण में उत्पन्न हुए हैं। ये वैदिक यज्ञादि के अवसर पर गाए जाते थे। वैदिक देवता सविता, अग्नि, इन्द्र इत्यादि का, जिनका वैदिक साहित्य में मख्य स्थान था, इन महाकाव्यों में गौण स्थान हो गया है। इनमें भी इन्द्र देवों का राजा है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन महाकाव्यों में मुख्य हैं। कुबेर, गणेश, कार्त्तिकेय, लक्ष्मी, पार्वती, नाग देवता तथा अन्य देवता का, जिनका वैदिक काल में गौण स्थान था, इन महाकाव्यों में मुख्य हैं। साहित्य का स्वरूप बदल गया है। वैदिक काल में ऋग्वेद संहिता छन्दों में है तथा अन्य गद्य में हैं। ऐतिहासिक महाकाव्य पद्य में ही हैं। आशावाद का भाव, जो

१. देखो रामायण ६-१२०-३२।
महाभारत—उद्योग० ३६-१३३।
द्रोण० ५२।
शान्ति० १०३, १०४, १११।
अनुशासन० ५०।

पूरे वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है, इन महाकाव्यों में हीन रूप में प्राप्त होता है । आशावाद के भाव को दबा कर चिन्ता और विषाद के भाव वृद्धि पर हैं । इन महाकाव्यों में ऋषियों की जीवनियों तथा सफलताओं का भी वर्णन है ।

रामायण और **महाभारत** ये दोनों राष्ट्रीय ऐतिहासिक महाकाव्य हैं । इनमें बहुत-सी कहानियाँ हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि इससे पूर्व आख्यान पुराण और इतिहास थे । इन दोनों महाकाव्यों की अत्युत्कृष्टता ने इस प्रकार के संपूर्ण प्राचीन साहित्य को सर्वथा समाप्त कर दिया ।

रामायण

रामायण भारतवर्ष का ऐतिहासिक महाकाव्य है । इसमें २४ सहस्र श्लोक हैं । यह सात कांडों मे विभक्त है । इसके रचयिता **वाल्मीकि** ऋषि हैं । इसमें राम और सीता का जीवनचरित वर्णित है । वाल्मीकि ने इसको काव्य[१] आख्यान,[२] गीता[३] और संहिता[४] नाम से सम्बोधित किया है ।

वाल्मीकि को सप्तर्षियों ने धार्मिक जीवन की दीक्षा दी थी । उन्होंने बहुत समय तक निरन्तर समाधि लगाई । जब वे अपनी समाधि से उठे तो उनके चारों ओर दीमकों ने बमी बना ली थी और वे उससे बाहर निकले । अतएव उनका नाम वाल्मीकि पड़ा, क्योंकि वे वाल्मीकि (बमी) से बाहर निकले थे । वे अयोध्या के समीप ही गंगा नदी के किनारे रहते थे । राम अपने वनवास के समय सर्वप्रथम उनके ही आश्रम पर पहुँचे थे ।[५] उन्हें राम के जीवन की विशेष घटनाओं का ज्ञान था । वे उनके उदात्त गुणों से बहुत

१. रामायण, बालकाण्ड, २-४१, युद्धकाण्ड १२८-१०५ ।
२. रामायण, बालकाण्ड, ४-३२, युद्धकाण्ड १२८-११८ ।
३. रामायण, बालकाण्ड, ४-२७ ।
४. रामायण, युद्धकाण्ड, १२८-१२० ।
५. रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५६ ।

प्रभावित थे। एक दिन वे अपने आश्रम पर आए हुए नारद ऋषि से मिले और उनसे एक आदर्श पुरुष का जीवनचरित पूछा। उत्तर में नारद ने राम के जीवन का वर्णन किया। यह ज्ञात होता है कि इसके द्वारा वाल्मीकि राम के जीवन के विषय में प्रामाणिक और निश्चित विवरण ज्ञात करना चाहते थे। नारद से मिलने के बाद उनका ध्यान राम की ओर ही केन्द्रित हो गया था और वे इसी अवस्था में अपने आश्रम के समीप बहने वाली तमसा नदी पर पूजा के लिए गए। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक व्याध ने क्रौंच पक्षी को मार दिया है। कौची अपने पति एवं प्रिय के वियोग में बहुत दुःखित होकर रो रही थी। यह देखकर वाल्मीकि ऋषि का हृदय द्रवित हो गया और उन्होने व्याध को शाप दिया कि वह बहुत काल तक दुखी रहे। उनका यह शाप पद्य रूप में परिणत होकर प्रकट हुआ, जो कि निम्न रूप में है :—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

रामायण, बालकाण्ड २-१५

वे पूजा करके अपने आश्रम को लौटे। तत्पश्चात् ब्रह्मा उनके सामने आए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और आदेश भी दिया कि वे राम का चरित शाप वाले पद्य के अनुसार पद्यों में लिखें। उन्होंने वाल्मीकि को शक्ति प्रदान की कि राम के वर्तमान, भूत और भविष्यत् जीवन को साक्षात् देख सकेंगे। ब्रह्मा के जाने के पश्चात् वाल्मीकि ने काव्य की रचना प्रारंभ की, जिसको रामायण नाम से पुकारा गया। यह रामायण सात काण्डों में विभक्त है :— बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तरकांड। उन्होंने अपने आश्रम में निवास करने वाली सीता के पुत्र कुश और लव को रामायण पढ़ाई, जो उस समय उनके आश्रम में अपनी माता सीता के साथ रहते थे। अश्वमेध यज्ञ के समय राम की उपस्थिति में कुश और लव ने रामायण का गान किया था।

पाश्चात्त्य आलोचकों तथा उनके अनुगामी कतिपय भारतीयों का विचार है कि वाल्मीकि ने बालकाण्ड के उत्तरार्ध या केवल अन्तिम भाग से लेकर युद्धकाण्ड के अन्त तक रामायण को रचना की है। रामायण का शेष भाग बाद के किसी अन्य लेखक ने लिखा है और उसको वाल्मीकि के मूल ग्रंथ से मिला दिया है। इस निर्णय के निम्नलिखित आधार हैं :—

१—वर्तमान रामायण में ऋष्यश्रृङ्ग, विश्वामित्र, अहल्या, रावण, हनुमान गंगावतरण आदि की कथाएँ प्राप्त होती हैं। इन कथाओं का मुख्य कथा से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं है। ये कथाएँ बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध में प्राप्त होती हैं। इस प्रकार की कहानियाँ इन काण्डों के अतिरिक्त अन्य काण्डों में नहीं प्राप्त होती हैं। इन कथाओं का लेखक वाल्मीकि के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति होना चाहिए, क्योंकि वाल्मीकि राम की कथा लिखते हुए ग्रन्थ के मुख्य भाग में इनको स्थान न देते। अतएव रामायण के वे भाग जिनमें ये कथाएँ हैं, अन्य किसी लेखक की रचना हैं।

२—बालकाण्ड में दो विषय-सूचियाँ हैं, एक नारद द्वारा वर्णित राम का जीवन और दूसरी विषय सूची किसी अन्य के द्वारा लिखित सर्ग ३ अन्त में है। नारद वाली विषय-सूची **संक्षेप-रामायण** नाम से प्रसिद्ध है। इसमें उत्तरकाण्ड की विषय-सूची सम्मिलित नहीं है। दूसरी सूची में उत्तरकाण्ड का उल्लेख है। नारद की विषय-सूची के आधार पर वाल्मीकि ने युद्धकाण्ड के अन्त तक रचना की होगी। दूसरी विषयसूची किसी अन्य लेखक ने जोड़ी है। उसने संक्षेप-रामायण में उत्तरकाण्ड का उल्लेख न पाकर पूरे रामायण की विषय-सूची तैयार की है। इन दोनों विषय-सूचियों से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि ने कितना अंश लिखा है। युद्धकाण्ड के स्तुति-श्लोक भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध करके कि वाल्मीकि ने पूरी रामायण नहीं लिखी है, आलोचकों ने इन प्रक्षेपों का उद्देश्य भी बताया है। (१) उनका लक्ष्य था कि जिस प्रकार महाभारत में कथाएँ हैं, उसी प्रकार रामायण में भी ऋष्यश्रृङ्ग आदि की कथाएँ होनी चाहिए। उत्तरकाण्ड में रामायण के पात्रों के जीवन-

चरित दिए गए हैं। (२) वाल्मीकि राम को मनुष्य के रूप में मानते हैं। जब कृष्ण अवतार के रूप में माने जाने लगे तो राम को भी अवतार के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इसके लिए राम को अवतार बताने वाले श्लोक भी इसमें सम्मिलित किए गए। ऐसे श्लोक बालकाण्ड के पूर्वार्ध और उत्तरकाण्ड में ही मिलते हैं, जो कि बाद में सम्मिलित किए गए हैं। (३) वाल्मीकि ने प्रथम श्लोक असह्य दुःख के आवेग में बनाया था। ब्रह्मा ने आदेश दिया था कि उसी आदर्श पर रामायण की रचना करो। प्रथम श्लोक अनुष्टुप छन्द में है। अतः वाल्मीकि ने संपूर्ण रामायण अनुष्टुप छन्द में ही लिखा होगा। बाद में जब महाकाव्य के लक्षणों में यह भी निर्धारित किया गया कि उसके प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक सर्ग में प्रयुक्त छन्द की अपेक्षा अन्य छन्द में हो, तब उस समय के विद्वानों ने रामायण को भी महाकाव्य नाम देने की इच्छा की होगी। इसके लिए कतिपय सर्ग और श्लोक विभिन्न छन्दों में बनाए गए होंगे। बाद में ये ही श्लोक रामायण में यथास्थान जोड़ दिए गए होंगे। तब इसका नाम महाकाव्य पड़ा। वाल्मीकि ने अनुष्टुप छन्द वाले ही श्लोक बनाये हैं; अतः जो अंश ऊपर उल्लेख किए गए हैं, वे वाल्मीकि के बनाए हुए नहीं हैं।

आलोचकों का यह विचार विचारणीय है। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में जो कथाएँ हैं वे अधिकतर अपने उचित स्थान पर हैं। बालकाण्ड में जो कथाएँ हैं वे घटनाओं का वास्तविक रूप चित्रित करती हैं। इनमें से अधिक कथाएँ राम और लक्ष्मण को सुनाई गई हैं। ये कथाएँ इस प्रकरण में विशेष लक्ष्य की पूर्ति करती हैं। कोई भी कथा केवल जोड़ने की दृष्टि से नहीं रखी गई है। विश्वामित्र, रावण, हनुमान आदि की कथाएँ अपने उचित स्थान पर हैं। ये कथाएँ जिन व्यक्तियों से संबद्ध हैं, उनका इस महाकाव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाल्मीकि ने मुख्य भाग में इनका जीवनचरित नहीं लिखा है। इन कथाओं के बिना यह महाकव्य पूर्ण नहीं माना जा सकता था। रामायण के मुख्य अंश तथा इन कथाओं की निष्पक्ष विवेचना से ज्ञात

होता है कि ये उचित प्रसंग में ही रखी गई हैं और इनके समावेश से कोई अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती है। मुख्य अंश में ये कथाएं इसलिए नहीं रखी गई हैं, क्योंकि वहाँ पर इनकी आवश्यकता नहीं थी। इस विषय में यह स्वीकार करना उचित है कि रामायण में प्रक्षेप हैं और विशेष रूप से उत्तर-काण्ड में। इस कथन की पुष्टि भारतीय टीकाकारों द्वारा होती है। उन्होंने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि कुछ सर्ग प्रक्षिप्त हैं। अतएव उन्होंने उनकी टीका नहीं की है।

दूसरी बात के विषय में यह वक्तव्य है कि **संक्षेप-रामायण** में उतना ही अंश है, जितना वाल्मीकि ने नारद से सुना है। तृतीय सर्ग में जो विषयसूची है, वह वाल्मीकि के द्वारा बनाए हुए पूरे ग्रन्थ की विषयसूची है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वाल्मीकि ने रामायण का उतना ही अंश बनाया है, जितना कि उन्होंने नारद से सुना है, और उससे अधिक कुछ नहीं। संक्षेप-रामायण में राम के जीवन की भावी घटनाओं का भी उल्लेख है। इसमें राम के द्वारा किए गए अश्वमेध का भी उल्लेख है।[1] अतः बालकाण्ड में दो विषयसूची होने में कोई असंगति नहीं है। संक्षेप-रामायण में उत्तरकाण्ड के विषयों का निर्देश मात्र है और दूसरी विषयसूची में उत्तरकाण्ड की घटनाओं का विस्तृत वर्णन है। युद्धकाण्ड के अन्त में जो आशीर्वादात्मक श्लोक हैं, वे वहाँ पर इसलिए हैं कि जो व्यक्ति रामायण का दैनिक पारायण लौकिक सुख-समृद्धि के लिए करते हैं, वे युद्धाण्ड के अन्त में इस प्रकार के श्लोक चाहते हैं, क्योंकि उसकी समाप्ति सुखान्त है। उत्तरकाण्ड का अन्त दुःखान्त है, अतः कोई भी उसके अन्त तक पारायण करना नहीं चाहता है।

रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बालकाण्ड के प्रथम चार सर्ग भूमिका के रूप में हैं। इनका कौन लेखक है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। इनके लेखक संभवतः एक से अधिक व्यक्ति हैं। वाल्मीकि के शिष्य, जो उनके साथ रहते थे, इन सर्गों के लेखक ज्ञात होते हैं। उन्होंने

१. रामायण, बालकाण्ड, १—९४, ९५।

ही इन सर्गों को रामायण के प्रारम्भ में जोड़ दिया है। रामायण के भूमिका-भाग से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि ने रामायण बनाने के पश्चात् इसके गान के लिए कुश और लवको चुना। और उन्हें इसकी शिक्षा दी। कुश और लव उस समय कुछ बड़ी आयु के रहे होंगे। अतएव सीता वाल्मीकि के आश्रम में बहुत वर्षों से रहती रही होंगी। भूमिका-भाग से ऐसा प्रतीत होता है कि नारद के जाने के पश्चात् वाल्मीकि ने रामायण की रचना एक वर्ष से कम समय में ही की है। ऐसा ज्ञात होता है कि राम के द्वारा सीता का निर्वासन और उनके आश्रम में आने के पश्चात् वाल्मीकि ने राम का जीवनग्रन्थ-रूप में निबद्ध करने का विचार किया होगा। उन्होंने इस कार्य के आरम्भ करने से पूर्व नारद की स्वीकृति लेनी आवश्यक समझी होगी। अतएव उन्होंने नारद की स्वीकृति ली।

यदि **वाल्मीकि** ने उत्तरकाण्ड की रचना नहीं की है तो इसके अन्य लेखक को राम के अभिषेक के बाद का वृत्तान्त किस प्रकार प्राप्त हुआ? वाल्मीकि की रचना शोक से प्रारम्भ हुई है, अतः उन्होंने उसे दुःखान्त रूप में समाप्त किया होगा। कई कारणों से वाल्मीकि को ही उत्तरकाण्ड का भी रचयिता मानना उचित है। इस काण्ड के अभाव में भरत और शत्रुघ्न केवल आज्ञाकारी भाई के रूप में ही प्रसिद्ध होते। वे युद्धों में विजयी के रूप में प्रसिद्ध न होते। उत्तरकाण्ड में उल्लेख है कि भरत ने युद्ध में गन्धर्वों को जीता और शत्रुघ्न ने लवण राक्षस को मारा और इस प्रकार अपना नाम सार्थक किया। यदि वाल्मीकि ने यह काण्ड न लिखा होता तो उन पर चरित्र-चित्रण में अकुशलता का दोष आता।

वाल्मीकि ने उत्तरकांड को भी बनाया है, इस बात के सार्थक तीन प्रमाण हैं। **महाभारत** (३००० ई० पू०) में उत्तरकाण्ड की अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। **दिङ्नाग कुन्दमाला** नाटक के रचयिता हैं। उन्होंने अपने नाटक में इस बात का उल्लेख किया है कि वाल्मीकि ने राम के ारा सोता के निर्वासन तक रामायण की रचना को है।[१] **आनन्दवर्धन**

१ कुन्दमाला, अंक ६. १४।

(८५० ई०) ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि वाल्मीकि ने राम और सीता के वियोग-पर्यन्त रामायण की रचना की है। वे लिखते हैं कि—

रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूत्रितः। 'शोकःश्लोकत्वमागतः' इत्येवंवादिना। निर्व्यूढश्च स रामसीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।

ध्वन्यालोक, अध्याय ४

आनन्दवर्धनाचार्य के कथन को विशेष रूप से युक्तियुक्त मानना उचित है, क्योंकि वे उच्च कोटि के आलोचक थे। वे निराधार परम्परा को प्रमाण रूप में न मानते। अतएव वाल्मीकि को संपूर्ण रामायण का रचयिता मानना उचित है।

पाश्चात्त्य आलोचकों का रामायण में प्रक्षिप्त अंश का जो विचार है, उसके विषय में यह कथन है कि जिस प्रकार महाभारत में कथाएँ बाद में मिश्रित की गई हैं, उस प्रकार रामायण में कथाएं बाद में मिश्रित नहीं की गई हैं, क्योंकि रामायण में कथाएं अपने उचित स्थान पर हैं और महाभारत में इस प्रकार उचित स्थान पर नही हैं।

वाल्मीकि राम को अवतार के रूप में नहीं मानते थे, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है, क्योंकि भारतवर्ष में काव्य का जन्म धार्मिक वातावरण में हुआ है। आदिकाल में धार्मिक भावना और दैवी परिस्थितियों ने भारतीय काव्य को एक विशिष्ट स्वरूप दिया है। रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि राम के अवतार होने में विश्वास रखते थे। यह स्वीकार करने पर भी कि रामायण के मुख्य भाग में राम को अवतार सिद्ध करने वाले श्लोक उपलब्ध नहीं होते हैं, यह स्वीकार करना असंगत प्रतीत होता है कि रामायण का एक वृहत भाग प्रक्षिप्त है, क्योंकि उसमें कुछ श्लोक राम को अवतार रूप में मानने वाले हैं। ऐसे श्लोक बहुत थोड़े हैं। यह संभव है कि संपूर्ण रामायण को राम के दैवी स्वरूप का समर्थक सिद्ध किया जाय। इसका निर्णय बहुत कुछ पाठक के भावों पर निर्भर है।

यह कथन कि रामायण को महाकाव्य सिद्ध करने के लिए बहुत कुछ अंश बाद में जोड़ा गया है उचित प्रतीत नहीं होता है। पाश्चात्त्य विद्वानों ने श्लोक शब्द से जो अर्थ निकालने का प्रयत्न किया है, वह संभव नहीं है। वाल्मीकि का शोक श्लोक रूप में प्रकट हुआ।[1] पाश्चात्त्य विद्वानों ने श्लोक शब्द का अर्थ अनुष्टुप् छन्द मात्र लिया है। यहाँ पर श्लोक शब्द का अर्थ पद्यमात्र लेना उचित है।[2] श्लोक शब्द संस्कृत में पद्यमात्र के अर्थ में आता है।[3] भारतीय टीकाकारों ने श्लोक शब्द का यह अर्थ नहीं लिया है जो पाश्चात्त्य विद्वान् लेना चाहते हैं। यह मानना उचित है कि वाल्मीकि ने श्लोक अनुष्टुप् तथा अन्य छन्दों में भी बनाए हैं। यदि यह नहीं मानेंगे तो वाल्मीकि को उन सभी सुन्दर पद्यों का रचयिता नहीं मान सकते जो विभिन्न छन्दों में रामायण में प्राप्त होते हैं। यह सिद्ध करना किसी भी आलोचक के लिए प्रशंसा की बात नहीं है कि वह वाल्मीकि जैसे महान् कवि को केवल एक छन्द की रचना करने में समर्थ साधारण कवि सिद्ध करे। यह संभव है कि वाल्मीकि के समय में महाकाव्य के विषय में यह नियम प्रचलित नहीं रहा होगा कि प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक अन्य छन्द में हो। यह भी संभव है कि प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक विभिन्न छन्दों में बाद में बनाए गए हों और प्रत्येक सर्ग के अन्त में जोड़ दिए गए हों। केवल इस आधार पर वाल्मीकि को सभी अन्य छन्दों वाले श्लोकों का रचयिता न मानना सर्वथा अनुचित है।

इस प्रसंग में यह उल्लेख कर देना उपयुक्त है कि बालकाण्ड में एक श्लोक[4] आता है कि वाल्मीकि ने अपना यह महाकाव्य ५०० सर्गों में बनाया है और इसमें २४ सहस्र श्लोक हैं।

१. रामायण, बालकाण्ड २-४०, शोकः श्लोकत्वमागतः।
२. श्लोकृ सघाते धातु से श्लोक शब्द बना है अर्थात् पद्यात्मक बन्धन।
३. पद्ये यशसि च श्लोकः। अमरकोश, ३, नानार्थवर्ग २।
४. रामायण, बालकांड, ४-२।

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तावानृषिः ।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट् काण्डानि तथोत्तरम् ।।

रामायण १-४-२ ।

जो ग्रन्थ आजकल प्राप्त होता है, उसमें लगभग ६४५ सर्ग और २४ सहस्र से कुछ ही अधिक श्लोक उपलब्ध होते हैं । वाल्मीकि ने मूलरूप में जो सर्ग लिखे थे, उनमें कुछ परिवर्तन भी हुआ है । कुछ सर्ग लुप्त हो गए हैं तथा कुछ नए सर्ग बाद में जोड़े गए हैं । यही बात श्लोकों के विषय में भी घटित हुई है । कुछ श्लोक स्थानान्तरित हुए हैं । रामायण में कुछ स्थल प्रक्षिप्त हैं, यह रामायण के उत्तरीय, उत्तर-पश्चिमीय तथा बम्बई के संस्करणों में सर्गों और श्लोकों के क्रम तथा संख्या में विभिन्नता से स्पष्ट है । कुछ प्रक्षिप्त स्थल अत्यन्त स्पष्ट हैं । विन्ध्य पर्वत के दक्षिणी प्रदेश में राम को कोई सभ्य व्यक्ति नहीं मिले, किन्तु रामायण में पांड्य, चोल, आन्ध्र और कोल आदि का उल्लेख मिलता है । ऐसे श्लोक समय के प्रभाव से नष्ट हुए रामायण के श्लोकों के स्थान की पूर्ति करने के लिए जोड़ दिए गए हैं । बुद्ध के विद्याध्ययन और हनुमान के व्याकरण शास्त्र के अध्ययन के प्रकरण में उन ग्रन्थों का भी उल्लेख है, जो कि रामायण के बाद बने हैं । अतः इन्हें प्रक्षिप्त ही समझना चाहिए । रामायण सहस्रों वर्ष पूर्व बनी है और मौखिक परम्परा के अनुसार जब तक आई है । उसमें सर्गों और श्लोकों का प्रक्षेप होना अवश्यभावी है । कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़कर सपूर्ण रामायण वाल्मीकि की ही कृति है, यह मानना सर्वथा उचित है ।

रामायण की कथा की सार्थकता के विषय में कतिपय विचारधाराएँ

पाश्चात्त्य विद्वानों का विचार है कि रामायण कल्पित कथाओं पर आधारित है । मनुष्यों और राक्षसों का युद्ध, हनुमान द्वारा समुद्र का पार करना आदि घटनाएँ वास्तविक नहीं है । ये घटनाएँ किसी भी देश में किसी भी

समय घटित नहीं हुई हैं । इस प्रकार की विचारधारा के कारण पाश्चात्य विद्वानों ने रामायण के विषय मे अनेक मन्तव्य प्रस्तुत किए हैं ।

प्रो० वेबर ने अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया है कि रामायण बौद्ध ग्रन्थ **दशरथजातक** और **होमर** के **इलियड** पर आधारित है । उन्होंने जो तथ्य इसके समर्थन के लिए प्रस्तुत किए हैं वे इस मन्तव्य का समर्थन करने में असमर्थ हैं । **दशरथजातक** रामायण की कथा का ही बौद्ध रूप है । इसमें रावण के विनाश के कारणों का निर्देश नहीं है । इस जातक का उद्देश्य अपने पिता की मृत्यु से दुःखित एक व्यक्ति को धैर्य धारण कराना है । इस जातक के लेखक ने वर्णन किया है कि राम अपने पिता की मृत्यु को सुनकर दुःखित नहीं हुए । जातक के लेखक ने यह कथा यहीं समाप्त कर दी, क्योंकि उसको दृष्टि में इसको आगे बढ़ाने का कोई लाभ नही था । अतः यह मानना पड़ता है कि यह जातक रामायण पर निर्भर है, न कि रामायण इस जातक पर । रामायण को इलियड पर आधारित मानना निराधार ही है । **होमर का इलियड** सिकन्दर के ३२६ ई० पू० के आक्रमण के बाद ही भारत में प्रचलित हो सकता था, किन्तु रामायण इसके बहुत पूर्व ही प्रचलित हो चुका था । अतः यह मन्तव्य सर्वथा निराधार ही है ।

प्रो० याकोबी ने इस विषय में एक विचित्र मन्तव्य उपस्थित किया है । उन्होंने ऋग्वेद में प्राप्त इन्द्र और वृत्र की कथा तथा रामायण की कथा में समानता उपस्थित की है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वृत्र की कथा काल्पनिक है, अतः रामायण की कथा भी काल्पनिक है । वृत्र एक राक्षस था । वह इन्द्र का शत्रु था । उसने इन्द्र की गौएँ चुराई और उन्हें समुद्र के पार छिपा दिया । इन्द्र ने सरमा नाम की एक कुतिया गायों का पता लगाने के लिए भेजी । उसने गायों का पता लगाया और इसकी सूचना इन्द्र को दी । इन्द्र ने मरुत् देवताओं की सहायता से वृत्र पर आक्रमण किया और उसका वध किया । **याकोबी** का कथन है कि रामायण की कथा में राम इन्द्र के लिए है । सीता जुती हुई भूमि के लिए है । इन्द्र वृष्टि का देवता

है। वह जुती हुई भूमि (सीता) पर विशेष कृपाशील है। अतएव इन्द्र को राम बनाया गया है और वह सीता का पति है। इस प्रसंग में रावण के पुत्र का नाम इन्द्रजित् सार्थक है, क्योंकि वह इन्द्र के विजयो वृत्र का संकेत करता है। सरमा के स्थान पर हनुमान् हैं, वे सीता को ढूंढ़ने के लिए जाते हैं, हनुमान् वायु के पुत्र हैं, इसका संकेत मरुत् देवताओं से प्राप्त होता है, उन्होंने इन्द्र की सहायता की थी।

दो कथाओं में कुछ समानताएँ इस बात का निर्णय नहीं कर सकती हैं कि उनमें से एक दूसरी कथा पर निर्भर है और न इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे कथाएं काल्पनिक हैं। उपर्युक्त दोनों कथाओं में समानता विशेष रोचक है। वृत्र का नाम इन्द्रजित् था, किन्तु यहाँ पर रावण का पुत्र इन्द्रजित् है। उसको तुलना वृत्र से नहीं की जा सकती है, क्योंकि वृत्र वाली कथा में इन्द्र की गायों का हर्ता वृत्र है, यहाँ पर सीता का हर्ता रावण है, न कि उसका पुत्र इन्द्रजित्। सीता को समता कृष्ट भूमि से मान्य हो सकता है, परन्तु उसके हरण की समता गायों के हरण के साथ स्थापित नहीं को जा सकती है और गायों की समता कृष्ट भमि से नहीं हो सकतो है। सरमा और मरुत् देवता एक दूसरे से पृथक् हैं। हनुमान् और अन्य वानर एक हो समूह के प्राणी हैं। मरुत् देवताओं के लिए प्रयुक्त मरुत् शब्द का सम्बन्ध केवल हनुमान् के साथ हो सकता है, अन्य वानरों के साथ नहीं, क्योंकि वे वायु के पुत्र नहीं है। राम के सहायक अन्य सभी वानर हैं। जैसी समानता ऊपर दिखाई गई है, वैसो समानता किसी भी साहित्य में दिखाई जा सकतो है। ऐसी समानताएँ आकस्मिक हो सकती हैं। इससे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि ऐसी समानता रखने वाली कथाओं में से दोनों या एक काल्पनिक है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामस्वरूप यह ज्ञात होता है कि मनुष्यों और प्रकृति में कुछ असाधारण रूप दृष्टिगोचर होते हैं। उनका कारण उन वस्तुओं के कुछ असाधारण तत्त्व हैं। पुरातत्त्व के अनुसंधानों से सिद्ध

होता है कि भारतवर्ष का अतीत केवल गौरवयुक्त ही नहीं था, अपितु इसका इतिहास असंख्य शताब्दी पुराना है। रामायण में जिन राक्षसों का उल्लेख है, संभवतः उनके शरीर में कुछ असाधारण वृद्धि थी या माया के द्वारा उन्होंने भयंकर शरीर बना लिया था। यह उचित नहीं है कि उनके स्वरूप की असाधारणता के आधार पर उनको सर्वथा काल्पनिक मान लिया जाय।

रामायण की कथा को दो भागों में पृथक् नहीं किया जा सकता है अर्थात् दशरथ के राजगृह अयोध्या में घटित घटनाएँ और उनके परिणाम। अयोध्या में घटित घटनाएँ स्वाभाविक हैं। जहाँ पर बहुविवाह-प्रथाएँ हैं, वहाँ पर इस प्रकार की घटनाएँ होनी स्वाभाविक हैं। यदि हम पूर्व भाग को वास्तविक मानते हैं तो उत्तरार्ध भी वास्तविक सिद्ध होता है। रामायण महाकाव्य है, अतः उसके वर्णन प्रायः काव्यात्मक हैं। अतः रामायण को वास्तविक घटनाओं पर आधारित महाकाव्य मानना उचित है।

रामायण के विषय में कुछ मन्तव्य और हैं, जिनका उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। **टाल्ब्वायज ह्वीलर** का कथन है कि दक्षिण में ब्राह्मणों और बौद्धों में जो संघर्ष हुआ है, उसी का पद्यात्मक रूप रामायण है। इस मत की अयुक्तिसंगति इस बात से सिद्ध होती है कि बौद्ध धर्म का प्रचार रामायण के बहुत बाद हुआ है। **ह्वीलर** का ही कथन है कि १३ वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य के संस्थापकों द्वारा दक्षिण भारत के विजय पर रामायण आधारित है। यह मन्तव्य सर्वथा अनर्गल प्रलाप है, क्योंकि रामायण का समय इससे बहुत प्राचीन है। **लैसेन** का कथन है कि रामायण आर्यों के द्वारा दक्षिण भारत के विजय के प्रथम प्रयत्न का पद्यात्मक रूप है। यह मन्तव्य रामायण के अपूर्ण अध्ययन का परिणाम है, क्योंकि रामायण में कहीं भी राम के द्वारा दक्षिण में राज्य स्थापित करने का उल्लेख नहीं है। एक मन्तव्य और है कि रामायण आर्यों के कृषिकर्म का मध्य भारत तथा दक्षिण भारत के वनों और पर्वतों में प्रचार का उल्लेख करता है तथा

कृषिजीवियों को जो अकृषिजीवियों के द्वारा विघ्न होते थे, उनका भी निर्देश करता है। रामायण में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि राम और लक्ष्मण कृषिजीवी के रूप में दक्षिण भारत में गए थे। **प्रो० वेबर** ने यह मन्तव्य उपस्थित किया है कि रामायण रूपक के रूप में आर्य-संस्कृति का दक्षिण भारत में तथा विशेष रूप से लंका में प्रसार का वर्णन करता है। रामायण[1] में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं है कि राम के दक्षिण में जाने से वहाँ की संस्कृति में कोई परिवर्तन हुआ है, अतः यह मत भी अयुक्त है।

रामायण का रचनाकाल

भारतीय परम्परा के अनुसार राम त्रेतायुग में हुए थे। त्रेतायुग ईसा के जन्म से ८६७१०० वर्ष पूर्व समाप्त हुआ था। वाल्मीकि राम के समकालीन थे। राम जब अयोध्या में राज्य करते थे, उस समय वाल्मीकि ने रामायण बनाई थी। अतः रामायण का समय द्वापर युग के प्रारम्भ से पूर्व अर्थात् ईसा से ८६७१०० वर्ष पूर्व मानना उचित है। पाश्चात्त्य आलोचकों और उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों के मतानुसार रामायण का इतना प्राचीन समय मानना उचित नहीं है।

आलोचकों का कथन है कि **रामायण** का मुख्य भाग ५०० ई० पू० से निश्चित रूप में प्राप्त होता है। इस विषय में निम्नलिखित युक्तियाँ दी गई हैं :—(१) महाभारत ईसवीय शताब्दी के प्रारम्भ से कुछ पूर्व निश्चित रूप में आया था। इसमें रामायण और इसके लेखक का उल्लेख है। (२) **रामायण** में अयोध्या से पूर्ववर्ती कौशाम्बी, कान्यकुब्ज और काम्पिल्य आदि नगरों का उल्लेख है, परन्तु पटना का उल्लेख नहीं है। इसकी स्थापना **कालाशोक** ने की थी, जो कि ३८० ई० पू० में हुई द्वितीय बौद्ध महासमिति का सभापति था। (३) रामायण में मिथिला और विशाला दोनों स्वतन्त्र राज्य के रूप में निर्दिष्ट हैं। बुद्ध के समय में ये दोनों राज्य वैशाली नाम

---

१. Weber, History of Indian Literature. पृष्ठ १९२।

से प्रचलित हो गए थे और इस पर कुछ विशिष्ट लोगों का राज्य था। (४) बौद्ध धर्म के प्रसार के समय साकेत शब्द अयोध्या के लिए प्रचलित हुआ। वह शब्द रामायण के मुख्य भाग में प्राप्त नहीं होता है। इसी प्रकार राम के पुत्र लव की राजधानी श्रावस्ती का नाम रामायण के मुख्य भाग में नहीं है। यही बौद्ध धर्म के प्रसार के बाद राजधानी हुई। (५) रामायण के समय में राजाओं का अधिकार बहुत थोड़े प्रदेश पर था, परंतु महाभारत के समय में उनका अधिकार बहुत बड़े प्रदेश पर था। अतएव रामायण का मौलिक अंश उस समय बना था, जब कि महाभारत अभी निर्माण की अवस्था में था।[1]

इस प्रकार की युक्तियाँ सर्वथा अविश्वसनीय हैं। **महाभारत** ३१०० ई० पू० में बना है। इसमें **रामायण** का उल्लेख है और इसके रचयिता वाल्मीकि को बहुत **प्राचीन** कवि बताया गया है। रामायण के विषय में जो उल्लेख हैं, उनमें कतिपय ऋषियों का नाम भी लिखा है और उनमें से कुछ को रामायण की कथा कहने वाला भी कहा गया है। इन कथावाचकों को कथा जिस रूप में ज्ञात होगी, उसी रूप में उन्होंने यह कथा अपने शिष्यादि को बताई होगी। इससे ज्ञात होता है कि रामायण ३१०० ई० पू० से पूर्व महाकाव्य के रूप में प्रचलित था। तथापि रामायण का निश्चित रचनाकाल ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है।

महाकाव्य के रूप में रामायण तथा इसकी लोकप्रियता

रामायण हिन्दुओं का लोकप्रिय ग्रन्थ है। छोटे, बड़े, राजा, रंक, धनी, कुलीन, व्यापारी, शिल्पी, रानियाँ और अशिक्षित स्त्रियाँ, सभी रामायण की कथा और उसके पात्रों से परिचित हैं।[2] यह लोकप्रिय साहित्यिक ग्रन्थ है।

---

१. A. A. Macdonell: History of Sanskrit Literature. पृष्ठ ३०२।

२. M, Winternitz. A History of Indian Literature. भाग १ पृष्ठ ४७६-४७७।

हिन्दू इसको पूजनीय ग्रन्थ मानते हैं। धार्मिक विचार वाले व्यक्ति प्रतिदिन इसका पारायण करते हैं। रचनाकाल से ही इसको असाधारण यश प्राप्त हुआ है। **वाल्मीकि** ने इसके विषय में भविष्यवाणी की थी कि जब तक पर्वत और नदियाँ भूतल पर हैं, तब तक रामायण की कथा संसार में व्याप्त रहेगी।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

रामायण, बालकाण्ड २-३६-७

वाल्मीकि की यह भविष्यवाणी प्रायः पूर्ण हुई है।

रामायण को आदिकाव्य तथा वाल्मीकि को आदिकवि कहा जाता है। रामायण की यह लोकप्रियता उसकी शैली, कवि का चरित्र-चित्रण और वर्णन की असाधारण शक्ति तथा असंख्य स्मरणीय सुभाषितों के कारण है। वाल्मीकि की शैली सरल, उत्कृष्ट, अलंकृत और सुसंस्कृत है। इसमें अप्रचलित शब्दों का सर्वथा अभाव है। शैली की यह सरलता अतिप्रचलित शब्दों के प्रयोग के कारण और बढ़ गई है। सरलता के साथ ही इसमें काव्यगौरव भी परिपूर्ण है। यह अलंकारों से भी अलंकृत है। वाल्मीकि ने उपमा, स्वभावोक्ति और रूपक का अत्युत्तम रीति से प्रयोग किया है। यही एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें सभी रसों का समुचित परिपाक हुआ है। इसमें कुछ ऐसे रूपों का भी प्रयोग मिलता है, जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से असिद्ध हैं। इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि से पूर्व प्रचलित साहित्यिक भाषा का वाल्मीकि ने प्रयोग किया है। इसकी भाषा का श्रोताओं पर जो असाधारण प्रभाव होता है, वह अवर्णनीय है। अतएव रामायण आज तक प्रचलित है।

वाल्मीकि ने अपने पात्रों का विभिन्न परिस्थितियों में जो सजीव चरित्र-चित्रण किया है। उससे उनकी मानवहृदय के क्रियाकलाप के प्रति असाधारण अन्तर्दृष्टि परिलक्षित होती है। वाल्मीकि को इस विषय में जो

सफलता प्राप्त हुई है, उसका बहुत कुछ अंश राम को अपना कथानायक चुनने के कारण है। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता के उदात्त गुणों का यहाँ पर उल्लेख अनावश्यक है। इसी प्रकार लङ्का और किष्किन्धा के प्रमुख पात्रों का उल्लेख भी अनावश्यक ही है। वाल्मीकि ने दशरथ की तीनों रानियों के मनोभावों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया है। उसने तीनों के स्वभाव में वैषम्य प्रदर्शित किया है। राम के वनवास के समय तथा दशरथ की मृत्यु के समय कौशल्या के विचार, स्वभाव और व्यवहार का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। राम और सीता के साथ लक्ष्मण को भेजते समय सुमित्रा का चरित्र-चित्रण तथा दशरथ से वरदान माँगते समय और उसके बाद तथा भरत के द्वारा राज्य को अस्वीकार करने पर कैकेयी के दुःखित होने पर उसके विचार और व्यवहार का सुन्दर चित्रण किया है।

वाल्मीकि में वर्णन की अपूर्व शक्ति है। उसने राजप्रासादों[1], नागरिक-जीवन[2], उपवनों[3], पर्वतों[4], चन्द्रोदय[5], नदियों[6], ऋतुओं--शरद्[7], वर्षा[8], पतझड़[9], वनप्रदेशों[10], आश्रमों[11], सेनाओं और युद्धों[12] तथा अन्य वस्तुओं का असाधारण वर्णन किया है। प्रकृति के वर्णन पाठकों और श्रोताओं पर असाधारण प्रभाव डालते हैं। ऐसा गंभीर और वास्तविकता से युक्त प्रभावकारी वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता है।

रामायण में असंख्य सुभाषित हैं। कुछ सुभाषित निम्नलिखित हैं--

१. भयं भीताद् हि जायते। रामायण २-८-५

२. समृद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्। रा० २-२६-२५

---

१. रामायण ५-६, ९। २. रामायण १-५।
३. रामायण ५-१४। ४. रामायण २-९४।
५. रामायण ५-५। ६. रामायण २-९५, ३-७५।
७. रामायण ३-१६। ८. रामायण ४-२८।
९. रामायण ४-३०। १०. रामायण १-२४।
११. रामायण ३-७,११। १२. रामायण ३-२०-३०।

३. अनिर्वेदः श्रियो मूलम् अनिर्वेदः परं सुखम् ।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ।। रा० ५-१२-१०

४. सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।। रा० ३-३७-२

५. उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु । रा० ४-१-१२२

वे मनुष्य को भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग की शिक्षा देते हैं। अत्यधिक धन-लिप्सा मनुष्य के जीवन को नष्ट कर देती है, यह कैकेयी और वालि के जीवन से स्पष्ट है। इसी प्रकार अत्यधिक कामुकता भी मनुष्य को नष्ट कर देती है, यह दशरथ और रावण के जीवन से स्पष्ट है। वाल्मीकि ने जीवन की पवित्रता पर बहुत बल दिया है। आचार ही मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम गुण है।

कुलीनमकलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम् ।।
रामायण १-१०६-४

विवाह एक पवित्र बन्धन है, इसको पवित्रता सिद्ध की गई है। सबसे मुख्य रूप से यह सिद्ध किया गया है कि कर्तव्य-निष्ठा सर्वोत्तम गुण है और यही मनुष्य को गौरव से युक्त करता है।

रामायण प्राचीन भारत की सामाजिक अवस्था का विशद वर्णन करता है। अयोध्या और लंका दोनों स्थानों पर प्रजातन्त्र राज्य की व्यवस्था थी। राजा उसका अध्यक्ष होता था। राज्य की नीति का निर्धारण अधिकतर प्रजा की इच्छा के अनुसार होता था। व्यापार में अनुचित प्रतिस्पर्धा तथा सबलों द्वारा निर्बलों के उत्पीड़न को रोकने के लिए प्रयत्न किया जाता था। वास्तुविद्या सम्बन्धी कौशल का उल्लेख मिलता है। निर्माण-कार्य के लिए जिन वृक्षों को काटा जाता था, उन्हें यन्त्रों की सहायता से हटाया जाता था। अयोध्या के मनुष्य धार्मिक विधियों का अनुष्ठान करते थे। राक्षस उनकी इन विधियों में विघ्न डालते थे। आवश्यकता पड़ने पर वे ही

स्वार्थसिद्धि के लिए यज्ञादि करते थे।[१] नैतिक नियमों का पालन अयोध्या में कठोरता के साथ होता था और किष्किन्धा में कुछ शिथिलता के साथ। रामायण में मृत व्यक्ति के शव को सुरक्षित रखने का भी उल्लेख मिलता है।[२] मृत व्यक्ति का शव तेल से परिपूर्ण हौज में रक्खा जाता था। इसमें शल्य-चिकित्सा और कतिपय अन्य चिकित्साओं का भी उल्लेख मिलता है।[३]

रामायण ने भारतीय जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया है। श्रेण्यकाल के कवियों पर भी रामायण का बहुत प्रभाव पड़ा है। जीवन के कर्तव्यों की शिक्षा के लिए उदाहरणस्वरूप घटनाएँ रामायण से ली गई हैं। भारतवर्ष के राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में रामायण का बहुत बड़ा हाथ रहा है। रामराज्य शब्द पवित्र एवं आदर्श राज्य के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। अनूदित ग्रन्थों के रूप में भी रामायण की कथा जनप्रिय रही है। इसकी जनप्रियता रामकथाओं में उपस्थित होने वाली बहुसंख्यक जनता के द्वारा ज्ञात होती है। ईसवीय सन् के प्रारम्भ से रामायण श्याम, जावा, सुमात्रा, बाली आदि विदेशों में भी प्रचलित हुई। इन स्थानों में उपलब्ध शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वहाँ पर रामायण के दैनिक पारायण की भी व्यवस्था की गई थी। भारतवर्ष के संस्कृत साहित्य पर इसका स्थायी प्रभाव पड़ा है। श्रेण्यकाल के संस्कृत कवियों को इससे प्रेरणा प्राप्त हुई है और उन्होंने अपने ग्रन्थों के लिए इससे भाव लिए हैं। इसका भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। हिन्दी में **तुलसीदास**-विरचित **रामचरितमानस** (१५७४ ई०) इसके आधार पर ही बना है। तामिल में **कम्बन** कृत (१३ वीं शताब्दी ई०) '**कम्ब रामायण**' का भी आधार यही है।

---

१. रामायण, युद्धकाण्ड सर्ग ८५।
२. ,, अयोध्याकाण्ड सर्ग ६६।
३. ,, सुन्दरकाण्ड सर्ग २८-६।
युद्धकाण्ड सर्ग १०१-४३।

रामायण की बहुत-सी टीकाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें से अधिक नवीन टीकाएँ हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण टीकाएँ ये हैं--**महेश्वरतीर्थकृत रामायण-तत्वदीपिका, श्रीरामकृत अमृतकटक, गोविन्दराज** (१६वीं शताब्दी ई०) कृत **भूषण** और **अहोबल** (१६वीं शताब्दी ई०) कृत **वाल्मीकि हृदय। अप्पयदीक्षित** (१६०० ई०) ने अपने **रामायणतापर्यसंग्रह** में तथा **त्र्यम्बक मखिन** (१७००-ई०) ने अपने **धर्माकूत** में रामायण की व्याख्या की है।

अध्याय ६

महाभारत

महाभारत दूसरा भारतीय ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसके रचयिता **व्यास** हैं। विश्व-साहित्य के इतिहास में यह सबसे बड़ा महाकाव्य है। यह **ईलियड** और **ओडिसी** के संयुक्त परिमाण से आठ गुना है। यह १८ पर्वों में विभक्त है। १८ पर्व ये हैं—आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहण। इनमें से १२वाँ शान्तिपर्व सबसे बड़ा है। इसमें लगभग १४७०० श्लोक हैं। १७वाँ महाप्रस्थानिकपर्व सबसे छोटा है। इसमें केवल ३१२ श्लोक हैं। इसका एक परिशिष्टपर्व **हरिवंश** भी है। हरिवंश को सम्मिलित करने पर महाभारत में एक लाख श्लोक हैं।

महाभारत में पांडवों और कौरवों की कथा है। यह कथा अति प्रचलित है; अतः इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इस कथा के अतिरिक्त इसमें देवताओं, राजाओं और ऋषियों की कथाएँ हैं, जिनका मुख्य कथा से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति, देवों की वंशावली, दार्शनिक विवेचन, नीति, धर्म, वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का वर्णन भी है। यह मनुष्य जीवन के उद्देश्य-स्वरूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वग की प्राप्ति की शिक्षा देता है। इसी आधार पर इसको पंचम वेद कहा गया है।

भारतः पंचमो वेदः।

व्यास हरिवंश सहित **महाभारत** के रचयिता हैं। इनका प्रथम नाम **कृष्णद्वैपायन** था, क्योंकि ये एक द्वीप में उत्पन्न हुए थे और इनका रंग कृष्ण था। ये पराशर ऋषि के पुत्र थे। इन्होंने ही वेदों को ऋग्, यजुः, साम और अथर्व इन चार भागों में विभक्त किया था। अतएव इनका नाम व्यास पड़ा।

विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्मात् व्यास इति स्मृतः ।

महाभारत, आदिपर्व ६४-१३०

वे कौरवों और पांडवों के समकालीन थे । दोनों के जीवन से संबद्ध घटनाओं से वे साक्षात् परिचित थे। उन्होंने पांडवों और कौरवों का वास्तविक और सजीव वर्णन किया है। ऐसा वर्णन साक्षात् द्रष्टा व्यक्ति ही कर सकता है। संजय आदि पात्रों को बिना किसी भूमिका के ही वर्णन में स्थान दिया गया है, क्योंकि वे सभी सुपरिचित व्यक्ति थे। इस प्रकार महाभारत स्वप्रत्यक्ष पर आधारित है । इसकी भाषा गंभीर, सरल और प्रभावोत्पादक है। इससे ज्ञात होता है कि महाभारत के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी।

इस समय जो महाभारत प्राप्त है, उसमें कतिपय अंश आर्ष गद्य में लिखे हुए हैं । उनकी संख्या २० है । इनमें से ३ आदिपर्व में, ७ वनपर्व में, ७ शान्तिपर्व में और ३ अनुशासनपर्व में हैं। इनमें से अधिकांश उपाख्यान हैं और महर्षियों के द्वारा वर्णित हैं। पाश्चात्त्य विद्वानों ने इन अंशों की आर्ष पद्धति के कारण महाभारत को रामायण से प्राचीन माना है । महाभारत में रामायण की घटनाओं का अनेक स्थानों पर उल्लेख है । इससे यह मानना पडेगा कि पूर्वोक्त आर्ष गद्य के अंश बहुत प्राचीन समय में लिखे गये थे और उनको वैशम्पायन आदि ने इसमें सम्मिलित कर लिया था।

महाभारत के आदिपर्व में निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होते हैं । इनका ठीक अर्थ बहुत से विद्वानों ने नहीं समझा है।

ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात् ।
यस्मिन प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ।।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च ।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ।।
तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने ।
भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात् प्रश्रितस्य च ।।

महाभारत आदि० १. ११६-११८

यहाँ पर वर्णन है कि व्यास ने ८८०० कूट (पहेली रूपी) श्लोक बनाए हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने यह मान लिया है कि इतने श्लोक व्यास ने बनाए हैं[1]।

महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कम से कम दो व्यक्तियों के द्वारा इसमें परिवर्तन किए गए हैं। यह बात अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध है। महाभारत में ही इसके प्रारम्भ के विषय में कई मतों का उल्लेख मिलता है।

मन्वादि भारतं केचिदास्तिकादि तथापरे।
तथोपरिचरादन्ये विप्राः सम्यगधीयिरे॥

महाभारत, आदिपर्व, १-६६।

व्यास ने पांडवों और कौरवों की कथा के रूप में जो महाकाव्य बनाया, उसका नाम '**जय**' महाकाव्य रक्खा। वे इसे इतिहास कहते हैं।

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।

महाभारत, आदिपर्व, ६२-२२

उन्हें इस ग्रन्थ की रचना में तीन वर्ष लगे। उन्होंने महाभारत संभवतः आदिपर्व के ६५वें अध्याय से प्रारम्भ किया है, जिसमें क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन है अथवा ६४वें अध्याय से, जिसमें उनका ही जीवन-वृत्त है। बाद के लेखकों ने व्यास की रचना में इतना अधिक परिवर्तन कर दिया है कि वर्तमान ग्रन्थ में व्यास की कितनी और कौन-सी रचना है, यह बताना संभव नहीं है। ग्रन्थ को लिखने का काम शिव के पुत्र गणेश ने किया है। पांडवों और कौरवों की मृत्यु के पश्चात् व्यास ने यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था। यह पुस्तक का प्रथम संस्करण था।

अर्जुन के प्रपौत्र **जनमेजय** ने साँपों को नष्ट करने के लिए नागयज्ञ किया था, क्योंकि उसके पिता साँप के काटने से मरे थे। व्यास इस यज्ञ में आए थे। जनमेजय ने व्यास से प्रार्थना की कि वे पांडवों और कौरवों के युद्ध

---

१. A History of sanskrit Literature, by A. A. Macdonell. पृ० २८४।

का वर्णन सुनावें । इस पर व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन को आदेश दिया कि वह 'जय' महाकाव्य सुनावे । उसने यह महाकाव्य सुनाया । जनमेजय ने विभिन्न स्थलों पर कतिपय प्रश्न किए । इनका उत्तर वैशम्पायन ने दिया । ये उत्तर वाले स्थल व्यास-रचित ग्रन्थ में सम्मिलित नहीं थे । संभवतः ये उत्तर वैशम्पायन के थे या उसको ये उत्तर अन्य स्थान से प्राप्त हुए थे । व्यास के मूल भाग को वैशम्पायन वाले भाग के साथ मिलाने पर महाभारत की द्वितीय स्थिति आती है । द्वितीय स्थिति में महाभारत संभवतः आदिपर्व के ६१वे अध्याय से प्रारम्भ होता है । इस अध्याय में महाभारत की कथा का संक्षिप्त विवरण है, जो वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाई थी । **वैशम्पायन** वाले महाभारत के स्वरूप का नाम **भारतसंहिता** पड़ा । इसमें उपाख्यानों को छोड़ने पर २४ सहस्र श्लोक थे । इससे यह निष्कर्ष निकालना संभव है कि व्यास ने जो 'जय' नामक महाकाव्य बनाया था, उसमें २४ सहस्र श्लोकों से कुछ कम श्लोक रहे होंगें, क्योंकि वैशम्पायन ने संभवतः मूल ग्रन्थ में अधिक श्लोक नहीं मिलाए होंगे ।

चतुर्विंशतिसाहस्त्री चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ।।

महाभारत, आदि० १-७८

व्यास के चार और शिष्य थे, **जैमिनि**, **पैल**, **सुमन्तु** और **शुक** । इन चारों ने 'जय' महाकाव्य के पृथक् संस्करण प्रकाशित किए । **जैमिनि** के अश्वमेधपर्व को छोड़कर शेष सभी संस्करण नष्ट हो गए हैं । जैमिनि का अश्वमेधपर्व युधिष्ठिर द्वारा किए गए अश्वमेध का वर्णन करता है ।

जनमेजय के नागयज्ञ के कुछ ही समय पश्चात् शौनक ऋषि ने नैमिषारण्य में १२ वर्ष चलने वाला यज्ञ किया । इसमें बहुत से ऋषि उपस्थित हुए थे । उनमें रोमहर्षण ऋषि के पुत्र सौति ऋषि भी थे । सौति जनमेजय के नागयज्ञ के समय उपस्थित थे और उस समय वैशम्पायन ने महाभारत का जो पाठ किया था, वह भी उसने सुना था । शौनक की प्रार्थना पर **सौति** ने **वैशम्पायन**

से जैसा पाठ सुना था, वह महाभारत का पाठ उपाख्यानों के सहित सुनाया। कथा के वर्णन के समय सौति ने विभिन्न स्थलों पर अपने विचार और भाव अभिव्यक्त किए। सौति का यह वर्णन महाभारत की वृद्धि की तृतीय स्थिति उपस्थित करता है। सौति के इस वर्णन में हरिवंश भी सम्मिलित है। सौति के द्वारा महाभारत एक लाख श्लोकों का पूर्ण हुआ।[1] आदिपर्व के प्रारम्भिक ६० अध्याय सौति ने सम्मिलित किए हैं। जिस प्रकार वर्तमान पुस्तकों में विषयसूची आदि होती है, उसी प्रकार सौति ने महाभारत के प्रारम्भ में प्राक्कथन, भूमिका और विषयसूची दी है। महाभारत का प्रथम संस्करण १०० पर्वों में विभक्त था। सौति ने इसका विशेष ध्यानपूर्वक विभाजन किया और इसको १८ बड़े पर्वों में विभक्त किया। इस संस्करण में प्रत्येक पर्व में छोटे विभाग अध्याय नाम से किए गए।[2] यह संस्करण बहुत विशाल और भारी था, अतः इसका नाम 'महाभारत' पड़ा।

महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।

महाभारत, आदिपर्व, १-३००

महाभारत का वैशम्पायन वाला संस्करण, उपाख्यानों को छोड़कर, २४ सहस्र श्लोकों से युक्त था। सौति ने वैशम्पायन वाले संस्करण के अनुसार ही महाभारत का पारायण किया और उसमें उपाख्यानों को भी सम्मिलित कर दिया। उसने अपने श्लोकों को भी इसमें स्थान दिया। इस संस्करण में एक लाख श्लोक हैं। वैशम्पायन का संस्करण, उपाख्यानों के सहित, सौति वाले संस्करण के लगभग ही रहा होगा।

महाभारत के इतने विशालकाय होने के कई कारण हैं। (१) यह आवश्यक समझा गया कि इसमें विश्व के सभी विषयों का समावेश हो।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्।

महाभारत, आदिपर्व, ६२-२६

---

१. महाभारत, आदिपर्व, १-१२७।

२. महाभारत, आदिपर्व, २-८४-८५।

अतएव विभिन्न विषयों पर प्राप्त होने वाली सभी कथाएँ तथा श्लोक इसमें सम्मिलित किए गए । (२) इसे नीतिशास्त्र और आचारशास्त्र का ग्रन्थ बनाने की इच्छा की गई । अतएव इस विषय से संबद्ध सभी बातें इसमें संग्रह की गईं । (३) कई कथाओं की पुनरुक्ति हुई है । संभवतः समय के प्रभाव से कतिपय अध्याय और श्लोक नष्ट हो गए थे । अतः प्रयत्न किया गया कि उस क्षति की पूर्ति नए अध्यायों और श्लोकों के द्वारा की जाए । इनमें वे ही कथाएँ रक्खी गई जो पहले से इसमें विद्यमान थीं । ययाति और वृत्र आदि की कथाओं का इस विषय में उल्लेख किया जा सकता है । (४) प्रकृति के काव्योचित वर्णन और स्त्रियों के विलाप में वाल्मीकि का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । संभवतः इनमें से कुछ वर्णन बाद में सम्मिलित किए गये हैं ।

महाभारत का रचनाकाल

पाण्डवों और कौरवों का युद्ध कलियुग के प्रारम्भ से कुछ ही पूर्व हुआ था । कलियुग का प्रारम्भ ३१०१ ई० पू० में हुआ था । महाभारत इस युद्ध के कुछ वर्ष बाद लिखा गया होगा । अतः जय महाकाव्य का समय ३१०० ई० पू० के लगभग मानना चाहिये । जय महाकाव्य अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय के नागयज्ञ में पढ़ा गया था । जनमेजय का समय ३००० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए । अतः महाभारत के द्वितीय संस्करण का समय लगभग इसी समय मानना चाहिए । शौनक ने जनमेजय के नागयज्ञ के कुछ ही समय पश्चात् यज्ञ किया था । अतः सौति का महाभारत का संस्करण लगभग उसी समय तैयार हुआ होगा ।

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि यही समय महाभारत के रचनाकाल का है । युद्ध के प्रारम्भ होने के समय सभी ग्रह अश्विनी नक्षत्र के समीप आ गए थे । गणनानुसार ऐसी स्थिति होने का समय ३१०१ ई० पू० में था । भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत के युद्ध के पश्चात् कलियुग प्रारम्भ हुआ । इसका समर्थन भारतीय ज्योतिर्विद् **आर्यभट्ट** भी करते हैं, जिनका जन्म छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था

इन साक्ष्यों के अतिरिक्त **मेगस्थनीज** ने अपने लेखों में **हेराक्लिस** अर्थात् **कृष्ण** को **सन्द्रकोट्टस** अर्थात् मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त से १३८ पीढ़ी पूर्ववर्ती माना है। **चन्द्रगुप्त मौर्य** का समय ३२० ई० पू० है। एक पीढ़ी का समय साधारणतया २० वर्ष मानने पर कृष्ण का समय ३०८० ई० पू० के लगभग होता है। भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत का यही समय है।

पाश्चात्त्य विद्वान् किसी भी साहित्यिक ग्रन्थ को इतना प्राचीन मानने के लिए उद्यत नहीं है। वे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि महाभारत ईसवीय सन् के प्रारम्भ में इस रूप में आया। उनका कथन है कि महाभारत का प्रथम संस्करण ३००० ई० पू० के बाद ही लिखा गया होगा, क्योंकि उसी समय आर्य लोग भारत में आए। ईसवीय सन् के प्रारम्भ तक इसमें कतिपय अंश सम्मिलित होते रहे। अन्यथा महाभारत में प्राप्त कतिपय स्थलों के लिए कोई उत्तर नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ—महाभारत में यवनों और म्लेच्छों अर्थात् यूनानियों का उल्लेख है। यह उल्लेख ३२६ ई० पू० के बाद ही हो सकता था। महाभारत में यवनों द्वारा साकेत पर आक्रमण का उल्लेख है। यह १४५ ई० पू० में मेनान्दर के निरीक्षण में हुए साकेत पर यूनानी आक्रमण का निर्देश है। यूनानी लेखक **रेटर डियन क्रिसोस्टम** (प्रथम शताब्दी ई० का पूर्वार्ध) का कथन है कि उसके समय में महाभारत एक लाख श्लोकों से युक्त दक्षिण भारत में सुप्रचलित था।[१]

पाश्चात्त्य विद्वानों का यह मत विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि यवन और म्लेच्छ कौन थे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यूनानियों के आगमन से बहुत पूर्व भारतवर्ष का कितने ही विदेशी देशों से सम्बन्ध विद्यमान था। यवन और म्लेच्छ शब्द साधारणतया विदेशियों के लिए प्रयुक्त होता था। महाभारत के ये निर्देश यूनानियों के अतिरिक्त अन्य विदेशियों के लिए होंगे, जो ३२६ ई० पू० से बहुत पूर्व भारत में आए थे। अन्य निर्देशों को

१. Weber—History of Indian Literature. पृष्ठ १८६।

बाद की मिलावट ही समझना चाहिए। इन प्रक्षिप्त अंशों को छोड़कर ३००० ई० पू० में महाभारत उपलब्ध था, यह मानना चाहिए। महाभारत का यह समय मानने में कोई कठिनाई नहीं है।

आलोचनात्मक दृष्टि से महाभारत का गौरव

महाभारत पद्यों में लिखा गया है। कुछ सन्दर्भ गद्य में भी हैं और शैली की दृष्टि से वे महाभारत से प्राचीन ज्ञात होते हैं। महाभारत की भाषा सरल है और उसमें शब्दों के प्राचीन रूप बहुत उपलब्ध होते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि यह उस समय की बोलचाल की भाषा थी। इसकी शैली एक प्रकार की नहीं है, क्योंकि इसके लेखक व्यास, वैशम्पायन, सौति तथा अन्य कई कवि हैं, जो कि विभिन्न समयों में हुए हैं। इसके शब्दों, लोकोक्तियों और वर्णनों पर वाल्मीकि का विशेष प्रभाव लक्षित होता है।

महाभारत का अधिकांश भाग संवादों और वर्णनों में पूर्ण हुआ है। इसके संवाद विचारपूर्ण, प्रवाहयुक्त तथा शक्तिशाली हैं। इन संवादों में उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें वक्ता अपने भावों को निर्भीकता के साथ व्यक्त करता है। ये संवाद स्पष्ट और वास्तविकता से पूर्ण हैं। पांडवों और कौरवों की धनुर्विद्या की परीक्षा, वनवास के समय पांडवों का वन का जीवन, द्यूतक्रीड़ा, शल्य के साथ कर्ण का युद्ध के लिए प्रस्थान आदि वर्णनों में बहुत ही रुचिकर संवाद हैं। इसके वर्णन, विशेषकर युद्ध के वर्णन, बहुत ही वास्तविकता से युक्त हैं, इसके अन्य वर्णन भी सुन्दर हैं, परन्तु काव्य की दृष्टि से वे रामायण से हीन हैं। इसकी कथा सारथि संजय धृतराष्ट्र को सुनाता है। बीच-बीच में संजय उवाच (संजय ने कहा), धृतराष्ट्र उवाच (धृतराष्ट्र ने कहा) आदि के द्वारा वर्णनों की अरोचकता आदि को दूर किया गया है।

व्यास चरित-चित्रण में बहुत ही कुशल और समर्थ हैं। व्यास ने अपने पात्रों का जैसा चरित्र-चित्रण किया है, उससे उनके प्रत्येक पात्र अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। उन्होंने प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार कठिनाई के समय में मनुष्य का मस्तिष्क कार्य करता है। महाभारत के सभी मुख्य पात्र युधिष्ठिर,

भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, दुर्योधन, विदुर, कर्ण आदि अपने स्वभाव और व्यवहार के कारण अपनी विलक्षणता रखते हैं। दुर्योधन के माता-पिता का अपने पुत्रों के प्रति पुत्र-स्नेह तथा पीड़ित पाण्डवों के प्रति सहानुभूति का भी साथ ही साथ अध्ययन किया गया है और उसका प्रभाव भी दिखाया गया है। स्त्री पात्रों में कुन्ती और द्रौपदी का स्थान मुख्य है। कुन्ती ने अपने पुत्रों को प्रेरणा दी थी कि वे राज्य में अपना उचित अधिकार प्राप्त करें, क्योंकि वह उन्हें किसी प्रकार भी इस हीन अवस्था में नहीं देख सकती थी। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के बाद वह धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ वन को चली गई। जब युधिष्ठिर ने उससे अनुरोध किया कि वह उसके साथ राजधानी में रहे तो उसने अपना भाव स्पष्ट किया कि क्यों उसने उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित किया था। वह अपने पुत्रों का अधिकार छीना हुआ नहीं देख सकती थी। युधिष्ठिर को राज्य मिलने से उसकी इच्छा पूर्ण हो गई, अतः वह अब अपने पुत्रों के साथ नहीं रहना चाहती, अपितु वन में जाना चाहती है।

महाभारत में मुख्य कथा के अतिरिक्त नीति और आचार सम्बन्धी छोटे उपाख्यान भी हैं। अतएव इसको धर्मशास्त्र कहा गया है। इसमें राजाओं, चारों वर्णों और आश्रमों के व्यक्तियों, दाताओं, यतियों तथा मुमुक्षुओं के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। अग्निपरीक्षा आदि के अवसरों पर किए जाने वाले कार्यों का भी वर्णन किया गया है। ऐसे वर्णन प्रायः सारे महाभारत में फैले हुए हैं, परन्तु मुख्यरूप से ये वर्णन शान्तिपर्व और अनुशासनपर्व में हैं। सुप्रसिद्ध **भगवद्गीता** भी इसी में सम्मिलित है, अतः इसका महत्त्व और बढ़ जाता है। कृष्ण ने युद्धभूमि में युद्ध से पूर्व अर्जुन को धर्म के विषय में जो उपदेश दिया है, वही भगवद्गीता के १८ अध्यायों में है। इसमें जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति के स्वरूप, मनुष्य के कर्तव्य, भौतिक और आत्मिक उन्नति के मार्ग आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। धर्मशास्त्रों की ऐतिहासिक प्रगति में महाभारत का मुख्य स्थान है। यह वैष्णवों की स्मृति मानी जाती है। क्योंकि (१) इसे **कृष्णवेद** कहते हैं अर्थात् कृष्ण से सम्बद्ध वेद। (२) इसके

मंगलाचरण श्लोक में विष्णु के अवतार कृष्ण की स्तुति की गई है।[1] (३) शान्तिपर्व में भीष्म का उपदेश वैष्णवों के धार्मिक विचारों का समर्थन करता है। (४) पाण्डवों के सहायक कृष्ण हैं, अतः वे युद्ध में विजयी हुए। अद्वैतवाद के मुख्य संस्थापक **शंकराचार्य** ने इसको धर्मशास्त्र माना है। भारतवर्ष तथा इसके बाहर भी ५वीं शताब्दी ई० के बाद में लिखे गए शिलालेखों में महाभारत को दाताओं की समृद्धि तथा पापियों को दण्ड देने के विषय में प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है।

श्रेण्यकाल का भारतीय साहित्य महाभारत के द्वारा बहुत प्रभावित हुआ है। मीमांसा शास्त्र के व्याख्याताओं में प्रमुख **कुमारिल भट्ट** (६००-६६० ई०) ने महाभारत का उल्लेख किया है और इसके कई पर्वों से श्लोक भी उद्धृत किए हैं। संस्कृत गद्य के प्रमुख लेखक **बाण भट्ट** (७वीं शताब्दी ई०) तथा **सुबन्धु** (८वीं शताब्दी ई०) ने महाभारत के पात्रों और उपाख्यानों की तुलना तथा अन्य अलंकारों के प्रयोग के लिए उपयोग किया है। **बाण** ने कादम्बरी में महाभारत के पारायण का भी उल्लेख किया है। **कम्बोज** (कम्बोडिया) के ६०० ई० के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मन्दिरों को महाभारत की दो प्रतियाँ दी गई थीं और यह प्रबन्ध किया गया था कि वहाँ पर इसका दैनिक पाठ हो। इसका ९९६ ई० में जावा की भाषा में अनुवाद हुआ।

महाभारत अपने समय के सामाजिक जीवन पर बहुत प्रकाश डालता है। पैतृक परम्परा का आदर होता था। ब्राह्मणों को आदरणीय माना जाता था। उस समय तक गुणों को ही गौरव का चिह्न माना जाता था। व्यावहारिक दृष्टि से कर्ण सारथी का पुत्र था, किन्तु जातिगत विचार के आधार पर उसकी धनुर्विद्या की विशेषज्ञता को न्यून नहीं किया गया। जन्म से जाति प्रथा को पूर्णतया नहीं माना जाता था। दासी के पुत्र विदुर उस समय सम्मानित राजनीतिज्ञ थे। द्रोण

---

१. नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत॥

जन्म से ब्राह्मण थे, किन्तु कर्म से क्षत्रिय थे। धर्मव्याध और तुलाधर ब्राह्मण नहीं थे, परन्तु धर्मशास्त्र के प्रामाणिक आचार्य थे। यद्यपि वैराग्य भाव और परमात्मभक्ति को मुख्यता दी जा रही थी तथा वैदिक यज्ञों का महत्त्व कम हो रहा था, तथापि वैदिक यज्ञ और तपस्या का प्रचार था। जनमेजय, द्रुपद और युधिष्ठिर आदि के द्वारा किए गए वैदिक यज्ञ तथा अर्जुन की तपस्या से यह सिद्ध होता है। राजकुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा दी जाती थी। राजतन्त्र राजकीय प्रथा थी। द्यूत यद्यपि दुर्गुणों में माना जाता था, परन्तु यह प्रचलित था। स्वयम्वर की प्रथा थी। धनुर्विद्या में विशेषज्ञता से व्यक्ति योग्य पति होता था। राज-परिवारों में बहुविवाह की प्रथा थी। स्त्रियाँ पर्दा करती थीं। कुछ स्त्रियाँ पति के साथ सती भी होती थीं। महाभारत में मूर्तियों और मन्दिरों का उल्लेख नहीं है। विन्ध्यपर्वत के दक्षिण में चोल, पाण्ड्य, चेर, आन्ध्र आदि शिक्षित जातियाँ रहती थीं। दक्षिण भारत की यात्रा के समय अर्जुन कावेरी नदी के किनारे मनलूर नामक ग्राम में पहुँचे और वहाँ पर पाण्ड्य राजा की पुत्री से विवाह किया। महाभारत युद्ध के समय एक पाण्ड्य राजा पाण्डवों की ओर से लड़ा था। युधिष्ठिर ने जो राजसूय यज्ञ किया था, उसमें दक्षिण भारत, चीन, फ़ारस तथा अन्य विदेशों के भी राजा आए थे। महाभारत के युद्ध में भी यवनों ने भाग लिया था। दुर्योधन के आदेश पर पुरोचन नामक म्लेच्छ ने लाक्षागृह बनाया था। इस प्रकार महाभारत प्राचीन भारतवासियों के धार्मिक और लौकिक जीवन के विषय में बहुमूल्य सूचनाओं से परिपूर्ण है। यह एक महाकाव्य है, धर्मशास्त्र है और मोक्षशास्त्र है।

हरिवंश महाभारत का ही परिशिष्ट है। इसके भी रचयिता व्यास हैं। इसमें १६४०० श्लोक हैं। इसके तीन भाग हैं। उनके नाम हैं--(१) हरिवंश-पर्व, इसमें कृष्ण के पूर्वजों का वर्णन है। (२) विष्णुपर्व, इसमें कृष्ण और उनके जीवनचरित का वर्णन है। (३) भविष्यपर्व, इसमें भविष्य के विषय में भविष्य-वाणियाँ हैं।

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम् ।....
एतत्पर्वशतं पूर्ण व्यासेनोक्तं महात्मना ।।

महाभारत आदि० २, ८३–८४

महाभारत में उपाख्यान बहुत हैं । पूरे महाभारत के लगभग $\frac{५}{६}$ में उपाख्यान हैं । इनमें से कुछ गद्यमें हैं । उनकी भाषा से ज्ञात होता है कि उनमें से अधिकांश अधिक प्राचीन हैं । उनमें से प्रमुख उपाख्यान ये हैं :—गंगावतरण, ऋष्यश्रृंग परशुराम, च्यवन, शिबि, दशरथ के पुत्र राम, सावित्री, नहुष, त्रिपुर-संहार, शकुन्तला, नल, ययाति और मत्स्य की कथाएँ । मत्स्य वाली कथा में मत्स्य अपने आप को सृष्टि का कर्त्ता ब्रह्मा बताता है, न कि विष्णु ।

इसकी निम्नलिखित टीकाएँ हैं—(१) सबसे प्राचीन टीका **सर्वज्ञ नारायण** की है । वह १४वीं शताब्दी में हुए थे । यह टीका अपूर्ण है । (२) **अर्जुनमिश्र** की टीका । इसने सर्वज्ञ नारायण का उल्लेख किया है । १८७५ ई० में कलकत्ता संस्करण के साथ यह प्रकाशित हुई है । (३) **नीलकंठ की टीका** । यह १६वीं शताब्दी में हुए हैं । यह महाराष्ट्र में कूर्पर स्थान के रहने वाले थे । इनकी टीका मुद्रित रूप में उपलब्ध है । महाभारत की अन्य बहुत-सी टीकाएँ हैं । बहुत से भारतीय विद्वानों ने इसकी आलोचना भी लिखी है । इनमें से **आनन्दतीर्थ** का **महाभारततात्पर्यनिर्णय** और **अप्पयदीक्षित** का **महाभारततात्पर्यसंग्रह** विशेष प्रसिद्ध है ।

रामायण और महाभारत की तुलना

रामायण और **महाभारत** के अध्ययन से ज्ञात होता है कि किस प्रकार ये दोनों कुछ अंशों में बहुत समान हैं और कुछ अंशों में बहुत विषम हैं । भाषा की दृष्टि से महाभारत प्राचीन प्रतीत होता है, क्योंकि इसके आख्यानक कुछ कम संस्कृत रूप में हैं । ये आख्यानक व्यास के रचित नहीं हैं । इनके रचयिता कोई प्राचीन लेखक हैं । व्यास को ये जिस रूप में प्राप्त हुए, उसी रूप में उसने उनको रख दिया है । महाभारत के पर्व अध्यायों में विभक्त हैं

और रामायण के काण्ड सर्गों में विभक्त हैं। अपने पूर्ण रूप में महाभारत विभिन्न विषयों का संग्रहमात्र प्रतीत होता है और रामायण एक सुसम्बद्ध एवं पूर्ण कथानक ज्ञात होता है। शैली की दृष्टि से महाभारत में समानता नहीं है, किन्तु सरलता, ओज और प्रभावोत्पादकता है। रामायण की शैली सुन्दर, स्पष्ट और सुसंस्कृत है। इसमें काव्यगौरव विद्यमान है।

रामायण में महाभारत की कथा का कहीं भी उल्लेख नहीं है, परन्तु महाभारत में रामायण की कथा और वाल्मीकि का कई स्थानों पर उल्लेख है। इस पर रामायण का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

रामायण और महाभारत दोनों के वर्णन में समानता है। दोनों का प्रारम्भ राज-सभा से होता है और उसके बाद प्रायः समान काल के लिए वनवास का वर्णन आता है। वनवास के समय दोनों की ही एक ग्रामीण मुखिया से मित्रता होती है। तत्पश्चात् दोनों में ही युद्ध के दृश्य आते हैं। ये दोनों ही महाकाव्य दुःखान्त हैं। दोनों का उद्देश्य एक ही है—"अधर्म कुछ समय के लिए ही सफल हो सकता है, किन्तु अन्तिम विजय धर्म की ही होगी।" इन दोनों महाकाव्यों के रचयिता दोनों काव्यों के नायकों के समकालीन हैं और उनका उनसे सम्बन्ध भी है। ये दोनों ही महाकाव्य दोनों लेखकों के शिष्यों द्वारा अश्वमेध और राजसूय यज्ञ के समय सुनाए गए हैं।

रामायण में केवल एक नायक है और महाभारत में कई नायक हैं, जो कि मुख्यता की दृष्टि से समान हैं। रामायण के पात्र उच्च आदर्शों के पालक हैं। महाभारत के पात्र प्रतिक्रियावादी हैं। उन्हें उपदेश दिया जाता है कि वे उच्च आदर्शों का पालन करें, परन्तु वे पालन नहीं करते। नैतिकता का जो उच्च आदर्श सीता की अग्निपरीक्षा में दृष्टिगोचर होता है, वह महाभारत में केवल उल्लेख के रूप में आता है। उसका प्रयोग नहीं दीखता है। वाल्मीकि के समय में जाति-प्रथा के कठोर नियमों का पालन होता था, परन्तु व्यास के समय में यह प्रथा बहुत शिथिल हो गई थी। रामायण में जीवन के दार्शनिक और धार्मिक स्वरूप पर ब्राह्मणत्व की छाप है और राम की दिव्यता पर बल

दिया गया है। महाभारत में हिन्दुत्व के विभिन्न रूपों का दर्शन होता है, जैसे—एकेश्वरवाद, बहुदेवतावाद, अध्यात्मवाद और भौतिकवाद।

रामायण में स्वयंवर के अवसर पर धनुर्विद्या सम्बन्धी परीक्षण सरल है, किन्तु महाभारत में उसमें विशेष सुधार किया गया है और उसमें नवीनता लाई गई है। रामायण में वानर और राक्षस अपनी माया-शक्ति का प्रयोग करते हुए युद्ध करते हैं, किन्तु महाभारत में घटोत्कच को छोड़कर अन्य सभी मनुष्य ही भाग लेते हैं। महाभारत में प्राप्त होने वाले युद्ध के विभिन्न प्रकार एवं क्रौंचव्यूह, मकरव्यूह, श्येनव्यूह, पद्मव्यूह आदि सेना-संचालन के ढंग रामायण में प्राप्त नहीं होते। रामायण में सती-प्रथा का वर्णन नहीं है, किन्तु महाभारत में है। रामायण के काल में विदेशियों का प्रभाव नहीं था, किन्तु महाभारत के काल में उनका प्रभाव दिखाई देता है। रामायण में लंका के अतिरिक्त अन्य किसी विदेश का उल्लेख नहीं है, किन्तु महाभारत में कई अन्य देशों का उल्लेख है। रामायण के अनुसार दक्षिण भारत में वन्य पशु ही अधिक रहते थे तथा कतिपय ऋषियों के आश्रम थे, परन्तु महाभारत के अनुसार वहाँ पर सभ्य मनुष्य रहते थे।

रामायण और महाभारत दोनों इसी देश की रचना हैं। दोनों ग्रन्थों ने भारतीयों को युगों तक प्रभावित किया है। श्रेण्यकाल के संस्कृत कवियों ने इनको चेतना प्राप्ति का आधार-स्रोत माना है।

अध्याय १०

पुराण

पुराण शब्द प्राचीन कथाओं के लिए आता है। ऐसी कथाओं के लिए पुराण शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि ये कथाएँ बहुत प्राचीन हैं। पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—

यस्मात् पुरा हि अनति इदं पुराणम्।

वायुपुराण १–२०३

वैदिक साहित्य में पुराण शब्द इतिहास और आख्यान शब्द के साथ आता है। वैदिक काल में भी सृष्टि की उत्पत्ति, वीरों, योद्धाओं और मुनियों के जीवन-चरित्र आदि लिखे गए थे। ये ही पुराण नाम से प्रचलित हुए। अधिक ग्रन्थों में लेखक का नाम-निर्देश नहीं है। महाभारत में पुराणों का उल्लेख है। महाभारत के अन्तिम पर्व में पुराणों की संख्या भी दी हुई है। हरिवंश में भी पुराणों की संख्या का उल्लेख है। ऐसा कहा जाता है कि व्यास ने पुराणों का अध्ययन किया था और बाद में जय महाकाव्य बनाया। कुछ पुराण, जिनमें ऐसे उपाख्यान हैं, महाभारत का उल्लेख करते हैं। ऐसे उपाख्यान महाभारत की रचना के बाद बने होंगे। महाभारत के अतिरिक्त गौतम और आपस्तम्ब के धर्मसूत्र भी, जिनका समय ५०० ई० पू० के लगभग है, पुराणों का उल्लेख करते हैं।

पुराणों का समय निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। इन पुराणों के कुछ स्थल बहुत प्राचीन हैं और कुछ बहुत नवीन हैं। कुछ पुराणों में राजवंशावलियाँ दी गई हैं, उनमें हर्ष और ६०० ई० के बाद के राजाओं का उल्लेख नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि ५वीं शताब्दी से पूर्व ये पुराण निश्चित रूप धारण कर चुके थे।

भारतीय परम्परा के अनुसार पुराण में पाँच बातें होनी चाहिए, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि का संहार, देवों की वंशावली, मन्वन्तरों का वर्णन तथा सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्॥

विष्णुपुराण ३-६-२४

यह लक्षण उस समय बनाया गया होगा, जब उस समय विद्यमान पुराणों में ये लक्षण प्राप्त होते होंगे। इस काल के पश्चात् कुछ ऐसे भी विषय प्रायः सभी पुराणों में मिला दिए गए हैं, जिनका उपर्युक्त विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल विष्णुपुराण में ही उपर्युक्त सब लक्षण घटते हैं। अन्य पुराणों में पृथिवी, प्रार्थना, उपवास, पर्व और तीर्थयात्राओं का भी वर्णन मिलता है। कुछ पुराणों में ज्योतिष, शरीरविज्ञान, औषधियाँ, व्याकरण और शस्त्रों के प्रयोग आदि विषयों का भी वर्णन है।

पुराणों की मुख्य देन आस्तिकवाद का प्रबल समर्थन है। उनमें बहुत से देवताओं का वर्णन है। वे घोषित करते हैं कि सभी देवता समान हैं, परन्तु वे किसी एक देवता का महत्त्व स्थापित करते हैं। उनमें किसी एक विशेष देवता की उपासना बताई गई है, परन्तु अन्य देवता की उपासना का निषेध नहीं किया गया है। इस प्रकार वे एक देवता की उपासना पर बल देते हैं, परन्तु अन्य की अपेक्षा उसे मुख्य मानकर उपासना का निषेध करते हैं। पुराणों का धर्म बहुदेवतावादी कहा जा सकता है, परन्तु वह सर्वदेवतावादी है।

पुराण ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनमें जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसके द्वारा प्राचीन भारत का इतिहास तैयार किया जा सकता है। उनमें शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, आन्ध्र, गुप्त आदि प्रमुख राजवंशों का वर्णन मिलता है। इनमें प्रत्येक राजवंश के लिए जितना समय देया गया है, उनके समय में समुचित अन्तर करने पर यह सम्भव है कि

पर्याप्त शुद्धता के साथ उनके **समय** आदि का निर्धारण किया जा सके। पुराणों में जो राजवंशों का वर्णन है, उस पर अभी तक पाश्चात्य विद्वानों ने उचित ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने पुराणों में ऐतिहासिक दृष्टि से उसी अंश को स्वीकार किया है जो उनके लिए रुचिकर हुआ है और जो उनके लिए रुचिकर नहीं है, उसको काल्पनिक कथानक मानकर छोड़ दिया है। वास्तविक दृष्टि से पुराणों में जो कुछ लिखा है, वह ऐतिहासिक सत्य मानना चाहिए।

भारतीय परम्परा के अनुसार जय महाकाव्य के रचयिता व्यास के पिता **पराशर** को **विष्णुपुराण** का लेखक माना जाता है और शेष १७ पुराणों के लेखक **व्यास** माने जाते हैं। १८ **पुराण ये हैं** :—(१) **ब्रह्माण्ड** (२) **ब्रह्मवैवर्त** (३) **मार्कण्डेय** (४) **भविष्य** (५) **वामन** (६) **ब्रह्म** (७) **विष्णु** (८) **नारद** (९) **भागवत** (१०) **गरुड़** (११) **पद्म** (१२) **वराह** (१३) **मत्स्य** (१४) **कूर्म** (१५) **लिंग** (१६) **शिव** (१७) **स्कन्ध** (१८) **अग्नि**। पुराणों में ही पुराणों के ये १८ नाम दिये हुए हैं। कुछ पुराणों में दी हुई सूची में **शिवपुराण** के स्थान पर **वायुपुराण** के नाम का निर्देश है। पुराणों में लेखकों का भी निर्देश किया गया है। यह कहा जाता है कि व्यास के सामने उससे पूर्ववर्ती लेखकों के लिखे हुए बहुत से पुराण विद्यमान थे। **व्यास** ने उनको प्रकाशित ही किया है। एक दूसरे पुराण का कथन है कि व्यास ने केवल एक **ब्रह्मपुराण** ही लिखा है, शेष १७ पुराण उसके शिष्यों ने लिखे हैं। यह भी कहा जाता है कि व्यास ने १८ पुराणों का संक्षिप्त अंश लिखा है। विष्णुपुराण के अनुसार व्यास ने १८ पुराणों का संक्षिप्त रूप पुराणसंहिता लिखी थी।

आख्यानैश्चोपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥

विष्णुपुराण ३–६–१५

शिवपुराण के एक श्लोक का कथन है कि पद्म और ब्रह्मपुराण ब्रह्मा के लिखे हुए हैं, तथा शिवपुराण **शैलाली** का लिखा हुआ है—

ब्राह्मं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं पाद्मं तेनैव शोभनम् ।
पराशरेण कथितं वैष्णवं मुनिपुंगवाः ।
शैवं शैलालिना प्रोक्तम् ।

शिवपुराण

भविष्यपुराण का कथन है कि सब पुराणों में कुल मिलाकर १२ सहस्र श्लोक थे । यह उचित है कि व्यास को १८ पुराणों का रचयिता माना जाए । ये १८ पुराण व्यास के पूर्ववर्ती १८ बृहत् पुराणों के संक्षिप्त रूप समझने चाहिए । व्यास के बाद पुराणों के ढंग का साहित्य, जिसका अन्यत्र समावेश नहीं होता था, पुराणों के ही अन्दर समाविष्ट किया गया । ऐसे स्थलों के समावेश के समय प्रकरण आदि का भी उचित ध्यान नहीं दिया गया है । अतएव पुराण जिस रूप में आज प्राप्त होते हैं, वे किसी विषय पर कोई निश्चित सूचना नहीं देते हैं । इस प्रकरण में यह उल्लेख उचित है कि **शंकराचार्य** ने विष्णुपुराण को छोड़कर अन्य किसी भी पुराण से कोई उद्धरण नहीं दिया है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ६०० ई० से पूर्व यद्यपि अन्य पुराण विद्यमान थे, तथापि वे प्रामाणिक ग्रन्थों में नहीं माने जाते थे । रामानुज के समय के बाद से ही ये पुराण प्रामाणिक माने जाने लगे हैं ।

पुराण दो या अधिक व्यक्तियों के बीच में वार्तालाप के रूप में हैं और इस रूप में ये महाभारत के समान हैं ।

पुराण स्वरूपतः नीति ग्रन्थ हैं और लक्ष्य की दृष्टि से साम्प्रदायिक हैं । इनमें बहुत से अत्युपयोगी नीति और कर्त्तव्य सम्बन्धी उपदेश हैं । ये कर्त्तव्य शिक्षा के रूप में दिए हैं । इन उपदेशों के लक्ष्य में अन्तर है । ये धार्मिक सम्प्रदायों के किसी विशेष वर्ग के मन्तव्यों को उपस्थित करते हैं । इसी विचार से इनको सात्विक, राजस और तामस तीन भेदों में विभक्त किया गया है । विष्णु की भक्ति से सम्बद्ध विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म और वराह ये ६ पुराण सात्विक पुराण माने गए हैं । ब्रह्मा की भक्ति से सम्बद्ध

ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म ये ६ राजस पुराण माने गए हैं। शिव की भक्ति से सम्बद्ध मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्ध और अग्नि ये ६ तामस पुराण माने गए हैं। पुराणों का यह विभाजन इस बात को लक्ष्य में रखकर किया गया है कि हिन्दुओं के मुख्य तीनों देवताओं के नाम और पुराणों की संख्या समान हो। कुछ पुराण यद्यपि किसी विशेष देवता की भक्ति का प्रतिपादन करते हैं, तथापि वे लक्ष्य की दृष्टि से साम्प्रदायिक नहीं हैं। मार्कण्डेय और भविष्यपुराण सर्वथा साम्प्रदायिक नहीं हैं। ब्रह्मपुराण यद्यपि ब्रह्मा की भक्ति का प्रतिपादक है, तथापि उसमें सूर्य की भक्ति का भी वर्णन है। अतएव उपर्युक्त विभाजन पूर्णरूप से ठीक नहीं है।

विष्णुपुराण के रचयिता **पराशर** हैं। यह विष्णु को अवतार मानता है और उनकी उपासना का वर्णन करता है। इसमें वैष्णवों द्वारा किए जाने वाले उपवास और अन्य आयोजनों का वर्णन नहीं है और न विष्णु के मन्दिर का ही वर्णन है। इसमें मौर्यवंशी राजाओं का वर्णन है। यही एक पुराण है जिसमें पुराण के लक्षणों का पूर्णतया पालन किया गया है। **नारदपुराण** को **बृहन्नारदीयपुराण** भी कहते हैं। इसमें उत्सवों और पर्वों आदि का वर्णन है। इस पुराण के अनुसार मुक्ति समाधि और ईश्वर-भक्ति से प्राप्त होती है। **भागवतपुराण** में कृष्ण के जीवन का वर्णन है। इसमें १८ सहस्र श्लोक हैं। यह १२ स्कन्धों में विभाजित है। इनमें से दशम स्कन्ध बहुत प्रचलित है। इसमें कृष्ण के पराक्रमों का वर्णन है। इस पुराण को बहुत-सी टीकाएँ हुई हैं और कई भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ है। इस पुराण में गौतम बुद्ध और कपिल मुनि को विष्णु का अवतार माना गया है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह सुसम्बद्ध रचना है। इसकी शैली कुछ स्थलों पर वैदिक काल की शैली से समता रखती है और कुछ स्थलों पर श्रेण्य-काल की शैली से। पुराणों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। **शंकराचार्य** और **रामानुज** ने इस पुराण से कोई उद्धरण नहीं दिया है। इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि यह पुराण ७०० ई० के लगभग नहीं था। विष्णु-

पुराण प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था, अतः शंकर और रामानुज ने विष्णु-पुराण से ही उद्धरण दिए हैं। उनका काम विष्णुपुराण से चल गया है, अतः उन्होंने अन्य पुराणों से उद्धरण लेने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। **आनन्दतीर्थ** सर्वप्रथम लेखक हैं, जिन्होंने इन पुराणों से उद्धरण दिए हैं और भागवतपुराण की टीका भी की है। **बोपदेव** (१३वीं शताब्दी ई०) ने **भागवत** का परिशिष्ट **हरिलीला** लिखा है।

गरुड़पुराण में गणित और फलित ज्योतिष, औषधियाँ, व्याकरण, रत्नों के प्रकार और मूल्य तथा इस प्रकार के अन्य विषयों का वर्णन है, जिनका पुराण के लक्ष्य और उद्देश्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। **पद्मपुराण** पाँच खंडों में विभाजित है। उनके नाम ये हैं—आदिखंड, भूमिखंड, पातालखंड, सृष्टिखंड और उत्तरखंड। इस पुराण का नाम पद्म शब्द से पड़ा है, जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। इस पुराण में राधा को कृष्ण की पत्नी होने का उल्लेख किया गया है। विष्णु और भागवतपुराण में राधा को कृष्ण की पत्नी होने का उल्लेख नहीं है। इसमें अन्य कथाओं के साथ ही शकुन्तला और राम की कथा भी है। इसमें दी हुई ये दोनों कथाएँ कालिदास के शाकुन्तल और रघुवंश में दी हुई कथाओं से अधिक मिलती हैं। रामायण और महाभारत में दी हुई कथाओं से उतनी नहीं मिलती हैं। आलोचकों का कथन है कि ये स्थल कालिदास के बाद के लिखे हुए हैं। **वराहपुराण** में विष्णु का वराह के रूप में अवतार होने का वर्णन है। इसमें मातृभूमि को देवता मानकर उसकी स्तुति भी की गई है।

ब्रह्माण्डपुराण उपाख्यानों और तीर्थ-माहात्म्यों आदि का संग्रहमात्र है। इसमें पुराणों में वर्णन वाली बातें कम हैं। इसमें सात खण्डों में अध्यात्म-रामायण दी हुई है। यह महाभारत आदि के तुल्य शिव और पार्वती के संवाद के रूप में लिखा गया है। इसका कथन है कि अद्वैत-बुद्धि और राम-भक्ति से मोक्ष प्राप्त होता है। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** का मत है कि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म की मायामात्र है। अतएव इसका नाम वैवर्त रक्खा गया है। इसके चार

खंड हैं—ब्रह्मखंड, प्रकृतिखंड, गणेशखंड, और कृष्णजन्मखंड। कृष्ण के आदेशानुसार प्रकृति दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा के रूप में परिवर्तित होती है। इसमें शिव के पुत्र गणेश को कृष्ण का अवतार माना गया है। **मार्कण्डेयपुराण** में इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि और सूर्य को मुख्यता दी गई है। इसमें महाभारत के पात्रों के आचार-विचार पर किए गए प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इसमें देवी दुर्गा की प्रशंसा में देवी-माहात्म्य दिया हुआ है। **भविष्यपुराण** में भविष्य के विषय में भविष्यवाणियाँ हैं। इसमें चारों वर्णों के कर्तव्यों और सूर्य, अग्नि तथा नागदेवों की पूजा का वर्णन है। इसी पुराण का परिशिष्ट **भविष्योत्तरपुराण** है, जिसमें धार्मिक कार्यों की विधि दी हुई है। **वामनपुराण** विष्णु के वामन रूप में अवतार का वर्णन करता है। इसमें लिंग की पूजा का वर्णन है। इसमें शिव और पार्वती के विवाह का भी वर्णन है। **ब्रह्मपुराण** का दूसरा नाम **आदिपुराण** है। इसका लेखक व्यास को माना जाता है। इसमें उड़ीसा के तीर्थों का महत्त्व वर्णित है। इसमें सूर्य को शिव कहा गया है और उसकी महत्ता का वर्णन किया गया है। इसका एक परिशिष्ट भी है। उसे **सौरपुराण** कहते हैं। इस पुराण में पुरी के समीप कोणार्क में १२४१ ई० के बाद बने हुए सूर्य-मन्दिर का उल्लेख है।

मत्स्यपुराण में पर्वों, तीर्थों, शकुन, शैवों और वैष्णवों के द्वारा माने जाने वाली विधियों का वर्णन है। इसमें दक्षिण भारत, नाट्यशास्त्र, जैनधर्म, बौद्धधर्म, नरसिंह आदि उपपुराणों और आन्ध्र वंशावली का उल्लेख है। इसमें भवन-निर्माण, दक्षिणभारतीय वास्तुकला और मूर्तिकला का वर्णन है। **कूर्मपुराण** की पहले चार संहिताएँ थीं, परन्तु अब इसमें केवल एक ब्राह्मीसंहिता है। इसमें ६ सहस्र श्लोक हैं। इसमें शिव के अवतार का वर्णन है। इसमें **ईश्वरगीता** और **व्यासगीता** हैं। इन दोनों गीताओं के अनुसार समाधि और कर्तव्य-पालन ज्ञान-प्राप्ति के साधन है। **लिंगपुराण** शिव के २८ अवतारों का वर्णन करता है। इसमें धार्मिक विधियों का वर्णन है। **शिवपुराण** अपने विशाल ग्रन्थ **वायुपुराण** का एक भाग माना जाता है। इसमें १२ सहस्र श्लोक

हैं। महाभारत और हरिवंश में इसका उल्लेख आता है। **बाण** (६०० ई०) ने अपने ग्राम में **वायुपुराण** के पाठ का वर्णन किया है। इसमें बौद्ध और जैन धर्म का उल्लेख नहीं है। इसमें गुप्त साम्राज्य का उल्लेख है। इसमें एक अध्याय संगीत विषय पर भी है। इस पुराण का अधिकांश भाग ५०० ई० पू० से पूर्व लिखा हुआ माना जाता है। **स्कन्दपुराण** में पाँच संहिताएँ हैं। उनके नाम हैं—सनत्कुमारीय, ब्राह्मी, वैष्णवी, शंकर या अगस्त्य और सौर। इनके अतिरिक्त काशीखण्ड नामक ५० छोटे अध्याय हैं। इनमें बनारस और उसके समीपवर्ती मन्दिरों का वर्णन है। इनमें **सूतसंहिता** बहुत प्रसिद्ध है। इसमें शिवभक्ति का वर्णन है। **माधवाचार्य** (१३५० ई०) ने इस पर **तात्पर्यदीपिका** नाम की टीका लिखी है। सम्पूर्ण पुराण में ८ सहस्र से अधिक श्लोक हैं। **अग्निपुराण** का वर्णन विश्वकोश के रूप में है और यह अग्नि के द्वारा वसिष्ठ को बताया गया है।

देवीभागवत भी इन पुराणों में से एक पुराण माना जाता है। पुराणों में भागवत के स्थान पर इसका नाम आता है। यह शिव की प्रिया देवी पार्वती की प्रशंसा में लिखा गया है। **योगवासिष्ठ** दार्शनिक ग्रन्थ है। यह ६ प्रकरणों में विभक्त है। यह भी पुराण के तुल्य है।

उपर्युक्त १८ पुराणों के अतिरिक्त १८ उपपुराण भी हैं। इन सबके लेखक व्यास माने जाते हैं। इनमें कर्मकाण्ड की विधियाँ अधिक हैं, कथा आदि का अंश कम है। इनमें से अधिक के नाम वही हैं, जो मुख्य पुराणों के हैं। इनमें से **कालिकापुराण** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह काली का विभिन्न रूपों में वर्णन करता है और काली को समर्पण किए जाने वाले जीवों और मनुष्यों की बलि का वर्णन करता है।

इनके अतिरिक्त और भी ग्रन्थ हैं जो पुराणों के रूप में हैं, परन्तु उनकी गणना पुराणों में नहीं है। उनमें से **विष्णुधर्मोत्तर** काश्मीरी वैष्णव धर्म का

वर्णन करता है। **नीलमतपुराण** काश्मीरी नागों के धार्मिक नेता राजा नील के सैद्धान्तिक उपदेशों का वर्णन करता है। इसमें काश्मीर के इतिहास का भी वर्णन है **बृहद्धर्मपुराण** का मत है कि कपिल, वाल्मीकि, व्यास और बुद्ध ये विष्णु के अवतार हैं। नैपाल की राजवंशावली का भी वर्णन पौराणिक साहित्य में प्राप्त होता है।

अध्याय ११

काव्य-साहित्य का काल

कालिदास से पूर्व का काल

काव्य-साहित्य का काल रामायण और महाभारत के काल से बहुत अधिक मिला हुआ है। **काव्य** शब्द का अर्थ है कवि की कोई भी **रचना**। अतः काव्य के अन्तर्गत पद्य, गद्य, कथा, आख्यायिका, गीति और नाटक आदि सभी हैं। यह शब्द योगरूढ़ि के आधार पर कविता का अर्थ बोधित करता है। अन्य अर्थों में इसका प्रयोग निषिद्ध नहीं है।

कवियों और उनके ग्रन्थों के विषय में पूर्ण सूचना न प्राप्त होने के कारण उनका समय आदि निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है। अतएव यह भी संभव हुआ कि विभिन्न कवियों ने अपनी रचनाएँ किसी विशेष कवि के नाम से प्रसिद्ध कर दीं और अपना नाम नहीं दिया। इसीलिए एक कवि के नाम से प्राप्य ग्रन्थों की शैली और भाषा आदि में महान् अन्तर प्राप्त होता है। कतिपय ग्रन्थों के लेखक का नाम निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है, इसका कारण बताना सम्भव है। इस काल में कोई भी रचना तभी मान्यता प्राप्त कर सकती थी, जब उस समय के प्रसिद्ध आलोचक उस रचना का समर्थन कर देते थे। जिन रचनाओं का वे आलोचक समर्थन नहीं करते थे, वे रचनाएँ नष्ट हो जाती थीं या भुला दी जाती थीं। अतः साहित्य के प्रत्येक विभाग में जो उत्कृष्ट रचना होती थी, वही शेष रहने पाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ रचनाएँ नष्ट हो गईं। अतः साधारण कोटि के कवियों ने अपनी रचना को नष्ट होने से बचाने का यह उपाय निकाला कि अपनी रचना को किसी श्रेष्ठ कवि के नाम से प्रचलित किया और इस प्रकार आलोचकों की घोर आलोचना से वे बच सके।

इस काल में जो काव्य लिखे गए, उनमें साहित्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित कतिपय नियमों का पालन करना आवश्यक था। महाकाव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण या इसी प्रकार के अन्य भाव से होना चाहिए। महाकाव्य सर्गों में विभक्त होना चाहिए और प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक सर्ग में प्रयुक्त हुए छन्द से पृथक् छन्द में होना चाहिए। इसमें नगरों, समुद्रों, पर्वतों, ऋतुओं, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, विवाह, युद्ध, विप्रलम्भ शृङ्गार तथा मदिरापान आदि का वर्णन होना चाहिए। इनमें से कवि कोई भी वर्णन अपना सकता है और उसका सुन्दर ढंग से वर्णन कर सकता है।

कालिदास से पूर्व का समय अन्धकारमय है। कालिदास ने अपने काव्य-सौन्दर्य के लिए विभिन्न छन्दों और अलंकारों का जो बड़ी चतुरता से उपयोग किया है उससे ज्ञात होता है कि कालिदास से पूर्व काव्य-साहित्य बहुत उन्नत अवस्था में था। कालिदास के द्वारा उसको पूर्णता प्राप्त हुई है। कालिदास के पूर्ववर्ती कवियों में **वाल्मीकि** हैं। उनको आदि-कवि कहना उपयुक्त है। वे लौकिक काव्य के **जन्मदाता** है। उनको रचना रामायण, जो कि आदि काव्य है, आज तक विद्यमान है। यह संभव ज्ञात होता है कि वाल्मीकि को आदर्श मानकर बाद की रचनाएँ हुई हैं। महाकाव्य के जो लक्षण किए गए हैं, वे रामायण और महाभारत की विशेषताओं को आधार मान कर ही किए गए हैं। सुभाषित ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि **पाणिनि** ने **पातालविजय** और **जाम्बवती-विजय** नामक काव्य लिखे हैं। पाणिनि का एक सुन्दर श्लोक इस प्रकार है—

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं
गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं
तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति ॥

पतंजलि के **महाभाष्य** से ज्ञात होता है कि **वररुचि** अर्थात्-**कात्यायन** ने भी एक काव्य लिखा था। **पिंगल**, जिनका दूसरा नाम **पिंगलनाग** है, ने छन्दशास्त्र पर **छन्दसूत्र** लिखा है। उनका समय वैदिक काल के बाद मानना

चाहिए। उन्होंने छन्दों के जो नाम रक्खे हैं, वे स्त्रियों के नाम के समान हैं। उन्होने छन्द का लक्षण और उदाहरण एक ही श्लोक में दिया है अर्थात् वही श्लोक छन्द का लक्षण है और वही उसका उदाहरण भी है। उनके दिए हुए छन्दों के नाम हैं—चंचलाक्षिका, कुटिलगति आदि। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास से पूर्व काव्य-साहित्य पर्याप्त उन्नत अवस्था में था। कालिदास के काव्य-ग्रन्थों के असाधारण उत्कर्ष और मनोरमता ने उससे पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं को सर्वथा समाप्त कर दिया है।

अध्याय १२

काव्य-साहित्य

कालिदास

संस्कृत-कवि-शिरोमणि महाकवि **कालिदास** के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। उसके जीवन के सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार वह महामूर्ख था। उसका विवाह एक सुयोग्य कला-प्रवीण राजकुमारी से हुआ। उसके प्रबोधन पर उसने देवी काली की उपासना की और उसके वरदान से उसे कवित्व-शक्ति प्राप्त हुई। तदनन्तर उसने अपने काव्यग्रन्थ बनाए। एक अन्य कथा उसका सम्बन्ध लंका के राजा **कुमारदास** (५०० ई०) से बताती है। कालिदास भ्रमणार्थ लंका गए थे। वहीं पर उनका परिचय वहाँ के राजा से हुआ। राजा कालिदास की काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होकर उन्हें बहुमूल्य वस्तुएँ प्रदान करना चाहते थे। वहाँ की एक वेश्या उन वस्तुओं को राजा से प्राप्त करना चाहती थी, अतः धन के लोभ में उसने कालिदास की मृत्यु कराई। इस प्रकार कालिदास का देहान्त लंका में हुआ। अन्य परम्परा के अनुसार वह धारा के **राजा भोज** का आश्रित कवि था। इन सब कथाओं और विचारों को सत्य नहीं माना जा सकता है, क्योंकि ऐसा मानने में समय-सम्बन्धी कठिनाई मुख्य रूप से आती है। ये कथाएँ कालिदास के समर्थकों और प्रशंसकों द्वारा बनाई हुई समझनी चाहिए। धारा के राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) का आश्रित कवि **परिमल** था। इसी का दूसरा नाम **पद्मगुप्त** है। उसकी मनोहर शैली कालिदास की शैली से मिलती हुई थी। अतः उसको कालिदास या परिमल कालिदास की उपाधि दी गई थी। सम्भवतः भ्रमवश **परिमल** को ही वास्तविक कालिदास समझ लिया गया। अतएव **राजा भोज** का आश्रित कवि कालिदास को माना जाने लगा।

कालिदास का समय निश्चित करने के लिए कोई भी बाह्य या अन्तः साक्ष्य निश्चित रूप से उपलब्ध नहीं है। तथापि उसका समय ४७२ ई० के शिलालेख के बाद नहीं है। इस शिलालेख का रचयिता **वत्सभट्टि** है। इसकी कविता पर कालिदास के **मेघदूत** का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बाण (६०० ई०) ने कालिदास का बहुत आदरपूर्वक उल्लेख किया है। ६३४ ई० के **ऐहोल** के शिलालेख में कालिदास का नामोल्लेख है। अतः कालिदास का समय ४०० ई० के बाद नहीं रखा जा सकता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास **राजा विक्रमादित्य** का आश्रित कवि था। यह परम्परा नवीन ज्योतिष के ग्रन्थ **ज्योतिर्विदाभरण** के एक श्लोक के आधार पर है। वह श्लोक है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह–शंकुः–वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां, रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ।।

इस पद्य के अनुसार धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि ये राजा विक्रामादित्य के **नवरत्न** थे। इनमें से क्षपणक, शंकु और वेतालभट्ट ये अब नाममात्र ही हैं। धन्वन्तरि, वररुचि और घटकर्पर कौन हैं, इसका निश्चय नहीं हुआ है। **अमरसिंह अमरकोश** के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। उसका समय निश्चित नहीं है, परन्तु वह ४०० से ६०० ई० के बीच में रहा होगा। **वराहमिहिर** एक ज्योतिर्विद् हैं। इनका देहान्त ५८७ ई० में हुआ है। अतः इस श्लोक के आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि उपर्युक्त नवों व्यक्ति समकालीन हैं। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि कालिदास राजा विक्रमादित्य का आश्रित कवि था। परन्तु विक्रमादित्य का समय निश्चय करना बहुत कठिन है।

ज्योतिर्विदाभरण के इस श्लोक के आधार पर कालिदास के समय के विषय में बहुत से मन्तव्य उपस्थित किए गए हैं। यह प्रयत्न किया गया कि

कालिदास का सम्बन्ध ऐसे राजा से स्थापित किया जाय, जिसकी उपाधि विक्रमादित्य हो। कम से कम ऐसे चार राजा हैं, जिनकी उपाधि **विक्रमादित्य** है। वे हैं—(१) उज्जैन के राजा विक्रामादित्य, जिन्होंने ५६ ई० पू० में विक्रम संवत् की स्थापना की है, (२) चन्द्रगुप्त द्वितीय (३५७-४१३ ई०), (३) कुमारगुप्त प्रथम (४१३-४५५ ई०), (४) कश्मीर का विक्रमादित्य (५०० ई०)। भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास उस विक्रमादित्य का आश्रित कवि था; जो ईसा से पूर्व हुआ है। पाश्चात्य विद्वान् उस विक्रमादित्य को काल्पनिक व्यक्ति मानते हैं। ईसा से पूर्व **विक्रमादित्य** नामक राजा का होना निःसन्दिग्ध है। प्रथम शताब्दी में उत्पन्न सातवाहन ने अपनी पुस्तक गाथासप्तशती[1] में विक्रम राजा का उल्लेख किया है तथा विक्रम संवत् की स्थापना से सिद्ध होता है कि ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा हुआ है। पाश्चात्य विद्वान् कालिदास का सम्बन्ध गुप्त महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम से स्थापित करते हैं। इस प्रकार कालिदास के विषय में दो प्रमुख मत हैं।

कालिदास के ग्रन्थों में उपलब्ध कतिपय तथ्यों के आधार पर कुछ विद्वानों ने कालिदास का समय ४०० ई० या ५०० ई० निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। वे मेघदूत में आए हुए 'दिङ्नागानाम्'[2] प्रयोग से बौद्ध-दार्शनिक **दिङ्नाग** (४०० ई०) का उल्लेख समझते हैं। उनके मतानुसार दिङ्नाग कालिदास का विरोधी था। इसी आधार पर वे कालिदास का समय ४०० ई० के लगभग मानते हैं। यह युक्ति सर्वथा अयुक्त है। इसका कोई आधार या प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है कि हिन्दू कवि कालिदास और बौद्ध-दार्शनिक दिङ्नाग में वस्तुतः कोई विरोध था। कुछ भारतीय विद्वान् 'दिङ्नागानाम्' से कुन्दमाला नाटक के लेखक हिन्दू कवि दिङ्नाग का उल्लेख समझते हैं। कुछ

---

१. सातवाहन कृत गाथासप्तशती ६-५४।

२. कालिदास—मेघदूत, पूर्व० १४।

व्यक्ति कुन्दमाला के लेखक का नाम **धीरनाग** मानते हैं। अतः इस नाटक के लेखक के विषय में निर्णय करने में कठिनाई उपस्थित होती है। इस नाटक के लेखक दिङ्नाग को कवि-प्रतिभा के आधार पर कालिदास का प्रतिद्वन्द्वी माना जाय तो उचित प्रतीत होता है। इस शब्द के आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसे व्यक्तिवाचक मानने का कोई प्रमाण नहीं है। इस शब्द का श्लोक में वास्तविक अर्थ है—दिग्गज।

कुछ पाश्चात्त्य विद्वान् कालिदास के द्वारा प्रयुक्त 'जामित्र'[1] शब्द के आधार पर उसका समय ५०० ई० के लगभग मानते हैं। उनका मन्तव्य है कि सर्व-प्रथम ज्योतिष के यूनानी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग आर्यभट्ट (५०० ई०) ने किया है और यह जामित्र शब्द कालिदास ने **आर्यभट्ट** से लिया है। यह शब्द यूनानी शब्द डाएमेट्रन का ही परिवर्तित रूप है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि **अश्वघोष** (१०० ई०) के काव्य में भी उन्हें इस प्रकार के यूनानी शब्दों के परिवर्तित रूप मिले हैं, परन्तु वे इस आधार पर उसका समय बाद का नहीं मानते। उसी प्रकार के शब्द कालिदास ने प्रयुक्त किए हैं, परन्तु वे कालिदास का समय ५०० ई० से पूर्व रखने को उद्यत नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि उनके निर्णय कितने पक्षपातपूर्ण हैं। इन शब्दों की उत्पत्ति और प्रयोग के विषय में यह स्मरण रखना उचित है कि **बोधायन** (५०० ई० पू०) ने अपने गृह्यसूत्रों में इन शब्दों का प्रयोग किया है और इन शब्दों पर यूनानी शब्दों का कोई प्रभाव नहीं है। अतः कालिदास के समय के निर्धारण में उपर्युक्त युक्ति असार ही है।

पाश्चात्त्य आलोचकों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास विक्रमादित्य उपाधिधारी किसी गुप्त महाराजा का आश्रित कवि था। शिला-लेखों से ज्ञात होता है कि वे विद्या के उन्नतिकर्ता थे। उनका मत है कि कुमारसंभव और विक्रमोर्वशीय में कुमार और विक्रम शब्द कुमारगुप्त और

१. कुमारसम्भव सर्ग ७-१।

गुप्त महाराजाओं की उपाधि विक्रमादित्य की ओर संकेत करते हैं। उनकी यशोवृद्धि के लिए कालिदास ने ग्रंथ-नाम में उनको स्थान दिया है। कालिदास ने रघु के दिग्विजय का जो वर्णन किया है वह समुद्रगुप्त (३५० ई०) के दिग्विजय को ही लक्ष्य में रखकर किया है। कालिदास के समय तक लोगों को समुद्रगुप्त की दिग्विजय का पूर्ण स्मरण रहा होगा। रघु का हूणों को हराने का जो उल्लेख है, वह स्कन्दगुप्त (४५५ ई०) के हूणों के हराने के आधार पर है।

पाश्चात्त्य आलोचकों ने कालिदास को गुप्त राजाओं के साथ सम्बद्ध करने का जो प्रयत्न किया है, वह निराधार है। उनका मत है कि संस्कृत भाषा की पुनः उन्नति का श्रेय गुप्त राजाओं को है। उन्होंने कवियों को आश्रय दिया। उनका समय भारतीय इतिहास में स्वर्ण-युग है। किन्तु यहाँ पर यह विचारणीय है कि विद्या-विषयक उन्नति के सम्बन्ध में भारतवर्ष गुप्त राजाओं को स्मरण नहीं करता है। इस विषय में भोज और विक्रमादित्य का नाम ही मुख्य रूप से लिया जाता है। इस विषय में पाश्चात्त्य आलोचकों की अपेक्षा भारतीय विद्वानों की सम्मति अधिक मान्य है, क्योंकि वे इस विषय को अधिक घनिष्ठता के साथ जानते हैं। यदि गुप्त राजा विक्रमादित्य और भोज के तुल्य संस्कृत के उन्नायक होते तो उनका भी नाम उसी आदर के साथ स्मरण किया जाता। अतः कालिदास के विषय में गुप्त राजाओं का जो मत पाश्चात्त्य विद्वानों ने रक्खा है, वह उनका ही आविष्कार है, इसमें सत्यता कुछ नहीं है।

पाश्चात्त्य आलोचकों ने जो प्रमाण उपस्थित किया है, उससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि कालिदास गुप्त-काल में उत्पन्न हुए थे। कुमारसम्भव और विक्रमोर्वशीय नामों में ऐसी कोई अपूर्व बात नहीं रक्खी गई है, जिससे यह निष्कर्ष निकाला जाय कि इनमें गुप्त राजाओं का संकेत है। कुमार शब्द शिव के पुत्र कार्त्तिकेय के अर्थ में अत्यन्त प्रसिद्ध शब्द है। विक्रम शब्द का अर्थ है पराक्रम। **विक्रमोर्वशीय** का अर्थ है कि जिस नाटक में उर्वशी को

राजा पुरूरवा ने अपने पराक्रम के द्वारा जीता है। दिग्विजय-यात्रा के समय समुद्रगुप्त को कावेरी नदी के तट पर पाण्ड्य राजा ने पीछे हटा दिया था, अतः समुद्रगुप्त की दिग्विजय-यात्रा रघु की दिग्विजय-यात्रा के लिए आदर्श नहीं हो सकती है। कालिदास के अनुसार रघु ने कावेरी के नीचे भी प्रायः संपूर्ण दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की। हूण २य शताब्दी ई० पू० से भारत के पश्चिमी भाग में विद्यमान थे, अतः रघुवंश में हूण शब्द के प्रयोग से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि कालिदास गुप्त-काल में थे।

कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० से बहुत बाद का सिद्ध करने के लिए एक और प्रमाण उपस्थित किया जाता है। बौद्ध दार्शनिक और कवि **अश्वघोष** प्रथम शताब्दी ई० में हुआ है। इसके दोनों ग्रन्थों **बुद्धचरित** और **सौन्दरनन्द** के कुछ वाक्य और वर्णन कालिदास के ग्रन्थों के वर्णनों से मिलते हैं। अश्वघोष ने बुद्ध का राजमार्ग पर निकलने का जो वर्णन किया है, वह कालिदास के कुमारसम्भव में शिव के और रघुवंश में अज के राजमार्ग पर निकलने के वर्णन से बहुत अंशों में समान है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास ने अश्वघोष से ये वर्णन लिए हैं।

यह विचार भी मान्य नहीं है। इन दोनों कवियों के ग्रन्थों में समानता अवश्य है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि कालिदास ने उपर्युक्त वर्णन अश्वघोष से लिया है। गौतम बुद्ध दिन में साधारण रूप में राजमार्ग पर जा रहे हैं। इस प्रसंग में अश्वघोष ने लिखा है कि स्त्रियाँ अपनी नींद से उठीं और अपने केशादि-प्रसाधन की ओर ध्यान न देकर सहसा बुद्ध के दर्शनार्थ खिड़की पर जाती हैं। यहाँ पर इस प्रसंग में उनकी निद्रा, शृङ्गार और बुद्ध-दर्शन की अभिलाषा इस बात को प्रकट करती है कि यह वर्णन अप्रासंगिक है और अन्य किसी ग्रन्थ से लिया गया है। कालिदास के ग्रन्थों में यह वर्णन उन्हीं शब्दों में दुहराया गया है। यदि कालिदास ने यह वर्णन अन्य किसी ग्रन्थ से उद्धृत किया होता तो वह इसको दो स्थलों पर उसी रूप में रखने

का साहस न करता। कोई भी व्यक्ति चोरी की वस्तु का प्रदर्शन नहीं करता। इसके अतिरिक्त कतिपय अप्रचलित व्याकरण सम्बन्धी प्रयोग जो कलिदास के ग्रन्थों में आए हैं, उनका प्रयोग अश्वघोष के ग्रन्थों में बार-बार आया है। इससे ज्ञात होता है कि अश्वघोष ने ही कालिदास से भाव लिए हैं, न कि कालिदास ने अश्वघोष से।

यदि **अश्वघोष** कालिदास से पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित कवि था और कालिदास ने उससे भावादि लिए हैं तो बाद के कवि भी उसका आदरपूर्वक उल्लेख करते। परन्तु किसी भी कवि ने अश्वघोष का न नामोल्लेख किया है और न उसकी शैली का अनुसरण ही किया है। यह नहीं माना जा सकता है कि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया और उससे अधिक योग्य हो गए, क्योंकि यदि कालिदास को परकालीन माना जाय तो उसके लिए **वत्सभट्टि** आदर्श कवि हो सकता था। तथ्य यह है कि अश्वघोष मुख्य रूप से एक दार्शनिक था और गौण रूप से कवि। अतः उसने अपने काव्य के लिए एक प्रसिद्ध कवि को आदर्श रक्खा होगा। उसके काव्यों को देखने से ज्ञात होता है कि उसका आदर्श कवि कालिदास ही है। अश्वघोष का समय प्रथम शताब्दी ई० है, अतः कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० मानना उचित है।

कालिदास का यह समय मानने के समर्थन में कतिपय साक्ष्य उसके ग्रन्थों से उपलब्ध होते हैं। उसने दाश्वान्, विश्रामहेतोः, पेलव, त्रियम्बक, आस आदि शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ धातुओं के लिट् लकार के पूर्णरूप को दो भागों में विभक्त किया है। जैसे—'तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्।' पाणिन के व्याकरण के अनुसार यह प्रयोग शुद्ध नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास उस समय जीवित थे, जब पाणिनि और पतंजलि के नियम पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं हुए थे। अतः कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० ही ज्ञात होता है।

शाकुन्तल नाटक में धीवर को चोरी के अपराध में कठोर दण्ड तथा उत्तराधिकार के नियम का जो रूप प्राप्त होता है, उससे ज्ञात होता है कि

यह ईसा से पूर्व की कृति है, जब मनु, वसिष्ठ और आपस्तम्ब ही धर्म के विषय में प्रमाण माने जाते थे। शाकुन्तल का वर्णन इन स्मृतियों के कथनों से मिलता हुआ है। वृहस्पति और याज्ञवल्क्य आदि के अनुसार चोरी आदि का इतना कठोर दण्ड नहीं है अतः इन स्मृतियों से पूर्ववर्ती कालिदास को मानना चाहिए।

कालिदास ने **मालविकाग्निमित्र** के भरतवाक्य में अग्निमित्र शब्द का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास का सम्बन्ध शुंगवंशी राजा अग्निमित्र से था। कालिदास ने अपने अन्य दो नाटकों में जो भरतवाक्य दिए हैं, वे सामान्य रूप से सबकी समृद्धि की कामना करते हैं, परन्तु इसमें अग्निमित्र के नाम से उसके साथ कुछ सम्बन्ध ज्ञात होता है। इस नाटक में राजनीतिक महत्त्व की जो घटनाएँ दी गई हैं, उनसे ज्ञात होता है कि अग्निमित्र के जीवनकाल में घटित घटनाओं को कालिदास भली प्रकार से जानता था। ये घटनाएँ कालिदास के इस नाटक को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं प्राप्त होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास अग्निमित्र का समकालीन था या वह प्रथम शताब्दी में हुआ था, जब जनता उन घटनाओं को ठीक ढंग से जानती थी। अग्निमित्र विदिशा का राजा था। कालिदास ने अपने मेघदूत में विदिशा को एक समृद्ध प्रदेश माना है। इससे भी उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है। इन प्रमाणों के आधार पर यह मानना उचित है कि कालिदास प्रथम शताब्दी ई० पू० में हुआ था और वह विक्रमीय संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य का समकालीन था।

कालिदास ने दो महाकाव्य **रघुवंश** और **कुमारसंभव**, एक गीतिकाव्य **मेघदूत** और तीन नाटक **मालविकाग्निमित्र**, **विक्रमोर्वशीय** और **शाकुन्तल** लिखे हैं।

कालिदास के महाकाव्य

कुमारसंभव आठ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें शिव और पार्वती के विवाह तथा कार्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन है। तारक नामक राक्षस के द्वारा

पीड़ित देवता ब्रह्मा के पास रक्षार्थ गए। ब्रह्मा ने आदेश दिया कि वे शिव और पार्वती का विवाह करायें। उनका जो पुत्र होगा वह तारक राक्षस का नाश करेगा। कामदेव को यह कार्य दिया गया कि वह समाधिस्थ शिव के हृदय में पार्वती के प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न करे। कामदेव ने अपना कार्य किया। समाधि-भंग से क्रुद्ध शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया। तदनन्तर शिव अन्तर्धान हो जाते हैं। पार्वती शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या करती हैं। शिव ब्रह्मचारी के वेष में वहाँ जाते हैं और उसकी तपस्या की परीक्षा करते हैं। तत्पश्चात् उससे विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं। सप्तर्षियों ने शिव और पार्वती का विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया। विवाह-समारोह के पश्चात् अन्तिम सर्ग में कालिदास ने दोनों के दाम्पत्य-जीवन का वर्णन किया है। यह महाकाव्य इस सर्ग के पश्चात् समाप्त होता है। विद्वानों का विचार है कि कालिदास के समकालीन लोगों ने देवताओं के युगल के दाम्पत्य-जीवन के वर्णन की कटु आलोचना की, अतः कालिदास ने अष्टम सर्ग से आगे रचना नहीं की। इन सर्गों से ही कुमारसंभव नाम की सार्थकता सिद्ध हो जाती है, क्योंकि इनमें शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन आ गया है, जिससे कुमार की उत्पत्ति हुई। कालिदास के पश्चात् किसी एक कवि ने ग्रन्थ के नाम को अपूर्ण देखकर कुमार की उत्पत्ति तथा तारक-विजय का वर्णन करके इसे पूर्ण करने का प्रयत्न किया है। उसने ९ सर्ग और बनाकर इसे १७ सर्ग का महाकाव्य बनाया है। इन नए ९ सर्गों में कुमार की उत्पत्ति और तारक की विजय का वर्णन है। कालिदास जिन वाक्यों का प्रयोग न करता, वे प्रयोग इस अंश में पाए जाते हैं। साहित्यशास्त्रियों ने इस अंश में से एक भी पंक्ति उद्धृत नहीं की है। कालिदास की कृतियों के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने इन सर्गों की टीका नहीं की है। इससे ज्ञात होता है कि ये अन्तिम ९ सर्ग कालिदास के विरचित नहीं हैं।

रघुवंश १९ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें रघुवंशी राजाओं का जीवन-चरित वर्णित है। इसमें काव्य रूप में राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम,

कुश, लव और उसके उत्तराधिकारियों का वर्णन है। इसमें राजा अग्निवर्ण के स्वर्गवास तक का वर्णन है।

कालिदास ने **कुमारसम्भव** के लिए जो भाव लिया है, उसके द्वारा उसे हिमालय का विशद और वास्तविक वर्णन करने का तथा वसन्त के वर्णन का अवसर मिला है। शिव और पार्वती के विवाह के वर्णन से ज्ञात होता है कि कालिदास भारतीय वैवाहिक परम्पराओं को कितनी सूक्ष्मता के साथ जानता था। ब्रह्मचारी-वेषधारी शिव का पार्वती के साथ वार्तालाप अपने ढंग का अनुपम है।

रघुवंश में भाव की एकता नहीं है। कालिदास ने इस न्यूनता को वर्णनों और संवादों के द्वारा पूर्ण किया है। इसमें मुख्य संवाद वाले दृश्य हैं—दिलीप और सिंह का संवाद, रघु और इन्द्र का संवाद। मुख्य वर्णनात्मक दृश्य ये हैं—इन्दुमती का स्वयंवर-विवाह, इन्दुमती के स्वर्गवास पर अज का विलाप, रामायण के अयोध्या काण्ड और उसके बाद के चार काण्डों का सुन्दर रूप में संक्षिप्त वर्णन और रघु की दिग्विजय-यात्रा। इसके १३ वें सर्ग का वर्णन अत्युत्तम है। इसमें कालिदास ने अपनी कवि-प्रतिभा का बहुत अच्छा परिचय दिया है। १४वाँ सर्ग सर्वोत्तम है। इसमें कालिदास ने अपनी व्यंजना-शक्ति का उत्कृष्ट परिचय दिया है। इसके ६, १५, १७ आदि सर्ग उच्चकोटि के नहीं हैं। नवम सर्ग में कालिदास ने यमक अलंकार के प्रयोग में निपुणता का परिचय दिया है। इस आधार पर कुछ लोगों का विचार है कि कालिदास ने रघुवंश के भी केवल प्रारम्भिक आठ सर्ग लिखे हैं। रघुवंश में इस प्रकार की असमता का कारण उसकी वर्ण्य-वस्तु है। यदि कालिदास को केवल आठ सर्गों का ही रचयिता मानेंगे तो सर्ग १०, १३, १४, १६ आदि का रचयिता न मानने पर उसका महत्त्व बहुत कुछ कम हो जाएगा, क्योंकि ये सर्ग इस काव्य में बहुत उच्चकोटि के हैं। इनका रचयिता कालिदास ही होना चाहिए।

यह निर्णय करना सरल नहीं है कि कौन-सा काव्य पहले का है और कौन-सा बाद का। यद्यपि रघुवंश को इनमें से बाद की रचना मानना उचित

प्रतीत होता है, तथापि शैली और भाषा के आधार पर यह निर्णय करना कठिन है कि यह रचना पहली है और यह बाद की है। रघुवंश के प्रारम्भिक श्लोकों से ज्ञात होता है कि वह काव्य के क्षेत्र में नवागन्तुक ही है। इसके आधार पर रघुवंश को कतिपय विद्वान् पहली रचना मानते हैं। रघुवंश की कथा १९वें सर्ग पर समाप्त हो गई है। इसका कारण कुछ विद्वानों ने बताया है कि कालिदास की मृत्यु के कारण यह ग्रन्थ इतने पर ही अधूरा रह गया है। परन्तु यह उचित प्रतीत होता है कि उस सर्ग के बाद जो रघुवंशी राजा आये हैं, उनकी कीर्ति क्षीण हो चुकी थी, अतः कालिदास ने आगे वर्णन नहीं किया। इस आधार पर रघुवंश को बाद की रचना नहीं माना जा सकता है। **कुमारसंभव** में जो शृङ्गार का वर्णन हुआ है, वह रघुवंश की अपेक्षा सुन्दर और उन्नत रूप में हुआ है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि रघुवंश का शृङ्गार-वर्णन हीन है। उपयुक्त आधार पर यह माना जा सकता है कि कुमारसंभव बाद की रचना है।

— ——

अध्याय १३

काव्य-साहित्य, कालिदास के बाद के कवि

कालिदास के बाद के लेखकों में, जिसके विषय में निश्चित सूचना प्राप्त होती है, **अश्वघोष** है। यह दो महाकाव्यों का रचयिता है—**सौन्दरनन्द** और **बुद्धचरित**। **सौन्दरनन्द** के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होता है कि वह सुवर्णाक्षी का पुत्र और साकेत-निवासी था। उसकी उपाधियाँ थीं—भिक्षु, आचार्य भदन्त, महाकवि और महावादी। उसके उपदेश को सुनने के लिए घोड़े भी अपना आहार छोड़ देते थे। ऐसी उसकी वाक्शक्ति थी। अतएव उसका नाम अश्वघोष पड़ा। वह जन्म से ब्राह्मण था। बाद में उसने बौद्धधर्म स्वीकार किया था। चीनी परम्परा के अनुसार वह प्रथम शताब्दी के राजा कनिष्क का समकालीन या गुरु था। अश्वघोष बौद्धधर्म की महायान शाखा के संस्थापकों में से एक था। उसका समय प्रथम शताब्दी ई० है।

सौन्दरनन्द महाकाव्य १८ सर्गों में है। इसमें वर्णन है कि किस प्रकार गौतमबुद्ध ने अपने सौतेले भाई नन्द को बौद्ध भिक्षुक बनाया। नन्द अपनी पत्नी सुन्दरी के प्रणय-पाश को तोड़ना नहीं चाहता था। बुद्ध के एक शिष्य आनन्द ने अपने उपदेशों के द्वारा नन्द को प्रेरित किया कि वह भिक्षुक बने और बुद्ध के निरीक्षण में कार्य करे। बुद्धचरित में गौतमबुद्ध का जीवन-चरित है। बुद्ध का जीवन-चरित सुप्रसिद्ध है, अतः यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है। इस महाकाव्य के चीनी और तिब्बती भाषा के अनुवादों से ज्ञात होता है कि इसमें २८ सर्ग थे। १९वीं शताब्दी में **अमृतानन्द** ने विद्यमान १३ सर्गों में अपनी ओर से ४ सर्ग और जोड़कर बुद्ध के काशी में प्रथमोपदेश तक की कथा पूर्ण की है। इस प्रकार मूल ग्रन्थ के केवल १३ सर्ग ही संस्कृत में उपलब्ध होते

हैं। इस महाकाव्य का चीनी अनुवाद ४१४ से ४२१ ई० के बीच में हुआ है और तिब्बती अनुवाद सातवीं शताब्दी ई० में हुआ है ।

अश्वघोष की शैली मधुर नहीं है। उसके काव्य में अनुप्रास अधिक है। उसने कतिपय अप्रचलित शब्द-रूप और धातु-रूपों का प्रयोग किया है। उनमें कुछ प्रयोग ऐसे भी हैं, जो संस्कृत में सर्वथा अप्रचलित हैं। जैसे, 'किमुत' के स्थान पर 'कि बत' का प्रयोग किया है और 'चेत्' के स्थान पर 'स चेत्' का प्रयोग किया है। अश्वघोष ही सर्वप्रथम बौद्ध कवि और दार्शनिक है, जिसने प्राकृत को छोड़कर संस्कृत का प्रयोग किया है।

अश्वघोष के पश्चात् लगभग तीन शताब्दी तक कोई भी प्रसिद्ध कवि नहीं हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय साहित्यिक रचनाएँ प्रायः नहीं हुईं। **प्रो० मैक्समूलर** ने संस्कृत का पुनरुद्धारवाद प्रचलित किया है। उसमें उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इस बीच संस्कृत-साहित्य की रचना क्यों नहीं हुई है। उनका मत है कि प्रथम शताब्दी ई० में विदेशियों ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उन्होंने भारतीयों की साहित्यक परम्परा नष्ट कर दी। उनका प्रभाव ५४४ ई० तक रहा। इस सन् में उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने उनको परास्त किया और देश से निकाला। इस राजा ने संस्कृत का पुनरुद्धार किया और उसके आश्रय में कई प्रसिद्ध कवि हुए। मैक्स-मूलर के मत को स्वीकार करने वाले कतिपय विद्वानों ने उस समय के भारतीय साहित्य के विषय में कुछ बातें कही हैं। एक का कथन है कि "भारतीय श्रेण्य काव्य-साहित्य का प्रारम्भ ७वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध से प्रारम्भ होता है।"[१] किसी भी काव्य-ग्रन्थ का समय इस काल से पूर्व निश्चय रूप से नहीं रक्खा जा सकता है।

मैक्समूलर के इस पुनरुद्धारवाद का खण्डन **ब्यूलर** और **फ्लीट** के अनुसंधानों ने किया है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि शक आदि विदेशी

१. A. A. Macdonell—History of Sanskrit Literature पृष्ठ ३१८

जातियाँ भारत में आईं और वे भारतीय हो गईं। उन्होंने भारतीय शिक्षा, कला, स्थापत्य और मूर्तिकला आदि को प्रश्रय दिया। **ऋषभदत्त, कनिष्क** और **रुद्रदामन्** आदि संस्कृत के आश्रयदाता हुए हैं। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विदेशी आक्रमणकारियों ने देश के एक भाग पर ही अधिकार कर रक्खा था। वे देश के अन्य भाग में संस्कृत के प्रचार और प्रसार को नहीं रोक सकते थे। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि ५४४ ई० में **यशोवर्मन् विष्णुवर्धन** ने विदेशियों को पदच्युत किया था न कि **विक्रमादित्य ने**। विदेशियों को भारत से बाहर निकालने का कार्य गुप्त राजाओं ने ४०० ई० पूर्व से ही प्रारम्भ कर दिया था।

इस बात के प्रमाण विद्यमान हैं कि इस काल में भी साहित्यिक प्रगति सर्वथा बन्द नही हुई थी। **जूनागढ़** राज्य के गिरनार स्थान में **रुद्रदामन्** का १५० ई० के लगभग का एक शिलालेख प्राप्त होता है। यह शिलालेख **सुदर्शन** नामक झील के पुनरुद्धार के स्मृत्यर्थ लिखा गया था। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस शिलालेख का लेखक **रुद्रदामन्** शक राजा था। वह साहित्यशास्त्र के नियमों से सम्यक्तया परिचित था। सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में उत्पन्न **बाण** की गद्यशैली का प्रारम्भ इस शिलालेख में दृष्टिगोचर होता है।

नासिक का शिलालेख प्रतिष्ठान के श्री **पुलुमायी** के १९वें वर्ष में प्राकृत में लिखा गया है। इसका समय १४९ ई० होता है। यह शिलालेख संस्कृत का प्राकृत में अनुवाद प्रतीत होता है। उसमें लम्बे समास हैं। श्रेण्य संस्कृत-साहित्य में प्राप्त होने वाले अनुप्रास और उपमाओं की झड़ी इसमें प्राप्त होती है।

गुप्तकाल के दो मुख्य शिलालेख हैं। प्रथम शिलालेख **समुद्रगुप्त** की प्रशंसा में उसके आश्रित कवि हरिषेण ने लिखा है। यह **इलाहाबाद** के **अशोकस्तम्भ** पर लिखा हुआ है। यह ३४५ ई० का लिखा हुआ है।[1] यह वैदर्भी रीति में

१. A. A. Macdonell—History of Sanskrit Literature पृष्ठ ३१८।

लिखा हुआ है।[1] इसके प्रारम्भ में ८ श्लोक हैं। उसके बाद लम्बा गद्य-भाग है और अन्त में एक श्लोक है। इसमें श्लेष और रूपक अलंकार का बहुत प्रयोग हुआ है। दूसरे का लेखक **चन्द्रगुप्त द्वितीय** का मन्त्री **वीरसेन** है। यह **चन्द्रगुप्त** की प्रशंसा में लिखा गया है। इसमें **चन्द्रगुप्त** और **वीरसेन** दोनों ही विद्वान् बताए गए हैं।

इनके अतिरिक्त इस काल में बहुत से शिलालेख लिखे गए हैं। इनमें से कुछ प्राकृत में हैं और शेष संस्कृत में हैं। इनसे सिद्ध होता है कि इस काल में साहित्यिक रचनाएँ बन्द नहीं हुई थीं। इनसे यह भी सिद्ध होता है कि संस्कृत साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित थी। बाद के संस्कृत साहित्य में जो शब्दालंकार और अर्थालंकार प्राप्त होते हैं, वे इन शिलालेखों में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इस काल में साहित्यिक कार्य चल रहा था। इस समय सुयोग्य कवि हुए होंगे, परन्तु उनकी रचनाएँ नष्ट हो गई हैं, ऐसा ज्ञात होता है। यह भी संभव है कि इस समय बार-बार राजनीतिक आक्रमण के कारण कवियों के आश्रयदाता राजाओं के लिए यह संभव नहीं रहा होगा कि वे कवियों को आश्रय दें। राजाओं के संरक्षण के अभाव में योग्य कवि उत्तम ग्रन्थों की रचना नहीं कर सके होंगे। जब तक भारत का नवीन राजनीतिक इतिहास नहीं लिखा जाता, तब तक इस समय की वास्तविक स्थिति के विषय से कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

वात्स्यायन का **कामसूत्र** इसी समय में लिखा गया है। यह ग्रन्थ शिष्ट जन-समुदाय का चित्रण करता हैं। इसमें निर्देश दिए गए हैं कि मनुष्य को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार समय-यापन करना चाहिए और वह किस प्रकार अच्छे व्यक्तियों की संगति प्राप्त करे। मनुष्य किस प्रकार का

---

१. वैदर्भी और गौड़ी दो मुख्य रीतियाँ हैं। इसके लिए देखें इसी पुस्तक का अध्याय २५।

जीवन व्यतीत करने के लिए किन साधनों को अपनावे, इन बातों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। बाद के लेखकों पर इसका स्थायी प्रभाव पड़ा है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में ऐसी घटनाएँ और वर्णन दिए हैं, जिससे **कामसूत्र** में लिखित वर्णनों के साथ समता प्राप्त हो। वस्तुतः ऐसे वर्णनों की प्रसंगानुसार आवश्यकता नहीं थी। **कामसूत्र** में **सातवाहन** या **आन्ध्रभृत्य वंश** के एक राजा का उल्लेख आया है। यह राजा अवश्य ही ईस्वी सन् के प्रारम्भ के समय रहा होगा। **आन्ध्र वंश** का राज्य लगभग २१८ ई० के समाप्त हुआ है। **वात्स्यायन** का समय इसी काल के लगभग निश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि यह साहित्यिक काल वस्तुतः अन्धकारमय नहीं रहा है। गुप्त राजाओं को संस्कृत का पुनरुद्धारक माना जाता है, परन्तु यह ज्ञात नहीं होता है कि उनके आश्रित कवियों के नाम क्यों नहीं उल्लिखित मिलते हैं।

इस अन्धकारमय काल की समाप्ति पर प्रथम कवि **मेण्ठ** ~~या भर्तृमेण्ठ~~ आता है। इसका दूसरा नाम **हस्तिपक** है। यह कश्मीर के राजा **मातृगुप्त** (४३० ई० के लगभग) का आश्रित कवि था। इसका काव्य-ग्रन्थ **हयग्रीववध** नष्ट हो गया है। इस ग्रन्थ का ज्ञान साहित्यिक ग्रन्थों में इसके उद्धरणों से ही होता है।

वत्सभट्टि ने ४७२ ई० में एक प्रशस्ति लिखी है। यह **मन्दसोर** के पास एक स्तम्भ पर लिखी हुई है। लेखक ने यह प्रशस्ति उस स्थान के रेशमी वस्त्रों को बनाने वाले जुलाहों की ओर से लिखी है। प्रशस्ति गौड़ी रीति में लिखी गई है और इस पर **मेघदूत** तथा **ऋतुसंहार** का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमें वसन्त और वर्षा ऋतु का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रवरसेन ने **सेतुबन्ध** नामक काव्य प्राकृत में लिखा है। इस काव्य को **रावणवध** और **दशमुखवध** भी कहते हैं। इसमें १५ आश्वास (अध्याय) हैं। इसमें लेखक ने राम के लंका-गमन से लेकर अयोध्या में राज्याभिषेक तक की रामायण की कथा का वर्णन किया है। आश्वास ७, ८ पुल के निर्माण का

वर्णन करते हैं, ९वें आश्वास में **सुवेल** का वर्णन है तथा ११वाँ आश्वास रावण के प्रेम का। इस ग्रन्थ में लेखक ने **यमक** अलंकार के प्रयोग में अपनी कुशलता दिखाई है। कुछ अन्य आलोचकों का मत है कि **प्रवरसेन** कश्मीर का राजा था और **कालिदास** उसका आश्रित कवि था, उसने ही यह **सेतुबन्ध** लिखा है। यह कथन असंगत है, क्योंकि **बाण, कालिदास** और **प्रवरसेन** दोनों को जानता था। उसने कालिदास को **सेतुबन्ध** का कर्ता नहीं माना है। **प्रवरसेन** का समय चतुर्थ शताब्दी ई० मानना चाहिये। **बाण** और **दण्डी** ने इस सेतुबन्ध काव्य की प्रशंसा की है।

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥

—हर्षचरित प्रस्तावना १४

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्॥

—काव्यादर्श १।३४

बुद्धघोष ने दस सर्गों का एक काव्य **पद्यचूडामणि** लिखा है। वह जन्म से ब्राह्मण था, परन्तु बाद में बौद्ध हो गया था। इसमें **गौतमबुद्ध** के जीवन का वर्णन है। इसमें बुद्ध के जीवन का जो वर्णन दिया गया है, वह **अश्वघोष** के वर्णन से कुछ अंशों में भिन्न है। इस पर **कालिदास** और **अश्वघोष** का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसकी शैली सरल और उत्कृष्ट है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार वह ३८७ ई० में बुद्ध के **त्रिपिटक** की पाली भाषा में की गई **आलोचनाओं** को लाने के लिये **लंका** भेजा गया था। उसने बहुत से बौद्ध ग्रन्थों की प्रतिलिपि की है तथा बहुतों का अनुवाद किया है और उन पर टीका भी लिखी है। उसके एक ग्रन्थ का ४८८ ई० में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है। अतः उसका समय ४०० ई० के लगभग मानना चाहिये।

भीम, जिसको भीमक भी कहते हैं, ने २७ सर्गों का महाकाव्य **रावणार्जुनीय** या **अर्जुनरावणीय** लिखा है। इसमें रावण और कार्तवीर्य अर्जुन के

युद्ध का वर्णन है। साथ ही यह ग्रन्थ व्याकरण के नियमों का उदाहरण रू में स्पष्टीकरण भी करता है। व्याकरण के एक ग्रन्थ **काशिकावृत्ति** (६०० ई० के लगभग) में भीम का उद्धरण भी दिया गया है। अतः इसका समय ५०० ई० के लगभग मानना चाहिए। भट्टि का रावणबध और हालायुध क कविरहस्य वर्णन की दृष्टि से इसके समान है।

कुमारदास ने **जानकीहरण** काव्य लिखा है। इसमें रामायण की कथा क वर्णन है। यह लेखक लंका का राजा कुमारदास है। इसका समय ५१७ से ५२६ ई० है। यह ग्रन्थ मूलरूप में नष्ट हो गया है। इसका अक्षरशः अनुवाद लंका की भाषा में प्राप्य है। इसमें २५ सर्ग बताए जाते हैं। इसके प्रारम्भिक १४ सर्ग तथा १५वें का कुछ अंश संस्कृत में उपलब्ध हुआ है। इसके मूलग्रन्थ के परिमाण के विषय में मतभेद है। इस महाकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति २० सर्गों की है।[1] यह प्रति पूर्ण है और जो मुद्रित प्रति उपलब्ध होती है उससे ठीक मिलती है। कुछ स्थलों पर पाठभेद अवश्य है। इस हस्तलिखित प्रति से ज्ञात होता है कि इसके लेखक कुमारदास ने अपने दो ममेरे चाचाओं की सहायता से यह ग्रन्थ तैयार किया था। इसके १७वें सर्ग में यमक अलंकार बहुत अधिकता के साथ प्राप्त होता है। लेखक ने १८वें सर्ग में शब्दालंकारों के प्रयोग में अपनी चतुरता दिखाई है। इसके २०वें सर्ग में राम का पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटने का वर्णन है। इसका लेखक कौन-सा कुमारदास है, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। यदि इसका लेखक लंका का राजा कुमारदास ही है तो इस ग्रन्थ का रचनाकाल ५२० ई० के लगभग मानना चाहिए। कुमारदास कालिदास का विशेष प्रशंसक ज्ञात होता है। इसने कालिदास का बहुत सफलता के साथ अनुकरण किया है। अतएव साहित्य-शास्त्री राजशेखर (९०० ई०) ने इसकी प्रशंसा में निम्नलिखित श्लोक कहा है—

---

१. मद्रास गवर्नमेंट लाइब्रेरी। हस्तलिखित प्रति नं० २९३५।

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः ।।

भारवि ने **किरातार्जुनीय** नामक महाकाव्य लिखा है। इसमें १८ सर्ग हैं। यह **महाभारत** की कथा पर आधारित है। वनवास-काल में अर्जुन व्यास की सम्मति से हिमालय पर गया और शिव से दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति के लिए उसने तपस्या की। अर्जुन की भक्ति की परीक्षा के लिए शिव किरात के वेष में एक सुअर का पीछा करते हुए प्रकट हुए। शिव और अर्जुन दोनों ने ही उस सुअर पर बाण चलाए। सुअर मर गया। अर्जुन ने उस पर अपना अधिकार बताया। इस पर शिव और अर्जुन में विवाद हुआ और अन्त में वह युद्ध रूप में परिणत हुआ। दोनों ने दोनों पर प्रहार किए। अन्त में शिव की विजय हुई। उन्होंने अर्जुन की वीरता पर प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया और वरदान के रूप में पाशुपत अस्त्र दिया। तत्पश्चात् अर्जुन अपने भाइयों से मिलने के लिए लौटा। यह भाव महाभारत से लिया गया है। इसमें कुछ परिवर्तन भी किया गया है। इसके प्रथम सर्ग में दिया गया है कि पाण्डवों का एक दूत दुर्योधन के राज्य-प्रबन्ध का विवरण जानने के लिए गया हुआ था। वह लौटकर आता है और पाण्डवों को दुर्योधन के उत्तम और न्याययुक्त राज्य-प्रबन्ध की सूचना देता है। अतएव अर्जुन को दिव्य अस्त्र-प्राप्ति के लिए जाना पड़ा। अन्त में अर्जुन का स्कन्द और शिव के साथ युद्ध तथा वरदान के रूप में पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन है।

भारवि के काव्य में ओज और शक्ति है। उसके वर्णन बहुत ही विशद हैं। उसकी शैली बहुत शक्तिशाली और अर्थगाम्भीर्य से युक्त है।[1] उसमें माधुर्य की न्यूनता है। उसने व्याकरण सम्बन्धी नियमों के पालन में विशेष कुशलता प्रकट की है। उसने १५वें सर्ग में शब्दालंकारों और चित्रालंकारों के प्रयोग में अपनी विशेष योग्यता प्रदर्शित की है। कुछ ऐसे श्लोक दिये हैं, जो सीधे और

१. (क) भारवेरर्थगौरवम्। (ख) नारिकेलफलसंमितं वचो भारवेः। मल्लिनाथ।

उल्टे दोनों रूप में पढ़ने पर एक ही होते हैं और अर्थ भी दोनों रूप में एक ही होता है। कुछ श्लोकों में केवल दो ही व्यंजनों का प्रयोग किया गया है। एक श्लोक ऐसा भी है, जिसमें केवल एक ही व्यंजन है। ऐसा कहा जाता है कि 'बाद के कवियो में भारवि ही कई प्रकार से रीतिवाद का जन्मदाता है।' यदि भारवि को कुमारदास से पूर्ववर्ती कवि मानें, तभी उपर्युक्त उक्ति कुछ अंश तक ठीक मानी जा सकती है। भारवि राजनीति सम्बन्धी विवेचन में मनु का अनुयायी है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग है। ६३४ ई० के ऐहोल के शिलालेख में भारवि का नामोल्लेख है। अतः उसका समय ६०० ई० से पूर्व मानना चाहिए।[1]

भट्टि कवि ने २२ सर्गों में **रावणवध** नामक महाकाव्य बनाया है। इसमें राम की कथा का वर्णन है। उसका कथन है कि श्रीधरसेन के राज्यकाल में वलभी में उसने यह ग्रंथ बनाया है।[2] वलभी में श्रीधरसेन नाम के चार राजा हुए हैं। इनमें से अन्तिम ने ६४४ ई० के लगभग राज्य किया है। अन्तिम राजा विद्वानों का आश्रयदाता था। अतः ज्ञात होता है कि कवि भट्टि ने ६४४ ई० के लगभग अपना महाकाव्य बनाया होगा। इस विषय में यह उल्लेख करना उचित है कि वलभी वंश के धरसेन चतुर्थ के एक शिलालेख पर ३२६ संवत् लिखा हुआ है।[3] ३१८ ई० में वलभी संवत् स्थापित हुआ था। यह संवत् उसी का उल्लेख प्रतीत होता है। 'भट्टि' शब्द संस्कृत के 'भर्तृ' शब्द का प्राकृत रूप है। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने यह विचार व्यक्त किया है कि वैयाकरण **भर्तृहरि** और कवि **भट्टि** एक ही व्यक्ति हैं। टीकाकारों ने दोनों व्यक्तियों की एकता को स्वीकार किया है। इस एकता का आधार यह है कि दोनों ही व्याकरण के विद्वान् थे। भर्तृहरि ने व्याकरण दर्शन पर **वाक्यपदीय** नामक ग्रन्थ लिखा है और भट्टि ने व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करने

---

१. देखो अध्याय १७ में दण्डी के वर्णन में।

२. रावणवध २२--३५।

३. The collected works of Bhandarkar भाग ३ पृष्ठ २२८।

के लिये **रावणवध** काव्य लिखा है। दोनों लेखकों का काल भिन्न है, अतः यह एकता स्वीकार नहीं की जा सकती है। भट्टि का काल लगभग ६५० ई० है तथा भर्तृहरि का लगभग ४०० ई० है।

यह **रावणवध** भक्तिकाव्य होने के अतिरिक्त व्याकरण के नियमों और अलंकारों का उदाहरण भी है। इसका १३वाँ सर्ग इस रूप में लिखा गया है कि वह संस्कृत और प्राकृत दोनों रूपों में पढ़ा जा सकता है। भट्टि की शैली सरल है। इसमें लम्बे समास नहीं हैं। यह वैदर्भी रीति में लिखा गया है। इसका लेखक के नाम से ही प्रचलित नाम 'भट्टिकाव्य' है। इसमें लेखक ने २२ सर्गों में राम की कथा का वर्णन किया है।

माघ राजा **श्रीवर्मल** के आश्रित उच्च राजकर्मचारी सुप्रभदेव का पौत्र और दत्तक का पुत्र था। ६२५ ई० का राजा वर्मलात का एक शिलालेख प्राप्त होता है। संभवतः वर्मलात और श्रीवर्मल एक ही व्यक्ति हैं। आनन्द-वर्धन (८५० ई०) नृपतुग (८५० ई०) और राजशेखर (९०० ई०) ने माघ का उल्लेख किया है। माघ के ग्रन्थ शिशुपालवध[1] में काशिकावृत्ति पर जिनेन्द्रबुद्धिकृत (७०० ई०) न्यास नामक टीका का उल्लेख मिलता है। माघ के टीकाकार मल्लिनाथ इस बात का समर्थन करते हैं। अतः उसका समय ७०० ई० के लगभग मानना चाहिए। कतिपय विद्वानों की कल्पना है कि वह या तो वैश्य था या बौद्ध।

माघ ने २० सर्गों में **शिशुपालवध** नामक महाकाव्य लिखा है। इसमें युधिष्ठिर द्वारा किए गए राजसूय यज्ञ का वर्णन है और श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन है। यह भारवि के किरातार्जुनीय के अनुकरण पर बनाया गया है। दोनों का प्रारम्भ **श्रियः** शब्द (अर्थात् श्री) से होता है और दोनों में मंगलाचरण का श्लोक नहीं है। राजनीतिक विवाद, पर्वतीय दृश्य, मदिरासेवियों का दल, रण-दृश्य आदि का वर्णन दोनों महाकाव्यों में एक ही क्रम से हुआ है। भारवि के तुल्य ही माघ ने भी

१. शिशपालवध २—११२।

युद्ध के वर्णन में शब्दालंकारों के प्रयोग में निपुणता दिखाई है। यह कहा जा सकता है कि १९वें सर्ग में शब्दालंकारों के प्रयोग में माघ भारवि से आगे निकल गया है।[1] एक श्लोक ऐसा है, जिसमें केवल एक ही व्यंजन का प्रयोग किया गया है।[2] उसका व्याकरण के नियमों और अलंकारों पर असाधारण अधिकार है। उसका बहुत व्यापक शब्दावली पर अधिकार है। यह कहा जाता है कि माघ के ९ सर्ग बीतने पर कोई नया शब्द शेष नहीं रह जाता है।[3] इसके प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में श्री शब्द का प्रयोग मिलता है। माघ के विषय में अतिप्रसिद्ध उक्ति है कि माघ के काव्य में उपमा, अर्थगौरव और लालित्य ये तीनों गुण उपलब्ध होते हैं।[4]

वाक्पति ने प्राकृत में **गौडवहो** नामक काव्य लिखा है। इसमें १२०९ श्लोक हैं। इसमें कन्नौज के राजा यशोवर्मा के द्वारा गौड राजकुमार के वध का वर्णन है। यशोवर्मा वाक्पति का आश्रयदाता है। यह काव्य अपूर्ण है। इसमें कश्मीर के राजा ललितादित्य से ७३३ ई० के लगभग यशोवर्मा के पराजित होने तक का वर्णन है। ऐसा जान पड़ता है कि वाक्पति ने यह ग्रन्थ ७३३ ई० के बाद लिखा। अतः इस काव्य का समय ७४० ई० के लगभग होता है। वाक्पति यह स्वीकार करता है कि वह प्रसिद्ध नाटककार **भवभूति** का ऋणी है। उसका यह भी कथन है कि भवभूति यशोवर्मा का आश्रित कवि था। इस काव्य में लम्बे समास बहुत हैं। इससे श्रेण्य संस्कृत के काल में प्राकृत का क्या स्थान था, यह ज्ञात होता है। लेखक ने अपने काव्य में अपने पूर्व रचित एक काव्य **मधुमथनविजय** का उल्लेख किया है, परन्तु वह अब नष्ट हो गया है।

---

१. तावद् भा भारवेर्भाति यावन् माघस्य नोदयः।
उदिते तु पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव ॥

२. शिशुपालवध १९—११४।

३. नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।

४. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

एक जैन लेखक **हरिचन्द** ने **धर्मशर्माभ्युदय** नामक महाकाव्य लिखा है। इसमें २१ सर्ग हैं। इसमें एक जैन मुनि **धर्मनाथ** का जीवन-चरति वर्णन किया गया है। उस पर माघ और वाक्पति का प्रभाव पड़ा है। अतः उसका समय ८०० ई० के बाद होना चाहिए। उसका परिचय अप्राप्त है।

नीतिवर्मा ने **कीचकवध** नामक एक काव्य लिखा है। इसमें पाँच सर्ग हैं। इसमें भीम के द्वारा कीचक के वध का वर्णन है। इसमें अनुप्रास और श्लेष का बहुत अधिकता के साथ प्रयोग किया गया है। इस लेखक के काल और परिचय के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। भोज (१००५ से १०५४ ई०) ने इसके काव्य का उल्लेख किया है। इस आधार पर विद्वानों ने इसका समय नवीं शताब्दी माना है।

रत्नाकर ने ५० सर्ग में **हरविजय** नामक महाकाव्य लिखा है। वह कश्मीर के जयादित्य और अवन्तिवर्मा का आश्रित कवि था। उसकी उपाधियाँ **राजानक, वागीश्वर** और **विद्याधिपति** थीं। अतः उनका समय ८५० ई० है। इसके काव्य में चार सहस्र श्लोक हैं। इसमें शिव के द्वारा अन्धक नामक राक्षस के वध का वर्णन है। अन्धक राक्षस जन्म से अन्धा था। उसने तपस्या की और असाधारण शक्ति प्राप्त करके संसार का अधिपति बन गया। इससे भयभीत होकर देवताओं ने शिव की सहायता माँगी। शिव ने स्वयं जाकर उस राक्षस का वध किया। इस ग्रन्थ के देखने से ज्ञात होता है कि यह साहित्य-शास्त्रियों के द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षणों को पूर्णतया वर्णन करने के लिए ही लिखा गया है। यह असाधारण रूप से लम्बा है। लेखक ने यह स्वीकार किया है कि बाण की गद्य-शैली का अनुकरण करने का उसने प्रयत्न किया है। काव्य की दृष्टि से यह उच्चकोटि का ग्रन्थ नहीं है, तथापि नृत्य के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन होने के कारण बहुमूल्य ग्रन्थ है। रत्नाकर के वसन्ततिलका-छन्द के प्रयोग-कौशल को क्षेमेन्द्र ने प्रमाणित किया।

भट्ट शिवस्वामी या **शिवस्वामी** ने २० सर्गों में **कप्पणाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। वह कश्मीर के अवन्तिवर्मा (८५० ई०) का आश्रित कवि

था, अतः रत्नाकर का समाकालीन था। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार एक दक्षिण के राजा कप्पण ने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् पर आक्रमण का प्रयत्न किया और किस प्रकार प्रसेनजित् से युद्ध किये बिना ही अन्त में वह बौद्ध हो जाता है। कप्पण की सेना के उत्तर की ओर प्रस्थान के वर्णन से लेखक को अवसर प्राप्त हुआ है कि वह सूर्योदय, सूर्यास्त और सैनिकों के मदिरापान आदि का वर्णन कर सके। इसका भाव बौद्धों के अवदानशतकों से लिया गया है। इस काव्य पर माघ और भारवि का प्रभाव दिखाई देता है।

अभिनन्द या जिन्हें **गौडाभिनन्द** कहते हैं, प्रसिद्ध नैयायिक **जयन्त भट्ट** (८८० ई०) का पुत्र था। वह **कादम्बरीकथासार** नामक काव्य का लेखक है। इसमें ८ सर्ग हैं। यह बाणकृत कादम्बरी की संक्षिप्त कथा है।

कश्मीर के **शतानन्द** के पुत्र **अभिनन्द** ने **रामचरित** नामक काव्य लिखा है। वह प्रथम अभिनन्द से सर्वथा भिन्न है। इसमें राम की कथा का वर्णन है। भोज (१००० ई०) और महिमभट्ट (१०२५ ई०) ने इसका नामोल्लेख किया है। इसका समय नवम शताब्दी का पूर्वार्ध हैं। इसने ३६ सर्ग लिखे हैं। इस काव्य की भाषा सरल और उच्चकोटि की है। यह अपूर्ण ग्रन्थ था। इसको दो पृथक् लेखकों ने चार-चार सर्ग लिखकर पूरा किया है। इन चार सर्गों के दोनों पाठ प्राप्त होते हैं।

एक जैन कवि **धनंजय** ने **राघवपाण्डवीय** काव्य लिखा है। इसमें उसने श्लेष का आश्रय लेकर राम और पाण्डवों की कथा साथ ही उन्हीं श्लोकों में लिखी है अर्थात् प्रत्येक श्लोक के दो अर्थ हैं, एक राम के पक्ष में और दूसरा पाण्डवों के पक्ष में। द्विसन्धान (अर्थात् एक साथ दो अर्थ के बोधक) पद्धति पर बाद में कई काव्य लिखे गए हैं। इस प्रकार के काव्यों के लेखक हैं—कविराज (१२०० ई०), रामचन्द्र (१५४२ ई०), चिदम्बर (१६०० ई०), वेंकटाध्वरी (१६५० ई०), मेघविजयगणि (१६७० ई०), हरदत्त सूरि (१७०० ई० से पूर्व) आदि। धनंजय का समय दशम शताब्दी का पूर्वार्ध है।

एक जैन मुनि **कमकसेन वादिराज** (९५० ई०) ने चार सर्गों में **यशोधराचरित** नामक काव्य लिखा है। इसमें एक जैन राजा यशोधरा के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है।

हलायुध ने **कविरहस्य** नामक काव्य लिखा है। इसमें व्याकरण के धातु-सम्बन्धी नियमों के उदाहरण दिये गये हैं। धातुओं के वर्तमान काल के रूप दिये गये हैं। लेखक ने इन धातुरूपों के द्वारा अपने आश्रयदाता कृष्ण की प्रशंसा की है। यह राजा कृष्ण राष्ट्रकूट राजा तृतीय (९४०-९५६ ई०) है। अतः हलायुध का समय दशम शताब्दी उत्तरार्ध समझना चाहिये।

पद्मगुप्त, जिसका दूसरा नाम **परिमल** या **परिमलकालिदास** है, ने १८ सर्गों में **नवसाहसांकचरित** नामक महाकाव्य लिखा है। इसका रचनाकाल (१००५ ई०) है। यह राजा मुज (९७० ई०) और राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) का आश्रित कवि था। यह कालिदास का बहुत प्रशंसक था। इसने जो कुछ साहित्यिक रचना की है, वह कालिदास की रचना से बहुत मिलती हुई है। संभवतः इसीलिए इसका नाम परिमलकालिदास पड़ा है। इस काव्य में उसने अपने आश्रयदाता भोज का वर्णन किया है। भोज की उपाधि नवसाहसांक थी। इसमें उसने भोज की मृगया का वर्णन किया है और उसका नागवंश की राजकुमारी शशिप्रभा से विवाह का वर्णन भी किया है।

कश्मीर का **क्षेमेन्द्र,** जिसका दूसरा नाम **व्यासदास** है, **अभिनवगुप्त** (१००० ई०) का शिष्य था। इसको साहित्यिक रचना का काल ११वीं शताब्दी के मध्यकाल के लगभग मानना चाहिये। इसने साहित्य के कई विभागों पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। इसने महाभारत का संक्षेप **भारतमंजरी,** रामायण का संक्षेप **रामायणमंजरी** और गुणाढ्य की पुस्तक बृहत्कथा का संक्षेप **बृहत्कथा-मंजरी** नाम से लिखा है। ये तीनों रचनाएँ पद्य में हैं। विष्णु के दस अवतार पर उसका काव्य **दशावतारचरित** है। बाण की कादम्बरी का पद्यानुवाद उसने **पद्यकादम्बरी** नाम से किया है। उसकी अन्य रचनाएँ नष्ट हो गई है। उसके **औचित्यविचारचर्चा** तथा अन्य ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उसने शशिवंशमहा-

काव्य और **अमृततरंगकाव्य** भी लिखे थे। उसके अन्य लुप्त ग्रन्थों के साथ ये भी लुप्त हो चुके हैं। रामायण और महाभारत आदि के संक्षिप्त वर्णनों से उसकी साहित्यिक योग्यता का पता नहीं चलता है। उसके ये ग्रन्थ पुराणों और रामायणादि की शैली पर सरल प्रवाहयुक्त भाषा में लिखे गये हैं।

बिल्हण कश्मीर में उत्पन्न हुआ था। वह **ज्येष्ठकलश** का पुत्र था। वहाँ पर अध्ययन के बाद उसने १०५० के लगभग कश्मीर छोड़ दिया। बहुत समय तक इधर-उधर घूमने के बाद १०७० ई० के लगभग **अनहिलवाड़** के चालुक्य-राजा **त्रैलोक्यमल्ल** के राजद्वार में स्थिर हुआ। कुछ वर्ष बाद वहाँ से हट कर वह कल्याण के विक्रमादित्य चतुर्थ के आश्रित राजकवि हुआ। उसने १०८५ ई० के लगभग १८ सर्गों में **विक्रमांकदेवचरित** नामक महाकाव्य लिखा। इसमें उसने अपने आश्रयदाता का तथा उसके पूर्वजों का जीवन-चरित वर्णन किया है। इसमें उसने अपने आश्रयदाता की मृगया-यात्रा तथा उसका शीलहर की रानी की पुत्री चन्द्रलेखा के साथ विवाह का भी वर्णन किया है। अन्तिम सर्ग में उसने अपने भ्रमण का विवरण दिया है। बिल्हण विस्तृत वर्णन करने में अत्यन्त निपुण है। उसकी शैली बहुत उत्तम है और उसका काव्य वैदर्भी रीति का अच्छा उदाहरण है। इस ग्रन्थ में उसने अपने एक अन्य ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जो राम के जीवन के विषय में था, पर वह अप्राप्य है।

कृष्णलीलाशुक का दूसरा नाम **बिल्वमंगल** था। वह १२वीं शताब्दी में मालाबार में उत्पन्न हुआ था। उसने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं, जो कि काव्य, गीतिकाव्य, दर्शन और व्याकरण आदि विषयों पर हैं। उसने १२ सर्गों में **गोविन्दाभिषेक** नामक काव्य लिखा है। इसमें प्राकृत व्याकरण के नियमों का उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण है। इसका दूसरा नाम **श्रीचिह्नकाव्य** है। उसके काव्यों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध काव्य है। ग्रन्थ में साथ ही उसने अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण की प्रशंसा भी की है।

मंख या **मंखक** ने २५ सर्गों में **श्रीकण्ठचरित** नामक काव्य लिखा है। इसमें शिव के द्वारा त्रिपुर-नाश का वर्णन है। इसमें महाकाव्य की बहुत-सी विशेषताएँ हैं। अन्तिम सर्ग में उसने कश्मीर के राजा जयसिंह (११२९–११५० ई०) के मन्त्री तथा अपने भाई लंक या अलंकार के साथ राजद्वार में निवास का वर्णन किया है। उसने राजशेखर, मुरारि आदि का उल्लेख अपने पूर्ववर्ती कवि के रूप में किया है। कल्हण, बिल्हण और जल्हण उसके समकालीन थे। उसने अपने भाई अलंकार के आश्रित जिन कवियों का उल्लेख किया है, उनके विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है। मंख के चार भाई थे। सभी राज्य में उच्च पदों पर थे और सभी विद्वान् थे। कल्हण ने मंख को राज्य में मन्त्री के रूप में उल्लेख किया है। वह साहित्यशास्त्री रुय्यक का शिष्य था। उसका समय ११५० ई० के लगभग मानना चाहिए।

कल्हण ने कश्मीर का इतिहास पद्य में **राजतरंगिणी** नाम से लिखा है। इसमें आठ अध्याय हैं। उसने यह ग्रन्थ ११४९ ई० में लिखना प्रारम्भ किया था। अतः उसका समय ११५० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसका ग्रन्थ जयसिंह के राज्य के वर्णन के साथ समाप्त होता है। यह अलंकारों से अलंकृत एक उत्तम साहित्यिक ग्रन्थ है।

जल्हण ने **सोमपालविलास** नामक काव्य लिखा है। इसमें राजा सोमपाल का इतिहास वर्णित है। सोमपाल राजपुरी का राजा था। जल्हण उसका आश्रित कवि था। मंख ने उसका नामोल्लेख किया है। अतः उसका समय ११५० ई० के लगभग मानना चाहिए।

वाग्भट्ट ने एक जैन सन्त नेमिनाथ की प्रशंसा में **नेमिनिर्वाण** नामक काव्य लिखा है। वाग्भट्ट ११५० ई० के लगभग जीवित था। इसी समय के लगभग **सन्ध्याकरनन्दी** ने अपने आश्रयदाता बंगाल के राजा **रामपाल** (११०४-११३० ई०) की प्रशंसा में **रामपालचरित** नामक काव्य लिखा है। इसमें राजा रामपाल का इतिहास वर्णित है। साथ ही राम की कथा भी वर्णित है। इस दृष्टि से यह द्विसन्धानकाव्य है।

हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) ने कई विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं। वह जैन था। वह १२वीं शताब्दी में **अनहिलवाद** (गुजरात) के राजा **जयसिंह** और उसके उत्तराधिकारी **कुमारपाल** का आश्रित कवि था। हेमचन्द्र के प्रयत्न से ही कुमारपाल जैन हुआ और राज्य का धर्म जैन धर्म घोषित हुआ। हेमचन्द्र ने **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** और **द्व्याश्रयकाव्य** नामक दो काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से प्रथम पुस्तक दस पर्वों में है। इसमें जैन धर्म के ६३ व्यक्तियों का जीवन-चरित वर्णित है। दूसरे में कवि ने अपने आश्रयदाता कुमारपाल के इतिहास का वर्णन किया है। अतः इसको **कुमारपालचरित** भी कहते हैं। इसमें बीस सर्ग संस्कृत में और आठ सर्ग प्राकृत में हैं। अतः इसको द्व्याश्रयकाव्य कहते हैं। हेमचन्द्र ने संस्कृत और प्राकृत भाषा के लिए जो व्याकरण-नियम बनाए हैं, उनका इसमें उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन दोनों काव्यों से ज्ञात होता है कि लेखक काव्य के द्वारा जैन धर्म को जन-प्रिय बनाना चाहता था।

कविराज कादम्ब वंश के राजा **कामदेव** (११८२-१११७ ई०) का आश्रित कवि था। अतः उसका समय ११९० ई० के लगभग मानना चाहिए। वह अपने आपको वक्रोक्ति का आचार्य मानता है और अपना स्थान बाण और सुबन्धु के साथ रखवाना चाहता है। उसने **राघवपाण्डवीय** और **पारिजात-हरण** नामक दो काव्य लिखे हैं। इनमें से प्रथम द्विसन्धान काव्य है। इसमें राम और पाण्डवों की कथा १३ सर्गों में वर्णित की गई है। दूसरे में १० सर्ग हैं। इसमें कृष्ण के द्वारा स्वर्ग से पारिजात के लाने का वर्णन है। कविराज द्विसन्धान काव्य की रचना में प्रवीण हैं तथा उसमें उनकी प्रतिभा का विकास हुआ है। इसके लिए निम्नलिखित दो श्लोकों का प्रमाण पर्याप्त है—

तद्वाक्यान्ते दत्तकर्णानुमोदः
पुत्रप्रीत्या जातकृच्छ्रः कुमारम्।
धर्मात्मानं प्रेषयामास दूरम्
विश्वामित्रप्रीतये भूमिपालः ॥१७६॥

मात्रा समं सावरजः स राज्ञा
प्रस्थापितो धाम तपोधनानाम् ।
स्थानान्तरं विद्विषतां रणेषु
समर्थकोदण्डधरः प्रतस्थे ।।१७७।।

वह अपने को **वक्रोक्ति** का आचार्य कहता है तथा वक्रोक्ति के आचार्य बाण और सुबन्धु की कोटि में अपने को स्थान देता है ।

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयम् ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ।।

श्रीहर्ष के पिता का नाम हीर और माता का नाम मामल्लदेवी था । वह १२वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कन्नौज के राजा विजयचन्द्र और जयचन्द्र का आश्रित कवि था । उसने चिन्तामणि मन्त्र[1] का जप किया और कई विद्याओं में विशेष योग्यता प्राप्त की । उसने कई ग्रन्थ लिखे हैं । उसके काव्य ग्रन्थों में से केवल **नैषधीयचरित** ही उपलब्ध होता है । ऐसा माना जाता है कि उसने यह महाकाव्य साठ सर्गों में लिखा था । उसमें से केवल २२ सर्ग अब प्राप्य हैं । उसने नल और दमयन्ती की कथा इसमें वर्णित की है । इसके २२वें सर्ग में यह कथा अपूर्ण प्राप्त होती है । यह महाकाव्य है । इसमें रस, अलंकार आदि के वर्णन में लेखक की मौलिकता परिलक्षित होती है । उसने साहित्य-शास्त्रियों के महाकाव्य-विषयक नियमों की उपेक्षा की है । कल्पनाओं की ऊँची उड़ान में वह सभी सीमाओं को पार कर जाता है । उसने अलंकारों के प्रयोग के लिए दर्शन और व्याकरण से उदाहरण लेकर अपनी विशेष योग्यता का परिचय दिया है । उसके इस महाकाव्य को शास्त्रकाव्य कह सकते हैं । उसकी शैली बहुत कठिन है और कोषग्रन्थों की सहायता के बिना हम उसका अर्थ नहीं समझ सकते हैं । अतः उसके लिए कहा जाता है—नैषधं विद्वदौषधम् । श्रीहर्ष ने अपने कला-कौशल की अभिव्यक्ति यमकालंकार में भी की है,

---

१. नैषधीयचरित, सर्ग १—१४५ ।

किन्तु बहुत ही कम। १३वें सर्ग के ३४वें श्लोक की रचना इस ढंग की है कि उसका अर्थ अग्नि, यम, वरुण, नल और इन्द्र—हरेक के विषय में लगाया जा सकता है। काव्य में यत्र-तत्र रोचक वृत्तान्त भी हैं। विवाहोत्सवों में वधू-पक्ष ही विवाह का सूत्रपात करता है[1]। साधु जन अपने नाम का उच्चारण स्वयं नहीं करते[2]। विवाहोत्सव के अवसर पर भवन का प्रवेशद्वार कदली-स्तम्भों से सजाया जाता है[3]। इसके कई सर्गों के अन्तिम श्लोकों में उसने अपनी रचनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ ये हैं—**खण्डनखण्डखाद्य, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, अर्णववर्णन** और **साहसांकचरित**। इनमें से केवल खण्डन-खण्डखाद्य प्राप्य है। शेष अप्राप्य हैं।

चण्डकवि ने **पृथ्वीराजविजय** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने अजमेर और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की ११९१ ई० में सुल्तान शाहबुद्दीन गौरी के ऊपर विजय का वर्णन किया है। यह काव्य आठ सर्गों से युक्त मुद्रित हुआ है। यह अपूर्ण है। लेखक का समय १२०० ई० के लगभग मानना चाहिए। चन्द्रकवि ने ही यह काव्य बनाया है, इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

पुरी के **कृष्णानन्द** ने १५ सर्गों में **सहृदयानन्द** नामक काव्य लिखा है। उसने इसमें नल का जीवन-चरित वर्णन किया है। लेखक वैदर्भी रीति का विशेष विद्वान् है। अतः उसके काव्य में सरलता और मनोज्ञता है। संस्कृत के विशेष रोचक काव्य ग्रन्थों में यह भी एक है। लेखक का समय १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ के लगभग है। लगभग इसी समय कश्मीर के **जयरथ** ने **हरचरित-चिन्तामणि** नामक काव्य लिखा है। यह पद्यात्मक ३२ प्रकाशों (सर्ग) में लिखा गया है। इसमें शिव और कश्मीरी शैवों के पराक्रमों का वर्णन किया

---

१. नैषधीयचरित १—५०।
२. ,, ९—१३।
३. ,, १६—१८।

गया है। लगभग इसी समय एक जैन कवि **अभयदेव** हुआ है। उसने १२२१ ई० में १९ सर्गों में **जयन्तविजय** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने वित्रमसिंह के परिवार के एक राजा जयन्त के जीवन का वर्णन किया है।

अरिसिंह ने १२२२ ई० में ११ सर्गों में **सुकृतसंकीर्तन** नामक काव्य लिखा है। यह राजा वीरधवल (१२२० ई०) के मन्त्री वस्तुपाल का आश्रित कवि था। इसमें उसने वीरधवल की वंशावली और वस्तुपाल के परोपकारों का वर्णन किया है। वस्तुपाल के प्रशंसक एक कवि **बालचन्द्रसूरि** ने १२४० ई० में १४ सर्गों में **वसन्तविलास** नामक काव्य लिखा है। इसमें वस्तुपाल के कार्यों का वर्णन किया गया है। वस्तुपाल का मित्र **सोमेश्वरदेव** वीरधवल का आश्रित कवि था। वह १३वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ था। उसने १५ सर्गों में **सुरथोत्सव** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने चैत्र वंश के राजा सुरथ का सुयश-वर्णन किया है। वस्तुपाल के आश्रित कवियों में एक कवि **अमरचन्द्र** (१२५० ई०) भी था। इसने ४४ सर्गों में **बालभारत** नामक काव्य लिखा है। इसमें महाभारत की कथा वर्णित है। शैली की दृष्टि से इसमें कालिदास के रघुवंश की-सी मनोज्ञता है।

देवप्रभसूरि ने १८ सर्गों में **पाण्डवचरित** नामक काव्य लिखा है। इसका समय १२५० ई० के लगभग है। इसमें पाण्डवों के जीवन का वर्णन है और उच्च गुणों के आचरण पर बल दिया गया है। **चन्द्रप्रभसूरि** ने १८७८ ई० में जैन सन्त **प्रभावक** के जीवन के विषय में **प्रभावकचरित** काव्य लिखा है। **वीरनन्दी** ने १३वीं शताब्दी में **चन्द्रप्रभचरित** नामक काव्य लिखा है। यह १८ सर्गों में है। इसमें राजा **कनकप्रभ** और जैन मुनि **चन्द्रप्रभ** का जीवन-चरित वर्णित है। **सर्वानन्द** ने १३०० ई० के लगभग ७ सर्गों में **जगडूचरित** नामक काव्य लिखा है। यह १२५६ ई० में गुजरात में पड़े अकाल के समय जगडू नामक जैन मुनि के द्वारा की गई अकाल पीड़ितों की सहायता का वर्णन करता है। **नयचन्द्र** ने १३१० ई० के लगभग १७ सर्गों में **हम्मीरमहाकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमें चौहान वंशी राजा हम्मीर का वर्णन किया गया

है कि किस प्रकार उसने अलाउद्दीन से एक मुसलमान को आश्रय देकर बचाया और परिणामस्वरूप अलाउद्दीन ने उसकी राजधानी को घेर लिया और उसे मार डाला।

वासुदेव के पिता का नाम महर्षि और माता का नाम गोपालिका थी। वे मालाबार के वेदारण्य स्थान के निवासी थे। उसने २१ काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से कुछ यमक अलंकार से परिपूर्ण हैं। इनमें से **युधिष्ठिरविजय** और **नलोदय** दो अधिक प्रसिद्ध काव्य हैं। प्रथम में युधिष्ठिर के पराक्रमों का वर्णन आठ आश्वासों में है। दूसरे में नल को राज्य-प्राप्ति के बाद नल के जीवन का चार आश्वासों में वर्णन किया गया है। प्रथम में उल्लेख है कि इस काव्य की रचना के समय राजा कुलशेखर राज्य करते थे और दूसरे में राजा राम का उल्लेख है। इन दोनों उल्लेखों के आधार पर कोई समय का निर्णय नहीं किया जा सकता है। मालाबार में कई राजा हुए हैं, जिसकी उपाधि कुलशेखर है। विद्वानों ने इस लेखक का समय आदि निश्चित नहीं किया है। मालाबार में कई कवियों का नाम वासुदेव है। कुछ आलोचकों का मत है कि युधिष्ठिर-विजय काव्य का रचयिता और नलोदय काव्य के रचयिता दो भिन्न वासुदेव हैं। कुछ विद्वानों ने युधिष्ठिरविजय के कुशलशेखर के आधार पर लेखक का समय ८०० ई० के लगभग माना है। उनका मत है कि इस समय केरल में कुलशेखर नाम का एक राजा राज्य करता था। कुछ विद्वानों ने इसका समय १६वीं शताब्दी माना है। उनके मतानुसार यह वासुदेव ही नारायणीय का लेखक तथा नारायण भट्ट का पुत्र है। नलोदय का समय १५९९ ई० से पूर्व होना चाहिये, क्योंकि इसकी सबसे प्राचीन हस्तलिपि का समय यह है। **उद्दण्डकवि** (१४०० ई०) ने वासुदेव के पिता का नाम महर्षि लिखा है।[1] **वाचस्पति मिश्र** (८५० ई०) को **न्यायकणिका** की टीका कवि वासुदेव के भतीजे परमेश्वर ने की है। अतः लेखक का समय ९०० ई० से १४०० ई०

---

१. दशम ओरियन्टल कान्फ्रेन्स के विवरण में यमक कवि वासुदेव के विषय में बेंकटराम शर्मा का लेख।

के बीच में है। नलोदय का रचयिता कालिदास को कहना भूल है। एक टीकाकार ने इसका लेखक **रविदास** लिखा है।

अगस्त्य वारंगल के राजा प्रतापरुद्रदेव (१२९४-१३२५ ई०) का आश्रित कवि था। परम्परा के अनुसार वह ७४ काव्यों का रचयिता है। इनमें से कुछ प्राप्य हैं। इसके आश्रयदाता ने इसको विद्यानाथ की उपाधि दी थी। उसने पाण्डवों के जीवन के विषय में २० सर्गों में **बालभारत** काव्य लिखा है। इसमें वैदर्भी शैली को सुन्दर मनोरमता प्राप्त होती है।

वेदान्तदेशिक का वास्तविक नाम **वेंकटनाथ** था। इसका समय १२६८-१२६९ ई० है। वह महान् कवि और दार्शनिक था। उसने संस्कृत और तामिल भाषा में विभिन्न विषयों पर लगभग १२० ग्रन्थ लिखे हैं। वह कांची का निवासी था और रामानुज के विशिष्टाद्वैत का अनुयायी था। उसने जीवन भर अथक साहित्यिक कार्य किया है। उसने **यादवाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। इसमें २४ सर्ग हैं। इसमें कृष्ण की कथा का वर्णन है। उसने कृष्ण के जीवन को प्रत्येक घटना को लिया है और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि देते हुए उसको साहित्यिक सौन्दर्य प्रदान किया है। इसके १८वें सर्ग में कृष्ण के द्वारा नरकासुर का वध तथा नरकासुर की राजधानी से कृष्ण के द्वारका जाने का वर्णन है। साथ ही विमान से भूतल के दृश्यों के रूप का वर्णन है। इसके षष्ठ सर्ग में भारवि और माघ के तुल्य शब्दालंकारों का प्रदर्शन है। लेखक ने विभिन्न शैलियों का भी प्रदर्शन किया है। उसको उसकी विद्वत्ता के आधार पर वेदान्ताचार्य, कवितार्किकसिंह और सर्वतन्त्रस्वतन्त्र उपाधियाँ दी गई थीं। उसके इस काव्य की टीका **अप्पयदीक्षित** (१६०० ई०) ने की है।

गंगादेवी विजयनगर के बुक्क प्रथम (१३४३-१३७९ ई०) के द्वितीय पुत्र कम्पन की पत्नी थी। उसने **मथुराविजय** या **वीरकम्परायचरित** नामक काव्य लिखा है। यह अपूर्ण रूप में उपलब्ध है। उसने अपने पति के पराक्रम और उसके दक्षिण की ओर यात्रा का वर्णन किया है। कम्पन मथुरा गया और वहाँ के राजा का उसने वध किया। अतः उसने मथुराविजय नाम

रक्खा था। गंगादेवी का समय १३८० ई० के लगभग मानना चाहिए। **लोलम्बराज** विजय नगर के राजा हरिहर का आश्रित कवि था। उसने १४०० ई० में **हरि-विलास** नामक काव्य लिखा है। इसमें ५ सर्ग हैं। इसमें कृष्ण और उनके पराक्रम का वर्णन है।

वामनभट्ट बाण वत्सगोत्र के कोमटि यज्वन् का पुत्र था। वह विद्यारण्य का शिष्य था। वह अदंकी के राजा पेद्दकोमटि वेमभूपाल (१४०३-१४२० ई०) का आश्रित कवि था। अतः उसका समय १५वी शताब्दी के पूर्वार्ध में मानना चाहिए। उसने राम के जीवन-चरित के विषय में ३० सर्गों में **रघुनाथचरित** नामक काव्य लिखा है और नल के विषय में ८ सर्गों का **नलाभ्युदय** काव्य लिखा है।

कल्हण की **राजतरंगिणी** को **जोनराज** (१४५० ई०) ने चालू रक्खा। उसने जयसिंह से लेकर सुल्तान जैन-ए-अबिदिन तक का वर्णन लिखा है। जोनराज के शिष्य **श्रीवर** ने अपने गुरु के कार्य को अपनी **जैनराजतरंगिणी** में चालू रक्खा है। उसने १४६८ ई० तक के राजाओं का वर्णन किया है। एक बाद के लेखक **प्राज्य भट्ट** ने **राजावलिपताका** नामक ग्रन्थ लिखा है और १४६८ ई० से लेकर अकबर के द्वारा कश्मीर को मिलाने के समय तक का कश्मीर का इतिहास-वर्णन किया है।

मालाबार के एक कवि **सुकुमार** कवि (१४५० ई०) ने कृष्ण के पराक्रम के विषय में चार सर्गों में **कृष्णविलास** नामक काव्य लिखा है। इसकी शैली की सरलता और मनोरमता ने इसको मालाबार के सबसे प्रसिद्ध कवियों में स्थान दिलाया है।

राजनाथ द्वितीय विजयनगर के राजाओं का आश्रित कवि था। इसकी उपाधि **डिण्डिम-कविसार्वभौम** थी। वह विजयनगर के राजाओं के सेनापति साल्व नरसिंह का प्रिय कवि था। उसने १४३० ई० के लगभग १३ सर्गों में **सालुवाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने साल्व नरसिंह के पराक्रम तथा उसके पूर्वजों का वर्णन किया है। उसके पौत्र **राजनाथ तृतीय** ने

१५४० ई० के लगभग २० सर्गों में **अच्युतरायाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने विजयनगर के कृष्णदेवराय के भाई राजा अच्युतराय (१५३०-१५४२ ई०) के पराक्रम का वर्णन किया है।

लक्ष्मण भट्ट के पुत्र **रामचन्द्र** ने १५४२ ई० में द्विसन्धान पद्धति पर **रसिक-रंजन** नामक काव्य लिखा है। एक ओर से पढ़ने पर यह शृंगारिक अर्थ देता है और दूसरी ओर से पढ़ने पर वैराग्य-सम्बन्धी अर्थ देता है।

मालावार के निवासी **उत्प्रेक्षावल्लभ** ने ३९ पद्धति (अध्याय) में एक अपूर्ण **भिक्षाटनकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमें वर्णन किया है कि किस प्रकार शिव एक भिक्षुक के रूप में एक दानी चोल राजा के दान की परीक्षा के लिए उसके पास जाते हैं। लेखक का नाम ग्रथ में नहीं दिया हुआ है। इसके काव्य में शिवभक्तदास शब्द आता है। इसके आधार पर कुछ व्यक्ति इसका यही नाम मानते हैं, किन्तु यह केवल कल्पना ही है। ऐसा ज्ञात होता है कि उसको उत्तम उत्प्रेक्षाओं की प्रशंसा में उसे उत्प्रेक्षावल्लभ उपाधि दी गई थी। इस ग्रन्थ का समय अज्ञात है। आलोचक इसका समय १६वीं शताब्दी के लगभग मानते हैं।

रुद्रकवि ने २० सर्गों में **राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने मयूरगिरि के प्रथम राजा राष्ट्रौढ से लेकर नारायणशाह तक के परिवार का वर्णन किया है। यह नारायणशाह का आश्रित कवि था। इसने यह काव्य १५९६ ई० में लिखा है।

चिदम्बर ने १६०० ई० के लगभग त्रिसन्धान पद्धति पर **राघवपाण्डव-यादवीय** नामक काव्य लिखा है। इसके प्रत्येक श्लोक के तीन अर्थ हैं। इसने एक साथ उन्हीं श्लोकों में राम, पांडवों और कृष्ण का जीवन-चरित वर्णन किया है।

यज्ञनारायण तन्जोर के नायक राजा अच्युत (१५७७-१६१४ ई०) और उसके उत्तराधिकारी रघुनाथ के प्रधान-मन्त्री गोविन्द दीक्षित का पुत्र था। यज्ञनारायण रघुनाथ का आश्रित कवि था। उसका समय १६०० ई०

के लगभग मानना चाहिए। उसने १६ सर्गों में **रघुनाथभूपविजय** नामक काव्य लिखा है। इसका दूसरा नाम **साहित्यरत्नाकर** है। इसमें रघुनाथ का जीवन-चरित है।

राजचूड़ामणि दीक्षित अप्पयदीक्षित के समकालीन रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित का पुत्र था। वह तन्जोर के राजा रघुनाथ का आश्रित कवि था। वह १६२० ई० के लगभग था। उसने विभिन्न विषयों पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसने १० सर्गों में **रुक्मिणी-कल्याण** नामक काव्य लिखा है। इसमें कृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह का वर्णन है। इसकी शैली सरल और सुन्दर है।

राजा रघुनाथ की पत्नी रानी **रामभद्राम्बा** उच्चकोटि की कवियित्री थी। वह अपने पति को श्रीराम का अवतार मानती थी। उसने अपने पति के पराक्रमों की प्रशंसा में १२ सर्गों में **रघुनाथाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। रघुनाथ स्वयं भी उच्चकोटि का कवि था। कहा जाता है कि उसने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं।

चक्र कवि ने ८ सर्गों में **जानकीपरिणय** नामक काव्य लिखा है। इसमें राम और सीता के विवाह का वर्णन है। वह मदुरा के तिरुमल नायक का आश्रित कवि था। उसका समय १६५० ई० है।

नीलकण्ठ अप्पयदीक्षित के भाई का पौत्र था। वह १६१३ ई० में उत्पन्न हुआ था। वह गोविन्द दीक्षित के पुत्र वेंकटेश्वर मखिन का शिष्य था। वह मदुरा के तिरुमल नायक का प्रधान मन्त्री था। उसके साहित्यिक कार्य का समय १६५० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने उच्च शैली में कई मनोहर ग्रंथ लिखे हैं। उसने **शिवलीलार्णव** और **गंगावतरण** दो काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। पहले में २२ सर्ग हैं। इसमें हालास्यनाथ की ६४ क्रीड़ाओं का वर्णन है। मदुरा में शिव की हालास्यनाथ नाम से ही पूजा होती है। गंगावतरण में ८ सर्ग हैं। इसमें भूतल पर गंगा के अवतरण का वर्णन है।

वेंकटाध्वरी कांची का निवासी था। वह रामानुज के सम्प्रदाय का था। वह एक महान् कवि और दार्शनिक था। वह १६५० ई० के लगभग हुआ

था। उसने **यादवराघवीय** नामक काव्य ३० श्लोकों में लिखा है और उस पर स्वयं टीका की है। यह द्विसन्धान पद्धति पर लिखा गया काव्य है। लेखक अनुप्रास के प्रयोग में अत्यन्त निपुण है। उसने इसमें अनुप्रास के समावेश के कारण काव्य को अत्यन्त कठिन बना दिया है।

एक जैन कवि **मेघविजयगणि** ने १६७१ ई० में ९ सर्गों में **सप्तसन्धान-महा काव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने वृषभनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीरस्वामी, कृष्ण और बलदेव के जीवन-चरित का वर्णन किया है। इस काव्य के प्रत्येक श्लोक के सात अर्थ हैं। अतः प्रत्येक श्लोक में सातों व्यक्तियों के जीवन का वर्णन साथ ही साथ चलता है। यह काव्य धनंजय, कविराज आदि के द्विसन्धान काव्यों की पद्धति पर बनाया गया है। इस काव्य के अतिरिक्त उसने जैन मुनियों और जैन दर्शन के विषय में कई ग्रन्थ लिखे हैं।

एक जैन कवि **देवविमलगणि** ने १७ सर्गों में **हीरसौभाग्य** नामक काव्य लिखा है और उस पर स्वयं टीका की है। उसने इसमें **हीरविजयसूरि** का जीवनचरित वर्णन किया है। अकबर ने इन्हें जगद्गुरु की उपाधि दी थी। इसका रचनाकाल १७०० ई० के लगभग है।

रामभद्र दीक्षित ने ८ सर्गों में **पतंजलिचरित** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने व्याकरण पतंजलि का जीवन-चरित वर्णन किया है। वह राम का कट्टर भक्त था। वह तंजोर के राजा शाहजी (१६८४-१७११ ई०) का आश्रित कवि था। अतः उसका समय १७०० ई० के लगभग मानना चाहिए।

१८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में **हरदत्त सूरि** ने द्विसन्धान पद्धति का **राघव-नैषधीय** नामक काव्य लिखा है। इसमें दो सर्ग हैं। इसमें राम और नल का जीवन-चरित्र साथ ही साथ वर्णित है।

पूरे काव्य साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि इसका बहुत उन्नत रूप से विकास हुआ है। इसके विकास में तीन काल-विभाग दृष्टिगोचर होते हैं,

अर्थात् (१) कालिदास से पूर्ववर्ती कवि, (२) कालिदास, (३) कालिदास के परवर्ती कवि। कालिदास के पूर्ववर्ती काल का प्रतिनिधित्व केवल वाल्मीकि का रामायण करता है। कालिदास की साहित्यिक योग्यता और श्रेष्ठता के कारण उसके पूर्ववर्ती अन्य कवियों का नाम और उनकी कृतियाँ नष्ट हो गई हैं। इस समय भाव को सर्वोच्च स्थान दिया गया था और काव्य की शैली को गौण स्थान प्राप्त था। अतः कवियों को अपनी रचनात्मक शक्ति को विकसित और प्रकाशित करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। कालिदास और उसके तुरन्त बाद के कवि द्वितीय काल-विभाग में आते हैं। इस समय भाव और भाषा को समान एवं संतुलित रूप दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि भाव और भाषा दोनों संतुलित रूप में प्रकट हुए। कवियों की रचनात्मक शक्ति और आलंकारिक सौन्दर्य कविता में साथ-साथ चलते रहे। इस काल में कविता का जो उच्च रूप कालिदास ने प्रस्तुत किया, वह अश्वघोष के काव्य से कुछ अवनत अवस्था में प्राप्त होता है।

तृतीय काल-विभाग की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ हैं। **वात्स्यायन के कामसूत्र** ने तथा अन्य साहित्य-शास्त्रियों के शास्त्रीय ग्रन्थों ने कवियों को इतना प्रभावित कर दिया है कि उनकी कविता में कृत्रिमता और पूर्वानुकरण विशेष रूप से लक्षित होता है। प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता को तथा विद्वन्मंडली को सन्तुष्ट करना चाहता था। उसके काव्य को आलोचकों की परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता था, तभी वह उचित स्थान पा सकता था। जो कवि ऐसे वातावरण में प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहते थे, उनके काव्यों में भावों के स्थान पर भावुकता, प्रवाह के स्थान पर कल्पना, अनुभूति के स्थान पर पाण्डित्य-प्रदर्शन दृष्टिगोचर होता है। जब रचनात्मक प्रवृत्ति का महत्त्व कम हुआ, तब काव्य के बाह्य रूप को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ और परिणामस्वरूप विषय का स्थान गौण हो गया। भावों की बलि देकर ही ऐसा करना संभव हुआ। कवियों ने केवल शाब्दिक-चमत्कार-प्रदर्शन में अपनी कुशलता का प्रदर्शन प्रारम्भ किया और इसकी प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई। महा-

काव्य के लिए निर्धारित नियमों के पालन के लिए कतिपय ऐसे वर्णनों को स्थान दिया गया, जो वहाँ पर वस्तुतः आवश्यक और उपयुक्त नहीं हैं। **रत्नाकर** के **हरविजय, मंख** के **श्रीकण्ठचरित** और **शिवस्वामी** के **कप्पयाभ्युदय** आदि में यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। कवियों ने शब्दालंकारों के प्रयोग में ही अपनी मौलिकता दिखानी प्रारम्भ की। इस विषय में **भारवि, माघ, कुमारदास, वासुदेव, शिवस्वामी** और **वेंकटाध्वरी** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुछ काव्यों में वैयाकरणों का प्रभाव विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है। **अश्वघोष** के **बुद्धचरित** और **भारवि** के **किरातार्जुनीय** में यह प्रवृत्ति विशेषतया दिखाई देती है। **भट्टि, भीम** और **हलायुध** ने अपने काव्य केवल इसलिए बनाए हैं कि उनमें व्याकरण के नियमों के उदाहरण प्रस्तुत किए जायें। ज्यों-ज्यों कविता बाह्यरूपात्मक अधिक होती गई, **श्रीहर्ष** जैसे कुछ कवियों ने अपने काव्य में कवित्व के अतिरिक्त अन्य विषयों का पाण्डित्य प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया। एक नई प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई कि श्लेष अलंकार का आश्रय लेकर एक से अधिक भावों को एक साथ प्रकाशित किया जाय। इस विषय में **धनंजय** और **कविराज** के **राघवपाण्डवीय काव्य** आदि, जो कि द्विसन्धान पद्धति पर लिखे गए हैं, विशेषतया उल्लेखनीय हैं। **डा० ए० बी० कीथ** ने ठीक ही लिखा है कि "श्लेष अलंकार का भाषा पर बहुत घातक प्रभाव पड़ता है। योग्यतम कवि के लिए असंभव है कि वह श्लेष के द्वारा दो अर्थ एक साथ प्रकट करे और अर्थ, रचना तथा अन्वय में खेच न करे। इस प्रयत्न का प्रभाव यह होता है कि उस समय के वर्तमान कोष-ग्रन्थों को सूक्ष्मता के साथ देखा जाता है और ऐसे शब्द ढूंढ़ कर निकाले जाते हैं जो अनेक अर्थों का बोध करा सकें। परिणामस्वरूप कवित्व-साधना के स्थान पर बौद्धिक परिश्रम होने लगता है और विचारों तथा भावों को सर्वथा नष्ट किया जाता है।"[1] इस काल में साम्प्रदायिक भावों का बहुत प्राबल्य रहा है। बौद्धों और जैनों ने काव्य-साहित्य को बहुत देन दी है। इस दृष्टि से **अश्वघोष** और **हेमचन्द्र** उच्चकोटि के

१. A. B. Keith; History of Sanskrit Literature. पृष्ठ १२७

काव्य-लेखक हैं। इतिहास भी काव्य के रूप में लिखा गया है। इस विभाग के **कल्हण** और **विल्हण** आदि प्रमुख कवि हैं। प्राकृत का भी काव्य-साहित्य के लिए प्रयोग होने लगा। प्राकृत में लिखे गए काव्यों में **प्रवरसेन** का **सेतुबन्ध** मुख्य है।

उत्तरी भारतवर्ष कवियों का मुख्य केन्द्र रहा है। दक्षिणी भारत का महत्त्व आन्ध्रभृत्य, वलभी आदि राजवंशों के आश्रित कवियों के द्वारा हुआ है। गुजरात में दसवी शताब्दी से लेकर लगभग तीन शताब्दी बाद तक असंख्य जैन कवि हुए हैं। इन कवियों का विशेष झुकाव महाभारत की कथाओं की ओर था। छठवीं शताब्दी तक दक्षिण में संस्कृत के कवि नही हुए थे। इसके पश्चात् पल्लव, चालुक्य, चेर, चोल, पाण्ड्य राजाओं तथा विजयनगर, तन्जौर और मदुरा के राजाओं ने संस्कृत कवियों को प्रोत्साहन दिया। मालाबार ने आठवीं शताब्दी से लेकर १९वीं शताब्दी तक असंख्य कवि उत्पन्न किए हैं। मालाबार, विजयनगर, तन्जौर, कांची और मदुरा में इस काल में हुए कवियों के कार्यों के विवरण के लिए एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जाने की आवश्यकता है। अप्पय दीक्षित के प्रसिद्ध वंशजों ने तथा उसके परिवार से संबद्ध अन्य व्यक्तियों ने काव्य-साहित्य को बहुमूल्य देन दी है। इस काल की एक विशेषता यह भी है कि इस समय कवियित्रियाँ भी हुई हैं। अंग्रेजों के आगमन तक कवि राजाओं के आश्रित होकर प्रसिद्धि पाते रहे हैं। अंग्रेजों के शासन के प्रारम्भ होने के समय से राजा नष्ट होते गए और साहित्यिकों को प्रोत्साहन देने वाला कोई भी न रहा, अतः साहित्यिक कार्य धीरे-धीरे अवनत होते गए।

अध्याय १४

गीति-काव्य

गीति-काव्य काव्य का वह रूप है, जो वाद्यों के साथ संगीतात्मक रूप में गाया जा सकता है। गीति-काव्य प्रेम, शोक या भक्ति के भावों, विचारों या अनुभवों का प्रकाशन है। यह मानव-हृदय का स्वाभाविक प्रवाह है। यह हृद्गत भावों का स्वतःसिद्ध प्रकाशन है। यह सामान्य कविता की अपेक्षा भावनाओं को अधिक प्रभावित करता है। संस्कृत साहित्य में गीति-काव्य अधिक लम्बे नहीं हैं। परिमाण में यह एक श्लोक से लेकर कई श्लोकों तक का होता है। गीति-काव्य में जो कुछ कहा जाता है, वह स्वतः पूर्ण होता है। भारतीय गीति-काव्य में जीवों और वृक्षों का प्रमुख स्थान रहा है। गीति-काव्य के लेखकों ने तुलना के लिए चकोर, चक्रवाक, चातक, कमल, लता तथा अन्य वृक्षों को लिया है। गीति-काव्य को खण्ड-काव्य कहा जाता है, क्योंकि यह पद्यरूप में होता है; परन्तु काव्य के पूरे लक्षण इसमें नहीं होते हैं। संस्कृत के गीति-काव्यों ने १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के जर्मन कवि हीनरिच हीन को प्रभावित किया। फलतः उसने 'आफ़ फ्लूगेल्न डेस जेसेन्जेस' नामक गीति-काव्य की रचना की।

गीतिकाव्यों का उद्गम वैदिक-काल से ही हुआ है। शोक के प्रवाह में वाल्मीकि के श्लोकात्मक उद्गार को गीतिकाव्य कह सकते हैं। गीतिकाव्य को दो भागों में बाँटा गया है--(१) शृंगारिक (२) धार्मिक।

शृंगारिक गीतिकाव्य

शृंगारिक गीतिकाव्य विभिन्न रूपों में प्राप्त होते हैं। इनमें से दूत पद्धति के गीतिकाव्य विशेष प्रचलित हैं। ऐसे गीतिकाव्यों में वियोगी प्रेमी अपनी

प्रेमिका को प्रणय-सन्देश भेजता है। यह सन्देश किसी दूत के द्वारा भेजा जाता है। दूत का निर्णय प्रेमी अपनी इच्छानुसार करता है। ऐसे गीतिकाव्यों में कुछ ऐसे भी है, जिनमें प्रेमिका अपने प्रिय को सन्देश भेजती है।

गीतिकाव्यों में, विशेषकर दूतकाव्यों में, कालिदास का मेघदूत सर्वश्रेष्ठ है। इसको मेघसन्देश भी कहते है। यह दो भागों में है, पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में कहा गया है कि किस प्रकार एक यक्ष को अलका में स्थित अपनी प्रेमिका से वियुक्त होकर रामगिरि पर्वत पर रहना पड़ा। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में उसकी इच्छा हुई कि अपने वियोग में दुःखित प्रेमिका को सान्त्वना का सन्देश भेजूँ और अपनी अवस्था का भी समाचार भेजूँ। उसने समीपस्थ पर्वत की चोटी पर लगे हुए एक मेघ को देखा। उसने मेघ से कहना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम मेघ का स्वागत करने के बाद उसने उसे अलका का मार्ग बताया। कवि ने मार्ग में स्थित स्थानों का वर्णन किया है। उत्तरमेघ में उसने अलका नगरी का वर्णन किया है और वहाँ पर अपने गृह की पहचान बताई है। तत्पश्चात् अपनी प्रेमिका की अवस्था का वर्णन करके उसने वह सन्देश बताया है, जो उसे वहाँ जाकर सुनाना है।

कुछ आलोचकों का मत है कि कालिदास ने अपने वैयक्तिक अनुभवों को प्रकट करने के लिए इसको बनाया है। विक्रमादित्य ने उन्हें कुन्तलेश की राजसभा में एक राजदूत बनाकर भेजा था। इस काव्य के माध्यम से उन्होंने अपनी उन व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है जो उस समय उन्हें अपने परिवार से विलग होने की अवस्था में हुई। इसमें सत्यता है या नहीं, कहा नहीं जा सकता। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि कालिदास को इस काव्य की रचना करने की प्रेरणा रामायण, नल-कथा तथा उस सन्देश से प्राप्त हुई जिसे रुक्मिणी ने कृष्ण के पास एक ब्राह्मण द्वारा भेजा था।

कवि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने में बड़ा ही कुशल है। इस काव्य में उसकी इस शक्ति की स्पष्ट झलक मिलती है। उसने मन्दाक्रान्ता छन्द चुना जो इस विषय के लिए उपयुक्त कहा गया है। देखिए :—

प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।
उन्होंने इस छन्द को असामान्य सौन्दर्य के साथ अपनाया है ।
सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।।

-- सुवृत्ततिलक ३।३३

इस काव्य में ११५ श्लोक हैं । इस श्लोक-संख्या के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है ।[1] कालिदास ने जो भाव प्रकट किए है, उससे उसके मूल स्रोत का ज्ञान होता है । रामायण में सुग्रीव का वानरों को लंका का मार्ग बताना, लंका का वर्णन, सायंकाल के समय हनुमान का लंका में प्रवेश, अशोकवन में सीता का वर्णन और अगले दिन प्रातःकाल हनुमान का सीता से मिलना आदि वर्णनों का प्रभाव कालिदास के इस काव्य पर पड़ा है ।[2]

कालिदास ने अपने इस काव्य को हार्दिक भावों से पूर्ण किया है । यक्ष की पत्नी का वर्णन तथा उसकी वियोगावस्था के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि किस प्रकार कालिदास ने मानव-हृदय के भावों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है, विशेषरूप से विपत्ति के काल में । उसने मनुष्यों के तथा प्रकृति के सुकुमार एवं सुन्दर स्वरूप और भावों का गम्भीरता से निरीक्षण किया है । जिस प्रकार मनुष्य अपने भावों को प्रकट कर सकता है, उसी प्रकार अन्य जीव और वनस्पति भी अपने हार्दिक भावों को प्रकट कर सकते हैं । अतएव कालिदास ने मानव-जगत् को प्राकृतिक जगत् से सम्बद्ध किया है । यह कालिदास के मेघ के वर्णन और उसकी यात्रा के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है । उसकी शैली परिष्कृत, उत्कृष्ट और सुन्दर है । उसने स्पष्टरूप से प्रति-

---

१. मल्लिनाथ १२१ पूरणसरस्वती ११० तथा वल्लभदेव १११
दक्षिणावर्तनाथ ११० भरतसेन ११४

२. तुलना करो—मेघदूत उत्तरमेघ रामायण सुन्दरकाण्ड
श्लोक ३७ सर्ग २२ के श्लोक १७ और १८
" ३६ और ३८ " ५३ का श्लोक २
" ४८ " ३८ काकासुर वृत्तान्त

पादित किया है कि विरह-प्रेम के कई लाभ हैं और यह पुरुष तथा स्त्री के प्रेम को शुद्ध बनाए रखने के लिए अनिवार्य भी है। कालिदास ने जो मार्ग बताया है, उससे ज्ञात होता है कि उसे भौगोलिक ज्ञान ठीक था और वह विभिन्न स्थानों के लोगों के जीवन और व्यवहारों से सम्यक्तया परिचित था। कालिदास ने इस काव्य के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द चुना है और संपूर्ण काव्य में इसका सफलता से प्रयोग किया है।

मेघदूत को सार्वभौम प्रशंसा प्राप्त हुई है। इसने पाश्चात्य कवियों को बहुत प्रभावित किया है। जर्मन कवि **शीलर** (१८०० ई०) ने कालिदास के इस गीतिकाव्य के आदर्श पर **'मारिया स्टुअर्ट'** नामक काव्य लिखा है। इसमें एक बन्दी रानी ने मेघ को सन्देश दिया है कि वह फ्रांस की भूमि की बधाई वहाँ पहुँचावे जहाँ उसने युवावस्था बिताई है।

बाद के कवियों पर मेघदूत का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। इसी रूपरेखा पर अनुकरणस्वरूप काव्य बनाने के लिये यह उनका आदर्श रहा है। अनुकरण वाले काव्यों में एक प्रकार यह भी रहा है कि उसमें कालिदास के मेघदूत के प्रत्येक श्लोक की एक या अधिक पंक्ति को अपने श्लोक में सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रयत्न का सुफल यह हुआ है कि मेघदूत के श्लोक सुरक्षित रह गये हैं। **जिनसेन** (८१४ ई० के लगभग) ने **पार्श्वाभ्युदय** नामक काव्य चार सर्गों में लिखा है। इसमें उसने जैन मुनि **पार्श्वनाथ** का जीवन-चरित वर्णन किया है। इसमें मेघदूत के १२० श्लोक सुरक्षित मिलते हैं। **विक्रम** कवि (समय अज्ञात) ने **नेमिदूत** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने जैन मुनि नेमिनाथ का जीवन-चरित वर्णन किया है। इसके काव्य में मेघदूत के १२५ श्लोक सुरक्षित मिलते हैं।

इसके दूसरे प्रकार के अनुकरण वाले काव्य वे हैं, जिनमें इसी प्रकार के भाव के लिए या अन्य भाव के लिए इसके स्वरूप को अपनाया गया है। **धोयी कवि बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन** (११६९ ई०) का आश्रित कवि था। इसने

मेघदूत के अनुकरण पर **पवनदूत** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने वर्णन किया है कि एक गन्धर्व कन्या ने कवि के आश्रयदाता राजा लक्ष्मणसेन के पास पवन के द्वारा अपना प्रणय सन्देश भेजा है। **वेदान्तदेशिक** (१२६८ १३६९ ई०) ने मेघदूत के अनुकरण पर **हंससन्देश** नामक काव्य लिखा है। उसने वर्णन किया है कि जब हनुमान ने सीता का समाचार लाकर दिया तब राम ने हंस के द्वारा लंका में सीता को समाचार भेजा। दूत के रूप में हंस को भेजने का भाव कवि को संभवतः नल-दमयन्ती की कथा में हंस की सेवा से प्राप्त हुआ है। प्रायः प्रत्येक पद पर कालिदास का प्रभाव दिखाई देता है। इस काव्य में प्रेम के भाव के साथ ही भक्ति का भाव भी सम्मिलित है। कवि ने भक्तिभाव के महत्त्व को बताने के लिए तामिल के तीर्थ-स्थानों का वर्णन किया है। इस गीतिकाव्य में ११० श्लोक हैं। इसमें कालिदास के मेघदूत का प्रशंसनीय रूप से अनुकरण किया गया है। एक तामिल प्रदेश का कवि **उद्दण्ड** (१४०० ई०) अपनी आजीविका के लिए मालाबार गया और वहाँ कालीकट के **जमोरिन** का आश्रित कवि हो गया। उसने मेघदूत के अनुकरण पर **कोकिलसन्देश** नामक गीतिकाव्य लिखा है। इसमें प्रणय-सन्देश का वर्णन है। यह मेघदूत का सुन्दर अनुकरण है। **वामनभट्ट बाण** (१४२० ई०) ने मेघदूत का पूर्ण अनुकरण करते हुए **हंससन्देश** काव्य लिखा है। **कृष्ण चैतन्य** के शिष्य **रूपगोस्वामी** (१५०० ई०) ने **हंसदूत** और **उद्धवसन्देश** नामक दो दूतकाव्य लिखे हैं। दोनों में भक्तिभाव पर विशेष बल दिया गया है। मैसूर के **राम शास्त्री** ने १९वीं शताब्दी में **मेघप्रतिसन्देश** नामक काव्य लिखा है। इसमें यक्ष की प्रेमिका ने यक्ष के सन्देश का प्रत्युत्तर मेघ के द्वारा भेजा है। इनके अतिरिक्त निम्नकोटि के बहुत गीतिकाव्य हैं। इनमें से कुछ केवल भक्ति-भाव पर बल देने के लिए ही लिखे गए हैं। **पूर्णसरस्वती** (परिचय अज्ञात) ने **हंससन्देश** नामक काव्य लिखा है। इसमें काँचो की एक भक्त स्त्री ने वृन्दावन-वासी कृष्ण को अपना सन्देश भेजा है। इनमें से कुछ में २०० से अधिक श्लोक हैं, जैसे **विष्णुत्राता** (१६वीं शताब्दी ई०) का **कोकसन्देश** और **वासुदेव** (१७वीं शताब्दी ई०) का **भृङ्गसन्देश**। कुछ गीतिकाव्य

मन्दाक्रान्ता के अतिरिक्त अन्य छन्दों में भी बने हैं, जैसे **विनयप्रभ** (१३०० ई० से पूर्व) का **चन्द्रदूत** मालिनी छन्द में लिखा गया है, **विष्णुदास** (समय अज्ञात) का **मनोदूत** वसन्ततिलका छन्द में है और **रामाराम** (समय अज्ञात) का **मनोदूत** शिखरिणी छन्द में है।

घटकर्पर ने **घटकर्परकाव्य** नामक गीतिकाव्य २२ श्लोकों में लिखा है। इसमें उसने वर्णन किया है कि एक नवयुवती पत्नी मेघ के द्वारा अपने पति को प्रणय-सन्देश भेजती है। यह काव्य यमक अलंकार से परिपूर्ण है। इस काव्य के अन्तिम श्लोक में कवि ने प्रतिज्ञा की है कि जो कवि इससे उत्तम श्लोक बना देगा, उसके लिए वह घड़े के कर्पर (टुकड़े) में पानी भर कर लाएगा। अतः उसका नाम घटकर्पर पड़ा और उसके काव्य का भी नाम उसके नाम पर ही पड़ा। नवरत्नों में उसका नाम है, इसके अतिरिक्त उसके विषय में कोई परिचय प्राप्त नहीं होता है। इसके टीकाकार **अभिनवगुप्त** (१००० ई०) ने इस गीतिकाव्य को कालिदास की रचना मानी है।[1]

दूतकाव्यों के अतिरिक्त गीतिकाव्यों का और कोई निश्चित रूप नहीं है। **ऋतुसंहार** गीतिकाव्य है। इसमें १४४ श्लोक हैं। इसमें ६ सर्गों में वर्ष की ६ ऋतुओं का वर्णन है। इसके लेखक के विषय में विद्वानों में मतभेद है। भारतीय विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि इसका रचयिता कालिदास कहा जाता है, परन्तु वे इसे कालिदास की रचना नहीं मानते हैं। उनका कथन है कि उच्चकोटि के टीकाकारों ने कालिदास के अन्य ग्रन्थों की टीका की है, परन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं की है। साहित्यशास्त्रों ने इसकी एक भी पंक्ति उदाहरण के रूप में उद्धृत नहीं की है। अतः यह कालिदास की रचना नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् इसे कालिदास की रचना मानते हैं। उपर्युक्त आपत्तियों का वे उत्तर देते हैं कि टीकाकारों ने इसकी टीका इसलिए नहीं की, क्योंकि यह कालिदास के अन्य ग्रन्थों से अपेक्षाकृत सरल है, अतः उन्होंने

---

१. अभिनवगुप्त – A historical and philosophical study by K. C. Pandey. पृष्ठ ६५।

टीका की आवश्यकता नहीं समझी। साहित्यशास्त्रियों ने इससे उद्धरण इसलिए नहीं दिया है, क्योंकि वे सरल ग्रन्थों से उद्धरण नहीं देते हैं। उनका कथन यह भी है कि यदि इसको कालिदास की रचना नहीं मानेंगे तो उसकी कीर्ति को बहुत क्षति पहुँचेगी। यह सत्य है कि इसमें कुछ ऐसे चिह्न हैं, जिनके आधार पर यह कालिदास की कृति मानी जा सकती है। ऐसे कई ग्रन्थ हैं, जिनमें इस प्रकार के चिह्न प्राप्त होते हैं, परन्तु उनके लेखक निश्चितरूप से अन्य कवि ज्ञात हैं। इसमें उसने एक अप्रचलित रूप का प्रयोग[1] किया है। कालिदास के अन्य काव्यों में इस प्रकार के रूपों का सर्वथा अप्रयोग है, अतः इसका रचयिता कालिदास को मानना उचित नहीं है।

शृङ्गारतिलक ३१ श्लोकों का गीतिकाव्य है। इसमें शृङ्गार के विभिन्न रूपों का वर्णन है। इसी विषय पर २६ उत्तम श्लोकों का **पुष्पबाणविलास** नामक गीतिकाव्य है। **राक्षसकाव्य** २० श्लोकों में एक गीतिकाव्य है। इसमें वन के दृश्य का वर्णन है, जहाँ पर प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ भ्रमण कर रहा है। यह अनुप्रास से पूर्ण है। ये तीनों गीतिकाव्य कालिदास की कृति कहे जाते हैं।

अमरु या **अमरुक** ने १०० सुन्दर श्लोकों का अमरुकशतक नामक गीतिकाव्य बनाया है। इसमें शृङ्गार के विभिन्न रूपों का वर्णन है। इसके शृङ्गार के विभिन्न रूपों के चित्रण बहुत यथार्थ तथा अत्यधिक कल्पनात्मक हैं। इसके चार संस्करण उपलब्ध होते हैं, इनमें केवल ५१ श्लोक समान मिलते हैं। **वामन** (८०० ई०) और **आनन्दवर्धन** (८५० ई०) ने इसके उदाहरण दिए हैं। अतः यह ८०० ई० से पूर्व का लिखा हुआ होना चाहिए। इसका लेखक अद्वैत-वेदान्त के प्रचारक शंकर को मानना भ्रम है। **भर्तृहरि** ने **शृङ्गारशतक** बनाया है। इसमें शृङ्गार सम्बन्धी १०० श्लोक गीतिकाव्य के रूप में हैं। अन्य कई लेखकों के तुल्य उसने शृङ्गार को मनुष्य-जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं माना है। वैयाकरण भर्तृहरि और विक्रमादित्य के सौतेले

---

१. सोऽयं वो विपरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः। ऋतुसंहार ६–२८

भाई भर्तृहरि तथा शृङ्गारशतक का रचयिता भर्तृहरि ये तीनों एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। ये तीनों एक ही व्यक्ति हैं, इसका कोई प्रमाण नहीं है। **विक्रमांकदेवचरित** के रचयिता **बिल्हण** (१०८० ई०) ने **चौरपंचाशिका** नामक गीतिकाव्य ५० श्लोकों में लिखा है। यह कहा जाता है कि वह अपने आश्रयदाता की कन्या पर आसक्त था। जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो उसने उसे फाँसी की आज्ञा दी। जब वह फाँसी के लिए ले जाया जा रहा था, उस समय उसने यह गीतिकाव्य बनाया था। उस समय राजा भी वहाँ थे और उन्होंने इस गीतिकाव्य की मार्मिकता को अनुभव करके आज्ञा दी कि कवि को छोड़ दिया जाय। इस गीतिकाव्य में प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ अनुभव किए हुए आनन्द को स्मरण करता है।

बंगाल के राजा **लक्ष्मणसेन** (११६९ ई०)[1] ने जिन कवियों को आश्रय दिया था, उनमें एक **जयदेव** भी था। उसके अन्य आश्रित कवि **धोयी, उमापतिधर, शरण** और **गोवर्धन** थे। अतः जयदेव का समय १२०० ई० के लगभग है। जयदेव ने २० सर्गों में **गीतगोविन्द** नामक गीतिकाव्य बनाया है। उसका जन्म उड़ीसा के किन्दुबिल्व नामक स्थान में हुआ था। इसकी सूचना गीतगोविन्द के तृतीय अध्याय के दसवें श्लोक से मिलती है। अध्यायों का नाम नायक के आचरणों के अनुसार रखा गया है। जैसे; अक्लेशकेशव, मुग्धमधुसूदन, नागरनारायण, सानन्ददामोदर आदि। इसमें कृष्ण, राधा और राधा की सखियों के मध्य वार्तालाप के रूप में कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन किया गया है। कतिपय स्थलों पर इसमें एक व्यक्ति की ही गीतात्मक उक्ति है। प्रत्येक गीत कतिपय विभागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग में आठ पद हैं। अतएव इसको अष्टपदी भी कहते हैं। प्रत्येक गीत के लिए लय दिए गए हैं। तदनुसार गीत को गाया जाता है। अन्तरा को साथ ही गाया जाता है। इसमें बड़ी चतुरता के साथ संगीत, गान, वर्णन और भाषण को समन्वित किया गया है। यह सब साभिप्राय किया गया है। यह कहा जाता है कि यह शुद्ध नाटक और

१. Collected works of R. G. Bhandarkar Vol. II पृष्ठ, ३४६

शुद्ध गीतिकाव्य के पारस्परिक परिवर्तन की अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें प्रेम के प्रत्येक पद्य को लिया गया है। भारतीय टीकाकार इस गीतिकाव्य के प्रेम की रूपकात्मक व्याख्या करते हैं। इसमें कृष्ण ब्रह्म के प्रतिनिधि हैं और राधा जीवात्मा की। यह गीतिकाव्य ब्रह्म और जीवात्मा में नायक-नायिका-भाव सम्बन्ध मानता है। यह गीतिकाव्य यद्यपि मूलतः शृङ्गारात्मक है, परन्तु पूर्वोक्त आध्यात्मिक व्याख्या के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया है। समस्त देश में इसके असंख्य प्रशंसक हैं और यह पूजा के अवसरों पर गाया जाता है। राधाकृष्ण की पूजा की प्रसिद्धि का बहुत अधिक श्रेय इस गीतगोविन्द को है। यद्यपि भक्तिकाव्य के रूप में इसका महत्त्व कम नहीं किया जा सकता है तथापि शृङ्गारात्मक गीतिकाव्य के रूप में इसका महत्व अधिक है। इसकी बहुत सी टीकाएँ हैं। रुकेर्ट ने जर्मन भाषा में इसका अनुवाद किया है। रायभट्ट (१६०० ई० पू०) का **शृङ्गारकल्लोल** विषय और रचना की दृष्टि से **अमरुशतक** के समान है।

धार्मिक गीतिकाव्य

गीतिकाव्य में धार्मिक गीतिकाव्यों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्य के अन्य विभागों की अपेक्षा इन भक्तिकाव्यों ने जनता को अधिक प्रभावित किया है। इनके ही प्रभाव के कारण धार्मिक भावना की अग्नि शान्त नहीं होने पाई है। भारत में विभिन्न धर्मों ने जो आध्यात्मिक उन्नति की है, उसका प्रमुख श्रेय इन्हीं को है। हिन्दुओं के धार्मिक गीतिकाव्यों के प्रभाव को देखकर बौद्धों और जैनों ने अपने पृथक् धार्मिक गीतिकाव्य लिखे हैं। इन भक्तिकाव्यों का लक्ष्य यह रहा है कि मनुष्य के मन को सांसारिक विषय, सांसारिक सुख और सांसारिक ऐश्वर्य की ओर से हटाकर उसे बुद्धिमार्ग और ईशभक्ति के मार्ग पर लगावे। धार्मिक कार्यों की आवश्यकता पर जो बल दिया गया, उसके परिणामस्वरूप धार्मिक गीतिकाव्यों का जन्म हुआ। इन गीतिकाव्यों का दृष्टिकोण दार्शनिक है। ये पंचक, अष्टक, दशक, पंचाशत और

शतक आदि के रूप में है अर्थात् किसी में ५, ८, १०, ५० या १०० आदि पद्य हैं । इनमें से अधिकांश पद्यात्मक हैं । कुछ दण्डक हैं । ये गद्य रूप में हैं । इनकी रचना संगीतात्मक रूप में होती है । इनमें पदों के तुल्य विभाजन होता है । कुछ गद्य रूप में हैं । इनका संगीत के रूप में पाट होता है । ऐसे संगीतात्मक गद्यों की उत्पत्ति वैदिक-काल तथा रामायण और महाभारत के काल में दिखाई देती है । ये धार्मिक गीतिकाव्य असंख्य हैं । इनमें से अधिकांश के लेखक अज्ञात हैं ।

कालिदास कुछ धार्मिक गीतिकाव्यों के भी रचयिता माने जाते हैं । **श्यामलादण्डक** उनकी कृति मानी जाती है । बुद्धचरित और सौन्दरनन्द के लेखक **अश्वघोष** (प्रथम शताब्दी ई०) ने **गण्डिस्तोत्रगाथा** नामक गीतिकाव्य लिखा है । इनमें धार्मिक संवाद है । एक जैन कवि **सिद्धसेन दिवाकर** (५०० ई० के लगभग) ने जैन तीर्थंकरों की प्रशंसा में **कल्याणमन्दिरस्तोत्र** लिखा है । राजा हर्ष को **सुप्रभातस्तोत्र** और **अष्टमहाश्रीचत्यस्तोत्र** का रचयिता कहा जाता है । ये दोनों स्तोत्र बौद्ध धर्म के भावों से युक्त हैं । **बाण** (६०० ई०) ने **चण्डीशतक** लिखा है । इसमें शिव की पत्नी चण्डी के विषय में १०० श्लोक हैं । **मानतुंग** को **भक्तामरस्तोत्र** का रचयिता कहा जाता है । यह देवताओं की स्तुति के रूप में लिखा गया है । वह हर्ष का समकालीन था, अतः उसका समय सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मानना चाहिए । **मयूर** को बाण का श्वशुर माना जाता है । वह हर्ष का आश्रित कवि था । उसने सूर्य की स्तुति में गौड़ी रीति में **सूर्यशतक** लिखा है । **सर्वज्ञमित्र** ने बौद्धों में आस्तिकवादियों के प्रिय देवता तारा की स्तुति में **लग्धरास्तोत्र** बनाया है । उसका समय अज्ञात है ।

भक्तिभावना-प्रधान कतिपय धार्मिक गीतिकाव्य प्रसिद्ध अद्वैतवादी **शंकराचार्य** (६३२ से ६६४ ई०) की कृति माने जाते हैं ।[1] निश्चित सूचना के अभाव के कारण इन सबके लेखक का निर्णय निश्चयपूर्वक नहीं किया

१. पाश्चात्य विद्वानों ने शंकराचार्य का जो समय ७८८ से ८२० ई०

जा सकता है। कुछ आलोचकों का मत है कि ये सभी काव्य शंकराचार्य की रचना नहीं हैं। उनका कथन है कि **सौन्दर्यलहरी** जैसे गीतिकाव्य शंकराचार्य की रचना नहीं हो सकते हैं, क्योंकि ये गीतिकाव्य शक्ति आगमों के अनुसार शक्ति की पूजा का विधान करते हैं और शंकराचार्य ने अपने **ब्रह्मसूत्रभाष्य** में शक्ति आगमों की प्रामाणिकता का खंडन किया है। किन्तु भारतीय परम्परा सौन्दर्यलहरी का लेखक शंकराचार्य को मानती है। इन गीतिकाव्यों के लेखक के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। इन गीतिकाव्यों में से कुछ अवश्य ही शंकराचार्य की रचना हैं। शेष मठों के अध्यक्षों की रचना होंगी। इनको भी शंकराचार्य की उपाधि प्राप्त थी। इनमें से जो शंकराचार्य की निजी रचनाएँ मानी जाती हैं, उनमें से विशेष उल्लेखनीय ये हैं—**अन्नपूर्णादशक, अन्नपूर्णाष्टक, कनकधारास्तव, दक्षिणामूर्त्यष्टक, रामभुजंगस्तोत्र, लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्र, विष्णुपादादिकेशान्तवर्णन, शिवभुजंगस्तोत्र, शिवानन्दलहरी** और **सौन्दर्यलहरी**।

केरल के राजा **कुलशेखर** ने विष्णु की स्तुति में **मुकुन्दमाला** गीतिकाव्य बनाया है। वह और वैष्णव सन्त कुलशेखर अलवर एक ही व्यक्ति हैं। इस गीतिकाव्य की रचना का समय ७०० ई० दिया गया है। इस गीतिकाव्य में भक्तिभाव को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसकी शैली परिष्कृत, स्पष्ट और अति सरल है।

मूक कवि संभवतः शंकराचार्य का समकालीन था। यह जन्म से ही मूक था। काँची की देवी कामाक्षी की कृपा से उसे भाषण की शक्ति प्राप्त हुई थी। इस शक्ति का उसने देवी की पूजा में सदुपयोग किया और पाँच सौ सुन्दर गेय पद्यों से युक्त **मूकपंचशती** नामक गीतिकाव्य लिखा। नवम शताब्दी के पूर्वार्ध में कश्मीर के कवि **पुष्पदन्त** ने शिव की स्तुति में **महिम्नस्तव** काव्य

निश्चित किया है, वह त्रुटिपूर्ण है। शंकराचार्य तथा उनके समकालीन विद्वानों का ठीक समय महामहोपाध्याय एस० कुप्पुस्वामी ने मंडन मिश्र की पुस्तक ब्रह्मसिद्धि की भूमिका में दिया है।

लिखा। **हरविजय** काव्य के लेखक **रत्नाकर** ने शिव और पार्वती के संवाद के रूप में ५० पद्यों से युक्त **वक्रोक्तिपंचाशिका** नामक गीतिकाव्य लिखा है। यह काव्य वक्रोक्ति से परिपूर्ण है। इससे लेखक की पटुता का ज्ञान होता है। देखिए :—

त्वं हालाहलभृत्करोषि मनसो मूर्च्छां ममालिंगितो
हालां नैव बिभर्मि नैव हलं मुग्धे कथं हालिकः।
सत्यं हालिकतैव ते समुचिता सक्तस्य गोवाहने
वक्रोक्त्येति जितो हिमाद्रिसुतया स्मेरो हरः पातु वः॥

श्लोक २

कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (८५० ई० के लगभग) के आश्रित कवि **आनन्दवर्धन** ने पार्वती की स्तुति में **देवीशतक** काव्य लिखा है। इसमें शब्दालंकारों के होते हुए भी माधुर्य पूर्ण रूप से विद्यमान है। अभिनवगुप्त के गुरु **उत्पलदेव** (९२५ ई०) ने शिव की स्तुति में स्वरचित पद्यों का संग्रह **स्तोत्रावलि** नाम से स्वयं लिखा है।

रामानुज के गुरु के गुरु **यामुन** थे। वह १००० ई० के लगभग हुए हैं। उन्होंने दो गीतिकाव्य **चतुश्लोकी** और **स्तोत्ररत्न** लिखे हैं। इनमें से प्रथम देवी लक्ष्मी की स्तुति में है और दूसरा विष्णु की स्तुति में। प्रथम में चार श्लोक हैं और द्वितीय में ६५। ये दोनों गीतिकाव्य भावों और अनुभूत की उत्कृष्टता के लिये प्रसिद्ध हैं। विशिष्टाद्वैत के सर्वश्रेष्ठ आचार्य **रामानुज** (१०१७-११२५ ई०) ने गद्यरूप में तीन गीतिकाव्य गद्यत्रय नाम से लिखे हैं। इसमें **शरणागतिगद्य**, **वैकुण्ठगद्य** और **श्रीरंगगद्य** ये तीन काव्य हैं। ये अपनी हार्दिक प्रभावोत्पादकता के लिए प्रसिद्ध हैं। रामानुज के प्रमुख शिष्यों में **श्रीवत्सांक** एक था। उसने पाँच स्तुति-ग्रन्थ **पंचस्तव** नाम से लिखे हैं। इनके नाम हैं—**श्रीस्तव**, **अतिमानुषस्तव**, **वरदराजस्तव**, **सुन्दरबाहुस्तव** और **वैकुण्ठस्तव**। इनसे ज्ञात होता है कि यह कवि उच्च कल्पनाशील और परिष्कृत छन्द-निर्माता था। श्रीवत्सांक का सुयोग्य पुत्र **पराशर भट्ट** था। वह ११००

ई० के लगभग हुआ था। उसके गीतिकाव्यों में **श्रीरंगराजस्तव** और **श्रीगुण-रत्नकोश** बहुत प्रसिद्ध हैं।

गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव ने **गंगास्तव** नामक धार्मिक गीतिकाव्य भी लिखा है। जयदेव का गीतगोविन्द यद्यपि मुख्यरूप से शृंगारिक है तथापि उसको कतिपय विद्वान् भक्तिकाव्य मानते हैं। **बिल्वमंगल** या **कृष्णलीलाशुक** के **कृष्णकर्णामृत** के विषय में भी यही बात है। इसके तीन विभागों में ३१० पद्य हैं। इसमें शृंगार का अंश उतना मुख्य नहीं है, जितना गीतगोविन्द में। वह मालाबार का निवासी माना जाता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार यह कवि और दार्शनिक विद्वान् ८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था और कुछ के मतानुसार वह १२वीं शताब्दी में हुआ था। इसके काव्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। इस काव्य की प्रसिद्धि देश भर में चारों ओर फैली है। बंगाल में चैतन्य के आन्दोलन की उत्पत्ति और विस्तार पर इस काव्य का बहुत प्रभाव पड़ा है।

द्वैत मत के प्रमुख आचार्य **आनंदतीर्थ**, प्रसिद्ध नाम **मध्व**, (११९९-१२७७ ई०) ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें उसका **द्वादशस्तोत्र** प्रसिद्ध गीतिकाव्य है।

वेदान्तदेशिक (१२६८-१३६९ ई०) ने २५ गीतिकाव्य लिखे हैं। इससे उसकी स्वाभाविक भक्ति और संस्कृत भाषा पर अधिकार का ज्ञान होता है। श्रीराम की पादुकाओं की स्तुति में एक सहस्र पद्यों से युक्त **पादुकासहस्र** नामक गीतिकाव्य उसने लिखा है। ऐसा माना जाता है कि अपने एक प्रतिस्पर्धी कवि की प्रतिस्पर्धा में उसने ये एक सहस्र पद्य एक ही रात्रि में बनाए हैं। यह गीतिकाव्य कवि की उच्च कल्पनाशक्ति से समन्वित सुन्दर रचना है। इसने गरुड़ पक्षी की स्तुति में **गरुड़दण्डक** लिखा है। श्रीराम की प्रशंसा में गद्यरूप में **रघुवीरगद्य** लिखा है। ये दोनों गीतिकाव्य लेखक की विभिन्न प्रकार की रचना की योग्यता को बताते हैं। उसने विष्णु की स्तुति में प्राकृत में १०० पद्यों से युक्त **अच्युतशतक** लिखा है। उसके अन्य गीतिकाव्य

आकार में छोटे हैं, परन्तु भाव और भाषा की उत्कृष्टता की दृष्टि से अन्य काव्यों के तुल्य ही महत्त्वपूर्ण हैं।

अप्पयदीक्षित काँची के निवासी थे। उनका जन्म १५५४ ई० में हुआ था। उसने विभिन्न विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उसका **वरदराजस्तव** काँची के देवता वरदराज की स्तुति के रूप में है। इसमें १०० पद्य हैं और उन पर लेखक की टीका भी है। इस गीतिकाव्य से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि लेखक मौलिकता और कल्पना की दृष्टि से प्रतिभाशाली और महान् कवि है।

नारायणभट्ट केरल के मेप्पथूर स्थान का निवासी था। वह सहृदय कवि था। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उसके अनेक ग्रन्थ हैं। उसके गीतिकाव्यों में **नारायणीयम्** सर्वोत्तम है। उसने यह १५८५ ई० में लिखा है, जब वह केरल के गुरुवायूर स्थान में कृष्ण की पूजा में लीन था और सहसा उसका गठिया का रोग आश्चर्यजनक रूप से अपने आप ठीक हो गया। नारायणीयम् श्रीकृष्ण की स्तुति के रूप में है। इसमें भागवतपुराण का संक्षेप है। इसमें १०३६ पद्य हैं। वे १२ स्कन्धों में बँटे हुए हैं। यह ग्रन्थ मालाबार में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है भागवत के तुल्य यह भी दैनिक पारायण के कार्य में आता है।

मधुसूदन सरस्वती (१६०० ई० के लगभग) ने **आनन्दमन्दाकिनी** नामक गीतिकाव्य लिखा है। इसमें श्रीकृष्ण का नखशिख वर्णन है। कृष्ण चैतन्य के शिष्य **रूपगोस्वामी** ने कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसके गीतिकाव्यों में **गन्धर्व-प्रार्थनाष्टक** और **मुकुन्दमुक्तावली** अधिक प्रसिद्ध हैं। **जगन्नाथ पण्डित** बादशाह शाहजहाँ का आश्रित कवि था। उसका समय १५९०-१६६५ ई० है। उसने पाँच गीतिकाव्य लिखे हैं--**सुधालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणालहरी** और **गंगालहरी**। सुधालहरी में सूर्य की स्तुति में ३० पद्य हैं। अमृतलहरी में यमुना नदी की स्तुति में १० पद्य हैं। लक्ष्मीलहरी में देवी लक्ष्मी की स्तुति में ४१ पद्य हैं। करुणालहरी का दूसरा नाम विष्णुलहरी

है। इसमें विष्णु की स्तुति में ४३ पद्य हैं। गंगालहरी का दूसरा नाम पीयूषलहरी है। इसमें गंगा नदी की स्तुति में ५२ पद्य हैं। इनमें से अन्तिम दो भाव और भाषा की दृष्टि से सर्वोत्तम हैं। **नीलकण्ठ दीक्षित** (१६५० ई०) ने दो गीतिकाव्य लिखे हैं—**आनन्दसागरस्तव** और **शिवोत्कर्षमंजरी**। प्रथम में पार्वती की भक्ति से प्राप्त आनन्द का वर्णन है और द्वितीय में सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में शिव का महत्त्व बताया गया है। **वेंकटाध्वरी** (१६५० ई०) ने **लक्ष्मीसहस्र** नामक गीतिकाव्य एक सहस्र पद्यों में लक्ष्मी और विष्णु की स्तुति के रूप में लिखा है। सभी पद्य बहुत कठिन हैं और लेखक की प्रयत्न-साध्य शैली को सूचित करते हैं। इनमें कल्पना बहुत उच्चकोटि की है। **रामभद्र दीक्षित** (१७०० ई०) श्री राम की भक्ति में अनुपम है। उसने राम की स्तुति में १० गीतिकाव्य लिखे हैं। इनमें से एक राम के बाण की स्तुति में **रामबाणस्तव** है। **अद्भुतसीतारामस्तोत्र** है, इसमें सीता और राम की स्तुति है। एक संन्यासी **नारायणतीर्थ** (१७०० ई०) ने १२ तरंगों में **कृष्णलीलातरंगिणी** नामक गीतिकाव्य लिखा है। इसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। ये पद्य वाद्य की सहायता से कई लय में गाए जा सकते हैं। **त्यागराज, श्यामशास्त्री** और **मुथुस्वामी दीक्षित** ये गत शताब्दी के दक्षिण भारत के संगीतज्ञों और गीतिकाव्यकारों की त्रयी हैं। ये अपने भावों की गम्भीरता, भक्ति की सात्विकता और भाषा की मधुरता के लिये प्रसिद्ध हैं।

— ——

अध्याय १५

नीति-विषयक और उपदेशात्मक काव्य

नीति-विषयक सूक्तियाँ अनुभव के आधार पर सिद्ध तथ्यों पर निर्भर होती हैं। साधारणतया वे आचार से सम्बद्ध विषयों का वर्णन करती हैं। उपदेशात्मक काव्यों का लक्ष्य उपदेश देना होता है। नीति-विषयक और उपदेशात्मक काव्यों में भेद पूर्णरूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है। उपदेशात्मक काव्य में नीति-विषयक सूक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं और नीति-विषयक काव्य में उपदेशात्मक सूक्तियाँ हो सकती हैं।

इस प्रकार का काव्य बहुत प्राचीन समय से विद्यमान है। इस प्रकार के काव्य के विकास में धर्म और दर्शनों का प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। बार-बार जन्म और मरण से जीवात्मा की मुक्ति के लिए सत्य के अन्वेषण की इच्छा प्रारम्भ हुई। सुख-दुःख का अध्ययन किया गया तथा उनका जीवन में स्थान निश्चित किया गया। उन्नति के मार्ग पर चलते हुए सद्गुणों और दुर्गुणों का मूल्य निर्धारित किया गया। जीवन की भलाई और बुराई तथा भले और बुरे व्यक्तियों पर विचार किया गया, जो मानव-जीवन को बहुत कुछ अंश में प्रभावित करते हैं। अतः इसके परिणाम-स्वरूप उदाहरणों के साथ सदाचार और दुराचार के नियम दिए गए। अतः ये काव्य सहनशीलता और भ्रातृभाव के विचारों का महत्व बताते हैं। मनुष्यों को पशुओं और पक्षियों के साथ भी प्रेम-भाव का उपदेश देते हैं। देखिए :—

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चण्डालवेश्मनः॥

अनासक्ति और संन्यास की प्रशंसा की गई है। इन सिद्धान्तों के समर्थन के लिए मानव और पशु-जगत से निःसंकोच उदाहरण लिए गए हैं। इस प्रकार

के काव्य-लेखकों ने सच्ची मित्रता, सदाचारिणी स्त्री और आत्म-बलिदान की बहुत प्रशंसा की है। दूसरी ओर दुर्गुणों के साधनों की बहुत तीव्र निन्दा की गई है। साधारणतया स्त्रियों की निन्दा की गई है। पाण्डित्य-प्रदर्शन और अवास्तविक अध्ययन की निन्दा की गई है। कृपणता और दीनता की त्रुटियों का उल्लेख किया गया है तथा इनका मनुष्यों और उनके जीवन पर क्या बुरा प्रभाव पड़ता है, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। भाग्य की अवश्यंभाविता का उदाहरणपूर्वक वर्णन किया गया है, किन्तु साथ ही यह भी बर्णन किया गया है कि मनुष्य को अपना उत्साह और प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिए और अवसर के अनुकूल कार्य करना चाहिए, क्योंकि पुरुषार्थ से ही भाग्य बनता है। देखिए :—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य निपतन्ति मुखे मृगाः॥

अतः इस प्रकार के काव्य में धर्म, दर्शन, सदाचार और राजनीति का वर्णन है। हिन्दू, बौद्ध और जैनों ने इस प्रकार के काव्य की समृद्धि के लिए पूर्ण प्रयत्न किया है। इस प्रकार की कविता को नीतिकाव्य कह सकते हैं।

गीतिकाव्य के तुल्य नीतिकाव्य भी विभिन्न प्रकार का है। नीतिकाव्य पद्यबद्ध हैं। परिमाण में वे एक श्लोक से लेकर कई श्लोकों से युक्त हैं। इनका वास्तविक प्रभाव डालने के लिए इनको कथाओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। इनमें से कुछ ऐसे श्लोक भी हैं, जो किसी पुस्तक में उपलब्ध नहीं होते हैं, परन्तु परम्परा के अनुसार प्राप्त हुए हैं। इस काव्य के इस प्रकार विकास का प्रभाव यह हुआ कि जो श्लोक इधर-उधर प्राप्त होते थे, उनको पुस्तकों में स्थान देकर पुस्तकाकार बना दिया गया। इन श्लोकों के अधिकांश लेखक अज्ञात हैं। एक ही श्लोक विभिन्न पुस्तकों में प्राप्त होता है।

इस प्रकार के काव्य का प्रारम्भ ऋग्वेद और ऐतरेय ब्राह्मण में दिखाई देता है। महाभारत इस प्रकार के श्लोकों से परिपूर्ण है। इस प्रकार के काव्य

का सर्वप्रथम संग्रह **चाणक्यशतक** है। इसमें ३४० श्लोक हैं। इसमें साधारणतया आचार-विषयक बातों का वर्णन है। यह स्पष्ट नहीं है कि अर्थशास्त्र का लेखक चाणक्य ही इसका लेखक है। **राजनीतिसमुच्चय** और **वृद्धचाणक्य** आदि ग्रन्थ भी इसी प्रकार के हैं। बौद्धों ने बौद्धधर्मावलम्बियों के लिए इस प्रकार का संग्रह **धम्मपद** नामक ग्रन्थ के रूप में किया है।

सुन्दरपाण्ड्य का **नीतिद्विषष्ठिका** ही सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जिसके विषय में निश्चित सूचना प्राप्त होती है। इसमें उपदेशात्मक ११६ श्लोक हैं। सुभाषित-ग्रन्थकारों ने इस ग्रन्थ से बहुत से श्लोक उद्धृत किए हैं, परन्तु उन्होंने इस ग्रन्थ का नामोल्लेख नहीं किया है। **जनाश्रय** (६०० ई०) ने इसकी एक पंक्ति अपने ग्रन्थ **छन्दोविचित** में उद्धृत की है। सुन्दरपाण्ड्य ने अन्य ग्रन्थ भी लिखे थे, परन्तु वे अब नष्ट हो गए हैं। **कुमारिल** (६५० ई०) और **शंकराचार्य** ने उनके अन्य ग्रन्थों के भी श्लोक उद्धृत किए हैं। वह मदुरा का निवासी था। उसका समय (५०० ई०) के लगभग है।[1] **शांतिदेव** (६०० ई० के लगभग) ने **बोधिचर्यावतार** ग्रन्थ लिखा है। इसमें बोधिसत्त्व (ज्ञानप्राप्ति के इच्छुक) के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। मनुष्यमात्र से प्रेम करने के महत्त्व पर विशेष बल दिया गया है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस पर प्राप्त होने वाली अनेक टीकाओं से ज्ञात होती है। उसने इसी प्रकार के अन्य दो ग्रन्थ **शिक्षासमुच्चय** और **सूत्रसमुच्चय** लिखे हैं। ये दोनों कम महत्त्व के हैं। **भर्तृहरि** ने **शृंगारशतक** के अतिरिक्त **नीतिशतक** और **वैराग्यशतक** भी लिखे हैं। इनमें से प्रथम में नीतिविषयक सौ श्लोक हैं और दूसरे में वैराग्यसम्बन्धी सौ श्लोक हैं। पाश्चात्य विद्वान् भर्तृहरि को तीनों शतकों का लेखक नहीं मानते हैं। इन तीनों शतकों का आजकल जो संस्करण मिलता है, उसमें बहुत से प्रक्षिप्त श्लोक मिलते हैं। साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से इस प्रकार के काव्य में नीतिशतक सर्वोत्तम ग्रन्थों में से एक है। वैराग्यशतक उत्कृष्ट शैली में लिखा गया है। इसमें इस

१. एम० आर० कवि लिखित नीतिद्विषष्ठिका की भूमिका।

बात पर बल दिया गया है कि मनुष्यों में साधारणतया प्राप्त होने वाले दुर्गुणों को दूर किया जाय। साथ ही इसमें शिव की भक्ति पर बल दिया गया है और संन्यास की प्रशंसा की गई है।

मोहमुद्गर, **शंकराचार्य** की रचना मानी जाती है। इसमें सांसारिक विषयों को छोड़ने और मायाजाल से मुक्त होने का उपदेश दिया गया है। इसमें नैतिक और दार्शनिक भाव हैं। शंकराचार्य के कुछ और ग्रन्थ इस प्रकार के माने जाते हैं। उनमें दार्शनिक भाव हैं और वे उपदेशात्मक हैं।

कश्मीर के राजा **जयापीड** (७७९-८१३ ई०) के आश्रित कवि **दामोदर-गुप्त** ने **कुट्टिनीमत** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसका दूसरा नाम **शम्भलीमत** है। इसमें ९२७ श्लोक हैं और यह अपूर्ण है। इसे वेश्याओं का शिक्षाग्रन्थ कह सकते हैं। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार वेश्याएँ मनुष्यों को अपने जाल में फँसावें और उन्हें धोखा दें। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस बात से ज्ञात होती है कि इसके बहुत से श्लोक सुभाषितग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं।

एक जैन लेखक **अमितगति** ने ९९४ ई० में **सुभाषितरत्नसन्दोह** और १०१४ ई० में **धर्मपरीक्षा** नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से प्रथम में ३२ अध्याय हैं। इसमें जैन साधुओं और साधारण जनों के लिए आचारविषयक नियम हैं। इसमें हिन्दुओं के देवताओं और हिन्दुओं के व्यवहारों पर बहुत कटु आक्षेप हैं। दूसरे ग्रन्थ में हिन्दू-धर्म की अपेक्षा जैन-धर्म की उत्कृष्टता बताई गई है।

क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने नीतिविषयक और उपदेशात्मक कई ग्रन्थ लिखे हैं। इसके ग्रन्थ **चारुचर्या** में १०० श्लोक हैं। इसमें लेखक ने सुन्दर व्यवहार के लिए आवश्यक नियमों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। चतुर्वर्ग-संग्रह में जीवन के उद्देश्यस्वरूप चारों चीजें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का बड़ी सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया है। सेव्यसेवकोपदेश में ६१ श्लोक हैं। इसमें स्वामी और सेवक दोनों को व्यंग्यात्मक ध्वनि में उपदेश दिया गया है।

भूमिशायी निराहारः शीतवातातपक्षतः।
मुनिव्रतोऽपि नरककलेशमश्नाति सेवकः॥

समयमातृका में आठ अध्याय हैं। इसमें वेश्याओं के प्रपंचों का वर्णन है। **कलाविलास** में १० अध्याय हैं। इसमें जनता के अपनाये गये आजीविका के विभिन्न साधनों का वर्णन है। इसमें जनता के एक विभाग के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले छल-प्रपंचों और धूर्तताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। **दर्पदलन** में सात अध्याय हैं। इसमें वर्णन किया गया है कि दर्प किसी भी रूप में क्यों न हो, उसका निरादर करना चाहिए और इसके समर्थन में कथाएँ भी दी हैं। देखिए :—

कुलं वित्तं श्रुतं रूपं शौर्यं दानं तपस्तथा।
प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैते मदहेतवः॥

जैन लेखक हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) ने **योगशास्त्र** लिखा है। इसमें जैनों के कर्तव्यों का तथा जैन साधुओं के द्वारा अपनाये जाने वाले कठोर नियमों का वर्णन किया गया है। **सोमप्रभालविलास** के **लेखक जल्हण** (११५० ई०) ने **मुग्धोपदेश** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने वेश्याओं के छल-प्रपंचों से बचने की शिक्षा दी है। **शिल्हण** (१२०५ ई०) ने **शान्तिशतक** लिखा है। **सदुक्तिकर्णामृत** (१२०५ ई०) में उसके इस ग्रन्थ का उद्धरण दिया गया है। यह भर्तृहरि के नीतिशतक और वैराग्यशतक के अनुकरण पर लिखा गया है। इसमें लेखक ने मानसिक शान्ति की प्राप्ति पर विशेष बल दिया है और उल्लेख किया है कि प्रत्येक व्यक्ति इसका अभ्यास करे। **सोमप्रभ** ने १२७६ ई० में **शृंगारवैराग्यतरंगिणी** लिखा है। इसमें स्त्रियों के संसर्ग से हानियाँ और वैराग्य के लाभों का वर्णन है।

वेदान्तदेशिक (१२६८-१३६९ ई०) ने **सुभाषितनीवी** ग्रन्थ लिखा है। इसमें १४५ सुभाषित श्लोकों का संग्रह है। ये श्लोक १२ पद्धतियों (अध्यायों) में बँटे हुए हैं। यह भर्तृहरि के नीतिशतक के अनुकरण पर लिखा गया है। उसने एक दूसरा काव्य **वैराग्यपंचक** लिखा है। इसमें उसने वैराग्य का वर्णन

किया है, जिसका उसने स्वयं अभ्यास किया था। **कुसुमदेव** ने दृष्टान्तशतक लिखा है। **वल्लभदेव** (१५०० ई०) ने उसका उल्लेख किया है। अतः वह इस समय से पूर्व हुआ है। उसने इस ग्रन्थ में जीवन के आदर्शों का उदाहरणों के साथ वर्णन किया है। **द्याद्विवेद** ने १४९४ ई० में **नीतिमंजरी** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने नीति की बातों का वर्णन किया है और उसके लिए उदाहरण ऋग्वेद, सायण के वेदभाष्य और बृहद्देवता आदि से लिए हैं। कतिपय स्थलों पर उसने वेद के मन्त्रों को उद्धृत किया है और उनकी व्याख्या भी की है।

जगन्नाथ पण्डित (१५९०-१६६५ ई०) ने **भामिनीविलास** लिखा है। इसमें चार भाग हैं। इनमें क्रमशः अन्योक्ति, शृङ्गार, करुण और शान्त रस का वर्णन है। इनमें क्रमशः १०१, १००, १९ और ३२ श्लोक हैं। ये श्लोक भाव और ओज से परिपूर्ण हैं। तृतीय भाग में करुणरस का प्रवाह है। इस भाग में एक स्थान पर भामिनी शब्द का प्रयोग आता है। इसके आधार पर यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि संभवतः लेखक की पत्नी का नाम भामिनी था और उसके स्वर्गवास के दुःख में उसने अपने भाव इन श्लोकों में प्रकट किए हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसने इस ग्रन्थ का नाम उसके आधार पर ही भामिनीविलास रक्खा है। अन्तिम भाग में लेखक ने जीवात्मा से अनुरोध किया है कि वह शान्त रस को अपनावे। इस भाग के द्वारा ज्ञात होता है कि लेखक कितना उच्चकोटि का भावुक कवि था।

नीलकण्ठ दीक्षित (१६५० ई०) ने चार काव्यग्रन्थ लिखे हैं—**कलिविडम्बन, सभारञ्जनशतक, शान्तिविलास** और **वैराग्यशतक**। कलिविडम्बन कलियुग की घटनाओं पर एक व्यंग्यप्रधान काव्य है। देखिए :—

यत्र भार्यागिरो वेदाः यत्र धर्मोऽर्थसाधनम्।
यत्र स्वप्रतिभा मानं तस्मै श्रीकलये नमः॥

सभारंजनशतक में बताया गया है कि किस प्रकार विद्वन्मण्डली को तथा राजसभा के व्यक्तियों को प्रसन्न करना चाहिए। यह व्यंग्योक्तियों से पूर्ण है। देखिए :—

जानाते यत्र चन्द्रार्कौ जानते यत्र योगिनः ।
जानीते यत्र भर्गोऽपि तज्जानाति कवि स्वयम् ।।

शान्तिविलास में ५१ श्लोक हैं। इसमें मानसिक शान्ति के लाभ बताए गए हैं। वैराग्यशतक में वैराग्य का जीवन बिताने के लाभ बहुत बल के साथ बताए गए हैं। **गुमानि** कवि ने **उपदेशशतक** लिखा है। इसमें मनुष्यों के लिये उपदेशात्मक १०० श्लोक हैं। **वेंकटाध्वरी** (१६५० ई०) का **सुभाषितकौस्तुभ** भी इसी प्रकार के वर्णन से युक्त है।

अन्योक्ति या अन्यापदेश उस काव्य को कहते हैं, जिसमें जीवन से संबद्ध किसी तथ्य का वर्णन अप्रत्यक्ष रूप से किया गया हो। उसमें किसी वस्तु या किसी काल्पनिक व्यक्ति का नाम देकर वर्णन किया जाता है। वह बात सामान्य रूप से सब पर लागू हो सकती है। कश्मीर के राजा शंकरवर्मा (८८३-९०२ ई०) के आश्रित कवि **भल्लट** ने इस प्रकार का सर्वप्रथम काव्य लिखा है। **भल्लटशतक** की भाषा सरल है। इन श्लोकों में स्वतंत्र विचार का भाव स्पष्ट दिखाई देता है। सुभाषित ग्रन्थों में इसके श्लोक उद्धृत किए गए हैं। देखिए :—

अन्तश्छिद्राणि भूयांसि कण्टका बहवो बहिः ।
कथं कमलनालस्य मा भूवन् भंगुरा गुणाः ।।

कश्मीर के राजा **हर्ष** (१०८९-११०१ ई०) के आश्रित कवि **शम्भु** ने **अन्योक्तिमुक्तालता** नामक काव्य लिखा है। इसमें अन्योक्ति की पद्धति के १०८ श्लोक हैं। जगन्नाथ पण्डित के भामिनीविलास के प्रथम भाग को अन्यापदेशशतक भी कहते हैं।

नैर्गुण्यमेव साधीयो धिगस्तु गुणगौरवम् ।
शाखिनोऽन्ये विराजन्ते खण्ड्यन्ते चन्दनद्रुमाः ।।

नीलकण्ठ दीक्षित का **अन्योक्तिशतक** या **अन्यापदेशशतक** लेखक की उच्च कल्पनाशक्ति का परिचय देता है। यह काव्य सर्वश्रेष्ठ अन्योक्ति-काव्यों में से एक है। **वीरेश्वर** (समय अज्ञात) का **अन्योक्तिशतक** इसी प्रकार के भाव से युक्त है।

अध्याय १६

सुभाषित-ग्रन्थ

सुभाषित-ग्रन्थ कवियों का समय-निर्धारण करने और उनके ग्रन्थों के निर्णय करने में बहुत सहायक होते हैं। इन ग्रन्थों में विभिन्न कवियों के रचित श्लोक विषयों के अनुसार संग्रह किये जाते हैं। ये श्लोक काव्यग्रन्थों, गीतिकाव्यों और सामान्य संग्रहों से लिए जाते हैं। कुछ सुभाषित-ग्रन्थों में लेखकों के नाम भी दिए हुए होते हैं कि यह श्लोक अमुक कवि की रचना है। इन ग्रन्थों में जो श्लोक जिस कवि के नाम से दिए हुए हैं, उनमें से कुछ श्लोक आजकल के मुद्रित संस्करणों में प्राप्त नहीं होते हैं। इन सुभाषित-ग्रन्थों के आधार पर ही आजकल प्रयत्न किया जा रहा है कि कतिपय कवियों और उनके काव्यों का निर्धारण किया जा सके। अतः ये सुभाषित-ग्रन्थ कवियों के वंशानुक्रम और काल के निर्धारण में बहुत सहायक हैं।

इस प्रकार के श्लोकों का सबसे प्राचीन संग्रह गाथासप्तशती है। इसमें महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित सात सौ श्लोक हैं। इसमें शृंगार-विषयक प्राचीन लेखकों के रचित श्लोक संग्रह किए गए हैं। इन श्लोकों में से कुछ प्रवरसेन, मायुराज, हाल आदि की रचनाएँ हैं। इस ग्रन्थ में इसका लेखक हाल कवि बताया गया है। बाण ने हर्षचरित में इसको सातवाहन की रचना मानी है।[1] सातवाहन का प्राकृत रूप शालिवाहन है। यह आन्ध्रभृत्य राजाओं का पारिवारिक नाम था। सातवाहन राजाओं ने महाराष्ट्र में ७३ ई० पू० से लेकर २१८ ई० तक राज्य किया है।[2] इन राजाओं में से

---

१. अविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहनः।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः॥ हर्षचरित की भूमिका में बाण, श्लोक १३।

२. The Collected Works of Bhandarkar, भाग ३, पृष्ठ ५१ और ५२

सातवाहनवंशी एक हाल नामक राजा ने ७८ ई० पू० के लगभग राज्य किया है। उसने प्राकृत में गीतरूप में कुछ श्लोक बनाए होंगे और कुछ ऐसे श्लोकों का संग्रह किया होगा अथवा अपने आश्रित किसी कवि के द्वारा अपने से पूर्व के प्राप्त श्लोकों को क्रमबद्ध कराया होगा और उसको अपने पारिवारिक नाम सातवाहन के नाम से प्रसिद्ध किया होगा। आन्ध्रभृत्य राजा विद्वानों के आश्रयदाता थे और उन्होंने प्राकृत साहित्य को भी आश्रय दिया था। अतः गाथासप्तशती का समय प्रथम शताब्दी ई० में समझना चाहिए। इस सप्तशती में शृङ्गार के विभिन्न अंगों का विस्तृत और वास्तविक रूप प्रस्तुत किया गया है। इन श्लोकों में कोमलता और भाव-सौन्दर्य विद्यमान है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि इस सप्तशती के निर्माण के बाद बहुत से परिवर्तन हुए है।

संस्कृत श्लोकों का सर्वप्रथम सुभाषित-संग्रह '**कवीन्द्रवचनसमुच्चय**' है। इस ग्रन्थ की नेपाली भाषा में प्राप्त हस्तलिपि १२वीं शताब्दी ई० की है। इसमें सबसे बाद का कवि **राजशेखर** (९०० ई०) है, जिसका उद्धरण दिया गया है। अतः इस ग्रन्थ का समय १००० ई० के लगभग मानना चाहिए। इसमें प्राचीन लेखकों के ५२५ श्लोकों का संग्रह है। इसके लेखक का नाम प्राप्त नहीं होता है।

चालुक्य सम्राट् विक्रमादित्य द्वितीय के पुत्र **सोमेश्वर** ने ११३१ ई० में **अभिलषितार्थचिन्तामणि** लिखा है। इसका दूसरा नाम मानसोल्लास भी है। इसमें विभिन्न विषयों पर बहुत सामग्री प्राप्त होती है। इसमें पाँच भाग हैं। इसमें राजाओं के रहने की विधि, उनके मनोरंजन की वस्तुओं आदि का वर्णन है। इसमें मनोरंजन की सभी चीजों का वर्णन है। "इन विषयों के साथ ही संस्कृत में प्राप्त ज्ञान और कला का ऐसा कोई भी विभाग शेष नहीं रह गया है, जिसके प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन इसमें उपलब्ध न होता हो। इसमें राज्य-व्यवस्था, गणित और फलित ज्योतिष, तर्कशास्त्र,

साहित्यशास्त्र, काव्य, संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, वैद्यक, घोड़े, हाथी और कुत्ते आदि की शिक्षा इत्यादि सभी विषयों का वर्णन है।"[1]

गोवर्धन बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (११६९ ई०) का आश्रित कवि था। उसने गाथासप्तशती के अनुकरण पर संस्कृत के सातसौ श्लोकों का संग्रह किया और उनको अकारादि-अनुक्रम से रखा। ये सभी श्लोक आर्या छन्द में हैं और इनमें शृङ्गार विषय का वर्णन है। इसका नाम **आर्यासप्तशती** है।

वटुदास के पुत्र **श्रीधरदास** ने **सदुक्तिकर्णामृत** लिखा है। उसने यह ग्रन्थ लक्ष्मणसेन के राज्यकाल में लिखा है। उसने अपने इस ग्रन्थ का रचनाकाल १२०५ ई० दिया है। उसने ४४६ कवियों के २३६८ श्लोक उद्धृत किये हैं। इन कवियों में अधिकांश बंगाल के हैं। यादव राजा कृष्ण (१२४७-१२६० ई०) के मन्त्री कवि **जल्हण** ने १२५७ ई० में एक सुभाषित-ग्रन्थ **सूक्तिमुक्तावली** लिखा है। उसने २४३ कवियों के २७९० श्लोक उद्धृत किए हैं। भूमिका में उसने ग्रन्थ की विषय-सूची भी दी है। **जयवल्लभ** कृत **प्राकृत वज्जालग्गम** की रचना उसी समय की है।

कलिङ्गरायसूर्य का **सूक्तिरत्नहार** १४वीं शताब्दी पूर्वार्ध की रचना है। **सायण** विजयनगर राज्य के चार राजाओं – कम्पस, संगम द्वितीय, बुक्क प्रथम और हरिहर द्वितीय का मन्त्री था। उसने वेदों की टीका लिखी है। वह १३५० ई० के लगभग जीवित था। उसने एक सुभाषित-ग्रन्थ **सुभाषित-सुधानिधि** लिखा है। इसमें उसने प्रसिद्ध लेखकों की सूक्तियों का संग्रह किया है। अपने भाई भोगनाथ की सूक्तियों का भी उसने इसमें संग्रह किया है।

दामोदर के पुत्र **शार्ङ्गधर** ने १३६३ ई० में **शार्ङ्गधरपद्धति** लिखी है। इसमें १६३ विभागों में विभक्त ४६८९ श्लोक हैं। इसने २६४ कवियों के

१. The Collected Works of R. G. Bhandarkar भाग ३, पृष्ठ १२४।

गन्थों से सूक्तियाँ एकत्र की हैं। उसने अपनी भी सूक्तियाँ इसमें दी हैं। इसे उसने १६३ अनुभागों में क्रमबद्ध किया है। **सकलकीर्ति** की लिखी हुई **सुभाषितावलि** की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती है। यह ज्ञात नहीं है कि यह सकलकीर्ति जैन विद्वान् सकलकीर्ति ही है, जो १४५० ई० के लगभग जीवित था।

पोतयार्य ने १४६६ ई० में **प्रसंगरत्नावलि** लिखी है। यह विभिन्न विषयों पर श्लोकों का संग्रह है। जोनराज के शिष्य **श्रीवर** ने १४८० ई० के लगभग **सुभाषितावलि** लिखी है। उसने उसमें ३८० से अधिक कवियों के श्लोक उद्धृत किए हैं। इसी समय के लगभग **वल्लभदेव** ने **सुभाषितावलि** लिखी है। यह १०१ भागों में विभक्त है। इसमें ३५२७ श्लोक हैं। ये ३५० से अधिक कवियों की रचनाओं से लिए गए हैं। इनमें से अधिकांश उत्तरी भारत के हैं। कृष्णचैतन्य के शिष्य **रूपगोस्वामी** (१५०० ई०) ने **पद्यावली** ग्रन्थ लिखा है। इसमें १२५ कवियों के ३८६ श्लोक उद्धृत हैं। इसमें उसने वे श्लोक रखे हैं, जो श्रीकृष्ण की पूजा का महत्त्व बताते हैं **पेड्डभट्ट** ने १५०० ई० के लगभग **सूक्तिवारिधि** लिखा है। हरिकवि ने **सुभाषितहारावलि** लिखी है। इसमें उसने पूर्ववर्ती और समकालीन कवियों के श्लोक उद्धृत किए हैं। उसने **जगन्नाथ पण्डित** के भी श्लोक उद्धृत किए हैं, अतः उसका समय १७०० ई० के लगभग मानना चाहिए।

शिवाजी के पुत्र **शम्भु** ने १६६० ई० के लगभग **बुधभूषण** ग्रन्थ लिखा है। इसमें तीन भागों में ८८३ श्लोक हैं। **डा० बार्टलिक** ने १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के छटे हुए लगभग ८००० श्लोक एकत्र किए और उनको आलोचनात्मक पद्धति से संकलन करके उनका जर्मन भाषा में गद्य में अनुवाद किया। इस ग्रन्थ का नाम है—**इण्डिशे स्प्रूखे** (भारतीय सूक्तियाँ)। **हरिभास्कर** का संगृहीत सुभाषित-ग्रन्थ **पद्यामृततरंगिणी** है। इसका समय अज्ञात है। **शिवदत्त** के किए हुए सुभाषितसंग्रह का नाम **सुभाषितरत्नभाण्डागार** है।

अध्याय १७

गद्य-काव्य

अपद्यबद्ध रचना को गद्य कहते हैं ।[1] कृष्णयजुर्वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक आदि, वेदांग तथा प्राचीन विज्ञान-विषयक ग्रन्थ गद्य में ही हैं। वैदिक-काल के बाद श्रेण्यकाल में गद्य से पूर्व पद्य का समय आता है । रामायण, महाभारत और पुराण पद्यरूप में हैं। पद्यबद्ध रचना को स्मरण करना सरल होता है, गद्य की रचना को नहीं । अतः श्रेण्यकाल के प्रारम्भिक काल में गद्य को साहित्यिक काव्य नहीं माना गया था। इस समय पद्यबद्ध काव्यों को ही काव्य माना गया था । आलोचक पद्यात्मक काव्यों को रुचिकर मानते थे, अतः उन्होंने गद्य-काव्य को आदर नहीं दिया । अतः कवियों के लिए पद्य की अपेक्षा गद्य की रचना करना अधिक कठिन था । गद्य की सुन्दर रचना के लिए असाधारण कौशल की आवश्यकता थी । अतएव कहा गया था कि—

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति ।

अर्थात् गद्य कवियों के लिए कसौटी है । आलोचक यह चाहते थे कि गद्य का स्तर बहुत ऊँचा हो, अतः उनको सन्तुष्ट करने के लिए गद्य-लेखकों को यह आवश्यक हो गया कि वे गद्य में कुछ विशेष बातों को स्थान दें। इसके लिए लम्बे-लम्बे समास और विशेषणों की परम्परा को स्थान दिया गया । वर्णनों में वाक्य आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गए। परिणाम यह हुआ कि थोड़ी कथा, अधिक वर्णन और गतिशीलता का अभाव गद्य की प्रमुख विशेषता हो गई।

गद्य-काव्य मुख्य रूप से दो प्रकार का माना गया है—कथा और आख्यायिका । कथा को उपविभागों में बाँटा जाता है, इन्हें लम्बक कहते

---

१. अपादः पदसन्तानो गद्यम् । दण्डी, काव्यादर्श १. २३ ।

हैं। इसमें आर्या छन्द में पद्य होते हैं। आख्यायिका को उच्छ्वास नामक उपविभागों में बाँटते हैं। इसमें वक्त्र और अपवक्त्र नामक छन्दों में श्लोक होते हैं। इसमें कुमारियों का हरण, युद्ध आदि दृश्य होते हैं। इसमें लेखक कुछ ऐसा चिह्न रखता है, जिससे यह पहचाना जा सके कि यह रचना अमुक लेखक की है। आख्यायिका आत्मकथा के रूप में होती है और कथा का वर्णन करने वाला लेखक भी हो सकता है तथा अन्य कोई भी हो सकता है। यह ज्ञात नहीं है कि कब यह अन्तर किया गया था। सबसे प्राचीन आलोचक दण्डी (७०० ई०) ने इस अन्तर का उल्लेख किया है और इस अन्तर की हँसी उड़ाई है। उसने यह मत प्रकट किया है कि कथा और आख्यायिका में वास्तविक कोई अन्तर नहीं किया जा सकता है। ये दोनों ही गद्य-साहित्य के एक विशेष प्रकार के विभिन्न नाम हैं। इन दोनों में जो अन्तर किया गया है, उसका पालन नहीं किया जा सकता है। जो ग्रन्थ अब तक प्राप्त हैं, उनके देखने से ज्ञात होता है कि इस अन्तर का पालन नहीं के बराबर हुआ है। अधिकांश में इस अन्तर की उपेक्षा ही की गई है। तथापि आलोचकों ने गद्य के उपर्युक्त दो विभाग किए हैं। यह प्रयत्न किया गया कि इन दोनों का यह अन्तर माना जाय कि आख्यायिका वास्तविक घटना पर निर्भर हो और कथा का विषय काल्पनिक हो। गद्य के आख्यान, परिकथा, खण्डकथा आदि कई भेद हैं। इनमें बहुत थोड़ा अन्तर है।

पतंजलि के **महाभाष्य** (१५० ई० पू०), **रुद्रदामन्** के शिलालेख (१५० ई०) और **हरिषेण** (३४५ ई०) के शिलालेख आदि से ज्ञात होता है कि श्रेण्यकाल के बहुत प्रारम्भिक काल से गद्य का प्रयोग होने लगा था। रुद्रदामन् और हरिषेण के शिलालेख बहुत सुन्दर और अलंकृत भाषा में लिखे गए हैं। इन दोनों शिलालेखों की शैली बाण आदि (७वीं शताब्दी ई०) की शैली से बहुत मिलती है। पतंजलि ने महाभाष्य में **वासवदत्ता**, **सुमनोत्तरा** और **भैमरथी**, इन गद्य-ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इनमें से प्रथम

दो आख्यायिका हैं।[1] यह कहा जाता है कि **वररुचि** ने **चारुमती** नामक गद्य-ग्रन्थ लिखा है। **रामिल** और **सौमिल** शूद्रककथा के रचयिता माने जाते हैं। उसी नाम के एक अन्य ग्रन्थ का सम्बन्ध **भोज** (१००५–१०५४ ई०) कृत **पञ्चाशिका** से लगाया जाता है। यह ज्ञात नहीं है कि यह ग्रन्थ, जिसका चिह्न 'आनन्द' है, दूसरी शूद्रककथा से अभिन्न है या नहीं। **शातकर्णीहरण, मनोवती** और **तरंगवती** ये भी गद्य-ग्रन्थ हैं। ये आन्ध्रभृत्य राजाओं के निरीक्षण में लिखे गए थे। इनमें से कुछ प्राकृत में हो सकते हैं। बाण ने **भट्टार हरिचन्द्र** और **आढ्यराज** को प्रमुख गद्यलेखक माना है। ये सब ग्रन्थ आजकल प्राप्य नहीं हैं।

बाण ही सर्वप्रथम गद्यलेखक है, जिसके ग्रन्थ अब तक प्राप्य हैं। वह **हर्षचरित** और **कादम्बरी** का लेखक है। उक्त प्रथम ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि बाण श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न चित्रभानु का पुत्र था। उसका वंश वात्स्यायन वंश है। वह सोन नदी के किनारे पृथुकूट नामक ग्राम का वासी था। वह जब बालक था, तभी उसकी माता का स्वर्गवास हो गया था और जब वह चौदह वर्ष का हुआ, तब उसके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह सारे देश में घूमा। उसके इस यात्रा के साथी सभी प्रकार के व्यक्ति थे। वह जब घर लौटा, तब वह विद्या और अनुभव में समृद्ध हो गया था। एक दिन उसे हर्षवर्धन के राजद्वार में पहुँचने का निमन्त्रण मिला। तदनुसार वह हर्ष के राजद्वार में गया और वहाँ उसका सम्मान हुआ और वह राजकवि बना दिया गया। राज-सम्मान प्राप्त करने के कई वर्ष बाद वह घर लौटा और सुखपूर्वक रहने लगा। बाण ने हर्षचरित में अपने विषय में ये बातें लिखी हैं। उसके बाद के जीवन के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है। हर्ष ६०६ ई० में गद्दी पर बैठा। इस समय के बाद ही बाण राजा हर्ष के राजद्वार में आश्रित कवि हुआ होगा। अतः उसकी रचनाओं का समय सातवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध मानना चाहिए।

---

१. महाभाष्य ४-२-६०।

बाण ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—दो गद्य-ग्रन्थ—**हर्षचरित** और **कादम्बरी**, एक **चण्डीशतक** नामक गीतिकाव्य और एक ग्रन्थ **मुकुटताडितक**। मुकुटताडितक नष्ट हो गया है, अतः इसका विषयादि अज्ञात है। आलोचकों ने बाण को रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द इन तीन नाटकों का भी रचयिता माना है। तीनों नाटक राजा हर्ष की रचना माने जाते हैं। बाण उच्चकोटि का एवं परिष्कृत गद्य-लेखक है। उसके पद्य सौन्दर्य और कल्पना की दृष्टि से उतने उच्चकोटि के नहीं हैं। इसका समर्थन चण्डीशतक करता है। उपर्युक्त तीनों नाटकों में श्लोक अपेक्षाकृत सरल और अलंकृत हैं। इन पर बाण का प्रभाव दिखाई नहीं देता है। अतः इन तीनों नाटकों को बाण की रचना मानना उचित नहीं है। यह कथन कि हर्ष ने बहुत धन देकर अपने नाम से ये ग्रन्थ बाण से लिखवाए हैं, सर्वथा निराधार है। यदि बाण ने धन के लिए ग्रन्थरचना की होती तो वह कादम्बरी को ही हर्ष के नाम से लिखता और इसके द्वारा बहुत धनराशि प्राप्त करता।

बाण के दो गद्य-ग्रन्थों में से हर्षचरित प्रारम्भिक रचना है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम दो उच्छ्वासों और तृतीय के कुछ भाग में बाण ने आत्मकथा दी है। उसने तृतीय उच्छवास में हर्ष के वंश के आदिपुरुष पुष्पभूति का उल्लेख किया है। अवशिष्ट अध्यायों में उसने प्रभाकरवर्धन का जीवन, हर्ष और उसके बड़े भाई राज्यवर्धन और उसकी छोटी बहन राज्यश्री की उत्पत्ति और विकास का वर्णन किया है। राज्यश्री का विवाह मौखरी राजा ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। प्रभाकरवर्धन के स्वर्गवास के बाद ही मालवा के राजा ने ग्रहवर्मा का वध कर दिया था। राज्यवर्धन ने मालवा के राजा पर आक्रमण किया और उसका वध कर दिया, किन्तु मार्ग में ही गौड़ राजा ने उसके शिविर में ही उसका धोखे से वध कर दिया। हर्ष ने गौड़ राजा के विरुद्ध प्रस्थान किया, किन्तु मार्ग में राज्यश्री के अज्ञात स्थान पर चले जाने का समाचार सुनकर उसने उसको ढूंढ़ा और उसको ग्रहवर्मा के मित्र एक बौद्ध संन्यासी की देख-रेख में रखकर गौड़ राजा की ओर प्रस्थान किया। यह कथा अपूर्ण रूप से यहीं पर बाण ने समाप्त कर दी है।

इस ग्रन्थ को यहीं पर अपूर्ण रूप में समाप्त करने का कारण अज्ञात है। इस विषय में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि हर्ष ने बौद्धों को जो आदर दिया है, उसको बाण ने उचित नहीं समझा। दूसरा विचार यह है कि जब बाण यह ग्रन्थ लिख रहा था, उस समय पुलकेशी द्वितीय के आक्रमण के कारण उसके आश्रयदाता हर्ष को बहुत क्षति पहुँची थी। बाण ने अपने आश्रयदाता के विषय में इन दुर्घटनाओं का उल्लेख उचित नहीं समझा होगा, अतः उसने आगे की घटनाएँ नहीं लिखीं। कुछ विद्वानों ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि बाण के स्वर्गवास के कारण वह इसको पूर्ण नहीं कर सका। उपर्युक्त सभी विचार केवल कल्पनामात्र हैं, अतः विशेष ध्यान देने योग्य नहीं हैं।

यह ग्रन्थ बाण के पूर्ववर्ती कवियों का समय-निर्धारण करने के लिए बहुत ही उपयोगी है। उसके प्रारम्भिक श्लोकों में निम्नलिखित कवियों और ग्रन्थों का उल्लेख है—वासवदत्ता, भट्टार हरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा और आढ्यराज।

कादम्बरी एक प्रेमाख्यान है। इसमें कादम्बरी और चन्द्रापीड तथा महाश्वेता और पुण्डरीक इन दोनों युगलों के प्रेम का वर्णन है। बाण इस ग्रन्थ को अपूर्ण छोड़कर दिवंगत हुआ। शेष अंश को उसके पुत्र भूषण बाण ने पूर्ण किया।[1] एक शाप के कारण पुण्डरीक का स्वर्गवास हो जाता है और वह वैशम्पायन नाम से उत्पन्न होता है तथा चन्द्रापीड का मित्र होता है। दैवगति से चन्द्रापीड और वैशम्पायन का स्वर्गवास होता है और चन्द्रापीड राजा शूद्रक के रूप में उत्पन्न होता है तथा वैशम्पायन तोते के रूप में उत्पन्न होता है और उनका नाम वही रहता है। कादम्बरी और महाश्वेता सखियाँ हैं। कादम्बरी का चन्द्रापीड से और महाश्वेता का पुण्डरीक से प्रेम होता है। आकाशवाणी होती है कि उनका अपने प्रेमियों से पुनर्मिलन होगा। एक दिन तोता वैशम्पायन राजा शूद्रक की सभा में लाया गया और उसने पूर्व जन्म की सारी बातें उसको

१. कादम्बरी उत्तर भाग भूमिका—श्लोक ४।

बताई, जैसा कि जाबालि ऋषि ने उसे बताया था। जाबालि ऋषि की कृपा से तोता वैशम्पायन ने अपने पूर्व जन्म की सारी कथा कही और फिर पुण्डरीक हो गया। राजा शूद्रक ने यह कथा सुनी और वह चन्द्रापीड हो गया। ये दोनों अपने प्रियाओं से मिले और इनका विवाह-समारोह विशेष आयोजन के साथ हुआ।

बाण के स्वर्गवास के कारण ही कादम्बरी अपूर्ण रह गई। कादम्बरी अवश्य ही हर्षचरित के बाद में लिखी गई है। दोनों ग्रन्थों की शैली की तुलना से ज्ञात होता है कि कादम्बरी की शैली अधिक परिष्कृत और परिमार्जित है। यदि कादम्बरी पहली रचना होती तो बाण के लिए यह सम्भव न होता कि वह कम परिष्कृत शैली में बाद के ग्रन्थ को लिखता।

ये दोनों ग्रन्थ भारत की ७वीं शताब्दी ई० की सामाजिक स्थिति के ज्ञान के लिए बहुत उपयोगी हैं। बाण ने अपनी यात्राओं के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया था, उससे वह प्रत्येक स्थान की रीति और प्रथाओं को बहुत सूक्ष्मता के साथ देखता था। उसने उन सबका बहुत विस्तार और सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया है। अतः उसके वनों और नगरों के दृश्यों के वर्णन, राजप्रासादों, सेना-शिविरों, ऋषियों और उनके जीवन के वर्णन बहुत वास्तविक हैं। उसने मानव-हृदय की चेष्टाओं का बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। बाण की इस प्रतिभा का ज्ञान चन्द्रापीड को प्रथम बार देखकर कादम्बरी के हृद्भावों के वर्णन, प्रभाकरवर्धन का स्वर्गवास और उसका हर्षवर्धन पर प्रभाव, ग्रहवर्मा के वध पर हर्ष की प्रतिक्रिया आदि के वर्णनों से प्राप्त होता है।

साहित्यिक दृष्टिकोण से कादम्बरी हर्षचरित से उत्कृष्ट है। बाण ने विशेष रूप से कादम्बरी पर अपनी निरीक्षण-शक्ति का सर्वस्व, कल्पना और उत्प्रेक्षा का सारा भण्डार और सहानुभूति की सारी भावना लगा दी है। कादम्बरी गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित प्रतीत होती है। इसमें बाण ने अपनी प्रतिभा के प्रकाशन का बहुत स्वाधीन मार्ग अपनाया है। हर्षचरित

वास्तविक घटनाओं पर आश्रित है, अतः उसमें बाण को अपनी प्रतिभा के प्रकाशन का उत्तम अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। कादम्बरी भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टि से हर्षचरित से उत्कृष्ट है। अतएव यह उचित ही कहा गया है कि 'कादम्बरी के रसज्ञों को भोजन भी अच्छा नहीं लगता'।

कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।।

बाण की रचनाएँ पाँचाली रीति में हैं। पांचाली रीति के सर्वश्रेष्ठ कवियों में बाण और कवयित्री **शीलाभट्टारिका** का नाम उल्लिखित है।[1] शीलाभट्टारिका का कोई ग्रन्थ आजकल प्राप्त नहीं है। बाण की शैली की कई प्रमुख विशेषताएँ हैं। उसने समासों का बहुत प्रयोग किया है। समासों का अस्तित्व गद्यशैली की प्रमुख विशेषता मानी गई है।[2] बाण ने अपने ग्रन्थों की रचना साहित्यिकों के द्वारा निर्धारित नियमों का पूर्णतया पालन करते हुए की है। श्लेष और विरोधाभास के कठिन प्रयोगों के होते हुए भी उसकी कविता का महत्व नहीं घटा है। यहाँ पर यह स्मरण रखना उचित है कि संस्कृत साहित्य के आलोचकों ने बहुत से कवियों की रचनाओं की बहुत कटु समालोचना की है, किन्तु बाण और कुछ थोड़े से कवि ऐसे हैं, जो उन आलोचकों की कठोरतम परीक्षा में सफल हुए। बाण का शब्दकोष असाधारण रूप से विशाल है। उसने बहुत लम्बे वाक्यों के पश्चात् सहसा छोटे-छोटे वाक्य दिए हैं। उसने वर्णनों में लम्बे समासों का प्रयोग किया है, परन्तु वार्तालाप में ऐसे लम्बे समासों का सर्वथा अभाव है। अतएव उसकी शैली सन्तुलित है। वह भाव के अनुसार ही शैली को अपनाता है। उसने केवल अति-प्रचलित उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का ही प्रयोग

---

१. शब्दार्थयोस्समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते।

शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।। जल्हण की सूक्ति-मुक्तावली।

२. ओजःसमासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।। दण्डी का काव्यादर्श १.८०।

नहीं किया है, अपितु अप्रचलित विरोधाभास, आक्षेप, परिसंख्या, वक्रोक्ति आदि अलंकारों का भी बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया है।

वेबर ने बाण की शैली की आलोचना करते हुए लिखा है कि—"यह एक भारतीय जंगल है। इसमें यात्री जब तक अपने लिए स्वयं झाड़ियों को काटकर मार्ग न बनावे, तब तक उसके लिए मार्ग मिलना असम्भव है। इसके बाद भी अप्रचलित शब्दों के रूप से भयंकर जंगली पशु उसको भयान्वित करते हुए प्राप्त होते हैं।" यह सत्य है कि बाण के द्वारा प्रयुक्त श्लेषों में शब्दों की खींचातानी हुई है और उसने जिन कथानकों का संकेत किया है, उनमें से बहुत से अप्रचलित हैं। बाण की रचना उनके लिए ही भयावह है, जिन्होंने संस्कृत साहित्य का समुचित रूप से अध्ययन नहीं किया है। अतः बाण के ग्रन्थों का रसास्वाद न लेने में पाठक की अनभिज्ञता ही कारण है, न क बाण की रचना-शैली। भारतीय लेखकों ने बाण की योग्यता और उसके गुणों की बहुत बल के साथ प्रशंसा की है। गोवर्धन, त्रिविक्रम, धनपाल, धर्मदास, सोड्ढल, सोमेश्वर आदि ने समुचित शब्दों में बाण की शैली की प्रशंसा की है। बाण ने गद्य-काव्य के लिए जो उच्च स्तर प्रस्तुत किया है, उसके कारण ही बाण के पूर्ववर्ती कतिपय गद्य-साहित्य के ग्रन्थ लुप्त हो गए हैं। महान् नैयायिक **जयन्त भट्ट** (८८० ई०) ने इन शब्दों में बाण की प्रशंसा की है—

'प्रकटरसानुगुणविकटाक्षररचनाचमत्कारितसकलकविकुला बाणस्य वाचः'।

—न्यायमञ्जरी पृष्ठ १,२१५

भूषणबाण योग्य पिता का योग्य पुत्र था। उसने कादम्बरी को पूर्ण किया है। यद्यपि बाण के तुल्य उसकी विशेष प्रशंसा नहीं की जा सकती है, तथापि उसमें कवि-प्रतिभा थी।

बाण के बाद **दण्डी** प्रमुख गद्य-लेखक है। उसके जीवन-चरित आदि के विषय में कोई निश्चित सूचना प्राप्त नहीं होती है। ऐसा ज्ञात होता है कि उसे 'दण्डी' उपाधि प्राप्त हुई थी। उसका वास्तविक नाम अज्ञात है। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि वह कब और कहाँ उत्पन्न हुआ था। कई आलोचकों ने उसका सम्बन्ध कालिदास के साथ स्थापित करने का प्रयत्न किया है। कुछ

समय पूर्व ही प्राप्त हुए दण्डी के ग्रन्थ **अवन्तिसुन्दरीकथा** में वर्णित आत्मकथा से ज्ञात होता है कि वह किरातार्जुनीय काव्य के लेखक भारवि का प्रपौत्र था। भारवि का वास्तविक नाम दामोदर था। वह पुलकेशी द्वितीय के छोटे भाई विष्णुवर्धन का मित्र था। एक बार वह राजकुमार के साथ मृगया-यात्रा में गया। वहाँ क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित होकर उसने जीवन-रक्षार्थ मांस खा लिया। वह इस पाप के कारण अतिलज्जित होकर घर नहीं लौटा और जंगल में ही घूमता रहा। वहाँ पर वह गंगा-वंश के निर्वासित राजकुमार दुर्विनीत का मित्र हो गया। इस राजकुमार के वंश का कांची के पल्लव राजाओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध था। इस राजकुमार के प्रयत्न से भारवि कांची के राजा सिंहविष्णु का आश्रित कवि हो गया। भारवि की आयु उस समय लगभग २० वर्ष थी। उसने कांची में ही अपना निवास-स्थान बना लिया। उसका एक पुत्र मनोरथ नाम का हुआ। मनोरथ का चतुर्थ पुत्र वीरदत्त था। दंडी वीरदत्त का पुत्र था। बाल्यकाल में ही उसके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। एक चालुक्य राजा ने कांची नगर पर आक्रमण किया और नगर को लूट लिया। अपनी रक्षा के लिए दंडी को नगर छोड़कर बाहर जाना पड़ा। वह बहुत समय तक इधर-उधर घूमा और उच्च शिक्षा प्राप्त की। जब राजा नरसिंहवर्मा प्रथम ने कांची को पुनः जीत लिया, तब दंडी पुनः लौट आया और कांची में स्थिर रूप से रहने लगा। वहीं पर उसने गद्य में अवान्तिसुन्दरीकथा नामक प्रेम-कथा लिखी।

इस ग्रन्थ में लिखी हुई घटनाएँ कहाँ तक सत्य हैं, यह कहना असंभव है। इसमें जो कुछ उल्लेख किया गया है, उससे ज्ञात होता है कि भारवि ५८० ई० के लगभग कांची गया होगा। दुर्विनीत निर्वासित जीवन व्यतीत करने के बाद ५८० ई० के लगभग अपनी भूमि का राजा हो गया। सिंह-विष्णु ने ५७५ से ६०० ई० के बीच में कांची पर राज्य किया है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि नरसिंहवर्मा प्रथम ने ६५५ ई० के लगभग कांची को पुनः जीता था। यह असंभव नहीं है कि इस समय तक भारवि का प्रपौत्र उत्पन्न

हो गया था। दंडी ६५५ ई० के कुछ समय बाद कांची लौटा होगा। अतः वह सातवीं शताब्दी ई० के उत्तारार्ध में रहा होगा। यदि अवन्तिसुन्दरीकथा का लेखक दंडी ही काव्यादर्श का लेखक है, तब यह समय उचित प्रतीत होता है। पुलकेशी द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र राजा चन्द्रादित्य की धर्मपत्नी और कवयित्री **विजया** ने काव्यादर्श के मंगलाचरण के श्लोक को उद्धृत किया है। चन्द्रादित्य ६४२ ई० के बाद एक प्रान्त का राजा था। पल्लव राजाओं और चालुक्य राजाओं में परस्पर सम्बन्ध था। यह संभव है कि दंडी का काव्यादर्श रचना के बाद ही चालुक्य राज्य में प्रचलित हो गया होगा। यहाँ पर यह कथन उचित है कि अवन्तिसुन्दरीकथा की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है, वह अपूर्ण है और उसका पाठ्य भी त्रुटिपूर्ण है। उसमें दण्डी के समय के निर्धारण के लिए निश्चित सूचना प्राप्त नहीं होती है।

अवन्तिसुन्दरीकथा हर्षचरित के अनुसार ही कतिपय श्लोकों से प्रारम्भ होती है। उसमे बहुत से कवियों के नाम दिए हुए हैं। वाल्मीकि, व्यास, सुबन्धु, गुणाढ्य, शूद्रक, भास, प्रवरसेन, कालिदास, नारायण, बाण और मयूर का नाम स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। कुछ श्लोकों में बीच का भाग अप्राप्य है, अतः उन श्लोकों में जिन कवियों का उल्लेख रहा होगा, उनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। इन श्लोकों के पश्चात् गद्य में कथा प्रारम्भ होती है। इसमें कांची नगरी का वर्णन है और दण्डी ने आत्मकथा लिखी है। इसके बाद अवन्तिसुन्दरीकथा की कथा प्रारम्भ होती है। भाव की दृष्टि से यह दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के समान है। यह प्रहारवर्मा के अपने पुत्रों के वियोग के वर्णन के साथ समाप्त होती है।

इसकी शैली कादम्बरी की शैली से बहुत मिलती हुई है। दण्डी ने कांची से बाहर रहने के समय बाण की कादम्बरी पढ़ी होगी। वर्णनों में भी दण्डी बाण का बहुत ऋणी है।

उपर्युक्त ग्रन्थ के अतिरिक्त यह कथा पद्यात्मक रूप में भी प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ का नाम अवन्तिसुन्दरीकथासार है। यह सात परिच्छेद (अध्यायों) में है। अन्तिम परिच्छेद अपूर्ण है। प्रथम परिच्छेद में दण्डी का जीवनचरित है। शेष ६ परिच्छेदों में दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका में जो कथा वर्णित है, वही कथा प्राप्त होती है। प्रत्येक परिच्छेद के अन्तिम श्लोक में आनन्द शब्द आया है। इस ग्रन्थ में बाण की कादम्बरी की कथा का साराश भी दिया हुआ है। इस ग्रन्थ का लेखक अज्ञात है।

भारतीय परम्परा के अनुसार दण्डी दशकुमारचरित और काव्यादर्श का लेखक है। दशकुमारचरित में तीन भाग हैं—पूर्वपीठिका, मुख्य गद्यभाग तथा उत्तरपीठिका। इनमें से प्रथम भाग में पाँच उच्छवास हैं, द्वितीय में आठ और तृतीय में कोई विभाजन नहीं है। इसमें राजा मानसार के द्वारा मगध के राजा राजहंस की पराजय का वर्णन है तथा उसका प्रवासित होकर वन में रहने का वर्णन है। वहीं पर उसका पुत्र राजवाहन तथा उसके ६ साथी उत्पन्न हुए। इन ६ में से कुछ राजकुमार थे और कुछ मन्त्रियों के पुत्र थे। ये दसों कुमार अर्थोपार्जन के लिए निकले। वे सब पृथक् हो गए और कुछ वर्षों के बाद पुनः मिले। प्रत्येक ने अपने-अपने भ्रमणका वृत्तांत सुनाया। इन सबने मिलकर राजहंस के शत्रु मानसार पर आक्रमण किया और मगध का राज्य पुनः प्राप्त किया।

दशकुमारचरित के ये तीनों भाग तीन विभिन्न लेखकों के द्वारा विभिन्न समय में लिखे हुए प्रतीत होते हैं। शैली की दृष्टि से प्रथम और अन्तिम भाग मध्य वाले भाग से निस्सन्देह निकृष्ट हैं। प्रथम और द्वितीय भाग के वर्णनों के विवरण में पूर्णतया असामंजस्य है। यह स्पष्ट है कि जिसने प्रथम भाग लिखा है, उसने मध्य के मुख्य भाग की घटनाओं को ठीक नहीं समझा है। इसके अतिरिक्त प्रथम और अन्तिम भाग के कई पाठ-भेद मिलते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रथम और अन्तिम भाग का कुछ अंश नष्ट हो गया था और उस क्षति-पूर्ति के लिए कुछ प्रयत्न किया गया होगा,

उसी के परिणामस्वरूप ये भाग अन्य-लिखित प्राप्त होते हैं। यह भी सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि इस ग्रन्थ का मूल नाम अवन्तिसुन्दरीकथा था। जो भाग नष्ट नहीं हुआ था, उसका नाम दशकुमारचरित रक्खा गया, क्योंकि संभवतः मूल ग्रन्थ का नाम अज्ञात हो गया था या जो भाग प्राप्त हुआ था, उसका नाम अवन्तिसुन्दरीकथा रखना उचित नहीं समझा गया, क्योंकि उसमें अवन्तिसुन्दरी का विशेष रूप से वर्णन नही है। इसका प्रारम्भिक भाग जो नष्ट हो गया था, वह अब अपूर्ण रूप में प्राप्त हुआ है। इस सुझाव को केवल कल्पनामात्र समझना चाहिए।

गद्य-काव्य की दृष्टि से दशकुमारचरित बहुत उच्चकोटि का नहीं है। इसमें व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ हैं, विशेष रूप से पूर्वपीठिका वाले भाग में। लम्बे समास जो कि गद्य-काव्य का जीवन माना जाता है, इसमें प्रायः अप्राप्त हैं। दण्डी ने काव्यादर्श में जिस भावाभिव्यक्ति में ग्राम्यता की निन्दा की है, वह इसमें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। इस आधार पर आलोचकों का मत है कि काव्यादर्श का रचयिता दण्डी इस दशकुमारचरित का कर्ता नहीं है। कुछ अन्य आलोचकों का मत है कि दण्डी उच्चकोटि का साहित्य-शास्त्री था, परन्तु वह निम्न कोटि का गद्य-लेखक था। यह उसके दशकुमार-चरित से प्रकट होता है। यह भी मत प्रकट किया गया है कि दण्डी ने पहले दशकुमारचरित और बाद में काव्यादर्श लिखा है। पुष्ट प्रमाणों के अभाव में ये सब विचार केवल कल्पनामात्र समझने चाहिए।

दण्डी पदलालित्य के लिए प्रसिद्ध है। दशकुमारचरित कुछ अंश तक इस बात की पुष्टि करता है। परन्तु यदि अवन्तिसुन्दरीकथा दण्डी की रचना मानी जाती है तो वह इसका अधिक अच्छा समर्थन करती है। इसका लेखक जो भी कोई हो, वह सप्तम उच्छ्वास के लिए विशेष प्रशंसा का पात्र है, क्योंकि उसमें उसने ऐसी रचना की है कि सारे उच्छ्वास में एक भी ओष्ठ्य वर्ण नहीं है।

राजशेखर (९०० ई०) का कथन है कि दण्डी ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं। **काव्यादर्श** और दशकुमारचरित ये दोनों उसके ग्रन्थ माने जाते हैं। कुछ समय पूर्व यह विचार प्रस्तुत किया गया था कि **छन्दोविचिति** और **कला-परिच्छेद** उसके अन्य ग्रन्थ हैं। परन्तु यह विचार निरर्थक था। **भोज** (१००० ई०) ने अपने **शृङ्गारप्रकाश** में उल्लेख किया है कि दण्डी का एक द्विसन्धान पद्धति का काव्य है। यह सम्भव है कि दण्डी ने इस प्रकार का कोई काव्य लिखा हो, परन्तु वह नष्ट हो चुका है।

सुबन्धु ने **वासवदत्ता** नामक गद्यकाव्य लिखा है। यह मत भ्रमात्मक है कि बाण ने हर्षचरित में इसका उल्लेख किया है। बाण ने सुबन्धु-रचित वासवदत्ता का उल्लेख किया है, परन्तु वह सुबन्धु पतंजलि (१५० ई० पू०) से पूर्ववर्ती लेखक है। बाण की कादम्बरी का इस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है, इसके समर्थन के लिए बहुत से प्रमाण इस ग्रन्थ में उपलब्ध होते हैं। **गौडवहो** के लेखक **वाक्पति** (७२० ई०) ने सुबन्धु के नाम का उल्लेख किया है। अतः सुबन्धु का समय ७०० ई० के लगभग ज्ञात होता है और विशेष रूप से सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में। सुबन्धु के समय का निर्णय इसके ग्रन्थ में उपलब्ध दो उल्लेखों के आधार पर किया जाता है—(१) एक बौद्ध ग्रन्थ का उल्लेख, (२) प्रसिद्ध नैयायिक उद्योतकर का नामोल्लेख। इनमें से प्रथम उल्लेख अस्पष्ट है, अतः उसके आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। उद्योतकर का समय छठीं शताब्दी है, अतः सुबन्धु का समय ७०० ई० के लगभग मानना उचित है। एक भारतीय परम्परा के अनुसार सुबन्धु वररुचि का भतीजा था। परन्तु इस परम्परा से कोई सहायता प्राप्त नहीं होती है, क्योंकि वररुचि का समय निश्चित नहीं है।

वासवदत्ता में राजकुमारी वासवदत्ता की कथा है। राजकुमार कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में उसका दर्शन किया और वह उससे मिलने के लिए चल पड़ा। राजकुमारी ने कन्दर्पकेतु का स्वप्न में दर्शन किया और वह उस पर मुग्ध हो गई। वासवदत्ता ने अपनी दासो को कन्दर्पकेतु का पता लगाने के लिए

भेजा। उसे कन्दर्पकेतु मिला और वह वासवदत्ता की नगरी में आया तथा वासवदत्ता को भगा ले गया। वासवदत्ता के पिता की सेना ने दोनों का पीछा किया और वे एक निषिद्ध उपवन में पहुँचे। वहाँ पर वासवदत्ता पत्थर के रूप में परिवर्तित हो गई। इस पर कन्दर्पकेतु आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो गया। इतने में आकाशवाणी हुई और उसने कहा कि तुम्हारा मिलन फिर अपनी प्रिया से होगा, अतः आत्महत्या न करो। उसने उसी उपवन में दुःखमय समय बिताया। एक दिन उसने अकस्मात् उस पत्थर को छुआ और उससे वह वासवदत्ता जीवित हो उठी। तब दोनों का सुखमय पुनर्मिलन होता है। लेखक ने गौड़ी रीति में यह ग्रन्थ लिखा है। इसमें सूक्ष्म पौराणिक कथाओं के संकेत हैं तथा विभिन्न प्रकार का शब्दकोष प्रयोग किया गया है। लेखक ने इस बात का बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ के प्रत्येक अक्षर में श्लेष अलंकार है।

देखिए :—

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपंचविन्यासवैदग्ध्यनिधिं प्रबन्धम्॥

—वासवदत्ता २९९

धनपाल ने ९७३ ई० के लगभग **तिलकमंजरी** ग्रन्थ लिखा है। इसमें राजकुमारी तिलका और राजकुमार समरकेतु के प्रेम का वर्णन है। यह ग्रन्थ कादम्बरी के पूर्ण अनुकरण पर लिखा गया है। धनपाल ने अपने को प्रसिद्ध विद्वान् सर्वदेव का पुत्र उल्लिखित किया है।[1] वह धारानरेश मुंज का आश्रित था।[2] भूमिका-भाग में उसने वाल्मीकि, व्यास, प्रवरसेन, जीवदेव, कालिदास, बाण, समरादित्य, भ कीर्ति, माघ, भारवि, भवभूति, वाक्पतिराज और राजशेखर का उल्लेख किया है। वहीं पर बृहत्कथा और तरंगवती इन दो ग्रन्थों का भी उल्लेख है।

---

१. तिलकमंजरी ५२।

२. तिलकमंजरी ५३।

ओडयदेव की उपाधि वादीभसिंह थी। इसने ११ लम्बकों (अध्यायों) में **गद्यचिन्तामणि** ग्रन्थ लिखा है। इसमें एक राजकुमार जीवन्धर के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है। वह संन्यासी हो गया था। इसमें जीवन्धर को जो उपदेश दिया गया है, वह कादम्बरी में शुकनास के द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश के अनुकरण के रूप में है। उसने **क्षत्रचूडामणि** ग्रन्थ भी लिखा है, यह तामिल भाषा के ग्रन्थ **जीवकचिन्तामणि** का संस्कृत अनुवाद है। इसका समय १२०० ई० के लगभग है।

बालभारत के लेखक **अगस्त्य** (१३२० ई०) ने **कृष्णचरित** ग्रन्थ भी लिखा है। **रघुनाथचरित** और **नलाभ्युदय** के लेखक **वामनभट्ट बाण** (१४२० ई०) ने **वेमभूपालचरित** ग्रन्थ भी लिखा है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम **वीरनारायण-चरित** है। इस ग्रन्थ में उसने अपने आश्रयदाता वेमभूपाल राजाओं की वंशावली चार अध्यायों में दी है। यह कालिदास विरचित रघुवंश और अभिज्ञानशाकुन्तल की अनुकृति है। इसमें पग-पग पर बाण का प्रभाव पाया जाता है। वह अपना स्थान बाण, सुबन्धु और कविराज के समकक्ष मानता है, परन्तु वह इस योग्य नहीं है। **अनन्तशर्मा** (१६५० ई०) ने विशाखदत्त की मुद्राराक्षस-कथा के आधार पर **मुद्राराक्षसपूर्वसंकथानक** नामक गद्य की रचना की है। इसमें काली की स्तुति दण्डक में है।

———

अध्याय १८

चम्पू

गद्य और पद्यात्मक दो प्रकार की रचना के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार की रचना होती है, उसे चम्पू कहते हैं। गद्य और पद्य-मिश्रित रचना को चम्पू कहते हैं।[1] इसमें गद्य और पद्य को प्रायः समान स्थान दिया जाता है। वर्णन और विवरण के लिए गद्य का उपयोग किया जाता है और प्रभावोत्पादक तथा निश्चित बात के कहने के लिए पद्य का उपयोग किया जाता है। साधारणतया गद्य में जो बात विस्तार के साथ कही जाती है, उसी को पद्य में संक्षिप्त रूप में कहा जाता है। गद्य और पद्य के इस प्रकार चम्पू के रूप में मिश्रण की विद्वानों ने बहुत प्रशंसा की है। इसे मौखिक और वाद्य संगीत का समन्वय[2] तथा द्राक्षा और मधु का मिश्रण बताया है।[3]

इस प्रकार का काव्य ईस्वी सन् के प्रारम्भ से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। गुप्तकाल के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का काव्य चतुर्थ शताब्दी ई० में विद्यमान था। इस प्रकार से लिखे हुए ग्रन्थों को चम्पू कहते हैं, परन्तु कतिपय ग्रन्थों के नाम में चम्पू नाम नही है।

सबसे प्राचीन चम्पू-काव्य **नलचम्पू** है, इसका दूसरा नाम दमयन्तीकथा है। इसके लेखक **त्रिविक्रमभट्ट** हैं। उसके पिता घर से कहीं बाहर गये हुए थे, उस समय एक कवि ने आकर उसके पिता को योग्यता-प्रदर्शनार्थ आह्वान

---

१. गद्य-पद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते। दण्डी का काव्यादर्श १. ३१।

२. भोज का चम्पूरामायण—बालकाण्ड ३।

३. वेंकटाध्वरी का विश्वगुणादर्श ४।

किया, उसके उत्तर में त्रिविक्रमभट्ट ने यह रचना की। जब उसके पिता आये, तब उसने आगे रचना बन्द कर दी और ग्रन्थ को अपूर्ण छोड़ दिया। इसमें सात उच्छ्वास हैं और नल तथा दमयन्ती की कथा वर्णित है। प्रत्येक उच्छ्वास के अन्तिम श्लोक में हरचरणसरोज शब्द है। इसमें नल के मन्त्री सालंकायन ने नल को जो उपदेश दिया है वह कादम्बरी में चन्द्रापीड को दिये शुकनास के उपदेश के अनुकरण पर है। लेखक ने न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों से भी उदाहरण लिये हैं। प्रारम्भिक श्लोकों में लेखक ने वाल्मीकि, व्यास, बाण और गुणाढ्य का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की शैली क्लिष्ट है। त्रिविक्रमभट्ट ने एक और चम्पू ग्रन्थ **मदालसाचम्पू** लिखा है। राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय के ९१५ ई० के नौसारी दानपत्र का लेखक त्रिविक्रमभट्ट ही है। उसके पिता का नाम नेमादित्य था। त्रिविक्रमभट्ट का समय १०वीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही मानना चाहिये।

एक जैन लेखक **हरिचन्द्र** ने जैन मुनि जीवन्धर के जीवन को लेकर **जीवन्धरचम्पू** लिखा है। यह ग्रन्थ ८५० ई० के लगभग गुणभद्र द्वारा लिखे गये उत्तरपुराण पर आधारित है। अतः लेखक ९०० ई० के बाद हुआ होगा। उसने माघ और वाक्पति का सफलतापूर्वक अनुकरण किया है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि धर्मशर्माभ्युदय का लेखक और यह एक ही व्यक्ति हैं।

नेमिदेव के शिष्य **सोमदेव** ने ९५९ ई० में **यशस्तिलक** लिखा है। इसमें आठ आश्वास हैं। वह राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय, जिसका दूसरा नाम कृष्णराजदेव था, का आश्रित कवि था। उसने राजा मारिदत्त के द्वारा किये जाने वाले यज्ञ का वर्णन किया है, जिसमें वह अपने परिवार की इष्टदेवी को प्रसन्न करने के लिए सभी प्राणियों का एक-एक जोड़ा बलि देने के लिए तैयार करता है। मनुष्यों का भी एक जोड़ा बलि के लिए तैयार करता है। उसने अल्प आयु के एक बालक और एक बालिका को, जो कि जुड़वा उत्पन्न हुए थे, बलि के लिए तैयार किया। उन्होंने राजा को अपने तथा उसके

पूर्वजन्म की घटनाएँ बताईं। एक सुदत्तमुनि ने राजा को इस प्रकार के यज्ञ की निरर्थकता बताई। वह राजा जैन हो गया। इस ग्रन्थ के अन्तिम तीन अध्याय जैन धर्म की प्रसिद्ध पुस्तिका है। कादम्बरी की तरह इसमें भी कथा में कथा वर्णित हैं। लेखक ने प्रारम्भिक श्लोकों में भारवि, भवभूति भर्तृहरि, मेण्ठ, गुणाढ्य, भास, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, माघ, राजशेखर तथा भारतप्रमितकाव्याध्याय आदि का नामोल्लेख किया है। यह चम्पू **यशोधरमहाराजचरित** नाम से भी विख्यात है।

भोज ने **रामायणचम्पू** लिखा है। मुद्रित पुस्तक में अन्त में लेखक का नाम नहीं लिखा है, अपितु लेखक को विदर्भराज कहा गया है। भारतीय परम्परा के अनुसार मालवा में स्थित धारा का राजा इसका लेखक है। विदर्भ और मालवा दो विभिन्न स्थान हैं, अतः इन दोनों स्थानों के राजा भी पृथक् व्यक्ति होंगे। अब तक जो सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर भोज को विदर्भराज कहना संभव नहीं है। भोज के राज्य का समय १००५ से १०५४ ई० के बीच में है, अतः इस ग्रन्थ का समय ११वीं शताब्दी का पूर्वार्ध होता है। राजा भोज ने यह चम्पू सुन्दरकाण्ड के अन्त तक लिखा है, युद्धकाण्ड बाद में लक्ष्मण नाम के किसी व्यक्ति ने लिखा है। यह चम्पू वैदर्भी रीति में लिखा गया है। यह सर्वोत्तम चम्पूग्रन्थों में से एक है। वर्णनों में उच्चकोटि की कल्पना है। उनमें अनुप्रास और चित्त को बरबस खींच लेने वाली उपमाओं का प्रयोग किया गया है।[1] ऐसा जान पड़ता है कि उनमें से कुछ वर्णनों पर कुमारदास का प्रभाव पड़ा है।[2]

अभिनवकालिदास (१०५० ई०) ने **भागवतचम्पू** लिखा है। इसमें ६

१. रामायणचम्पू बालकाण्ड ४१।
रामायणचम्पू अयोध्याकाण्ड ७०।
रामायणचम्पू सुन्दरकाण्ड १७, २०।

२. अयोध्याकाण्ड ३३।

स्तबकों में भागवत की कथा है। अभिनवकालिदास नाम के कई कवि हुए हैं। लेखक का वास्तविक नाम अज्ञात है। एक क्षत्रिय **सोड्ढल** ने **उदयसुन्दरीकथा** लिखी है। यह ११वीं शताब्दी ई० में हुआ था। यह ग्रन्थ गद्य और पद्य में है। इसकी गणना चम्पूग्रन्थों में की जा सकती है। इसमें ६ उच्छ्वासों में नाग-राजकुमारी उदयसुन्दरी और प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन के विवाह का वर्णन है। यह प्रशंसनीय और आकर्षक शैली में लिखा गया है। इसका प्रथम अध्याय आत्मकथा के रूप में है। इसकी कहानी एक तोता कहता है--जैसे कादम्बरी में। कदम-कदम पर बाण का प्रभाव दृष्टि में आता है। सारस्वतश्री इस चम्पू का लक्षण है। लेखक ने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो संस्कृत भाषा के लिए विदेशी हैं, जैसे—क्षक्, झम्पः इत्यादि। भूमिका-भाग में लेखक ने चित्तराज, नागार्जुन तथा मुम्मुनिराज, कोङ्खणनरेशों और वत्सराज का भी उल्लेख किया है। लाट के राजा चालुक्य का उल्लेख अपने आश्रयदाता के रूप में किया है। वहीं पर उसने वाल्मीकि, व्यास, वाक्पतिराज, मायुराज, विशाखदेव, गुणाढ्य, भतृमेण्ठ, कालिदास, बाण, भवभूति, अभिनन्द, यायावर (राजशेखर), कुमारदास तथा भास की भी चर्चा की है। कहा जाता है कि महाराज हर्षवर्धन ने बाण को सैकड़ों करोड़ की सम्पत्ति से पुरस्कृत किया। उसने अभिनन्द, वाक्पतिराज, कालिदास और बाण का जो उल्लेख किया है वह चित्रात्मक है। देखिए :--

वागीश्वरं हन्त भजेऽभिनन्द-
मर्थेश्वरं वाक्पतिराजमीडे।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं
बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥ उदयसुन्दरीकथा

सुरथोत्सव का लेखक **सोमेश्वरदेव** (१२४० ई०) चम्पू रीति में लिखे हुए **कीर्तिकौमुदी** ग्रन्थ का लेखक है। इसमें वीरधवल के मन्त्री वस्तुपाल का

जीवनचरित वर्णित है। **वासुदेवरथ** ने १४२० ई० के लगभग चम्पू रीति में **गंगावंशानुचरित** लिखा है। इसमें कलिंग पर राज्य करने वाले गंगा वंश का इतिहास वर्णित है। **रामानुजाचार्य** (१६०० ई०) ने **रामानुजचम्पू** लिखा है। इसकी शैली बड़ी सुन्दर और सरल है। इस चम्पू में विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक रामानुज के जीवन का वर्णन किया गया है। **अनन्तभट्ट** ने १२ स्तबकों में **भारतचम्पू** लिखा है। ग्रन्थ के अन्त में लेखक के विषय में उल्लेख मिलता है कि वह एक यशस्वी व्यक्ति था और मधुर काव्य का प्रणेता था; सम्भव है लेखक ने स्वयं ऐसा किया हो। नारायणभट्ट (१६०२ ई०) ने अनन्तभट्ट का उल्लेख किया है। अतः उसका समय १५०० ई० के लगभग मानना उचित है। विजयनगर के राजा अच्युतराय (१५४० ई०) की धर्मपत्नी रानी **तिरुमलाम्बा** ने **वरदाम्बिकापरिणयचम्पू** लिखा है। इसमें उसने अपने पति का राजकुमारी वरदाम्बा के साथ विवाह का वर्णन किया है। इस चम्पू की रचना सुन्दर और आकर्षक शैली में की गई है। यह स्थान-स्थान पर भंगश्लेष के प्रयोग में लेखिका के कौशल को व्यक्त करता है। इसका समय १५५० ई० के लगभग मानना चाहिये। नारायणीय के लेखक **नारायणभट्ट** (१६०० ई०) ने **पाञ्चालीस्वयंवरचम्पू** लिखा है। इसमें द्रौपदी के स्वयंवर का वर्णन है। यह सुन्दर और सरल शैली में लिखा गया है। यह लम्बे समासों और श्लेषों से पूर्णतया मुक्त है। लगभग उसी समय **समरपुंगव दीक्षित** ने **यात्राबन्ध** नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें ९ आश्वास हैं तथा उत्तर और दक्षिण के समस्त तीर्थस्थानों का वर्णन है। नीतिग्रन्थ वीरमित्रोदय के लेखक मित्रमिश्र (१६२०ई०) ने श्रीकृष्ण के बाल-जीवन पर आनन्दकन्दचम्पू लिखा है। ग्रन्थ भंगश्लेष से गूंथा हुआ है। राघवपाण्डवयादवोय के लेखक **चिदम्बर** (१६०० ई०) ने भागवत की कथा के आधार पर **भागवतचम्पू** लिखा है। **शेषकृष्ण** (१६०० ई०) ने पाँच अध्यायों में **पारिजातहरणचम्पू** लिखा है। इसमें श्रीकृष्ण के द्वारा स्वर्ग से पारिजात के लाने का वर्णन है।

नीलकण्ठ दीक्षित (१६५० ई०) ने पाँच अध्यायों में **नीलकण्ठविजय-चम्पू** लिखा है। उसका वक्रोक्ति अलंकार पर पूर्ण अधिकार है और वह भावों की सूक्ष्मता को बहुत कुशलता के साथ प्रकाशित कर सकता है, यह उसके ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है। इसमें उसने शिव के पराक्रमों का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ की रचना १६३७ ई० में हुई है। **राजचूड़ामणि दीक्षित** (१६०० ई०) ने **भारतचम्पू** लिखा है। **चक्रकवि** (१६५० ई०) ने **द्रौपदीपरिणयचम्पू** लिखा है। **वेंकटाध्वरी** (१६५० ई०) ने चार चम्पू ग्रन्थ लिखे हैं - **विश्वगुणादर्शचम्पू, वरदाभ्युदयचम्पू, उत्तरचम्पू** और **श्रीनिवास-चम्पू**। विश्वगुणादर्शचम्पू में जीवन के अच्छे और बुरे दोनों पक्षों का उल्लेख किया गया है। अपने समय में प्रचलित रीतियों और प्रथाओं की त्रुटियों का विशेष रूप से तामिल देश में प्रचलित रीतियों की त्रुटियों का, उसने बहुत सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया है। उसके आक्रमण के विषय पुरोहित, संगीतज्ञ, ज्योतिषी, वैद्य तथा अन्य व्यवसायों को करने वाले व्यक्ति हैं। उसने अनुप्रास पर अपने पूर्ण अधिकार का समुचित प्रदर्शन किया है। वरदाभ्युदय का दूसरा नाम हस्तिगिरचम्पू हैं। इसमें कांची में विद्यमान देवता का महत्त्व वर्णन किया गया है। उत्तरचम्पू में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। श्रीनिवासचम्पू में दस अध्यायों में तिरुपति समीप तिरुमलाइ में विद्यमान देवता की प्रशस्ति वर्णित है। इन चारों ग्रन्थों मे से विश्वगुणादर्श तामिल देश में बहुत अधिक प्रचलित है। **बाणेश्वर** ने **चित्रचम्पू** लिखा है। यह अर्ध-ऐतिहासिक काव्य है। यह बर्दवान परिवार के राजा चित्रसेन के जीवन का वर्णन करता है, जिनका स्वर्गवास १७४४ ई० में हुआ है। इस ग्रन्थ का समय १८वीं शताब्दी का उत्तरार्ध समझना चाहिये। **कृष्ण** कवि ने **मन्दारमरन्दचम्पू** लिखा है। इसका समय अज्ञात है। इसमें छन्दों और अलंकारों आदि के उदाहरण दिये गये हैं। १९वीं शती पूर्वार्ध में तंजोर के राजा **सर्फोजी द्वितीय** ने कालिदास के कुमारसम्भव के विषय को संक्षिप्त करते हुए **कुमारसम्भवचम्पू** की रचना की है। **सर्वदेवविलास** में मद्रास नगर

और वहाँ के सौदागरों का वर्णन है। इसका लेखक अज्ञात है। यह रचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह १८०० ई० के आस-पास के समय के मद्रास के विभिन्न भागों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करती है। इसमें बहुत-से मुहावरे हैं जिनका उद्गम तामिल से है। इसमें ६ आश्वास हैं। यह अपूर्ण ग्रन्थ है।

अध्याय १९

कथा-साहित्य

प्राचीन काल से भारत में कहानियाँ बहुत प्रचलित हैं। ये कहानियाँ पराक्रमों, समुद्री यात्राओं तथा अन्य घटनाओं पर आधारित हैं। कुछ कहानियाँ लेखक की कल्पना पर ही आधारित हैं। वे अधिकतर अभौतिक घटनाओं से सम्बद्ध हैं, जैसे--आकाश में और पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का संचार। कुछ गन्धर्वों आदि की कथा से सम्बद्ध हैं। कथा-साहित्य के अभ्युदय के समय धार्मिक भावना ने इस पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। बौद्धों और जैनों ने अपने सिद्धान्तों के प्रचारार्थ कथा-साहित्य का आश्रय लिया।

यह ज्ञात नहीं है कि कथा-साहित्य के प्रारम्भ के समय कौन-सी भाषा और कौन से रूप का आश्रय लिया गया था। कथाएँ प्रारम्भ से जनप्रिय रही हैं, अतः यह माना जा सकता है कि प्रारम्भ में कथाएँ प्राकृत में लिखी गई थीं। प्राचीन कथा-ग्रन्थों के अभाव में इस विषय पर कोई निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

सबसे प्राचीन कथा-ग्रन्थ **गुणाढ्य** की **बृहत्कथा** है। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। गुणाढ्य और उसके ग्रन्थ के विषय में इन पुस्तकों से कुछ परिचय प्राप्त होता है--**बुधस्वामी** का **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह**, **क्षेमेन्द्र** की **बृहत्कथामंजरी** और **सोमदेव** का **कथासरित्सागर**। इन तीनों ग्रन्थों के लेखकों का कथन है कि ये ग्रन्थ बृहत्कथा के संक्षिप्त रूप हैं। शिव पार्वती को एक कथा सुना रहे थे। वह कथा उनके एक सेवक पुष्पदन्त ने सुन ली। पार्वती ने उसको शाप दिया। उसका भाई माल्यवान् बीच में अपने भाई की ओर से कुछ कहने लगा, इस पर पार्वती ने उसे भी शाप दिया। पुष्पदन्त को यह शाप दिया कि वह मनुष्य के रूप में उत्पन्न होगा और एक दानव काणभूति

को यह कथा सुनाकर पुनः अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होगा। माल्यवान् को शाप दिया कि वह भी मनुष्य के रूप में उत्पन्न होगा और काणभूति से यह कथा सुनकर अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होगा। तदनुसार पुष्पदन्त प्रसिद्ध वैयाकरण एवं नन्दराजाओं के मन्त्री वररुचि के रूप में उत्पन्न हुआ। जीवन के अन्तिम समय में वह विन्ध्याचल के वन में गया और वहाँ काणभूति को यह कथा सुनाई तथा अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हुआ। माल्यवान् गुणाढ्य के रूप में उत्पन्न हुआ और वह प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन का मन्त्री हुआ। राजा संस्कृत नहीं जानता था, अतः वह अन्तःपुर में स्त्रियों में जाने में लज्जित होता था, क्योंकि उनमें से कुछ संस्कृत अच्छी तरह जानती थीं। उसने अपने राजद्वार के विद्वानों को इसलिए आमन्त्रित किया कि क्या वह संस्कृत कम से कम समय में और कम से कम परिश्रम से सीख सकता है। गुणाढ्य ने राजा को संस्कृत सीखने के लिए कम से कम ६ वर्ष का समय बताया। इस पर एक दूसरे विद्वान् शर्ववर्मा ने कहा कि वह राजा को ६ मास में संस्कृत सिखा सकता है। इस पर गुणाढ्य ने प्रतिज्ञा की कि वह साहित्यिक कार्यों के लिए संस्कृत का प्रयोग नहीं करेगा और उसने राजद्वार छोड़ दिया। वह वन में गया और वहाँ वह काणभूति से मिला तथा उससे वह कथा सुनी। उसने वह कथा पैशाची प्राकृत में लिखी। गुणाढ्य के शिष्यों ने यह ग्रन्थ सातवाहन को दिखाया, परन्तु उसने इसे देखना अस्वीकार किया। इस पर गणाढ्य ने यह ग्रन्थ वन की अग्नि में डाल दिया। उसके शिष्य ग्रन्थ का सातवाँ भाग बचा सके।

संक्षेप में गुणाढ्य और उसके ग्रन्थ की यह कथा है। इस ग्रन्थ के संक्षिप्त ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मूलग्रन्थ में कौशाम्बी के राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त के पराक्रमों का वर्णन था। नरवाहनदत्त अपने मित्र गोमुख के साथ पराक्रम के लिए वन में गया। उसने एक विद्याधर राजकुमारी मदनमंजुका से विवाह किया। एक विद्याधर मानसवेग मदनमंजुका को भगा ले गया। मानसवेग की बहिन वेगवती ने मदनमंजुका के पता चलाने में नर-

वाहनदत्त को सहायता की । नरवाहनदत्त मदनमंजुका का पता लगाने में सफल हुआ और अन्त में विद्याधरों का महाराज हो गया । इस मुख्य कथा में कई अन्य कथाएँ सम्मिलित की गई हैं।

बाण, दण्डी, सुबन्धु, त्रिविक्रमभट्ट, धनंजय आदि ने बृहत्कथा का उल्लेख किया है । इन सभी कवियों को इस कथा का मुख्य भाग ज्ञात था । यह ज्ञात नहीं है कि इनमें से किसी ने भी मूलग्रन्थ को देखा है या नहीं । **बुधस्वामी** (९वीं शताब्दी ई०), **क्षेमेन्द्र** (१०३७ ई०) और **सोमदेव** (१०८ ई०) का कथन है कि उन्होंने मूल ग्रन्थ को देखा है और उन्होंने उसका सक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है । गंगा वंश के राजकुमार **दूरविनीत** (६०० ई०) किरातार्जुनीय की जो टीका लिखी है, उसमें १५वें सर्ग की पुष्पिका में लिखा है कि दूरविनीत ने गुणाढ्य को बृहत्कथा को संस्कृत में रूपान्तरित किया है । उपर्युक्त साक्षियों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ६ठीं शताब्दी के बाद बृहत्कथा मूल रूप में साधारणतया प्राप्य नहीं थी । यह कश्मीर और नेपाल में तथा विन्ध्य पर्वत के कुछ प्रदेशों में, जहाँ गुणाढ्य ने इसकी रचना की थी, सुरक्षित रही ।

यदि गुणाढ्य के विषय में कथासरित्सागर के लेख पर विश्वास करें तो वररुचि ३२० ई० पू० के पूर्व हुआ था, जब कि चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा था । गुणाढ्य का आश्रयदाता सातवाहन, आन्ध्रभृत्य राजाओं में से एक है । इस वंश का राज्यकाल ७३ ई० पू० से लेकर २१८ ई० तक है । गुणाढ्य इसी समय में हुआ होगा ।

गुणाढ्य ने बृहत्कथा लिखने के लिए जिस पैशाची प्राकृत का प्रयोग किया है, वह विन्ध्य प्रदेश में व्यवहृत विभाषाओं में से एक प्रतीत होती है । आन्ध्रभृत्य राजाओं की राजधानी गोदावरी नदी के किनारे प्रतिष्ठान नगर में थी । यह स्थान विन्ध्य पर्वत के समीप ही है । राजशेखर ने इस विचार का समर्थन किया है । डा० जार्ज ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इन्डिया में अपना यह मत प्रस्तुत किया है कि पैशाची प्राकृत भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर

प्रदेश में बोली जाती थी। इस विषय का निर्णय इस आधार पर किया जा सकता है कि उस समय ११ भाषाएँ देश के विभिन्न भागों में बोली जाती थीं।[1] इससे यह मानने में कोई कठिनाई नहीं आती है कि विन्ध्य प्रदेश पैशाची प्राकृत की जन्मभूमि है। गुणाढ्य ने पैशाची प्राकृत को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया। यह दण्डी के काव्यादर्श के लेख से सिद्ध होता है—

'भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्'।

काव्यादर्श १-३८

कम्बोडिया के ८७५ ई० के शिलालेख में यह उल्लेख किया गया है कि गुणाढ्य ने प्राकृत को क्यों अपनाया। इससे भी बृहत्कथा का प्राकृत में होना ज्ञात होता है।

यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि गुणाढ्य ने यह ग्रन्थ गद्य में लिखा था या पद्य में। इसके संक्षिप्त रूप पद्य में है। दण्डी ने इसको कथा कहा है, इसके आधार पर यह माना जा सकता है कि यह गद्य में रहा होगा। अथवा कथा का अर्थ केवल कहानी मात्र समझना चाहिए।

परवर्ती लेखकों में बृहत्कथा ने पर्याप्त प्रशस्ति प्राप्त की और उनकी रचनाओं को प्रभावित किया। देखिए :—

समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥

—हर्षचरित की भूमिका श्लोक १७

बाण, सुबन्धु और दण्डी ने इसकी ख्याति का उल्लेख किया है।

संक्षिप्त ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि बृहत्कथा का आधार रामायण, बहुत प्राचीन समय से प्रचलित उदयन और वासवदत्ता की कथा, समुद्री यात्राएँ, व्यापारियों और राजकुमारों की पराक्रम-कथाएँ हैं। बाद के लेखकों पर बृहत्कथा का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। बाण और सुबन्धु को बृहत्कथा की कहानियाँ ज्ञात थीं। यशस्तिलकचम्पू के लेखक सोमदेव, तिलकमंजरी के

१—सद्भाषाचन्द्रिका पृ० ४।

लेखक धनपाल और दशकुमारचरित के लेखक दण्डी पर बृहत्कथा का बहुत प्रभाव पड़ा है।

नेपाल के **बुधस्वामी** ने श्लोकसंग्रह लिखा है। इसी का दूसरा नाम **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह** है। इस ग्रन्थ के नाम से ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ पद्य में था। श्लोकसंग्रह में २८ सर्ग तथा ४५३६ श्लोक हैं। यह ग्रन्थ अपूर्ण ज्ञात होता है। जितना अंश प्राप्य है, उससे ज्ञात होता है कि बुधस्वामी ने लगभग २५ सहस्र श्लोक लिखे होंगे। इस संक्षिप्त ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र और सोमदेव की कथा से भेद है। इसमें वर्णनों का अभाव है और शब्दों के प्राकृत रूपों का प्रयोग है। इससे ज्ञात होता है कि यह मूल ग्रन्थ के अधिक समीप है। इसकी हस्तलिखित प्रति नेपाल से प्राप्त हुई है, इसके अतिरिक्त इसको नेपाल की रचना मानने का और कोई आधार नहीं है। आलोचकों का कथन है कि यह हस्तलिखित प्रति की प्राचीन प्रति के आधार पर आठवीं या नवीं शताब्दी में लिखा गया है।

क्षेमेन्द्र ने १०३७ ई० में बृहत्कथा का संक्षिप्त रूप **बृहत्कथामंजरी** लिखा है। इसमें १६ अध्याय हैं और ७५०० श्लोक हैं। इस ग्रन्थ का श्लोकसंग्रह से जो भेद है, उससे ज्ञात होता है कि इसमें कुछ ऐसी कथाएँ भी सम्मिलित कर दी गई हैं, जो कश्मीर में प्रचलित थीं। जैसे-विक्रम और वेताल की कथा इसमें संग्रहीत है। श्लोकसंग्रह अपूर्ण है, अतः उसके आधार पर यह निश्चयरूप से नहीं कहा जा सकता है कि यह कथा कश्मीरी देन है। क्षेमेन्द्र ने जो बहुत लम्बी कथा को अतिसंक्षिप्त किया है, उससे वह दुर्बोध हो गयी है। मूल ग्रन्थ में नरवाहनदत्त प्रमुख पात्र है, परन्तु इसमें वह गौण स्थान पर है।

कश्मीर के राम के पुत्र **सोमदेव** ने १०६३ ई० और १०८१ ई० के बीच में **कथासरित्सागर** लिखा है। यह वस्तुतः बृहत्कथासरित्सागर है। यह १८ लम्बकों में विभक्त है। इनके उपविभाग १२४ तरंगें हैं। इसमें २२ सहस्र श्लोक हैं। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी की तरह इसमें भी कश्मीरी

कहानियाँ हैं। संक्षिप्त संस्करण के रूप में रोचकता और प्रवाह आदि की दृष्टि से सोमदेव का यह ग्रन्थ क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी से बहुत अधिक उत्कृष्ट है। इसकी शैली आकर्षक और सरल है।

अवदानशतक में सौ वीर-गाथाओं का संकलन है। ये कथाएँ बौद्ध विचारों के आधार पर हैं। प्रत्येक अवदान में एक प्राचीन कथा का वर्णन है और उससे कुछ नैतिक शिक्षा प्रस्तुत की गयी है। इन कथाओं से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि मनुष्य पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार शरीर धारण करता है। इसके संग्रहकर्ता का नाम अज्ञात है। ये कथाएँ बहुत प्राचीन ज्ञात होती हैं। तृतीय शताब्दी ई० में इसका अनुवाद चीनी भाषा में हुआ है। इन कथाओं का संग्रह संभवतः ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ है। इसी के अनुकरण पर एक बाद का संग्रह ग्रन्थ दिव्यावदान है। इस ग्रन्थ की एक कथा का चीनी भाषा में अनुवाद २६५ ई० में हुआ है। यह संग्रह संभवतः अवदानशतक के कुछ ही समय बाद किया गया है। ये दोनों ग्रन्थ संस्कृत गद्य में हैं। इनमें स्थान-स्थान पर कुछ श्लोक संस्कृत या प्राकृत में दिये हुए हैं। अवदानशतक में कथाएँ ठीक ढंग से क्रमबद्ध की गयी हैं, परन्तु दिव्यावदान-शतक में कोई क्रम आदि नहीं है। क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने **अवदानकल्पलता** ग्रन्थ लिखा है। इसका दूसरा नाम **बोधिसत्त्वावदानकल्पलता** है। इसमें १०७ कथाएँ हैं, जो कि अवदानशतक तथा अन्य कथा-ग्रन्थों से ली गयी हैं।

आर्यशूर की **जातकमाला** जातक-कथाओं का संग्रह है। इनमें बोधिसत्व के पूर्वजन्म की कथाओं का वर्णन है। ये कथाएं कहानो और संलाप के रूप में हैं। ये गद्य में हैं, परन्तु बीच-बीच में पद्य भी हैं। यह कहा जाता है कि जातक-कथाओं की संख्या पाँच सौ है। इनमें से कुछ कथाएँ मूलतः बौद्ध धर्म से संबद्ध नहीं हैं। आर्यशूर संभवतः इन कथाओं का केवल संग्रह-कर्ता है। इसके संग्रह का समय निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है, किन्तु इसके संग्रह का समय ४०० ई० से पूर्व मानना चाहिए, क्योंकि ४३४ ई० में इसका चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है।

जातकों और अवदानों का गद्य और पद्य में एक संग्रह सूत्रालंकार या कल्पनामण्डित नाम से है। इसकी मूल प्रति खण्डित रूप में प्राप्य है। इसका लेखक अश्वघोष समझा जाता था, परन्तु कुछ समय पूर्व ज्ञात हुआ है कि इसका लेखक अश्वघोष के बाद का एक लेखक कुमारलात है।

वेतालपंचविंशतिका २५ कहानियों का एक संग्रह है। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार राजा विक्रमादित्य एक वेताल को पकड़ना चाहता है और वह उसे ये २५ कथाएँ सुनाता है। ये कथाएँ बहुत प्राचीन हैं। ये बृहत्कथामंजरी और कथासरित्सागर दोनों में सम्मिलित की गई हैं। इनके अतिरिक्त इन कथाओं को **शिवदास** ने १२वीं शताब्दी ई० में गद्य और पद्य रूप में प्रस्तुत किया है, **जम्भालदत्त** ने गद्य रूप में प्रस्तुत किया है, **वल्लभदेव** ने इसका एक संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है और एक अज्ञात लेखक का संस्करण गद्य में है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस बात से ज्ञात होती है कि इसका अनुवाद बहुत-सी भारतीय भाषाओं में हुआ है।

विक्रमादित्य से संबद्ध वेतालपंचविंशतिका की तरह कई कथा-ग्रन्थ हैं। **सिंहासनद्वात्रिंशिका** में ३२ कहानियाँ हैं। विक्रमादित्य के सिंहासन की ३२ सीढ़ी में प्रत्येक में एक पुतली बनी हुई थी। उनमें से प्रत्येक ने एक कहानी कही है। पुतलियों ने यह कहानियाँ राजा भोज को कही हैं। जब यह सिंहासन मिला, तब राजा भोज उस पर बैठना चाहता था। पुतलियों ने राजा भोज को सिंहासन पर बैठने से रोका और एक-एक दिन एक-एक पुतली ने एक-एक कथा विक्रमादित्य के पराक्रम की उसे सुनाई और कहा कि यदि वह इन गुणों से युक्त हो तो सिंहासन पर बैठे, अन्यथा नहीं। इस प्रकार पुतलियों ने उसे ३२ दिन रोक कर रक्खा। इसका लेखक और इसका समय अज्ञात है। इस ग्रन्थ के दूसरे नाम **द्वात्रिंसत्पुत्तलिका** और **विक्रमार्कचरित** हैं। १४वीं शताब्दी ई० के एक जैन लेखक **क्षेमंकर** ने गद्य में इसका जैन रूपान्तर प्रस्तुत किया है। इसका एक रूपान्तर वररुचि के नाम से प्रसिद्ध बंगाल में प्राप्य है। दक्षिण भारत में यह **विक्रमार्कचरित** के नाम से प्रसिद्ध है। यह

ग्रन्थ भी भारतीय भाषाओं में अनूदित प्राप्य है। विक्रमादित्य के पराक्रम का वर्णन करने वाले अन्य ग्रन्थ ये हैं—१. **अनन्तरचित वीरचरित्र**, २. एक अज्ञात लेखक का **विक्रमोदय**, ३. एक जैन लेखक का **चदण्डक्षत्रप्रबन्ध**, ४. **शिवदास** की **शालिवाहनकथा** और **वेतालपंचविंशतिका** आदि।

शुकसप्तति ७० कहानियों का संग्रह है। इसके लेखक और समय का पता नहीं है। इसमें एक तोता अपनी स्वामिनी को ७० रात तक एक-एक कहानी करके ७० कहानियाँ सुनाता है। उसकी स्वामिनी अपने पति के अभाव में दुराचारिणी होना चाहती थी। तोता प्रतिदिन रात भर एक कहानी सुनाता था, इस प्रकार उसने अपनी स्वामिनी को दुराचारिणी होने से बचाया। यह गद्य में है। इसका फारसी में अनुवाद १४वीं शताब्दी ई० में हुआ है। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) शुकसप्तति को जानता था। अतः इसका रचनाकाल १००० ई० से पूर्व है।

बल्लालसेन ने १६वीं शताब्दी में **भोजप्रबन्ध** लिखा है। यह अधिकांश पद्य में है, थोड़ा अंश गद्य में है। इसमें उसने राजा भोज के राजद्वार का विशद वर्णन किया है। राजा भोज स्वयं कवि था और कवियों का आश्रयदाता था। राजा भोज राजद्वार की कविगोष्ठियों का सभापति होता था। कविगोष्ठी में भाग लेने वाले कालिदास, दण्डी, बाण, माघ, भवभूति आदि थे। कवि-गोष्ठियों के कार्य का विवरण प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा हास्य से युक्त है। समस्यापूरण[1] या समस्यापूर्ति के रूप में निम्नलिखित श्लोक भोजराज-परिषद् के क्रिया-कलाप पर प्रकाश डालता है—

भोजः—परिपतति पयोनिधौ पतङ्गः
बाणः—सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्गः।
महेश्वरः—उपवनतरुकोटरे विहङ्गः
कालिदासः—युवतिजनेषु शनैः शनैरनङ्गः॥

---

१. उस श्लोक की पूर्ति करना जिसका एक अंश किसी ने पहले ही बना दिया है—समस्यापूरण कहलाता है।

इसमें राजा मुंज के बाद भोज किस प्रकार सिंहासन पर बैठा, इसका भी वर्णन है। इसमें काल-सम्बन्धी त्रुटियाँ बहुत हैं।

वेतालपंचविंशतिका के लेखक **शिवदास** ने **कथार्णव** लिखा है। इसमें प्रसिद्ध ३५ कहानियाँ हैं। **श्रीवीरकवि** ने १४५१ ई० में **कथाकौतुक** लिखा है। यह १५ अध्यायों में पद्य में है। यह यूसुफ और जुलेका की कथाओं पर आधारित है। यह जोनराज का शिष्य श्रीवर ही है। इनके अतिरिक्त **आनन्दकृत माधवानलकथा** और **विद्यापति** कृत **पुरुषपरीक्षा** आदि प्रचलित ग्रन्थ हैं।

अध्याय २०

नीति-कथाएँ

नीति-कथाएँ भारतीय साहित्य की एक मुख्य विशेषता रही हैं। ई० सन् से पूर्व नीति-कथा-साहित्य की सत्ता पतंजलि के एक कथन से ज्ञात होती है।[1] नीति-कथाएँ गद्य में लिखी जाती हैं और उनमें श्लोक बीच-बीच में उद्धृत होते हैं। ये श्लोक रामायण, महाभारत तथा अन्य नीति-ग्रन्थों से लिये हुए होते हैं। इन श्लोकों में नीति-सम्बन्धी कोई शिक्षा होती है और उसके समर्थन में कथा दी जाती है। साधारणतया एक कहानी के अन्दर दूसरी कहानी जोड़ी हुई होती है। इस प्रकार एक कहानी में कई कहानियाँ हो जाती हैं। ये कहानियाँ नीति-श्लोकों के साथ दी गई हैं। प्रत्येक कहानी के अन्त में पद्य में नीति-सम्बन्धी शिक्षा दी गई है और उनके साथ ही नई कहानी का संकेत होता है। तत्पश्चात् नई कहानी कही जाती है। प्रत्येक कहानी के साथ यह ही क्रम होता है। कहानी के अन्दर कहानी रखने का क्रम बहुत प्रचलित हुआ और इस पद्धति को विदेशियों ने भी अपनाया तथा अरेबियन नाइट्स जैसी पुस्तकें प्रस्तुत कीं। ये नीति-कथाएँ संस्कृत में लिखी गईं।

इन कथाओं की एक विशेषता यह है कि इनमें मनुष्य के स्थान पर पशु और पक्षी रक्खे गये हैं। वे मानवीय गुणों और स्वभाव से युक्त होते हैं। पशु, पक्षी और वृक्ष अपने स्वभाव और व्यवहार के द्वारा मनुष्य को बहुत कुछ शिक्षा दे सकते हैं। पशु, पक्षी और वृक्षों की कथा के द्वारा जीवन के अच्छे और बुरे दोनों स्वरूपों का बहुत सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया गया है।

---

१. पतंजलि ने अजाकृपाणीय और काकतालीय आदि शब्दों की व्युत्पत्ति दी है। इससे ज्ञात होता है कि इनका सम्बन्ध किसी कहानी से है।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त से भी इस बात का समर्थन होता है। महाभारत में भी इस प्रकार की बात का उल्लेख मिलता है। विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा है कि वह पांडवों को न मारे, नहीं तो वह सोने का अंडा देने वाले पक्षी को मारेगा। बौद्ध जातकों में भी ऐसी विशेषता प्राप्त होती है। इस प्रकार का साहित्य ई० सन् से पूर्व विद्यमान था।

ये कथाएँ मनुष्य के राजनीतिक जीवन तथा अन्य प्रकार के दैनिक जीवन का वर्णन करती हैं। आजकल जो नीति-ग्रन्थ प्राप्त हैं, उनसे ज्ञात होता है कि वे राजकुमारों को राजनीति सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए बनाये गये थे। इस उद्देश्य के साथ ही इनमें जीवन के बुरे पक्ष का भी भली भाँति स्पष्टीकरण किया गया है—जैसे, ब्राह्मणों के द्वारा छल-प्रपंच, कपट और लोभ का व्यवहार, अन्तःपुर के छल-प्रपंच और स्त्रियों की दुराचारवृत्तियाँ आदि। इसी प्रकार जीवन के अच्छे पक्ष का भी वर्णन है, जैसे—ब्राह्मणों की पवित्रता और उनका गौरव, क्षत्रियों के लिए आदेश कि वे अपने कर्तव्य का तत्परता के साथ पालन करें, स्त्रियों के लिए शिक्षा कि वे पतिव्रता हों। दुर्गुणों को सुन्दर व्यंग्य के साथ प्रकट किया गया है।

प्रचलित कहानियाँ और नीति-कथाओं के स्वरूप में कोई निश्चित अन्तर नहीं प्रतीत होता है। तथापि इतना कहा जा सकता है कि प्रचलित कहानियों में कहानी को अधिक महत्त्व दिया जाता है और नीति-कथाओं में नीति-सम्बन्धी विषय को।

नीति-कथा के मुख्य प्रतिनिधि ग्रन्थ **पंचतन्त्र** और **हितोपदेश** हैं। पंचतन्त्र के बहुत से संस्करण हैं और उनमें थोड़ा अन्तर है। ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता है कि ये सभी संस्करण स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न हुए हैं। ये सभी ग्रन्थ एक मूल-ग्रन्थ से निकले हैं, जो कि आजकल अप्राप्य है। कुछ साक्षियों के आधार पर मूल-ग्रन्थ के स्वरूप का अनुमान हो सकता है। पंचतन्त्र की एक संस्कृत में लिखी मूल प्रति का अनुवाद फारस के बादशाह नौशीरवाँ के लिए उसके हकीम बुर्जो ने पहलवी भाषा में किया। इस पहलवी संस्करण का

अनुवाद सीरिया की भाषा में एक बुद नामक व्यक्ति ने ५७० ई० में किया। ७५० ई० में पहलवी संस्करण का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। योरोपीय भाषाओं में जो इसके अन्य अनुवाद हुए हैं, वे अरबी अनुवाद पर आश्रित हैं, जैसे—११०० ई० में हिब्रू भाषा में अनुवाद, १२७० ई० में लेटिन में अनुवाद, १४८० ई० में जर्मन भाषा में अनुवाद, १५५२ ई० में इटालियन भाषा में अनुवाद, १६७८ ई० में फ्रेंच भाषा में अनुवाद, १०८० ई० में यूनानी भाषा में अनुवाद, १२वीं शताब्दी में फारसी भाषा में अनुवाद, इसके बाद अन्य भाषाओं में अनुवाद हुए। पचतन्त्र का मूल संस्कृत वाला संस्करण तथा पहलवी वाला संस्करण नष्ट हो चुका है। इससे इतना कहा जा सकता है कि पहलवी वाले संस्करण से बहुत समय पूर्व संस्कृत वाला संस्करण बन चुका था। इस पहलवी वाले संस्करण का ५७० ई० में सीरिया की भाषा में अनुवाद हुआ है। अतः मूल पंचतन्त्र की रचना का काल तृतीय शताब्दी ई० मानना उचित है। इस समय संभवतः भारतीय क्षत्रियों ने विदेशियों को हटाकर हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया होगा और उन्हें इस प्रकार के ग्रन्थ की आवश्यकता पड़ी होगी। पाश्चात्य विद्वान् इसका संबंध कश्मीर या मगध से जोड़ते हैं। डा० कीथ के मतानुसार इसका रचयिता वैष्णव विद्वान् था। निश्चित सूचना के अभाव में इन सभी विचारों को केवल कल्पनामात्र समझना चाहिए। बौद्ध धर्म प्रायः हिंदू धर्म से समानता रखता है, अतः इन विचारों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए कि मूल पंचतन्त्र पर बौद्ध जातक-ग्रंथों का प्रभाव पड़ा है। पंचतन्त्र का मूल नाम क्या था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। पहलवी अनुवाद में कलिलंग और दमनग नाम तथा अरबी अनुवाद में कलिलह और दमनह नाम से संस्कृत कर्कटक और दमनक का अनुमान लगाया जा सकता है। मूल-ग्रन्थ का यह नाम था, यह सन्देह की बात है, क्योंकि कर्कटक और दमनक पंचतंत्र के केवल प्रथम तंत्र में प्राप्य हैं, अन्य तंत्रों में नहीं। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि पहलवी वाला अनुवाद केवल प्रथम तन्त्र का ही अनुवाद था। अतः मूलग्रंथ का वास्तविक नाम अनिश्चित ही है। बाद के भारतीय संस्करणों

में जो इसके नाम के साथ तंत्र शब्द पाया जाता है, वह स्वतंत्र कल्पना नहीं प्रतीत होती है। यह शब्द मूल नाम में रहा होगा। मूल-ग्रन्थ का नाम पंचतंत्र रहा होगा। बाद के संस्करणों में तन्त्रों के क्रम में अन्तर है तथा कहानियों के क्रम में अंतर है। अतः मूल-ग्रन्थ में कितना और क्या पाठ्य था, यह निश्चय करना कठिन है। सीरिया की भाषा वाले अनुवाद में १० खण्ड हैं और अरबी वाले अनुवाद में २२ खण्ड हैं।

इसके तीन मुख्य संस्करणों के द्वारा मूल ग्रन्थ के विषय का ज्ञान हो सकता है—१. तन्त्राख्यायिका, २. उत्तरी भारत का प्रचलित संस्करण पंचतन्त्र, ३. बृहत्कथामंजरी और कथासरित्सागर के द्वारा ज्ञात पंचतन्त्र। इसके नाम में प्रयक्त तन्त्र शब्द से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ आचार अथवा नीति-विषयक ग्रन्थ है। इसकी रचना में काव्य की शैली को अपनाया गया है और गद्य तथा पद्य दोनों को सम्मिलित किया गया है।

बाद के संस्करणों में इसका जो पंचतन्त्र नाम रक्खा गया है, वह पाँच तन्त्रों के आधार पर है। वे पाँच तन्त्र ये हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, विग्रह, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक। प्रथम तन्त्र मे दिखाया गया है कि भेद-नीति का प्रयोग करके किस प्रकार दो गीदड़ों ने सिंह और बैल में युद्ध करा दिया है। दूसरे तन्त्र में मित्रता और पारस्परिक सहयोग का महत्त्व दिखाया गया है। तीसरे तन्त्र में युद्ध, उसके कारण और सन्धि की उपयोगिता का वर्णन किया गया है। चौथे तन्त्र में दिखाया गया है कि किस प्रकार प्राप्त वस्तु भी असावधानी से नष्ट हो जाती है। पाँचवें तन्त्र में दिखाया गया है कि किस प्रकार बिना विचारे कार्य करने से नाश होता है। बाद के संस्करणों में ये पाँचों तन्त्र इसी प्रकार हैं, परन्तु उपर्युक्त लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जो कहानियाँ दी गई हैं, उनमें पर्याप्त अन्तर है।

मल ग्रन्थ के दो विभिन्न संस्करण प्राप्त हैं—**तन्त्राख्यायिका** और **पंचतन्त्र**। इनमें से प्रथम सीरियन संस्करण से अधिक मिलता है और मूल ग्रन्थ के अधिक समीप है। इसकी भाषा सरल और परिमार्जित है। संभवतः

यह मूल ग्रन्थ का परिमार्जित और संशोधित रूप है। इसके नाम में आख्यायिका शब्द से ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ को कहानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ कश्मीर में प्राप्त होता है। पंचतन्त्र कई संस्करणों में प्राप्त होता है। बृहत्कथा और कथासरित्सागर के अनुसार पंचतन्त्र का स्वरूप दूसरा ही है। पंचतन्त्र का एक जैन संस्करण ११०० ई० के लगभग तैयार हुआ है। इसमें **माघ** (७०० ई०) और **रुद्रभट्ट** (९०० ई०) का उल्लेख है। इसमें कहानियों में परिवर्तन किया गया है और नई कहानियाँ जोड़ी गई हैं। ११९९ ई० में एक जैन **पूर्णभद्र** ने पंचतन्त्र का एक नवीन संस्करण तैयार किया। यह तन्त्राख्यायिका, पंचतन्त्र के जैन संस्करण तथा अन्य आधारों पर अवलम्बित है। इस संस्करण में गुजराती और प्राकृत वाले प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। इस संस्करण का नाम **पंचाख्यानक** है। एक जैन लेखक **मेघविजय** (१६६० ई०) ने **पंचाख्यानोद्धार** ग्रन्थ लिखा है। इसमें बहुत-सी मनोरंजक कहानियाँ हैं। पंचतन्त्र के दक्षिण भारत में कई संस्करण प्राप्त होते हैं। इसमें कालिदास और भवभूति का उल्लेख है। यह ग्रन्थ ६०० ई० के बाद बना होगा। पंचतन्त्र की एक नेपाली हस्तलिखित प्रति है। इसमें केवल श्लोक ही हैं, केवल एक संदर्भ गद्य में है। यह दक्षिण भारत में **पचतन्त्र** नाम से प्रसिद्ध है और उत्तर भारत में **पंचाख्यानक** नाम से। पंचतन्त्र का शुकसप्तति और वैताल-पंचविंशतिका पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

हितोपदेश पंचतन्त्र का पुनर्निर्माण करने के लिए एक दूसरा प्रयत्न है। इसमें नया विषय भी सम्मिलित किया गया है। पंचतन्त्र की अधिकांश कहानियाँ इसमें पुनः दृष्टिगोचर होती हैं। **कामन्दक** के **नीतिसार** से इसमें श्लोक संगृहीत हैं। इसके केवल चार खण्ड हैं। उनके नाम हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। पंचतन्त्र का चौथा तन्त्र इसमें सर्वथा छोड़ दिया गया है। हितोपदेश का चौथा खण्ड लेखक की अपनी कृति है। इसका लेखक **नारायण** है। यह बंगाल के एक धवलचन्द्र का आश्रित कवि है। इसकी सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति १३७३ ई० की है। यह ग्रंथ इस

समय से बहुत समय पूर्व लिखा जा चुका होगा । इस ग्रंथ का उद्देश्य, जैसा कि पुस्तक में वर्णित है, पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के पुत्रों को नीतिविषयक शिक्षा देना था । इस ग्रन्थ की शैली बहुत सरल और आकर्षक है । यह ग्रन्थ भारतीय भाषाओं में भी बहुत प्रचलित है ।

पंचतन्त्र और हितोपदेश राजनीति-शास्त्र की श्रेणी में आते हैं । इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त इस विषय के और भी ग्रन्थ रहे होंगे । इनमें से कुछ नष्ट हो गये होंगे और कुछ पंचतन्त्र और हितोपदेश में ही सम्मिलित हो गये होंगे ।

बौद्धों और जैनों के नीति-कथा के ग्रन्थ अपने हैं । एक जैन **सिद्धर्षि** ने ९०६ ई० में **उपमितिभावप्रपंचकथा** ग्रन्थ लिखा है । यह गद्य में है, बीच-बीच में पद्य हैं । इसमें बहुत-सी कथाएँ सम्मिलित हैं । इसमें भाव-जगत की अनेकरूपताएँ कहानियों के द्वारा प्रस्तुत की गई हैं । **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) ने अपने ग्रन्थ **त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित** के परिशिष्ट के रूप में **परिशिष्टपर्व** लिखा है । इसमें जैन मुनियों की आत्मकथाएँ हैं । साथ ही इसमें बहुत-सी प्रचलित कहानियाँ भी सम्मिलित हैं ।

अध्याय २१

संस्कृत नाटक, उनकी उत्पत्ति, उनकी विशेषताएँ और उनके भेद

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति

भारतीय परम्परा संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति दैवी मानती है । देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वह ऐसी वस्तु उत्पन्न करें जो जीवमात्र के आँखों और कानों को तृप्त कर सके । उनकी इस प्रार्थना पर ब्रह्मा ने नाट्यवेद की सृष्टि की । ब्रह्मा ने इसके लिए ऋग्वेद से पाठ्य लिया, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रसों को लिया[1] । शिव और पार्वती ने इसके लिए क्रमशः ताण्डव और लास्य दिये । विष्णु ने इसके लिए चार नाट्य-संबंधी रीतियाँ दीं । इन रीतियों के नाम हैं—कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती । भरत मुनि को अधिकार दिया गया कि वह इसको संसार में प्रकट करें । भरत मुनि ने तदनुसार ही कार्य किया । इस नाट्य वेद को पंचम वेद कहा गया ।

इस दैवी उत्पत्ति के अतिरिक्त नाटकों की उत्पत्ति धार्मिक और लौकिक आधार पर भी मानी जा सकती है । बहुत प्राचीन समय से संगीत, नृत्य और नाट्य इन तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध रहा है । संगीत का प्रादुर्भाव सामवेद के समय से हुआ है । नृत्य और अभिनय का प्रादुर्भाव यज्ञों के क्रिया-कलाप से हुआ है । इन कार्यों का सम्बन्ध यजुर्वेद से है । संवाद का तत्त्व ऋग्वेद के संवादों से लिया गया है, जैसे—यम-यमी सूक्त, पुरूरवा-उर्वशी-सूक्त आदि । वैदिक-कर्मकाण्ड में नाटकों के लिए उपयोगी सभी तत्त्व विद्यमान थे तथापि

१—नाट्यशास्त्र १–११ से १७ ।

उन्होंने नाटकों की उत्पत्ति में स्वयं साक्षात् कोई प्रभाव नहीं डाला । संस्कृत नाटकों में संगीत का तत्त्व प्रमुख होता है । रामायण, महाभारत और छोटी कहानियों से संगीत के लिए सामग्री प्राप्त हुई । रामायण और महाभारत का यज्ञादि के अवसर पर पारायण होता था । इनके द्वारा नाटकों के लिए पाठ्य की सामग्री प्राप्त हुई । नाटकों पर रामायण और महाभारत का प्रभाव इस बात से स्पष्ट है कि नाटकों की अधिक सामग्री रामायण और महाभारत से ली गई है । वैदिक कर्मकाण्ड का प्रभाव नाटकों पर इस बात से स्पष्ट है कि इनके प्रदर्शन के लिए धार्मिक उत्सव या देवपूजा आदि के अवसर रुचिकर समझे गये । नाटकीय अभिनयों की उत्पत्ति दैनिक संकेतादि के अनुकरण से समझनी चाहिए, इसका पृथक् आविष्कार मानना उचित नहीं है । नाटकों में पुरुष पात्रों और स्त्री पात्रों का विभाजन है । इसी प्रकार पात्रों के द्वारा प्रयुक्त भाषा में भी भेद होता है । इससे सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति धार्मिक और लौकिक वातावरण में हुई है । मालविकाग्निमित्र का निम्नलिखित श्लोक इस बात को सिद्ध करने में सहायक हो सकता है --

देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।।
—मालविकाग्निमित्र १-४

वैदिक-काल के पश्चात् जब रामायण और महाभारत लिखे गये हैं, उस समय नाटकों का जन्म हुआ है ।

यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि कब सबसे प्रथम नाटकीय ग्रन्थ लिखा गया । तथापि कतिपय प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में नाटकीय ग्रन्थ विद्यमान थे । नट, कुशीलव तथा अन्य नाटकीय शब्द प्राचीन वैयाकरण **पाणिनि** (८०० ई० पू०) के ग्रन्थ **अष्टाध्यायी** में उपब्ध होते हैं । **पतंजलि** ने क्रिया की वर्तमानकालि-

कता का उदाहरण देते हुए बताया है कि कोई भी क्रिया तीन प्रकार से वर्तमान काल का बोध कराती है । अभिनय, चित्रण और पाठ के द्वारा भूतकाल की क्रिया भी ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करने पर वर्तमानता का बोध कराती है। भूतकालिक क्रिया का वर्तमान काल में होने का उदाहरण उन्होंने कंसवध और बलिबन्ध दिया है। इस उदाहरण से ज्ञात होता है कि पतंजलि (१५० ई० पू०) के समय में नाटकीय अभिनय प्रचलित थे । हरिवंश में रामायण की कथा के अभिनय का उल्लेख आता है। उसमें कृष्ण के पुत्र ने राम का अभिनय किया था। हरिवंश का ही कहना है कि इन्द्र की उपस्थिति में नारद ने कृष्ण, बलराम, अर्जुन, सत्यभामा आदि के हाव-भावों का अनुकरण करके दिखाया । बौद्धों की नाट्य-कला की ओर अभिरुचि थी। इससे ज्ञात होता है कि संस्कृत-नाटकों की उत्पत्ति केवल धार्मिक आधार पर ही नहीं है । अवदानशतकों में नाट्य-कला का निर्देश है । छोटा नागपुर के समीप सीताबेग गुफा के देखने से ज्ञात होता है कि वहाँ पर नाटकीय प्रदर्शन होते थे। इससे सिद्ध होता है कि ३०० ई० पू० से पूर्व उन स्थानों पर कविता का पाठ होता था, प्रणय-गीतों का गान होता था और नाटकीय प्रदर्शन होते थे। अतः रामायण और महाभारत के समय में नाटकों की उत्पत्ति माननी चाहिये । इस समय के नाटकीय ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं ।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति यूनानी नाटकों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । उनका मत है कि सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् भारतीय राजद्वारों में यूनानी नाटकों का अभिनय प्रारम्भ हुआ । इसकी पुष्टि संस्कृत और यूनानी नाटकों में प्राप्त होने वाली समानता करती है । दोनों स्थानों के नाटक अंकों में विभाजित होते हैं। इनमें साधारणतया पाँच अंक होते हैं। प्रत्येक अंक के अन्त में अभिनेता रंगमंच से हट जाते हैं । रंगमंच पर विद्यमान अभिनेता आने वाले अभिनेता के प्रवेश की सूचना देता है। दोनों स्थानों के नाटकों में प्रेम-वर्णन समान है । दोनों स्थानों पर पात्रों का विभाजन उच्च, मध्यम और निम्न के रूप में है। संस्कृत नाटकों में

प्रयुक्त होने वाले यवनिका (पर्दा) शब्द का सम्बन्ध यवन शब्द से है । भारतीय राजा यवन-कुमारियों को अंगरक्षक के रूप में नियुक्त करते थे ।

उपर्युक्त प्रमाणों से भारतीय नाटकों की उत्पत्ति यूनानी नाटकों से नहीं मानी जा सकती है। भारत और यूनान के नाटकों के पारिभाषिक अंश दोनों स्थानों पर स्वतन्त्र रूप से प्रादुर्भूत हुए होंगे । समय और स्थान की आवश्यकता के अनुसार इनका विस्तार भी स्वतन्त्र रूप से हुआ होगा। दोनों स्थानों के नाटकों में भावों की समानता भी स्वतन्त्र ही समझनी चाहिये । पात्रों का विभाजन दैनिक जीवन के प्रयोग के आधार पर है । यवनिका शब्द फारस के बने पर्दे के कपड़े के लिए है, जिससे पर्दा बनता था । इसके अतिरिक्त अन्य कई पुष्ट प्रमाण हैं, जिनके आधार पर भारतीय नाटकों की यूनानी नाटकों से उत्पत्ति का खण्डन किया जा सकता है । यूनानी नाटकों में संकलनत्रय अर्थात् काल, स्थान और कार्य की एकता का कठोरता के साथ पालन किया गया है, परन्तु भारतीय नाटकों में उसके पालन का सर्वथा अभाव है । यह कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटकों को यूनानी नाटकों का ज्ञान नहीं था । दुःखान्त नाटकों का जन्म यूनानी साहित्य की देन है, परन्तु संस्कृत साहित्य में इसका सर्वथा अभाव है । अतः यह स्वीकार करना उचित है कि संस्कृत नाटकों का जन्म और विकास स्वतन्त्र रूप से भारत में ही हुआ है । यह संभव है कि इस पर यूनानियों या अन्य विदेशियों का कुछ प्रभाव पड़ा हो ।

कुछ लोगों ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि भारतवर्ष में नाटकों का जन्म गुड़ियों के खेल से हुआ है । इसका आधार वे सूत्रधार शब्द बताते हैं । सूत्रधार शब्द का अर्थ है—रंगमंच का अधिष्ठाता । उन लोगों ने इसका अथ किया है सूत्र अर्थात् धागा पकड़ने वाला और इसका भावार्थ किया है कि गुड़िया नचाने वाला सूत्रधार होता था । यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वास्तविक नाटकों के अनुकरण पर ही गुड़िया का खेल चला है । ये नाटक मनुष्य की स्वाभाविक प्रतिभा तथा क्रिया पर निर्भर हैं । सूत्रधार का वास्त-

विक अर्थ है—नाटक के क्रिया-कलाप का नियन्ता। सुखान्त नाटक मनुष्य के प्रारम्भिक जीवन के सुख के अनुभव का अभिव्यंजन है। इसमें हास्य और चातुर्य का संमिश्रण होता है। अतः नाटक की उत्पत्ति गुड़िया के खेल और छाया-दृश्य पर निर्भर नहीं रह सकती थी। वस्तुतः नाटकों का जन्म इनसे बहुत पूर्व हो चुका था।

संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ

जीवन की अवस्थाओं के अनुकरण का नाम नाट्य है।[1] भरत ने निम्नलिखित शब्दों में नाट्य का उद्देश्य बताया है—

उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।
हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत्।
दुःखार्तानां समर्थानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम्। नाट्यशास्त्र १. ११४-११५।

नाटक का उद्देश्य यह है कि वह जनमात्र के लिए आमोद, मनोरंजन और सुख देने वाला हो। अस्थिर-चित्त मनुष्यों को उचित उपदेश दे। दुःख-पीड़ित और शोकग्रस्तों को शान्ति प्रदान करे। कार्य करने में समर्थ व्यक्तियों को तथा तपस्विवर्ग को आवश्यक मनोरंजन प्रदान करे। नाटकों के इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन सभी घटनाओं और कार्यों का संग्रह किया गया, जिससे उनका यह उद्देश्य पूर्ण हो। अतः नाटककारों का यह कर्त्तव्य हो गया है कि वे मानव-जीवन की सभी घटनाओं को सुबोध और विश्वसनीय ढङ्ग से प्रस्तुत करें तथा रचना इस प्रकार की हो कि दर्शकों को आनन्द-प्रदान कर सके।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटककार को मानव-जीवन की उन अवस्थाओं को चित्रित करना पड़ा, जिनसे नाटक वास्तविक प्रतीत हो। साथ ही जीवन की कठोर वास्तविकताओं को छोड़ना पड़ा, क्योंकि उनसे दर्शकों के मन पर ठीक प्रभाव नहीं पड़ता और उन्हें उसमें आनन्द प्राप्त नहीं होता।

१. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्।

अतः जीवन की वास्तविकताओं को कलात्मक रूप देकर प्रस्तुत करना पड़ा। अतः संस्कृत नाटकों को केवल आदर्शवादी नहीं कह सकते हैं।

संस्कृत नाटकों का उद्देश्य आनन्द-प्रदान करना है, अतः उसमें दुःखद घटनाओं के मिश्रण के लिए स्थान नहीं है। दुःखित और शोकार्त्त व्यक्ति शान्ति चाहता है। दुःखान्त घटनाएँ उसको और दुःखित बनायेंगी। अतः संस्कृत नाटककारों ने ऐसी घटनाओं को स्थान नहीं दिया है। साथ ही हिन्दू आचारशास्त्र का सिद्धान्त है कि धर्म की विजय होती है और अधर्म की पराजय होती है। अतः उदात्त गुणों से युक्त नायक की पराजय नहीं होनी चाहिए और न पापी की विजय ही होनी चाहिए। पापी पर जो विपत्ति या मृत्यु आदि आती है, वह कर्मफल-सिद्धान्त के नियमानुसार उसके किये हुए कर्मों का ही फल है, अतः जनता की उसके प्रति सहानुभूति नहीं होती है। इसीलिए पापी का पतन दुःखान्त घटना नहीं है। तथापि संस्कृत नाटकों में बहुत-सी घटनाएँ ऐसी हैं, जो दुःखप्रद और करुणाजनक हैं। **उत्तररामचरित, वेणीसंहार** और **नागानन्द** आदि में इस प्रकार के दृश्य हैं। इस प्रकार के दृश्य रामायण, महाभारत तथा अन्य कथानकों में हैं, जहाँ से इनकी कथाएँ ली गई हैं। उनका प्रभाव नाटककारों पर अवश्य पड़ा है।

यदि नाटककार अपनी असाधारण प्रतिभा से इनको सुखान्त न बना देते तो ये दृश्य इन नाटकों को दुःखान्त नाटक बना देते।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पाश्चात्य नाटकों की तरह संस्कृत नाटक पूर्णतया सुखान्त और पूर्णतया दुःखान्त नाटकों के रूप में विभक्त हैं। इन नाटकों में सुख, दुःख तथा अन्य भाव स्वतन्त्र रूप से मिश्रित हैं। इन नाटकों में हास्य का अंश विदूषक उपस्थित करता है।

संस्कृत नाटकों में काल, स्थान और क्रिया सम्बन्धी संकलनत्रय का पूर्णतया पालन नहीं हुआ है। नाटक के दृश्यों के प्रदर्शन में उतना ही समय लगना चाहिए, जितना कि वास्तविक घटना के घटित होने में लगता है। इस

नियम का संस्कृत नाटकों में उल्लंघन हुआ है। यह भी माना जाता है कि दो अंकों की घटनाओं के बीच में एक रात्रि का कम से कम व्यवधान होना चाहिए। इस नियम का भी पालन नहीं हुआ है। कतिपय नाटकों में अगला अंक पूर्व अंक से क्रमबद्ध है और उसमें समय का कुछ भी व्यवधान नहीं है। **शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, उत्तररामचरित** आदि नाटकों की घटनाएँ कई वर्ष की घटनाएँ हैं। उत्तररामचरित के द्वितीय अंक की कथा प्रथम अंक की कथा से १२ वर्ष बाद की घटना है।

स्थान की एकता का भी पालन नहीं किया गया है। नाटकों के लिए जो भाव लिया गया है, वह विभिन्न स्थानों का है। साथ ही यह विश्वास कि अलौकिक जीव भी मनुष्य के कार्यों में हाथ डालते हैं, दृश्य के स्थानपरिवर्तन का कारण हो जाता है। स्थानपरिवर्तन के बिना इन दृश्यों की वास्तविकता दर्शकों के सम्मुख उपस्थित नहीं की जा सकती है। विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल के दृश्य कुछ पृथिवी पर घटित हुए हैं और कुछ स्वर्ग में। कई नाटकों में एक ही अंक में स्थानपरिवर्तन हो गया है।

संस्कृत नाटकों में कथानक की एकता को विशेष महत्त्व दिया गया है। कथानक की एकता का पूर्णतया निर्वाह **कालिदास, शूद्रक** आदि नाटककारों ने ही किया है। भरत के नाट्यशास्त्र का यह श्लोक नाट्य में भाव के महत्त्व पर प्रकाश डालता है—

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥

भरत ने यह उल्लेख किया है कि अभिनय का उद्देश्य लोगों को सदुपदेश देना, आमोद और विहार आदि प्रदान करना है, अतः अभिनय-दर्शकों को इसका आनन्द अवश्य लेना चाहिए। आनन्द वैयक्तिक अनुभूति में होता है जो सुखद है और जिसकी उत्पत्ति घटनाओं अथवा दृश्यों से होती है। इस प्रकार के सुख का आधार मानस अनुभूतियों या भावों का उत्कर्ष है। इसीलिए प्रत्येक अभिनयद्रष्टा को शान्ति, आमोद, हर्ष और विषाद की

अनुभूति पृथक्-पृथक् होती है। यह उसके हृदय में उठने वाले अपने भावो पर निर्भर है। इस प्रकार के भावों को जागृत करने में अभिनय के दो अङ्ग सहायक होते हैं—पहला है **नृत्य** जिसमें भाव की प्रमुखता रहती है और दूसरा है **नृत्त** जिसका आश्रय ताल और लय है। किन्तु नाटक का प्रमुख आश्रय रस होता है। देखिए :—

धीरोदात्ताद्यवस्थानुकृतिर्नाट्यं रसाश्रयम्।
भावाश्रयं तु नृत्यं स्यान्नृत्तं तालल्याश्रयम्॥

प्रतापरुद्रीय—नाटकप्रकरण १-२

संस्कृत नाटकों में और बातों की अपेक्षा रस-परिपाक को अधिक महत्त्व दिया गया है। शृङ्गार और वीर रस मुख्य रस होते हैं, अन्य रस उसके सहायक होते हैं। जो नाटककार रस-परिपाक को लक्ष्य में रखते हैं, वे उन्ही बातों का नाटक में संग्रह करते हैं जो रस की पुष्टि में सहायक हों। जो बातें उस रस की पुष्टि में बाधक होती हैं, उनको छोड़ देते हैं या उन्हें गौण स्थान देते हैं। रस की पुष्टि के लिए गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक उपयुक्त होता है। अतएव संस्कृत नाटकों में गेय छन्दों में श्लोक पर्याप्त संख्या मे हैं। शकुन्तला नाटक में १९२ श्लोक हैं, विक्रमोर्वशीय में १३३, उत्तररामचरित में २५५, मृच्छकटिक में ३८०, वेणीसंहार में २०८ श्लोक हैं। ये श्लोक अधिकांश में भावों या दृश्यों का वर्णन करते हैं। नाटककार रसों के परिपाक के लिए प्रकृति का वर्णन करते हैं। संवादों के लिए गद्य का प्रयोग उचित रूप से किया जा सकता था, परन्तु गद्य को उचित स्थान नहीं प्राप्त हुआ है। कथानक के विकास लिए संवाद सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं। संस्कृत नाटकों में कथानक की प्रगति को गौण स्थान दिया गया है, अतः गद्य अंश बहुत कम है। तथापि कालिदास, शूद्रक, भट्टनारायण, विशाखदत्त आदि के नाटकों में गद्य अंश का प्रयोग उचित मात्रा में हुआ है। रस को मुख्यता दी गयी है, अतएव कथानक और पात्रों को गौण स्थान दिया गया है, क्योंकि यदि कथानक और पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान दिया जाता तो

रस के परिपाक में विघ्न होता। रस-परिपाक के लिए ही कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती इन चार नाटकीय वृत्तियों का उपयोग किया जाता है। अलंकारों का प्रयोग भी रस की पुष्टि के लिए ही किया जाता है। रस-परिपाक को जो इतना महत्त्व दिया गया है, उससे कुछ अंश तक संस्कृत नाटक आदर्शवादी हो गये हैं। पद्यांश की अधिकता, गद्यांश का कम प्रयोग, एक ही प्रकार के कथानक और पात्र आदि के कारण इन नाटकों की वास्तविकता कम हो जाती है। इन बातों के होते हुए भी भास, कालिदास, भट्टनारायण, शूद्रक, विशाखदत्त आदि के नाटकों में वास्तविकता की कमी नहीं है। उपर्युक्त बातों का यह प्रभाव हुआ कि संस्कृत के नाटक अधिकांश में पाठ्य-ग्रन्थ हुए, उनका अभिनय ठीक ढंग से नहीं हो सका।

इन नाटकों के कथानक रामायण, महाभारत पर या उपाख्यानों पर आधारित हैं अथवा इनकी कथाएँ काल्पनिक हैं। बहुत से नाटककारों ने रामायण और महाभारत से ही अपने कथानक लिए हैं। उन्होंने कथानक में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया है। कालिदास तथा भवभूति आदि कतिपय कवियों ने मूल कथानक में कुछ परिवर्तन किया है। बहुत कम कवियों ने नवीन कथा का आविष्कार किया है और सफलतापूर्वक उसको प्रस्तुत किया है। शूद्रक ही अकेला ऐसा कवि है जो इस दृष्टि से सफल हुआ है। साधारणतया नाटकों का विषय प्रेम-कथा है। एक राजकुमार, जिसके कई विवाह हो चुके हैं, रानी की सेविका के रूप में नियुक्त अज्ञात कुल की युवती स्त्री से प्रेम करने लगता है। रानी नई सेविका पर कठोर नियन्त्रण रखती है कि वह उसके पति का ध्यान आकृष्ट न करे। परन्तु राजकुमार विदूषक की सहायता से उस युवती से एकान्त में मिलने का प्रबन्ध कर लेता है। जब यह घोषणा हो जाती है कि दोनों का प्रेम-प्रसंग हो गया है तो रानी उस सेविका को राजकुमार को अर्पण कर देती है। साधारणतया इस प्रकार के कथानक हैं। कुछ नाटकों में कुछ परिवर्तन भी हैं। शूद्रक के नाटक मृच्छकटिक में प्रेम-कथा और राजनीतिक कथा मिश्रित है। इस नाटक का कथा-संघटन बहुत उत्तम है। हर्षवर्धन के नागानन्द की कथा में

उक्त कथाओं से अन्तर है । विशाखदत्त के मुद्राराक्षस की कथा राजनीतिक विषय पर आधारित है ।

इन नाटकों में कथानक के बाद महत्त्व की दृष्टि से पात्रों का स्थान आता है । पात्रों के पुरुष और स्त्री रूप में विभाजन से नाटकों में वास्तविकता आ जाती है । "इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि भारतीय नाटककारों ने लगभग १३ सौ वर्ष पूर्व स्त्रियों को स्त्रीपात्रों का अभिनय करने की स्वीकृति देकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है । जिसको अब पाश्चात्य नाटककारों ने अपनाया है।"[१] ये पात्र ही संस्कृत का प्रयोग करें और ये पात्र प्राकृत का प्रयोग करें, इस नियन्त्रण से ज्ञात होता है कि संस्कृत नाटक कितने अधिक वास्तविक जीवन से सम्बद्ध थे । उस समय जिस प्रकार भाषा का प्रयोग होता था, उसी प्रकार नाटकों में भी भाषा का प्रयोग है । पुरुष पात्रों में नायक, प्रतिनायक, विदूषक, भृत्य आदि उल्लेखनीय हैं । सस्कृत नाटकों में नायक को दबाकर प्रतिनायक विजयी नहीं हो सकता है । नाटककारों का पहले से निर्णय कि नायक का पतन नहीं होना चाहिए और जैसे भी हो उसकी विजय-पताका फहरानी चाहिए, इस निश्चय के कारण पात्रों का चरित्र-चित्रण अच्छा नहीं हो पाया है । यही अवस्था स्त्रीपात्रों की भी है । नायक चार प्रकार के होते हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरशान्त और धीरललित । प्रेमी की दृष्टि से नायक चार प्रकार के होते हैं – अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ । नाटक के अनुसार नायक किसी एक विशेष प्रकार का होना चाहिए । विदूषक कोई ब्राह्मण व्यक्ति ही होता है । कालिदास के मालविकाग्निमित्र और शूद्रक के मृच्छकटिक के अतिरिक्त सभी नाटकों में विदूषक एक मूर्ख व्यक्ति है । वह प्रेमी और प्रेमिका का प्रणय-सम्बन्ध कराने में सहयोग देता है और अन्य सभी पात्रों के लिए हास्य का पात्र होता है । स्त्रीपात्रों में महारानी का स्थान ऊँचा होता है । अधिकांश नाटकों में

१. C. E. M. Joad : The History of Indian Civilisation. पृष्ठ ६५ ।

नायिका भी होती है। कुछ विशेष प्रकार के नाटकों में अन्य स्त्रियाँ भी नायिका हो सकती हैं। प्रेमकथा वाले नाटकों में साधारणतया दो या अधिक प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। ऐसे नाटकों में नाटककार को अवसर प्राप्त होता है कि वह दो प्रतिस्पर्धी रानियों की तुलना करे और उनकी विषमताओं को दिखाकर उनका चरित्र-चित्रण करे। कालिदास का मालविकाग्निमित्र इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। ये स्त्रीपात्र प्राकृत में बात करते है। मालविकाग्निमित्र और मालतीमाधव मे सन्यासिनी कौशिकी और कामन्दकी दोनों प्रेमियों का सम्बन्ध कराने में बहुत सहायता प्रदान करती है। ये दोनों सस्कृत में वार्तालाप करती है। यद्यपि अधिकाश नाटकों में चरित्र-चित्रण अच्छा नही हुआ है, तथापि कालिदास, शूद्रक और भट्टनारायण के नाटक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से बहुत उत्तम हैं। इनमें प्रत्येक पात्र का स्वतन्त्र व्यक्तित्व है।

प्रत्येक नाटक इष्टदेवता के स्तुतिपाठ के साथ प्रारम्भ होता है। इसको नान्दीपाठ कहते हैं। यह इस बात का सूचक है कि पर्दे के पीछे होने वाले प्रारम्भिक मांगलिक कार्य, जिसको पूर्वरग कहते हैं, समाप्त हो गये हैं। नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार रगमच पर आता है। कुछ नाटकों मे सूत्रधार ही रगमच पर आकर नान्दीपाठ करता है। सूत्रधार अपनी पत्नी नटी या अपने सेवक पारिष से नाटक, उसके लेखक और उसके अभिनय के विषय में वार्तालाप करता है। इसके पश्चात् वह इनके साथ रगमंच से चला जाता है। इस अंश को प्रस्तावना, आमुख या स्थापना कहते हैं। संस्कृत नाट्य के नियमानुसार रंगमंच पर इन कार्यों का दिखाना सर्वथा वर्जित है—मृत्यु आदि दुःखद घटनाएँ, युद्ध, शाप देना, शयन, चुम्बन आदि। उपर्युक्त दृश्य तथा आकाश में उड़ना आदि दृश्य जो कि कठिनाई से दिखाये जा सकते थे और ऐसे दृश्य जिनका अंक के मुख्य भाग में दिखाना आवश्यक नहीं था, इन दृश्यों को पाँच प्रकार से दर्शकों को बताया जाता था—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार और अंकास्य। इनमें से प्रथम दो

वार्तालाप के रूप में हैं, जिनसे दर्शकों को घटना का ज्ञान हो जाता है। विष्कम्भक दो प्रकार का होता है--१. शुद्ध विष्कम्भक, जब मध्यम श्रेणी के संस्कृत मे वार्तालाप करने वाले पात्र इसमे भाग लेते हैं। २. मिश्र विष्कम्भक जब मध्यम श्रेणी के पात्र सस्कृत में वार्तालाप करते हैं और निम्न श्रेणी के पात्र प्राकृत में वार्तालाप करते हुए इसमें भाग लेते हैं। इसमें संस्कृत और प्राकृत दोनों के प्रयोग करने वाले पात्र भाग लेते हैं। प्रवेशक में केवल प्राकृत बोलने वाले निम्न श्रेणी के पात्र भाग लेते हैं। यह प्रथम अंक के प्रारम्भ में नहीं आता है। चूलिका पर्दे के पीछे से भाषण के रूप में होता है। यह भाषण दो अंकों की कथा को जोड़ता है। अंकावतार में पहले अंक में पात्र आगामी अंक की कथा का निर्देश कर देते हैं और अगला अंक पूर्व अंक का ही चालू रूप होता है। अंकास्य उसे कहते है जहाँ पर एक ही अक से आगामी अंकों की कथा संक्षेप में बता दी जाए। इसके अतिरिक्त और कुछ नाटकीय निर्देश हैं, जैसे--अपवार्य, आत्मगतम्, जनान्तिकम् आदि। आत्मगतम् अर्थात् पात्र मन में कोई बात कहता है, जिसको अन्य पात्र नहीं सुन पाते हैं। शेष दो में पात्र इस प्रकार बात करते हैं कि वह अन्य पात्र न सुन सके। यह बात दर्शक ही सुन पाते हैं। नये पात्र के प्रवेश की सूचना रगमंच पर विद्यमान पात्र देता है। कभी-कभी जब किसी पात्र का प्रवेश अत्यावश्यक होता है तो वह स्वयं पर्दा हटाकर रंगमंच पर आ जाता है। कथानक को प्रगति देने के लिए कतिपय उपाय किए गये हैं, जैसे प्रेम-पत्र का लिखना, प्रेमी का चित्र बनाना, नाचना, एक खेल में ही दूसरे खेल का आरम्भ करना आदि। पुरुष का अभिनय स्त्री और स्त्री का अभिनय पुरुष करे, इसकी भी स्वीकृति दी गयी है जैसा कि मालतीमाधव में है। नाटक की सुखान्त समाप्ति के लिए अलौकिक तत्वों का भी आश्रय लिया जाता है, जैसे शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और नागानन्द आदि में। कुछ नाटकों में दैवी शक्ति वाले जीव भी भाग लेते हैं। प्रत्येक नाटक भरतवाक्य के साथ समाप्त होता है। भरत-वाक्य स्तुति-वाक्य के रूप में होता है, यह नायक या अन्य कोई मुख्य पात्र कहता है।

प्रत्येक नाटक अंकों में विभाजित होता है और अंक दृश्यों में । ये दृश्य स्पष्ट रूप से विभक्त नहीं होते हैं। अंक के अन्त में अभिनेता रंगमंच से चले जाते हैं । साधारणतया नाटकों में पाँच अंक होते है, परन्तु कतिपय नाटको में एक से दस तक अंक हैं । महानाटक में १४ अंक है । पात्रों की संख्या के विषय में कोई नियम नहीं है । शाकुन्तल में ३० पात्र हैं, वेणीसंहार में ३२, मृच्छकटिक में २९, मुद्राराक्षस में २४, विक्रमोर्वशीय में १८, मालतीमाधव में १३ और उत्तररामचरित में १० ।

पाश्चात्य आलोचकों का कथन है कि भारत में रंगमंच या चित्रशाला आदि नहीं थे । उनका यह कथन असत्य है, क्योंकि नाटकों में ही चित्रशाला, संगीतशाला और प्रेक्ष-गृह आदि का उल्लेख है । नाट्यशास्त्र में रंगमंच, नेपथ्य, दर्शकगृह आदि की लम्बाई-चौड़ाई आदि का विस्तृत वर्णन है । **शारदातनय** के **भावप्रकाशनम्** में तीन प्रकार की नाट्यशालाओं का उल्लेख है ।

संस्कृत-नाटक जीवन की अवस्था या परिस्थिति का अनुकरण प्रस्तुत करते हैं, जीवन के किसी कार्यविशेष का अनुकरण नहीं । अतएव इनमें नाटकीय निर्देश प्रायः प्राप्त होता है कि नाटयित्वा अर्थात् इस प्रकार का नाट्य करके । मनुष्य वास्तविक जीवन में जिस प्रकार का कार्य करता है, अभिनेता उसी का अनुकरण करते हैं । रथ पर चढ़ना, पेड़ों को पानी देना या शिकार खेलना आदि कार्यों का निर्देश मात्र किया जाता है । दर्शक उस क्रिया को स्वयं समझे । रंगमंच के पीछे जो पर्दा पड़ा रहता है, उस पर प्राकृतिक दृश्य बने होते हैं। वह जनता के लिए प्राकृतिक शोभा प्रस्तुत करता है । शिक्षित जनता रंगमंच पर होने वाली घटनाओं की वास्तविकता को अनुभव करती है । रंगमंच पर दृश्य-संबंधी विस्तृत प्रबंध करने में कुछ कठिनाइयाँ हैं, अतः साधारण दृश्यों का प्रबंध किया जाता है । शिक्षित जनता नाटक में रस का उत्तम परिपाक देखना

चाहती है, अतएव वह प्राकृतिक दृश्यों के प्रदर्शन को विशेष महत्त्व नहीं देती। आलोचक नाटक के अन्दर किसी ऐसी चीज का होना सहन नहीं कर सकते हैं, जो मन की रस-मग्नता को विक्षुब्ध करे। यदि रंगमंच पर अश्लील दृश्य और जीवन की कठोर वास्तविकता का ही प्रदर्शन किया जाय तो इससे जनता का मानसिक स्तर निकृष्ट होगा। नाटकों का उद्देश्य मानसिक स्तर को ऊँचा करना है। अतः नाटकों में कुछ अंश तक आदर्शवादिता सहनीय है।

संस्कृत नाटकों के भेद

संस्कृत नाटकों के जो अनेक भेद उपलब्ध होते हैं, उससे उसके विस्तृत विकास का पता चलता है। नाटकों को दृश्यकाव्य या रूपक कहते हैं। रूपक का अभिप्राय है किसी वस्तु या कार्य को दृश्य रूप में प्रस्तुत करना। सम्पूर्ण दृश्यकाव्य को रूपक और उपरूपक इन दो मुख्य भागों में विभक्त किया गया है। रूपक के दस भेद हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग। इन दस विभागों में से नाटक सबसे अधिक प्रचलित है। इसके बाद प्रकरण और तत्पश्चात् प्रहसन का क्रम आता है। बहुत थोड़े से दृश्यकाव्यों को छोड़कर शेष सभी इन तीन भेदों में आ जाते हैं। अन्य भेदों के दृश्यकाव्य बहुत थोड़े हैं।

नाटक साधारणतया प्रसिद्ध कथा पर निर्भर होता है। इसका नायक राजा होता है। इसमें मुख्य रस शृङ्गार, वीर या करुण होता है। जैसे—शाकुन्तल में शृङ्गार रस है, वेणीसंहार में वीर और उत्तररामचरित में करुण रस है। इसमें अंकों की संख्या पाँच से दस तक होती है। प्रकरण की कथा काल्पनिक होती है। इस कथा का जन्मदाता नाटककार होता है। राजकुमार के अतिरिक्त अन्य कोई इसका नायक होता है। इसमें कोई भी स्त्री, वेश्या भी, नायिका हो सकती है। इसमें अंकों की संख्या १० होती है। इस

प्रकार के रूपक-ग्रन्थ मृच्छकटिक और मालतीमाधव हैं। भाण एकांकी रूपक ग्रन्थ होता है। इसमें किसी धूर्त का जीवन-चरित होता है। इसमें मुख्य रस शृङ्गार या वीर होता है। इसमें एक ही पात्र होता है। वह आकाशभाषित के रूप में सब बात कहता है। इसमें संगीत, नृत्य आदि भी सम्मिलित होते हैं। **वामनभट्टबाण** का **शृङ्गारभूषणभाण** इस प्रकार का रूपक है। प्रहसन एकांकी नाटक होता है। इसमें हास्य रस की प्रधानता होती है। इसमें हास्य-प्रधान दृश्य होते है। **महेन्द्रविक्रम** का **मत्तविलासप्रहसन** इस प्रकार का रूपक है। डिम में चार अंक होते है। इसमें माया, इन्द्रजाल आदि का वर्णन होता है। इसकी कथा प्रसिद्ध होती है। इसमें देवता, राक्षस, अर्धदेवता, सर्प आदि पात्र होते हैं। इसमें शृङ्गार और हास्य को छोडकर अन्य कोई रस प्रधान होता है। **वत्सराज** का **त्रिपुरविजय** इस प्रकार का रूपक ग्रन्थ है। व्यायोग एकांकी नाटक होता है। इसमें प्रसिद्ध कथा होती है। इसका नायक धीरोद्धत होता है। इसमें युद्ध का दृश्य होता है, परन्तु उस युद्ध का कारण कोई स्त्री नहीं होनी चाहिए। शृंगार और हास्य को छोड़कर अन्य कोई रस इसमें मुख्य होता है। **विश्वनाथ** का **सौगन्धिकाहरण** इस प्रकार का रूपक है। समवकार में तीन अंक होते हैं। इसकी कथा प्रचलित होती है। इसमें युद्ध के दृश्य होते हैं। इसमें वीर रस मुख्य होता है। इसमें देवता और राक्षस पात्र होते है। **वत्सराज** का **समुद्रमथन** इस प्रकार का रूपक है। वीथी एकांकी नाटक होना है। इसमें दो या तीन पात्र होते हैं। इसमें शृगार मुख्य रस होता है। **रविपति** का **प्रेमाभिराम** इस प्रकार का रूपक है। अंक एकाकी नाटक होता है। इसमे करुण रस प्रधान होता है। इसमें रोने का वर्णन होता है। **भास्कर** का **उन्मत्तराघव** इस प्रकार का रूपक ग्रन्थ है। ईहामृग मे चार अंक होते है। इसका नायक देवता होता है। इसमें बलात् स्त्री के हरण का वर्णन होता है, परन्तु युद्ध नहीं होता। **वत्सराज** का **रुक्मिणीहरण** इस प्रकार का रूपक ग्रन्थ है।

उपरूपक के १८ भेद हैं। इनमें-से नाटिका, सट्टक, त्रोटक और प्रेक्षणक मुख्य हैं। नाटिका बहुत-सी बातों में नाटक के ही तुल्य होती है। इसमें स्त्रीपात्र

अधिक होते हैं। इसका नायक धीरललित होता है। इसमें शृंगार रस मुख्य होता है। इसमें केवल चार अंक होते हैं। **रत्नावली** इस प्रकार का उपरूपक है। सट्टक पूरा प्राकृत भाषा में होता है। भाषा के अतिरिक्त अन्य सभी बातों में यह नाटिका के ही तुल्य होता है। **राजशेखर** की **कर्पूरमंजरी** इस प्रकार का उपरूपक है। त्रोटक में पाँच, सात, आठ या नव अंक होते हैं। इसका आधार दैवी या मरणशील प्राणियों का क्रिया-कलाप है। विदूषक प्रत्येक अङ्क में उपस्थित रहता है। इसके उदाहरण में कालिदास के विक्रमोर्वशीय का नाम लिया जाता है। यह अज्ञात है कि इसे त्रोटक कैसे कहते हैं क्योंकि इसमें विदूषक प्रथम और चतुर्थ अंक में उपस्थित नहीं रहता। प्रेक्षणक एकांकी नाटक है। इसमें सूत्रधार नहीं होता। यह द्वन्द्वयुद्ध का वर्णन करता है। किसी नीच नायक के चरित्र का वर्णन होता है। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भ नहीं होता। **बालिवध** इसी प्रकार का एक नाटक है।

प्राचीन समय में जो नाटक उपलब्ध थे, उनके आधार पर ही रूपकों और उपरूपकों के लक्षण बनाये गये होंगे और उनका इन दो भागों में विभाजन किया गया होगा। इनमें अन्य भेदों की अपेक्षा नाटक, प्रकरण, प्रहसन, भाण और नाटिका कही अधिक विख्यात हुए। इस पर भी, केवल नाटक ने ही श्रोताओं तथा आलोचकों को अपनी ओर आकृष्ट किया। इसका प्रमाण यह है कि नाटकों की संख्या बहुत अधिक है और रूपक या उपरूपक के अन्य भेदों की संख्या बहुत ही कम है। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि यह भेद जनता को प्रिय नही हुए, अतएव इन भेदों और उपभेदों के आधार पर आगे अधिक संख्या में नाटक-ग्रन्थ नहीं बने।

अध्याय २२

संस्कृत नाटक

(कालिदास के पूर्ववर्ती और कालिदास के समकालीन)

कालिदास ने अपने नाटकों में जो पूर्णता प्राप्त की है, उससे ज्ञात होता है कि कालिदास से पहले पर्याप्त संख्या में संस्कृत-नाटक विद्यमान थे और कालिदास ने उनको आधार मानकर अपने नाटक लिखे हैं। कालिदास से पहले जो नाटक लिखे गये थे, उनमें से भास और शूद्रक के नाटक शेष बचे हैं, शेष सभी नाटक कालिदास के नाटकों के असाधारण उत्कर्ष के कारण नष्ट हो गये हैं। सौमिल्ल और कविपुत्र के अतिरिक्त अन्य नाटककारों का नाम भी पूर्णतया विस्मृत हो गया है।

भास कालिदास से पूर्ववर्ती नाटककार है। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में उसका बहुत आदर के साथ नाटककार के रूप में नामोल्लेख किया है। भास के नाटकों का पता १९११ ई० तक नहीं था। इस वर्ष पं० गणपति शास्त्री ने मालाबार से कुछ नाटकीय ग्रन्थ प्राप्त किये और निम्नलिखित कतिपय कारणों से उनका लेखक भास को माना। (१) सभी १३ नाटकों में कुछ विशेषताएँ समान हैं—(क) इनमें सूत्रधार नान्दी का पाठ करता है। नान्दी-पाठ वाले श्लोकों में अप्रकट रूप मे नाटक के पात्रों के नाम हैं। इस प्रकार इसमें मुद्रालङ्कार होता है। देखिए--

उदयनवेन्दुसवर्णा वासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकश्रौ भुजौ पाताम्॥

स्वप्नवासवदत्तम्—नान्दी

यहाँ उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक आदि पात्रों का उल्लेख किया गया है। (ख) प्रस्तावना के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया

गया है। इस प्रस्तावना में न नाटककार का नामोल्लेख है और न नाटक का ही नाम-निर्देश है। इन सभी नाटकों की प्रस्तावना प्रायः एक-सी है। (ग) भरतवाक्य अधिकांश नाटकों में समान है और उसकी समाप्ति प्रार्थना में होती है—'राजसिंहः प्रशास्तु नः'। (घ) पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से असिद्ध प्रयोग प्रायः सभी में हैं। जैसे—आपृच्छामि, उपलप्स्यति, द्रक्ष्यते, रक्षते, काशिराज्ञः, सर्वराज्ञः, अलं कर्तुम् इत्यादि। इन कारणों से ज्ञात होता है कि इनका लेखक एक ही व्यक्ति है। (२) साहित्यशास्त्रियों ने भास और उसके नाटक स्वप्नवासवदत्तम् का विशेष रूप से उल्लेख किया है और स्वप्नवासवदत्तम् से उद्धरण भी दिये हैं। इन श्लोकों में से कुछ श्लोक स्वप्नवासवदत्तम् में प्राप्त होते हैं। अतः यह स्वप्नवासवदत्तम् मूल स्वप्नवासवदत्तम् ही होना चाहिए। साहित्यशास्त्रियों के द्वारा उद्धृत कुछ श्लोक जो इसमें प्राप्त नहीं होते हैं, उनका कारण यह हो सकता है कि इसके मूल ग्रन्थ के कतिपय श्लोक नष्ट हो गये होंगे। साहित्यशास्त्रियों ने ग्रन्थ-निर्देश आदि के बिना ही जो श्लोक उद्धृत किये हैं, उनमें से बहुत से श्लोक इनमें प्राप्त होते हैं। साहित्यशास्त्रियों ने चारुदत्त नाटक का नामोल्लेख किया है और उसके लेखक का नाम-निर्देश नहीं किया है, वह भास के इन नाटकों में से एक नाटक है। अतः इन नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति होना चाहिए और वह व्यक्ति भास है। परवर्ती लेखक बाण[1] और दण्डी[2] आदि ने भास को कई नाटकों का रचयिता माना है। ये नाटक १२वीं या १३वीं शताब्दी तक प्राप्त रहे होंगे। इसके बाद के लेखकों ने इन नाटकों का उल्लेख नहीं किया है।

श्री गणपति शास्त्री ने **'त्रयोदश त्रिवेन्द्रमनाटकानि'** नाम से इन नाटकों का संपादन किया है। उनके इस विचार का समर्थन कतिपय पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने किया है। जो उनके इस विचार का समर्थन

---

१. हर्षचरित भूमिका श्लोक १५

२. अवन्तिसुन्दरीकथा भूमिका श्लोक ११।

नहीं करते थे, उन्होंने निम्नलिखित कारणों मे इन नाटकों के भास की रचना होने का खंडन किया है—(१) इन नाटकों में जिन कतिपय नाटकीय विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, वे विशेषताएँ भास के अतिरिक्त अन्य नाटककारों की रचनाओं मत्तविलास-प्रहसन आदि में भी प्राप्त होती हैं। ये विशेषताएँ दक्षिण भारत के नाटकों में उपलब्ध होती हैं, अतः इन विशेषताओं के आधार पर इन सबको भास की रचना मानना उचित नहीं है। इन नाटकों में जो अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं, उनको प्रतिलिपिकर्ताओं की भूल समझनी चाहिए। (२) भास को स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का रचयिता होने का निषेध नहीं किया जा सकता है। भास कई नाटकों का रचयिता है। स्वप्नवासवदत्तम् को छोड़कर अन्य भास के नाटकों का नाम किसी ने उल्लेख नहीं किया है। साहित्यशास्त्रियों ने स्वप्नवासवदत्तम् को ही भास की रचना बताया है, उसके अन्य किसी नाटक का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। आजकल जो स्वप्नवासवदत्तम् उपलब्ध है, उसमें वे सभी श्लोक प्राप्त नहीं होते हैं, जिनको साहित्यशास्त्रियों ने भास के श्लोक कहकर उल्लेख किया है। अतः इस स्वप्नवासवदत्तम् को भी भास की रचना नहीं मानना चाहिए।

कुछ विद्वान् जो मध्यम मार्ग का आश्रय लेने वाले हैं, उनका मन्तव्य है कि त्रिवेन्द्रम ग्रन्थमाला में जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, वे भास के मूल ग्रन्थों के संक्षिप्त संस्करण हैं। ये सक्षिप्त संस्करण रंगमंच की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनाये गये थ। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में भास, सौमिल्ल और कविपुत्र का जो उल्लेख किया है तथा उनकी प्रसिद्धि का वर्णन किया है, उसको उनकी प्रशंसा के रूप में नहीं समझना चाहिए, अपितु कालिदास का यह कथन उनकी त्रुटियों के प्रदर्शन के लिए एक प्रयत्न समझना चाहिए। कालिदास के नाटकों के पश्चात् भास के नाटकों की वह प्रसिद्धि नष्ट होती गयी। भास के नाटकों की आलोचकों ने कठोर परीक्षा की और उनमें से केवल स्वप्नवासवदत्तम् ही उस परीक्षा में खरा उतरा। राजशेखर

और वाक्पति आदि के ग्रन्थों में स्वप्नवासवदत्तम् का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें भास और उसके ग्रन्थों का सम्बन्ध अग्नि से बताया गया है। आलोचकों की परीक्षा के पश्चात् स्वप्नवासवदत्तम् को छोड़कर भास के अन्य नाटक प्रायः नष्ट होते गये। सम्भवतः पल्लव राजा नरसिंहवर्मा द्वितीय (६८०-७०० ई०) के आश्रित कतिपय अभिनेताओं ने रंगमंच के लिए इनको अपनाया। इस राजा की उपाधि राजसिंह है। त्रिवेन्द्रमग्रन्थमाला में जो ये नाटक प्रकाशित हुए हैं, ये भास के नाटकों के रंगमंच के उपयोगी संस्करण प्रतीत होते हैं। इनमें अधिकांश नाटकों के भरतवाक्य में राजसिंह शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि इन नाटकों का और पल्लव राजाओं का कुछ पारस्परिक सम्बन्ध है। जब पल्लव राज्य नष्ट हुआ तब ये नाटक तथा अन्य कुछ ग्रन्थ, जो पल्लव राजाओं के आश्रय में बने थे, मालाबार चले गये। अतएव यह संगत प्रतीत होता है कि भास के नाटक तथा पल्लव राजाओं के आश्रित कवि दण्डी की अवन्तिसुन्दरीकथा मालाबार में प्राप्त हो। यवनों के आगमन के पश्चात् ही संस्कृत नाटक लुप्त हो गये, यह विचार केवल कल्पनामात्र है। त्रिवेन्द्रम ग्रन्थमाला में प्रकाशित इन नाटकों को रंगमंचोपयोगी संस्करण ही समझना चाहिए, क्योंकि भास के नाम से उद्धृत जो श्लोक इन नाटकों में नहीं मिलते हैं, वे मूल बृहत् संस्करण में रहे होंगे। इन नाटकों में कुछ और अंश रहता तो ये पूर्ण ग्रंथ ज्ञात होते। अतः यह ज्ञात होता है कि ये नाटक भास के मूल नाटकों के रंगमंचोपयोगी सस्करण हैं। इनमें से कुछ नाटक मूल रूप में अवश्य भास के लिखे हुए हैं, परन्तु सब उसके ही लिखे नहीं हैं। कुछ दक्षिण भारत के किसी विद्वान् के द्वारा बनाये हुए हैं। अतः भास को इन तेरहों नाटकों का रचयिता नहीं मानना चाहिए।

कालिदास ने भास का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है, अतः भास उससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। अतएव भास का समय ३०० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए।

विषय की दृष्टि से भास के नाटकों को चार भागों में बाँटा जा सकता है। इनमें से दो रामायण पर आधारित हैं, ६ महाभारत पर, एक कृष्ण के जीवन पर और चार कहानियों पर आश्रित हैं।

रामायण पर आधारित भास के नाटक

(१) **प्रतिमानाटक**। इसमें सात अंक हैं। इसमें दशरथ की मृत्यु से लेकर राम के राज्याभिषेक तक राम की कथा वर्णित है। दशरथ की मृत्यु के बाद भरत जब अयोध्या जाते हैं तब एक प्रतिमागृह में अपने मृत पूर्वजों की प्रतिमा के साथ दशरथ की प्रतिमा देखकर उन्हें ज्ञात होता है कि उनके पिता अब जीवित नहीं हैं। अतएव इस नाटक का नाम प्रतिमानाटक पड़ा है। सीता के अपहरण को सुनकर भरत राम की सहायता के लिए सेना भेजते हैं, परन्तु राम तब तक रावण को जीतकर लौट रहे थे और वे सेना को मार्ग में लौटते हुए मिले। (२) **अभिषेकनाटक**। इसमें ६ अंक हैं। इसमें बाली के वध से लेकर अयोध्या में राम के अभिषेक तक राम की कथा वर्णित है। भास ने रंगमंच पर बाली का वध दिखाकर साहित्यिक परम्परा का उल्लंघन किया है।

महाभारत पर आश्रित भास के नाटक

(१) **पंचरात्र**। इसमें तीन अंक हैं। यह समवकार रूपक है। द्रोणाचार्य ने एक यज्ञ किया। दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की कि यज्ञ की समाप्ति पर वे जो कुछ मागेंगे, वह दूंगा। द्रोण ने यज्ञ के अन्त में माँग की कि वह पाण्डवों को आधा राज्य दे दे। दुर्योधन ने कहा कि यदि पाँच रात्रि के अन्दर वे मिल जायँगे तो मैं ऐसा कर दूँगा। कौरव विराट के नगर से गायों को भगाकर लाने के लिए जाते हैं। पाण्डव वहाँ पर गुप्त वेष में रहते थे। उन्होंने कौरवों पर आक्रमण किया और उनको पराजित किया। वहाँ पर पाण्डवों का पता चल जाता है और दुर्योधन उन्हें आधा राज्य लौटा देता है (२) **दूतवाक्य**। इसमें एक अंक है। यह व्यायोग रूपक है। इसमें पाण्डवों के दूत के

रूप में कृष्ण का दुर्योधन के पास जाने का वर्णन है। यही अकेला नाटक है जिसमें एक भी प्राकृत का वाक्य नहीं है। (३) **मध्यमव्यायोग**। यह एकांकी नाटक है। यह व्यायोग रूपक है। भीम के पुत्र घटोत्कच ने एक ब्राह्मण के पुत्र पर आक्रमण किया और भीम ने उसको बचाया। घटोत्कच की माता हिडम्बा ने उसके पिता से उसका परिचय कराया। घटोत्कच ने प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य में किसी ब्राह्मण की हत्या नहीं करेगा (४) **दूत-घटोत्कच**। यह एकांकी नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण घटोत्कच को दुर्योधन के पास भेजते हैं। दुर्योधन उसका अपमान करता है। उसने अर्जुन के द्वारा कौरवों के नाश की भविष्यवाणी की। (५) **कर्णभार**। यह एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्र को कवच और कुण्डल दान में देने का वर्णन है। इसमें कर्ण की शूरवीरता की भावना का सुन्दर वर्णन है। (६) **ऊरुभंग**। यह एकांकी नाटक है। इसमें भीम के द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसको मारने का वर्णन है। इसमें नाटकीय परम्परा के विरुद्ध रंगमंच पर दुर्योधन का वध दिखाया गया है।

बालचरित में पाँच अंक हैं। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म और उनकी बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन है। इसमें कृष्ण के जीवन के विषय में जिन घटनाओं का वर्णन है, उनका उल्लेख भागवत, विष्णुपुराण और हरिवंश में नहीं है। इसमें कृष्ण को वसुदेव का सातवाँ पुत्र बताया गया है। बाद के ग्रन्थों में राधा कृष्ण की प्रिया के रूप में वर्णित है, परन्तु इसमें राधा का उल्लेख नहीं है। कृष्ण-जीवन से संबद्ध बाद के ग्रन्थों में जो शृङ्गार और अश्लीलता प्राप्त होती है, वह इसमें सर्वथा नहीं है। नाटकीय परम्परा के विरुद्ध भास ने इस नाटक में रंगमंच पर श्रीकृष्ण और अरिष्ट नामक राक्षस का युद्ध तथा कंस की मृत्यु का वर्णन किया है। इसके तृतीय अंक में हल्लीश नृत्य का एक दृश्य है।

कथाओं पर आश्रित भास के नाटक

(१) **प्रतिज्ञायौगन्धरायण**। इसमें चार अंक हैं। इसमें उज्जैन के राजा द्योत के द्वारा राजा उदयन के बन्दी किये जाने का वर्णन है। राजा

प्रद्योत अपनी पुत्री वासवदत्ता का उदयन से विवास करना चाहते थे। उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण ने प्रतिज्ञा को कि वह अपने राजा उदयन को वहाँ से छुड़ा कर लायेगा। अतः इस नाटक का नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण पड़ा है। यौगन्धरायण अपने प्रयत्न में सफल होता है और उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण होती है। **भासह** (७०० ई०) ने इस नाटक के कथानक की बहुत कड़ी आलोचना की है। प्रस्तावना में यद्यपि इसको प्रकरण रूपक बताया गया है, परन्तु इसमें केवल चार अंक हैं। यह संभव है कि भास ने जब यह नाटक लिखना प्रारम्भ किया होगा, तब उसका विचार रहा होगा कि वह इस नाटक और स्वप्नवासवदत्तम् को एक में ही रक्खेगा।

(२) **स्वप्नवासवदत्तम्**। इसमें ६ अंक हैं। वासवदत्ता से विवाह के बाद उदयन अपनी पत्नी में इतना अधिक आसक्त हो गया कि उसने राज्य की उपेक्षा कर दी और परिणामस्वरूप उसके राज्य का अधिकांश भाग नष्ट हो गया। उसके मंत्रियों ने एक उपाय सोचा कि इस प्रकार नष्ट हुआ राज्य पुनः प्राप्त हो सकता है। एक दिन राजा जब अपने पड़ाव से शिकार खेलने के लिए गया हुआ था, तब मन्त्रियों ने झूठी अफवाह उड़ा दी कि वासवदत्ता गाँव में आग लगने से जल गयी और उसके साथ मंत्री यौगन्धरायण भी उसको बचाता हुआ जल गया है। यौगन्धरायण वासवदत्ता को मगध-राजकुमारी पद्मावती के पास ले गया और उसके पास धरोहर के रूप में रख दिया। वह चाहता था कि उदयन का विवाह पद्मावती के साथ हो जाय और इस प्रकार मगध-राज की सहायता प्राप्त करके नष्ट राज्य को पुनः प्राप्त किया जाय। यौगन्धरायण ने अपने आप को वासवदत्ता का भाई बताया और कहा कि इसका पति प्रवास में गया है। वासवदत्ता पद्मावती के पास रही। लौटकर आने पर उदयन बहुत दुःखित हुआ और अपनी इच्छा के विरुद्ध पद्मावती से विवाह के लिए उद्यत हो गया। विवाह के पश्चात् रुग्ण पद्मावती को देखने के लिए उदयन समुद्रगृह में गया और वहाँ खाली स्थान देखकर सो गया। वासवदत्ता पद्मावती की सेवा के लिए वहाँ

आई और उदयन को पद्मावती समझकर वहाँ सो गई। उदयन ने नींद में वासवदत्ता का नाम लेना प्रारम्भ किया। वासवदत्ता अपना भेद गुप्त रखने के लिए वहाँ से शीघ्र ही चली गई। उधर मगध राजा की सहायता से कौशाम्बी का नष्ट राज्य उदयन को पुनः प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् वासवदत्ता और यौगन्धरायण ने अपना भेद प्रकट किया। इस प्रकार नाटक सुखान्त समाप्त होता है। यह नाटक भास के नाटकों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है और सर्वोत्तम है। नाटकीय परम्परा के विरुद्ध भास ने इस नाटक में रगमंच पर राजा के सोने का दृश्य उपस्थित किया है।

(३) **चारुदत्त**। इसमें चार अंक हैं। इसमें एक ब्राह्मण चारुदत्त का एक वेश्या वसन्तसेना से प्रेम का वर्णन है। वसन्तसेना भी चारुदत्त से प्रेम करती है। एक दिन वसन्तसेना ने अपने आभूषण चारुदत्त के पास रखे कि रात्रि में चोर उसे चुराकर न ले जाएँ। कुछ समय चारुदत्त के साथ रहकर वह अपने घर जाती है। शर्विलक नाम का एक चोर चारुदत्त के घर में रात्रि में सेंध लगाकर घुसता है और वसन्तसेना के आभूषण चुराकर ले जाता है और अगले दिन प्रातः जाकर वसन्तसेना को देता है कि वह उसकी प्रेमिका मदनिका को अपनी सेवा से मुक्त कर दे। यह नाटक यहाँ पर समाप्त होता है। भास के समर्थकों का कथन है कि शूद्रक ने इसी नाटक के आधार पर अपना नाटक मृच्छकटिक लिखा है।

(४) **अविमारक**। इसमें ६ अंक हैं। इसमें राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी और राजकुमार अविमारक के गुप्त प्रेम का वर्णन है। शाप के कारण अविमारक का राजत्व नष्ट हो गया था। कुन्तिभोज के घर में किसी को भी अविमारक का परिचय ज्ञात नहीं था, अतएव वह गुप्तरूप से कुरंगी से मिला। अन्त में नारद मुनि ने अविमारक का परिचय बताया और दोनों प्रेमियों का विवाह हो गया।

कुछ समय हुआ एक नाटक **यज्ञफल** नाम का प्राप्त हुआ है। इस नाटक में भी भास के अन्य नाटकों वाली विशेषतायें प्राप्त होती हैं, अतः इसको

भी भास की रचना कहा जाता है। इसमें ६ अंक हैं और सातवें अंक का नाम निर्वहणांक है। इसमें पुत्रोत्पत्ति के लिए राजा दशरथ के यज्ञ करने का वर्णन है।

(३) भास की नाट्यकला

कालिदास, बाण और दण्डी आदि ने भास को उच्च कोटि का नाटककार माना है। भाषा और नाट्यकला की दृष्टि से वह अवश्य ही कालिदास से हीन है। उसने तेरह नाटक लिखे हैं, इससे ही ज्ञात होता है कि वह उच्च कोटि का नाटककार था। उसकी भाषा में जो त्रुटियाँ प्राप्त होती हैं, वे बाद के लिपिकर्ताओं के कारण ही समझनी चाहिए। जिस रूप में ये नाटक आजकल प्राप्त होते हैं उस रूप में भास ने इनको नहीं लिखा होगा। इन नाटकों को मूलरूप में लिखने वाला भास अवश्य ही उच्च कोटि का नाटककार रहा होगा। भास के नाटकों की संख्या, उनके भाव और प्रकार की विभिन्नता से सिद्ध होता है कि भास को संस्कृत नाटककारों में जो उच्च स्थान मिला है, वह उचित ही है। उसने बहुत से नाटक लिखे होंगे, परन्तु कुल कितने नाटक उसने लिखे हैं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। उसने नाटकीय परम्पराओं का जो उल्लंघन किया है; वह वास्तविकता को आधार मान कर ही किया है। उसने कथानक में जो परिवर्तन किए हैं, उससे उसकी मौलिकता का ज्ञान होता है। जैसे—पंचरात्र में दुर्योधन के चरित में मौलिकता है। कतिपय स्थानों पर पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान अस्वाभाविक प्रतीत होता है। यह खेद की बात है कि उसने कितने नाटक लिखे हैं, यह स्पष्टरूप से ज्ञात नहीं है। जो नाटक प्राप्त हैं, वे भी मूल रूप में नहीं ज्ञात होते हैं।

इन तेरह नाटकों के कथानक और नान्दी-श्लोकों से ऐसा ज्ञात होता है कि वह विष्णुभक्त था[1]। भास के प्रशंसकों में बाण और दण्डी विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। देखिए :—

१. पृथ्वीराजविजय १-८।

सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।।

हर्षचरित--प्रस्तावना श्लोक १५

'पताका' शब्द किसी पात्र की उस भयंकर घटना की ओर संकेत करता है जिसका सम्बन्ध उस पात्र से सीधा नहीं है । यहाँ बाण का यह कहना है कि भास के नाटकों में 'पताकास्थान'[1] है । दण्डिन् की कल्पना है कि भास अपने नाटकों से आज भी जीवित है । देखिए :--

सुविभक्तमुखाघङ्गै र्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।।

अवन्तिसुन्दरी--प्रस्तावना श्लोक ११

दुर्भाग्यवश न तो भास के किसी भी नाटक की सत्यता सिद्ध हो सकी और जो नाटक प्राप्य हैं, न तो उनके लेखक का ही निर्विरोध निश्चय किया जा सकता है । उनमें से कतिपय प्राप्य नाटक तो उनके हो सकते हैं, कुछ, जो सचमुच उनके हैं, अब तक प्रकाश में नही आये । ऐसी प्रसिद्धि है कि भास ने नाट्यशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा था, परन्तु वह अप्राप्य है ।

कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास के साथ ही सौमिल्ल और कविपुत्र इन दो और प्रसिद्ध नाटककारों का उल्लेख किया है । कुछ ग्रन्थ में इन दोनों नामों के स्थान पर रामिल और सौमिल नाम प्राप्त होते हैं । इन दोनों लेखकों के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है । राजशेखर ने रामिल और सौमिल की रचना शूद्रककथा नामक ग्रन्थ माना है । यह ग्रन्थ भी अप्राप्य है । इसके अतिरिक्त कालिदास के पूर्ववर्ती नाटककारों के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है ।

२. कालिदास

कालिदास तीन नाटकों का रचयिता है—**मालविकाग्निमित्र**, **विक्रमोर्वशीय** और **शाकुन्तल** । ऐसी प्रसिद्धि है कि इन नाटकों और काव्यों के अतिरिक्त

१. पञ्चरात्रम् २-९, अभिषेकनाटक ५-११ ।

उसने '**कुन्तलेश्वरदौत्य**' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। ज्ञात नहीं कि यह किस प्रकार की रचना है क्यों कि आज यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। जिस क्रम में ये नाम ऊपर दिये गये हैं, इसी क्रम से उसने ये नाटक लिखे हैं। मालविकाग्निमित्र से यह ज्ञात होता है कि वह भास आदि नाटककारों की समता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। विक्रमोर्वशीय से ज्ञात होता है कि वह नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हो चला था और उसने यह नाटक आलोचकों की समीक्षा के लिए प्रस्तुत किया था। शाकुन्तल से ज्ञात होता है कि वह प्रसिद्ध नाटककार हो गया था और आलोचकों के द्वारा अपने नाटक के स्वीकृत होने की प्रतीक्षा में था।

मालविकाग्निमित्र में पाँच अंक हैं। इसके पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। मालवा के राजकुमार माधवसेन की बहिन मालविका का विवाह विदिशा के राजा अग्निमित्र के साथ होना था। माधवसेन अपनी बहिन के साथ विदिशा को चला। मार्ग में उसके चचेरे भाई यज्ञसेन ने उस पर आक्रमण कर दिया। वह माधवसेन से पहले से क्रुद्ध था। यज्ञसेन ने उसको बन्दी बना लिया। माधवसेन के साथी अपने मार्ग पर चलते रहे। आगे चलकर उन पर डाकुओं ने आक्रमण किया और मालविका मार्ग भूल गयी। वह विदिशा के सैनिकों की सुरक्षा में पहुँची और वहाँ से वह अग्निमित्र की रानी धारिणी के अन्तःपुर में पहुँची। एक कलाकार के द्वारा चित्रित मालविका का चित्र देखकर राजा अग्निमित्र उस पर आसक्त हो गया। अपने साथी विदूषक की सहायता से उसने मालविका से मिलने का प्रबन्ध कर लिया। धारिणी यह प्रयत्न करती थी कि मालविका राजा के सामने न आने पावे। अग्निमित्र की एक छोटी रानी इरावती ने सहसा वहाँ पहुँचकर अग्निमित्र और मालविका के प्रेमालाप को भंग कर दिया। इरावती के विघ्न के कारण दोनों प्रेमियों को बहुत बुरा लगा। कुछ समय बाद माधवसेन के साथी, जो मार्ग भूल गये थे, अग्निमित्र के द्वार पर पहुँचे। उन्होंने मालविका का परिचय दिया और उस परिचय के आधार पर राजा मालविका के साथ विवाह कर सका। रानी धारिणी

ने इस विवाह की स्वीकृति दी। पुष्यमित्र और अग्निमित्र दोनों शुंग वंश के राजा थे। इस वंश का राज्य १८३ ई० पू० के लगभग प्रारम्भ हुआ था। कुछ राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख इस नाटक में ही मिलता है, अन्यत्र नहीं; जैसे—माधवसेन और यज्ञसेन की शत्रुता। यह नाटक अग्निमित्र के राजद्वार में घटित घटनाओं पर आश्रित ज्ञात होता है। यह संभव प्रतीत होता है कि कालिदास अग्निमित्र का समकालीन था या उसकी सभा में एक कवि था या वह अग्निमित्र के कुछ ही समय बाद हुआ था, जब जनता को अग्निमित्र के जीवन की घटनाएँ पूर्णतया स्मरण थीं।

विक्रमोर्वशीय में पाँच अंक हैं। स्वर्गीय अप्सरा उर्वशी को एक राक्षस भगाकर ले जा रहा था। प्रतिष्ठान के राजा पुरूरवा ने उसकी रक्षा की। वह अपने रक्षक से प्रेम करने लगी और पुरूरवा भी उसके प्रेम में बद्ध हो गया। स्वर्ग को जाने के बाद एक बार वह गुप्त रूप से पुरूरवा से आकर मिली। एक बार देवताओं के सामने प्रदर्शित किये जाने वाले एक नाटक में वह एक विशेष पात्र का अभिनय कर रही थी, परन्तु उसका मन पुरूरवा की ओर लगा हुआ था, अतः एक स्थान पर जहाँ उसे विष्णु का नाम लेना चाहिए था, उसने पुरूरवा का नाम ले लिया। भरत मुनि ने उसको इस त्रुटि के लिए दोषी बताया और उसे शाप दिया कि जब तक वह अपने प्रेमी से पुत्र न प्राप्त कर ले तब तक स्वर्ग में न रहे। वह मर्त्यलोक में आयी और अपने प्रेमी के साथ आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगी। पुरूरवा की रानी ने उनकी यह स्वतन्त्रता नहीं रोकी। एक दिन उर्वशी ईर्ष्या-भाव से एक निषिद्ध वाटिका में गयी और वहाँ वह लता के रूप में परिवर्तित हो गयी। राजा पुरूरवा अपनी प्रिया को न पाकर पागल हो गया और उसको ढूँढ़ता हुआ इधर-उधर फिरने लगा। एक दिन सहसा उसने वही लता छुई, जिसमें उर्वशी परिवर्तित हुई थी। वह जीवितरूप में उठकर खड़ी हुई। महल में लौटकर आने के बाद उसका पुत्र उसके सामने लाया गया। उस पुत्र का लालन-पालन अब तक एक और स्त्री करती थी। राजा ने

पुत्र को देखा और उर्वशी ने विचारा कि अब उसका स्वर्ग को जाने का समय हो गया है। राजा ने निश्चय किया कि वह वन को चला जायेगा। इसी समय नारद वहाँ आये और उन्होंने इन्द्र का आदेश सुनाया कि उन्होंने स्वीकृति दी है कि उर्वशी पुरूरवा के साथ जीवन भर रहे। कुछ अन्तर के साथ यह कथा वेद, पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, रामायण और महाभारत में मिलती है।

इस नाटक के उत्तर-भारतीय संस्करण में चतुर्थ अंक में कई श्लोक अपभ्रंश में दिये गये हैं। यह स्पष्ट है कि ये श्लोक बाद में मिलाये गये हैं; क्योंकि कालिदास के समय में अपभ्रंश वाले श्लोक प्रचलित नहीं थे। इस नाटक को त्रोटक नाटक माना जाता है। त्रोटक नाटक में पाँच, सात, आठ या नौ अंक होते हैं। इसमें मानवीय और दिव्य घनटाएँ होती हैं। इसके प्रत्येक अंक में विदूषक रहता है। उपर्युक्त लक्षण के आधार पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह त्रोटक नाटक नहीं है, क्योंकि इसके प्रत्येक अंक में विदूषक नहीं है।

इस नाटक का नाम सार्थक है। यह निर्देश करता है कि उर्वशी को पुरूरवा ने अपने विक्रम से जीता है। इसकी घटनाएँ कुछ मानवीय तथा कुछ स्वर्गीय हैं। इसके चतुर्थ अंक में राजा की उन्मत्तावस्था का वर्णन नाटकीय दृष्टि से असंगत सा है, तथापि यह अनिर्वचनीय कोमल भावनाओं से पूर्ण है। इस नाटक के कथानक ने अवसर प्रदान किया है कि कालिदास प्रकृति के वर्णन में अपनी योग्यता का पूर्ण प्रदर्शन कर सके।

शाकुन्तल नाटक में सात अंक हैं। इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम का वर्णन है। इसकी कथा महाभारत में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान के आधार पर है। दुष्यन्त की अँगूठी और दुर्वासा के शाप का उल्लेख कर कालिदास ने मूल कथा में परिवर्तन कर दिया है। नायक द्वारा नायिका को दी गई अभिज्ञानस्वरूप अँगूठी के खो जाने से नाटक सजीव सा हो जाता है तथा नायक और नायिका का चरित्र अधिक निखर जाता है। नाटक के 'अभिज्ञान-

शाकुन्तल' नाम पड़ने का कारण भी यही है। दुष्यन्त शिकार खेलते हुए कण्व ऋषि के आश्रम पर पहुँचते हैं। कण्व बाहर गये हुए थे। ऋषि की पोष्य-पुत्री शकुन्तला ने उसका आतिथ्य किया। दोनों का परस्पर प्रेम हो गया और दोनों ने गान्धर्व विवाह कर लिया। दुष्यन्त कुछ दिन बाद अपने राज्य को लौट आया। उसने शकुन्तला को आश्वासन दिया कि कुछ दिन में ही वह उसको अपनी राजधानी में बुला लेगा। उसने अपनी अँगूठी शकुन्तला को दी। शकुन्तला ने प्रेम-मग्न होने के कारण आए हुए दुर्वासा ऋषि का स्वागत नहीं किया। इस पर क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने उसे शाप दिया कि उसका प्रेमी उसे भूल जाएगा और कोई पहचान दिखाने पर उसे स्मरण करेगा। कण्व ऋषि को आने पर सब समाचार ज्ञात हुआ। उन्होंने गर्भवती शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजा। राजा शाप के कारण उसे पहचान न सका और उसने शकुन्तला को पत्नी के रूप में स्वीकार करने से निषेध कर दिया। मार्ग में जाते समय उस बेचारी शकुन्तला की अँगूठी एक तालाब में गिर गई थी, अतः वह अपने सम्बन्ध के प्रमाणस्वरूप कुछ प्रस्तुत न कर सकी। उसकी माता मेनका उस समय प्रकट हुई और वह उसको स्वर्ग में ले गई। इस प्रकार समय बीतता गया। शकुन्तला के हाथ से जो अँगूठी जल में गिर गई थी, उसे एक मछली ने निगल लिया था। वह एक मछुए के हाथ पड़ी। वह उसे बेचने के लिए बाजार में लाया। वह अँगूठी जब राजा के सामने लाई गई तब उसे शकुन्तला का स्मरण हुआ। उसने बहुत दुःख के साथ कई वर्ष बिताए। राजा दुष्यन्त को इन्द्र ने राक्षसों के साथ युद्ध के लिए आमन्त्रित किया। उसने सफलता के साथ युद्ध किया। लौटते समय उसने मारीच ऋषि के आश्रम में, अपनी स्त्री शकुन्तला और अपने पुत्र भरत को देखा। इस प्रकार दोनों का सुखमय सम्बन्ध हो गया।

स्थिर सौन्दर्यपूर्ण दृश्यों की रचना में कालिदास अत्यन्त उच्चकोटि की कला का प्रदर्शन करते हैं। मालविकाग्निमित्र में, कथावस्तु के व्यापार को सुगम बनाने में विदूषक, पण्डित, कौशिकी और बकुलावलिका बहुत

अधिक सहायता प्रदान करते हैं। विक्रमोर्वशीय में, प्रेमी का मिलन और उर्वशी के लिए राजा की खोज—इन दो दृश्यों पर पूर्ण विचार किया गया है। अभिज्ञानशाकुन्तल में एक भी ऐसा दृश्य नहीं है जिसमें सौन्दर्य और आकर्षण न हो। ऐसा कहा जाता है कि इस नाटक का चतुर्थ अङ्क बहुत ही रम्य है और उसमें चार श्लोक सर्वोत्तम हैं।[1]

देखिए :—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

कुछ लोगों के अनुसार चतुर्थ अङ्क की अपेक्षा पंचम अङ्क अधिक रम्य है।

देखिए : —

शाकुन्तलचतुर्थोऽङ्कः सर्वोत्कृष्ट इति प्रथा।
न सर्वसम्मता यस्मात्पंचमोऽस्ति ततोऽधिकः॥

यह नाटक कई विभिन्न संस्करणों में प्राप्त होता है। इसका नाम अभिज्ञानशाकुन्तल इसलिए पड़ा, क्योंकि इसमें राजा ने पहचान के रूप में अँगूठी दी थी और बाद की घटनाएँ इसी के आधार पर हैं। इस नाटक में मुख्य रस शृङ्गार है परन्तु चतुर्थ अंक से साथ ही साथ करुण रस की भी धारा है।

कालिदास ने नाटक को सुखान्त बनाने के लिए शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय में दैवी अंश को भी स्थान दिया है। उसने कथानक के विकास के लिए मालविकाग्निमित्र में नृत्य, विक्रमोर्वशीय में नाटकीय प्रदर्शन और शाकुन्तल में गीत को स्थान दिया है।

कालिदास नाटककार, कवि और गीति-काव्य लेखक के रूप में

कालिदास ने अपने नाटकों के लिए शृङ्गार रस को अपनाया है। उसके प्रत्येक नाटक में शृङ्गार और चरित्र-चित्रण बहुत व्यवस्थित रूप में

१. अभिज्ञानशाकुन्तल ४–६,९,१७ और १८।

विकसित हुआ है। अग्निमित्र ने कई विवाह किए थे और वह मालविका से विवाह करना चाहते थे। यह अधिक उचित होता यदि वह मालविका को अपने पुत्र वसुमित्र के लिए पत्नी रूप में चाहता। उसके प्रेम का सम्बन्ध दो रानियों और तीसरी मालविका से है। तीनों के स्वभाव में अन्तर है। नाटककार ने अग्निमित्र की घोर कामुकता को बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। कालिदास ने तीनों स्त्रियों को प्रतिस्पर्धी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, अतएव मालविका और अग्निमित्र का प्रेमी के रूप में चरित्र-चित्रण अच्छा नहीं हो पाया है। अग्निमित्र का राजा के रूप में चित्रण अवश्य अच्छा हुआ है। विक्रमोर्वशीय में प्रतिस्पर्धी दो ही स्त्रियाँ हैं। इसमें रानी का स्वभाव पूर्व नाटक से अधिक उच्च कोटि का है। तथापि उर्वशी में मातृप्रेम का अभाव है। शाकुन्तल नाटक में कोई प्रतिस्पर्धी स्त्री रंगमंच पर नहीं लाई गई है, क्योंकि इससे नायक और नायिका की उत्कृष्टता न्यून हो जाती। प्रतिस्पर्धी स्त्री के न होने के कारण दुष्यन्त और शकुन्तला का चरित्र-चित्रण भी अच्छा हो सका है।

कालिदास ने पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों का अधिक अच्छा वर्णन किया है। यह बात उनके काव्य ग्रन्थों के विषय में भी सत्य है। कालिदास के सभी स्त्री पात्र निरपराध होते हुए भी कष्ट का अनुभव करते हैं। कालिदास संभवतः यह निर्देश करना चाहते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन न करने से दुःख प्राप्त करती हैं। कालिदास के स्त्री पात्र अनेक प्रकार के हैं। स्त्री पात्रों के द्वारा कालिदास पुरुष पात्रों की उत्कृष्टता प्रकट करता है। कालिदास के पुरुष पात्र क्रमशः उच्च होते गए हैं, कामुक अग्निमित्र से वीर पुरूरवा उच्च कोटि का है और दुष्यन्त उससे भी उच्च कोटि का है।

कालिदास का मन्तव्य है कि प्रेम का लक्ष्य उदात्त गुणता है, न कि कामुकता। प्रेम दुःखों के सहन करने और पापों के प्रायश्चित्त से उत्कृष्ट और आध्यात्मिक रूप को प्राप्त करता है, काम-भाव की वृद्धि से नहीं।

उसने इस तथ्य को यक्ष की स्त्री, दुष्यन्त, शकुन्तला और पार्वती के चरित्र के द्वारा अच्छे प्रकार से स्पष्ट किया है। इस प्रसग में उसने विदूषक का भी उचित उपयोग किया है। विदूषक निम्नकोटि के प्रेम-प्रसंगों को सुलझाने में बहुत सहायक होता है। मालविकाग्निमित्र में वह बहुत प्रमुख कार्यकर्ता है, परन्तु विक्रमोर्वशीय में वह केवल एक मूर्ख का कार्य करता है। शाकुन्तल में विदूषक केवल नाटकीय परम्परा के निर्वाह के लिए ही रक्खा गया प्रतीत होता है। उसने शकुन्तला को एक बार भी नहीं देखा है। कालिदास ने गौण पात्रों का भी चित्रण उसी सुन्दरता के साथ किया है। जैसे-दयालु कण्व और शकुन्तला की दोनों सखियों का चरित्र-चित्रण।

कालिदास की शैली सरल, प्रवाहयुक्त और मनोरम है। यह पूर्णतया सुसंस्कृत है। इसमें संशोधन और परिवर्तन या सुधार किसी के द्वारा किया जाना संभव नहीं है। इसमें अधिकांशतः शब्द जन-सधारण में प्रचलित ही लिए गए हैं। उसकी भाषा संक्षिप्त और ध्वन्यात्मक है। उसके श्लोकों में लम्बे समास नहीं है। उसके नाटकों में संवाद संक्षिप्त और सरल है। कालिदास वैदर्भी रीति के आचार्य हैं। देखिए :—

वाल्मीकेरजनि प्रकाशितगुणा व्यासेन लीलावती।
वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्रीकालिदासं वरम् ॥
वैदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासः प्रगल्भते।

वह प्रकृति के वर्णन में बहुत पटु है। वह उसको सजीव-सा वर्णन करता है। उसमें यह असाधारण शक्ति है कि वह कठिनाई के अवसरों पर मनुष्य के हृदय की भावनाओं को अच्छी प्रकार समझता है। उसका प्रेम-वर्णन प्रशंसनीय है। देखिए :—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

उसने उपमा के लिए समुचित समवस्तुओं का संग्रह किया है, अतएव वह उपमा के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसीलिए कहा गया है—उपमा

कालिदासस्य । वह अन्य अलंकारों के प्रयोग में भी उसी प्रकार सिद्धहस्त है। उसका उद्देश्य है कि वह रसों और भावों का पूर्ण चित्रण करे। वह यह नहीं चाहता है कि रसों और भावों को कल्पना की ऊँची उड़ान में नष्ट हो जाने दे या अलंकारों के प्रयोग में ही अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करे। 'उसके भावों का सामञ्जस्य कहीं पर भी अन्य विरोधी भावों के द्वारा नष्ट नहीं होने पाया है। प्रत्येक आवेग को कृश बनाए बिना ही कोमल बनाया गया है। उसके प्रेम का आवेश औचित्य की सीमा का कभी भी उल्लंघन नहीं करता है। वह प्रेमी को कभी भी इतना उन्मत्त नहीं बना देता है कि वह घोर ईर्ष्या या घृणा में परिवर्तित हो जाए। घोर दुःख शनैः-शनैः विषाद के रूप में परिवर्तित किया गया है। कालिदास की कविता में ही भारतीय प्रतिभा का उत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है कि उसके काव्य में सामञ्जस्य है, जो कि अन्यत्र दृष्टिगोचर नही होता है। अतएव वह स्थायी सौन्दर्य वाले काव्य की रचना कर सका।'[1] उसने वैदिक छन्द में भी एक श्लोक बनाया है।[2] भारतीय तथा पाश्चात्य सभी विद्वान् उसको महाकवि के रूप में स्वीकार करते हैं। उसके विषय में जर्मन महाकवि गेटे ने लिखा है—

"क्या तू उदीयमान वर्ष के पुष्प और क्षीयमाण वर्ष के फल देखना चाहता है? क्या तू वह सब देखना चाहता है, जिससे आत्मा मन्त्रमुग्ध, मोद-मग्न, हर्षाप्लावित और परितृप्त हो जाती है? क्या तू द्युलोक और पृथ्वीलोक का एक नाम में अनुगत हो जाना पसन्द करेगा? अरे, तब मैं तेरे समक्ष शकुन्तला को प्रस्तुत करता हूँ और बस सब कुछ इसमें आ गया।"

भारतीय कवियों में बाण ने कालिदास के विषय में कहा है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते ।।

हर्षचरित, प्रस्तावना श्लोक १६।

---

१. A History of Sanskirt Literature, by A. A. Macdonell. पृष्ठ ३५३।

२. अभिज्ञानशाकुन्तल, अंक ४ श्लोक ८।

दण्डी ने अपनी पुस्तक अवन्तिसुन्दरीकथा में लिखा है--

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विवशा गिरः ।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम् ।।

प्रस्तावना, श्लोक १५

जयन्त ने कवि कालिदास की सूक्तियों के विषय में अपनी न्यायमंजरी में लिखा है--

अमृतेनेव संसिक्ताः चन्दनेनेव चर्चिताः ।
चन्द्रांशुभिरिवोद्घृष्टाः कालिदासस्य सूक्तयः ।।

उसका नाम शाकुन्तल नाटक के साथ बहुत आदर के साथ लिया जाता है ।[१] शाकुन्तल नाटक के विषय में कहा गया है कि "यह विशद और मनोरम है । इसमें ओज के साथ ही मनोज्ञता है और संक्षेप के साथ ही भावप्रांजलता है ।"[२]

उसके ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वह पूर्ण शिवभक्त था और हिन्दुओं के देवत्रय में एकता को मानता था ।[३] वह उपनिषदों और भगवद्गीता की शिक्षाओं पर पूर्ण विश्वास करता था । वह सांख्य, योग और वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों से पूर्णतया परिचित था । उसने संभवतः एक ग्रन्थ कुन्तेश्वरदौत्य लिखा था, क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने उससे उद्धरण दिया है, परन्तु वह ग्रन्थ नष्ट हो गया है । वह कवियों, गीतिकाव्यकारों और नाटककारों में सर्वश्रेष्ठ है ।

---

१. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशकुन्तलम् ।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः यत्र याति शकुन्तला ।।

२. C. E. M. Joad : The History of Indian Civilization. पृष्ट ६७ ।

३. कुमारसंभव, सर्ग ६, श्लोक ४४ ।

पाश्चात्य आलोचकों ने कालिदास पर यह दोषारोपण किया है कि उसने जीवन की समस्याओं को हल करने का कोई मार्ग या साधन नहीं बताया है। उनका यह दोषारोपण कालिदास के ग्रन्थों के अध्ययन से सर्वथा निराधार सिद्ध होता है। कालिदास की पद्धति यह है कि वह किसी बात को कहता नहीं है, अपितु उसको व्यंजना के द्वारा प्रकट करता है। उसके ग्रन्थों में ऐसी सैकड़ों सूक्तियाँ हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार इष्ट-साधन कर सकता है। उसने जीवन की समस्याओं के हल के लिए स्वतंत्र कोई प्रबंध नहीं लिखा है, परन्तु उसने प्रत्येक समस्या के विषय में अपने विचार अवसर के अनुसार व्यक्ति किए है; उसने इन विषयों पर बहुत विस्तार के साथ अपने विचार व्यक्त किए हैं—त्याग का महत्त्व, अत्यधिक विषय-लिप्तता के दोष, प्रेम के दैवी-स्वरूप का महत्त्व, राजा आदि के कर्तव्यों का वर्णन।

———

अध्याय २३

कालिदास के परवर्ती नाटककार

कालिदास के परवर्ती नाटककारों में शूद्रक सर्वप्रथम आता है। वह एक ऐतिहासिक महापुरुष जान पड़ता है। वह इन्द्राणीगुप्त नामक ब्राह्मण था। ब्राह्मण के कर्तव्यों को छोड़कर राजा हो जाने के कारण वह शूद्रक कहा जाने लगा। उसने आन्ध्रजातीय राजकुमार स्वाति को पराजित किया तथा उज्जैन साम्राज्य पर शासन करने लगा। उसने लगभग एक वर्ष तक शासन किया। इसका उल्लेख दण्डिन् की अवन्तिसुन्दरी कथा (पृ०२००-२०१) और अवन्तिसुन्दरीकथासार (४-१७५-२००) में प्राप्त होता है। उसने मृच्छकटिक नामक प्रकरण लिखा है। इसमें दस अंक हैं। उसका परिचय पूर्णतया निश्चित नहीं हो पाया है। उसका नाम बहुत सी कथाओं में नायक या एक पात्र के रूप में आता है। मृच्छकटिक की प्रस्तावना में वह एक कवि और राजा बताया गया है और कहा गया है कि अपने बाद उसने अपने पुत्र को राजगद्दी पर बैठाया और एक सौ वर्ष आठ दिन की लम्बी आयु बिताकर अग्नि में प्रविष्ट हो गया। आलोचकों ने इस उल्लेख के आधार पर इस नाटक का रचयिता शूद्रक को मानना अस्वीकार किया है, क्योंकि अपनी की हुई घटना का स्वयं वर्णन नहीं कर सकता था। यदि प्रस्तावना के इस उल्लेख को बाद की मिलावट मानी जाय तो शूद्रक को इस नाटक का रचयिता मानने में कोई आपत्ति नहीं होती है।

उसका समय भी सरलता से निश्चित किया जा सकता है। इस नाटक में दाक्षिणात्यों, कर्णाट, द्राविड़, चोल आदि के उल्लेख हैं और कर्णाटक का औरों के साथ युद्ध का वर्णन है। इस उल्लेखों से ज्ञात होता है कि नाटककार या तो दाक्षिणात्य था या दक्षिण प्रदेश को अच्छी प्रकार जानता था।

उसकी भाषा की सरलता, प्राकृत की विभिन्न-रूपता आदि से ज्ञात होता है कि वह हर्ष और भवभूति से बहुत पहले हुआ था। बौद्ध पात्र का स्वतन्त्रता के साथ घूमना, राज्य करने वाले राजा के प्रति प्रकटरूप से अस्वामिभक्ति, राजनीतिक कुचक्रों के द्वारा राज्य करने वाले राजा को हटाना, वेश्या को वैध विवाहित पत्नी मानना, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का अस्थिर और निम्नकोटि का होना इत्यादि बातों से ज्ञात होता है कि यह नाटक ई० सन् के प्रारम्भ के लगभग बना है।

भास के तेरह नाटकों के प्रकाशन ने इस नाटक के लेखक के विषय में समस्या उत्पन्न कर दी है। इन तेरह नाटकों में से एक नाटक चारुदत्त की कथा इस नाटक के प्रथम चार अङ्कों की कथा से सर्वथा मिलती है। भास के समर्थकों का कथन है कि शूद्रक ने भास के चार अङ्कों में और ६ नए अङ्क मिला कर इसको मृच्छकटिक नाम दिया है। इसमें प्रारम्भिक चार अङ्क भास के चारुदत्त के ही अपनाए गए है और आगे के ६ अङ्क शूद्रक की रचना है। इस प्रकार शूद्रक ने अपूर्ण नाटक को पूर्ण किया है और पूरे नाटक का रचयिता अपने आपको लिखा।

भास के समर्थकों का यह कथन हास्यास्पद है। मृच्छकटिक में अन्तर्कथा राजनीतिक भाव को लेकर है। इस बात का श्रेय शूद्रक को ही है कि उसने एक राजनीतिक कथानक को प्रेमाख्यान से बहुत कुशलता के साथ संबद्ध कर दिया है। शूद्रक एक मौलिक लेखक है। वह अपनी रचना में दूसरे की रचना को सम्मिलित करने का साहस न करता और न उस ग्रन्थ को अपनी रचना बताता। यदि वह ऐसा करता तो उसकी प्रतिष्ठा को आँच आती। इसकी अपेक्षा वह नया नाटक तैयार करता। इसके अतिरिक्त किसी साहित्य शास्त्री ने चारुदत्त को भास की रचना होने का उल्लेख नहीं किया है। चारुदत्त को मृच्छकटिक का ही संक्षिप्त संस्करण समझना चाहिए। सर्वप्रथम शूद्रक का नामोल्लेख करने वाला और मृच्छकटिक से उद्धरण देने वाला लेखक वामन (८०० ई०) है। अतः शूद्रक को इसका लेखक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

मृच्छकटिक के प्रथम चार अङ्कों की कथा वही है जो भास के चारुदत्त की है। दूसरे दिन वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर पर रात बिताई। उसके दूसरे दिन प्रातःकाल चारुदत्त नगर के उपवन में गया और उसने वसन्तसेना से कहा कि वह उसे वहाँ मिले। चारुदत्त के शिशु रोहसेन ने दाई से कहा कि वह मिट्टी की गाड़ी के स्थान पर खिलौने वाली गाड़ी खेलने के लिए दे। वसन्तसेना को उस शिशु पर दया आई और उसने उस शिशु की मिट्टी की गाड़ी अपने आभूषणों और रत्नों से भर दी और उसको प्रसन्न कर दिया। उसके घर के आगे एक गाड़ी रुकी, उसने भ्रमवश यह समझा कि यह गाड़ी चारुदत्त ने उसके लिए भेजी है, वह उस पर चढ़कर उद्यान को चल दी। वस्तुतः वह गाड़ी वहाँ के राजा के साले संस्थानक की थी। वह एक दुराचारी व्यक्ति था। वसन्तसेना उससे प्रेम नहीं करना चाहती थी, परन्तु वह उसको फँसाना चाहता था। वसन्तसेना उस गाड़ी में उपवन में वहाँ पहुँची जहाँ सस्थनाक उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। वहाँ वसन्तसेना ने उससे प्रेम करने से निषेध किया। इस पर उसने क्रुद्ध होकर उसका गला दबा दिया और वह निश्चेष्ट होकर गिर गई। उधर न्यायालय में जाकर उस संस्थानक ने चारुदत्त के विरुद्ध अभियोग चलाया कि उसने आभूषणों के लोभ में वसन्तसेना का वध कर दिया है। दूसरी ओर चारुदत्त ने वसन्तसेना के लिए जो गाड़ी भेजी थी, उस पर आर्यक नाम का एक राजनीतिक बन्दी कारागृह से भागकर आश्रय लेता है। चारुदत्त ने उसको आश्रय दिया। आर्यक ने वर्तमान राजा को पदच्युत करने के लिए शर्विलक आदि का साथ दिया। उपवन में वसन्तसेना को न पाकर निराश होकर वह घर आया। वहाँ आने पर उसे न्यायालय में उपस्थित होने का आदेश मिला और वह वहाँ गया। जब अभियोग चल रहा था, तब चारुदत्त का एक मित्र विदूषक चारुदत्त की स्त्री के आदेशानुसार वसन्तसेना के आभूषण उसको लौटाने जा रहा था। उसने मार्ग में जब चारुदत्त के ऊपर अभियोग की बात सुनी तो वह आभूषणों के सहित न्यायालय में पहुँचा। चारुदत्त के पास निरपराध होने का कोई

प्रमाण नहीं था। वह विदूषक के द्वारा लाए हुए आभूषणों के आधार पर अपराधी घोषित किया गया और उसे फाँसी का आदेश दिया गया। उधर वसन्तसेना एक बौद्ध भिक्षुक की सेवा से कुछ होश में आती है। चारुदत्त वध के लिए वधगृह में लाया गया। उधर वसन्तसेना भी उसी स्थान पर बौद्ध भिक्षुक के साथ आती है। वसन्तसेना के कथन पर चारुदत्त मुक्त किया जाता है। झूठा अभियोग चलाने के अपराध में संस्थानक को बन्दी बनाया जाता है। उसने चारुदत्त से दयाभाव की प्रार्थना की। चारुदत्त ने उसको मुक्त कर दिया।

इस नाटक का आधार ज्ञात नहीं है। इस नाटक के कथानक में वसन्तसेना के द्वारा मिट्टी की गाड़ी का आभूषणों से भरा जाना विशेष उल्लेखनीय घटना है, अतः नाटक का नाम मृच्छकटिक (मिट्टी की गाड़ी) उचित ही है। इस नाटक में जुआ खेलना, चोरी और राजसैनिक के द्वारा भागे हुए बन्दी के लिए गाड़ी की जाँच करना आदि दृश्य बहुत वास्तविकता से युक्त हैं। इस नाटक का कथा-संघटन बहुत उत्तम है। नाटककार को संगीत, द्यूत और चोरी का पूर्ण ज्ञान था। यह दृश्यों में सुन्दरता के साथ प्रकट किया गया है। नाटककार ने रंगमंच पर सोना और हाथापाई का दृश्य उपस्थित करके नाटकीय परम्परा का उल्लंघन किया है। शूद्रक प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण में बहुत पटु है। इसमें तीस पात्र हैं। ये सभी प्रकार के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसमें सुशिक्षित न्यायाधीश से लेकर वधिक तक पात्र हैं। अतएव यह नाटक सार्वजनीन प्रतीत होता है। इसके पात्र व्यक्ति हैं। अन्य नाटकों के तुल्य वे किसी श्रेणी के प्रतिनिधि नहीं हैं। इसमें शृङ्गार, हास्य और करुण रस है। इनमें से शृङ्गार इसमें प्रमुख है। इस नाटक का निर्णय है कि चरित्र मनुष्य को उच्च बनाता है। इसकी शैली सरल और स्वाभाविक है, परन्तु कालिदास के समान परिष्कृत नहीं है। लेखक ने विभिन्न प्रकार की प्राकृतों के प्रयोग में अपनी कुशलता दिखाई है। इसके पात्रों में से ६ संस्कृत बोलते हैं, १५ शौरसेनी और ७ मागधी।

इसकी प्राकृतों में विभाषा-सम्बन्धी अन्तर भी प्राप्त होते हैं। इसमें ३७७ श्लोक हैं, जिनमें से ९९ श्लोक प्राकृत में हैं। सूत्रधार पहले संस्कृत में बोलता है, परन्तु बाद में प्राकृत में बोलने लगता है। वसन्तसेना संस्कृत और प्राकृत दोनों में बोलती है। पात्रों का प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण, ओजयुक्तता, सजीवता और गतिमत्ता, घटनाओं की अधिकता, अङ्क ५ को छोड़कर विस्तृत वर्णन का अभाव, सरल और स्पष्ट भाषा आदि के द्वारा यह नाटक वास्तविकता से पूर्ण ज्ञात होता है। यह वास्तविकता अन्य संस्कृत नाटकों में अप्राप्य है।

शूद्रक को **पद्मप्राभृतक** नामक भाण-रूपक का रचयिता भी मानते हैं। इसमें चोरों के प्रामाणिक आचार्य मूलदेव का देवदत्त के साथ प्रेम का वर्णन है। इसमें पाणिनि के पूर्ववर्ती एक आचार्य दत्तकलशि का उल्लेख है। इसमें एक प्रकरण ग्रन्थ कुमुद्वतीप्रकरण और एक प्राकृत काव्य कामदत्त का उल्लेख है। इन दोनों के लेखकों का नाम अज्ञात है और ये दोनों ग्रन्थ अप्राप्य हैं। भाषा की समता के आधार पर इसको शूद्रक की रचना माना जाता है।

शूद्रक के बाद बौद्ध कवि अश्वघोष आता है, जिसने सौन्दरनन्द और बुद्ध-चरित काव्य लिखे हैं। उसने एक प्रकरण-ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है—**शारिपुत्रप्रकरण** या **शारद्वतीपुत्रप्रकरण**। इसमें ९ अङ्क हैं। इसमें गौतम बुद्ध के द्वारा मौद्गल्यायन और शारिपुत्र को बौद्ध-धर्म में दीक्षित करने का वर्णन है। इसमें अश्वघोष ने सभी नाटकीय नियमों का कठोरता के साथ पालन किया है। शारिपुत्रप्रकरण की हस्तलिखित प्रति के साथ ही दो और नाटकों की अपूर्ण हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती हैं। ये दोनों नाटक सम्भवतः अश्वघोष की रचना हैं। इनके नाम अज्ञात हैं। इनमें से एक रूपकात्मक है। दूसरे में पात्रों में से एक पात्र एक वेश्या मगधवती है। यह नाटक एक उपवन में दिखाया गया है।

इसके अतिरिक्त कुछ नाटक हैं, जिनका समय अज्ञात है। किन्तु वे ईसा की प्रथम दो शताब्दी में रक्खे जा सकते हैं। वररुचि ने एक भाण-

ग्रन्थ **उभयाभिसारिका** लिखा है। इसमें कुबेरदत्त और नारायणदत्त का जीवन वर्णित है। वररुचि का पूर्ण परिचय अज्ञात है। इसमें न्याय और सांख्य सिद्धान्तों का उल्लेख है और नृत्यकला का भी वर्णन है। भास के नाटकों में जो विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, वे इसमें भी दृष्टिगोचर होती है।

ईश्वरदत्त ने एक भाण-ग्रन्थ **धूर्तविटसंवाद** लिखा है। इसे वेश्या-कार्य-वर्णन को एक पुस्तिका कह सकते हैं। इसमें नान्दी नहीं है। इसमें कुसुमपुर का उल्लेख है। इसमें दत्तक को शृङ्गार का आचार्य बताया गया है। इसमें कामसूत्र (२५० ई०) का उल्लेख नहीं है, अतः इसे प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० की रचना मान सकते हैं। इसके लेखक के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

बोधायन ने एक प्रहसन-ग्रन्थ **भगवदज्जुक** लिखा है। इसके लेखक के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसमें रूपक के दस भेदों के जो नाम दिए गए हैं, वे अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नामों से पृथक् हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह नाटक प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० में लिखा गया है। पल्लव राजा महेन्द्रविक्रमन् के ६१० ई० के एक शिलालेख में मत्तविलासप्रहसन के साथ इस नाटक का भी उल्लेख है। इस शिलालेख का पाठ्य अस्पष्ट है, अतः उसके आधार पर इस नाटक के लेखक के विषय में कोई निर्णय नहीं किया जा सकता है। कुछ आलोचक इस शिलालेख के आधार पर इस नाटक का रचयिता महेन्द्र-विक्रमन् को मानते हैं। इसमें वर्णन है कि भगवान् नाम का एक योगी अपनी यौगिक शक्ति के प्रदर्शन के लिए अज्जुका नाम की एक वेश्या के शव में प्रवेश करता है। वह शव जीवित हो जाता है और संन्यास-धर्म का उपदेश देने लगता है। यमराज ने वेश्या की आत्मा को आदेश दिया कि वह पुनः संसार में जावे। उसके निर्जीव शरीर को योगी भगवान् ने अपनी इच्छानुसार प्रवेश के लिए अपने पास सुरक्षित

रक्खा था। वेश्या को आत्मा ने उस शरीर में प्रवेश किया और वह सजीव हो गया तथा प्रेम-सम्बन्धी विषयों पर उपदेश देने लगा। लेखक को दार्शनिक सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान था, यह ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात होता है।

वीणावासवदत्तम् नाम का चार अङ्कों का एक अपूर्ण नाटक प्राप्त होता है। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार प्रद्योत के द्वारा उदयन को बन्दी बनाए जाने से वासवदत्ता को यह अवकाश मिला कि वह उदयन से वीणा बजाना सीख सके। इस नाटक का लेखक अज्ञात है। इसकी शैली के आधार पर इसको ईसवीय सन् को प्रारम्भिक शताब्दी में रखना उचित है। एक अज्ञात लेखक का एक प्रहसन **दामक** है। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार कर्ण ने परशुराम से अस्त्रशिक्षा प्राप्त की। इस नाटक में कर्ण का एक मित्र दामक विशेष भाग लेता है। भास के नाटकों में जो विशेषता प्राप्त होती है, वह इसमें भी प्राप्त होती है। इसका समय ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में समझना चाहिए।

दिङ्नाग ने **कुन्दमाला** नाटक लिखा है। इसका दूसरा नाम **धीरनाग** भी है। इसमें ६ अङ्क हैं। इसका आधार रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा है। इसका लेखक बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग से भिन्न व्यक्ति है, क्योंकि वह हिन्दू-विचार वाला नाटक न लिखता। भाषा की सरलता से ज्ञात होता है कि वह २०० ई० के लगभग हुआ होगा। उसका प्रभाव भवभूति (७०० ई०) के उत्तररामचरित पर भी पड़ा है। उसकी सरल शैली की तुलना जब भवभूति की क्लिष्ट और कठोर शैली से की जाती है, तो ज्ञात होता है कि वह भवभूति से पूर्ववर्ती है। इसके नाटक पर भास और कालिदास का प्रभाव पड़ा है। यह ज्ञात नहीं है कि वह कालिदास का समकालीन है या बाद का। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में उसका नाम धीरनाग दिया गया है। यह नाटक सुखान्त है। इसमें अन्त में राम के सम्मुख माता पृथ्वी के द्वारा सीता की पवित्रता सिद्ध की जाती है और कुश तथा लव क्रमशः राजा और

उपराजा बनाए जाते हैं। यह सबसे पहला नाटक है, जिसमें रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा आई है। इसमें विदूषक है।

विशाखदत्त राजा पृथु के मन्त्री भास्करदत्त का पुत्र था। उसने **मुद्रा-राक्षस** नाटक लिखा है। इसमें सात अङ्क हैं। इसके भरतवाक्य में राजा चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। इस चन्द्रगुप्त के स्थान पर दन्तिवर्मा, रन्तिवर्मा और अवन्तिवर्मा पाठभेद हैं। भरतवाक्य का चन्द्रगुप्त, मौर्य चन्द्रगुप्त के लिए नहीं है, क्योंकि वह इस नाटक का नायक है। वह गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिए हो सकता है। ऐसी अवस्था में लेखक का समय ३५० ई० के लगभग मानना चाहिए। दन्तिवर्मा पाठ मानने पर वह राष्ट्रकूट राजा दन्तिवर्मा (६०० ई०) या लाट राजा दन्तिवर्मा (८५० ई०) या पल्लव राजा दन्तिवर्मा (८०० ई०) के लिए हो सकता है। दन्तिवर्मा पाठ भ्रमात्मक ज्ञात होता है। अवन्तिवर्मा पाठ से लेखक का सम्बन्ध स्थाण्वीश्वर के राजा हर्ष की बहिन राज्यश्री के श्वशुर मौखरी वंश के राजा अवन्तिवर्मा से ज्ञात होता है। इसके अनुसार लेखक का समय ६०० ई० ज्ञात होता है और वह बंगाल के समीप का रहने वाला सिद्ध होता है। मौखरी राजा के साथ उसका सम्बन्ध तथा ६०० ई० के लगभग उसका समय उचित प्रतीत होता है, क्योंकि लेखक पटना की उस समय की स्थिति से सर्वथा अभिज्ञ था। उसने नाटक में पटना को समृद्ध नगर बताया है। ह्वेनसांग की यात्रा के समय यह नगर नष्ट हो गया था। अतः लेखक का समय ५०० ई० के बाद तथा ६०० ई० से पूर्व समझना चाहिए। इस नाटक में उन्हीं हूणों का उल्लेख समझना चाहिए, जिन पर राज्यवर्धन ने आक्रमण किया था। इस नाटक में वर्णन किया गया है कि नन्द राजाओं के मन्त्री राक्षस ने यह प्रयत्न किया है कि किसी प्रकार राजा चन्द्रगुप्त को गद्दी से हटाया जाय, क्योंकि छलपूर्वक नन्दों का वध करके चन्द्रगुप्त को गद्दी पर बैठाया गया था। राक्षस के सभी प्रयत्न कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण चाणक्य के कारण विफल

रहे । चाणक्य चन्द्रगुप्त का हितेच्छु था । वह चाहता था कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाऊँ । चाणक्य ने अपने दूतों के चतुर प्रयत्न से राक्षस की राजकीय मुद्रा (मुहर) प्राप्त कर ली और उस मुहर को लगाकर राक्षस के समर्थकों के नाम एक जाली पत्र लिखा । उस पत्र पर राक्षस की मुहर थी, अतः उसके द्वारा राक्षस और उसके सहायकों में मतभेद हो गया । राक्षस निराश्रित हो गया। चन्द्रगुप्त के आदेशानुसार उसका एक प्रिय मित्र राजद्रोह के अभियोग में फाँसी पर चढ़ाया जा रहा था। राक्षस उसे बचाने के लिए दौड़ा। चाणक्य ने प्रतिज्ञा की कि वह उसके मित्र को फाँसी से छुड़ा देगा, यदि राक्षस चन्द्रगुप्त का मंत्री होना स्वीकार करे । राक्षस के पास और कोई मार्ग नहीं था । अतः उसने विवश होकर मन्त्री होना स्वीकार किया । चाणक्य राक्षस की मुद्रा के द्वारा अपने प्रयत्न में सफल हुआ, अतः इस नाटक का नाम मुद्राराक्षस पड़ा है । इस नाटक पर मृच्छकटिक नाटक का प्रभाव दिखाई पड़ता है । लेखक गणित और फलित-ज्योतिष तथा न्याय शास्त्र से पूर्णतया परिचित था । यही एक नाटक है, जो पूर्णतया राजनीतिक कथा से युक्त है । सूक्ष्म कथा-संघटन तथा सुसंबद्ध दृश्यों के कारण लेखक की चतुरता स्पष्ट है । इसकी शैली सरल है । इसमें शक्ति और प्रवाह है । साथ ही लम्बे समासों का अभाव है । विशाखदत्त का दूसरा नाम विशाखदेव भी है । साहित्यशास्त्रियों ने जिन ग्रंथों का उल्लेख किया है, उससे ज्ञात होता है कि उसने दो नाटक और लिखे हैं—(१) **देवीचन्द्रगुप्त** । यह एक प्रेमाख्यान वाला नाटक है । इसका सम्बन्ध चन्द्रगुप्त से है । (२) **अभिसारिकावंचितक** या **अभिसारिकाबन्धितक** । इसमें उदयन, वासवदत्ता और पद्मावती पात्र हैं। ये दोनों नाटक लुप्त हो गए हैं । मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में चन्द्रगुप्त शब्द से तथा देवीचन्द्रगुप्त के कथानक से ज्ञात होता है कि विशाखदत्त गुप्त राजाओं के दरबार में राजकवि रहा होगा । अतः उसका समय ३५० ई० के लगभग सिद्ध होता है ।

कौमुदीमहोत्सव नाटक में पाँच अंक हैं। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार ३४० ई० के लगभग कल्याणवर्मा ने अपना मगध का नष्ट हुआ राज्य पुनः प्राप्त किया। जब कल्याणवर्मा राजा बना था, तब इस नाटक का अभिनय हुआ था। इसका कथानक राजनीतिक है, परन्तु साथ ही प्रेम-कथा भी वर्णित है। इसका लेखक अज्ञात है। इसके लेखक के नाम वाला अंश लुप्त हो गया है। उसका अंतिम भाग है "कया"। इससे ज्ञात होता है कि इसकी लेखिका कोई स्त्री है, जिसका नाम अज्ञात है। इस नाटक पर भास और कालिदास का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस नाटक का समय चतुर्थ शताब्दी ई० मानना चाहिए।

पल्लव-राजा सिंहविष्णु के पुत्र **महेन्द्रविक्रमन्** प्रथम ने एक प्रहसन नाटक **मत्तविलासप्रहसन** लिखा है। इसका समय ६१० ई० के लगभग है। इसमें काँची के नागरिक जीवन का वर्णन है। इसमें चोर-विद्या पर एक ग्रन्थ-लेखक कर्पट बताया गया है। इसमें लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार बौद्ध धर्म के अनुयायी तथा कापालिक और पाशुपत धर्म के अनुयायी मदिरापानादि दुर्गुणों में फंसे हुए थे।

श्यामिलक ने एक भाण-ग्रन्थ **पादताडितक** लिखा है। उसने एक कवि पारशव का नाम लिखा है। बाण ने पारशव का नाम लिखा है। इस नाटक में बौद्धों, लंकावासियों, आन्ध्रों और कोंकण आदि का उल्लेख है। इसमें एक कवि आर्यक का उल्लेख है, जो दक्षिण से आया था। इसमें वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों का उल्लेख है। इसकी शैली बाण की कादम्बरी की शैली से मिलती है। बाण ने अपने एक मित्र का नाम सोमिल लिखा है। इस नाटक का लेखक श्यामिल और सोमिल संभवतः एक ही व्यक्ति है। इस प्रकार इसका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होता है। इसमें कामशास्त्र पर दत्तक को आचार्य मानने और वात्स्यायन (२५० ई०) के कामसूत्र का उल्लेख न करने से लेखक का यह समय ठीक प्रतीत नहीं होता है। विष्णुनाग नाम के एक ब्राह्मण के शिर पर एक वेश्या ने पैर मारा। वह इस विषय के

विद्वानों से मिला कि वे इसका प्रायश्चित्त बतावें। उन्होंने इसका प्रायश्चित्त बताया कि वह वेश्या के दूसरे पैर से मार खावे। संभवतः इस नाम के आधार पर ही बाण ने अपने एक ग्रन्थ का नाम मुकुटताडितक रक्खा है।

हर्षवर्धन, जिसका अधिक प्रचलित नाम हर्षदेव है, ६०६ से ६४८ ई० के बीच में स्थाण्वीश्वर का राजा था। वह स्वयं कवि था और कवियों का आश्रय-दाता था। उसके आश्रित कवियों में विशेष उल्लेखनीय बाण, मयूर, मातंग-दिवाकर आदि थे। हर्ष तीन नाटकों का लेखक है—**रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द**। पाश्चात्य विद्वान् हर्ष को इन तीन नाटकों का लेखक नहीं मानते हैं। उनका कथन है कि ये नाटक बाण या अन्य किसी उसके आश्रित कवि ने लिखे हैं। इन नाटकों की भाषा से स्पष्ट है कि बाण इन नाटकों का लेखक नहीं है। हर्ष को इन नाटकों का लेखक मानने की जो परम्परा है, उसको निराधार नहीं माना जा सकता है, क्योंकि चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने उल्लेख किया है कि हर्ष नागानन्द नाटक का लेखक है।

रत्नावली नाटिका है। इसमें चार अंक है। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार कौशाम्बी के राजा उदयन ने लंका की राजकुमारी सागरिका (रत्नावली) से विवाह किया है। इसकी पूरी कथा मालविकाग्निमित्र की कथा के आधार पर बनाई गई है। वासवदत्ता ने सागरिका को उदयन से अधिक सम्पर्क रखने के कारण बन्दी बनाया था। उदयन ने एक जादूगर की सहायता से सागरिका को मुक्त किया। लंका के राजा के यहाँ से यह समाचार प्राप्त होने पर कि सागरिका उसकी पुत्री है, दोनों प्रेमियों का विवाह सम्बन्ध हो गया। जादूगर का दिव्य दृष्टि प्राप्त करना और सागरिका का बचकर निकलने के लिए रानी का वेष धारण करना, ये नाटककार की अपनी कल्पनाएँ हैं।

प्रियदर्शिका भी नाटिका है। इसमें चार अंक हैं। इसमें राजा उदयन और राजकुमारी आरण्यिका (प्रियदर्शिका) के प्रेम का वर्णन है। इसकी कथा रत्नावली और मालविकाग्निमित्र से मिलती हुई है। इसमें लेखक ने उल्लेख

किया है कि रानी वासवदत्ता के सामने एक नाटक खेला जाता है और उसमें उदयन और वासवदत्ता का विवाह दिखाया जाता है। आरण्यिका वासवदत्ता का अभिनय करती है और उदयन का अभिनय आरण्यिका का एक मित्र करता है। इस प्रकार प्रेमाख्यान विकास को प्राप्त होता है। उदयन आरण्यिका को साँप के काटने से बचाता है। इस नाटक पर शाकुन्तल और मालविकाग्निमित्र का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

नागानन्द नाटक में पाँच अङ्क हैं। इसमें विद्याधरों के राजकुमार जीमूतवाहन के आत्म-बलिदान का वर्णन है। गरुड़ के भोजन के रूप में एक साँप शंखचूड़ को बारी थी। जोमूतवाहन ने उसके स्थान पर अपने आप को गरुड़ के लिए आहाररूप में भेंट किया। राजकुमार के उच्च व्यवहार को जानकर गरुड़ को प्रायश्चित्त हुआ और उसने अब तक जितने साँप मारे थे, उन सभी को जीवित कर दिया और बौद्ध विचारधारा के अनुसार उसने प्रतिज्ञा की कि वह आगे किसी को भी नहीं मारेगा। जीमूतवाहन का रंगमंच पर प्राणान्त हो गया था। उसको देवी गौरी ने पुनर्जीवित किया और विद्याधरों का राजा बना दिया। इसमें साथ ही राजकुमार का एक सिद्ध राजकुमारी मलयवती के साथ प्रेम का वर्णन है। यह नाटक एक बौद्ध जातक के आधार पर बना है। उसको लेखक ने हिन्दू रूप दे दिया है। लेखक ने हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म दोनों के प्रति सहिष्णुता के भाव को प्रकट करने के लिए सम्भवतः ऐसा किया है।

हर्ष कथानक के संघटन में पटु नहीं है। उसने दूसरे नाटककारों से उधार लेने में पर्याप्त परिश्रम किया है और उनको अपनी आवश्यकता के अनुसार उसने परिवर्तित कर लिया है। इनमें चरित्र-चित्रण अच्छा नहीं हुआ है। स्त्री-पात्रों का चित्रण और घटिया हुआ है। उसके पात्र राजा, नायक, रानी आदि नामों से उल्लेख किए गए हैं। इसकी शैली वैदर्भी है। रत्नावली और प्रियदर्शिका में शृङ्गार रस मुख्य है और नागानन्द में शान्तरस प्रधान है। रत्नावली और प्रियदर्शिका में रत्नावली रस-परिपाक की दृष्टि से अधिक अच्छी है। नागानन्द नाटक के रूप में बहुत उच्च कोटि का नहीं है।

इसमें अन्य रसों का समुचित परिपाक नहीं हुआ है। लेखक सङ्गीत और ज्योतिष की सूक्ष्मताओं से सम्यक्तया परिचित था।

भट्टनारायण ने **वेणीसंहार** नाटक लिखा है। इसमें ६ अङ्क हैं। इसमें महाभारत की घटनाओं का वर्णन है और अन्त में भीम के द्वारा द्रौपदी की वेणी के बाँधने का वर्णन है। भट्टनारायण को बङ्गाल के राजा आदिशूर ने दुर्भिक्ष के कुप्रभाव को दूर करने के लिए एक यज्ञ करने को बुलाया था। यह राजा ६५० ई० के लगभग हुआ था। सर्वप्रथम इसके नाटक से उद्धरण साहित्यशास्त्री **वामन** (८०० ई०) ने दिया है। अतः इसका समय सातवीं शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध मानना चाहिए। भट्टनारायण ने महाभारत की कथा में एक नवीनता प्रस्तुत की है कि द्यूतक्रीड़ा के समय द्रौपदी ने अपना अपमान होने पर अपने केश खोल दिए और प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन के प्राणान्त होने पर ही वह इस वेणी को बाँधेगी। दुर्योधन के प्राणान्त होने पर भीम ने उसकी वेणी बाँधी। अतः इस नाटक का नाम वेणीसंहार पड़ा। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए नाटककार ने मूल कथा में कई परिवर्तन किए हैं। इसमें भीम की प्रशंसा की गई है, क्योंकि वही द्रौपदी की वेणी बाँधता है। दुर्योधन की न्यूनताएँ विशेष रूप से दिखाई गई हैं। इसके लिए नाटककार ने दुर्योधन की पत्नी भानुमती को उपस्थित किया है और सम्पूर्ण द्वितीय अङ्क के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि दुर्योधन बहुत ही कामी व्यक्ति था। कर्ण को भी घटिया ढंग से प्रस्तुत करके अश्वत्थामा को उत्कृष्ट सिद्ध किया गया है। इस नाटक की मुख्य विशेषता है पात्रों का स्वतन्त्र-व्यक्तित्व। किन्तु लेखक ने कहीं पर भी यह संकेत नहीं किया है कि इस नाटक का नायक कौन है। इसमें वीर रस मुख्य है। यह गौड़ी रीति में लिखा गया है। इसकी भाषा बहुत प्रभावशाली और ओजपूर्ण है। इस नाटक में कई दृश्य बहुत सुन्दर हैं, परन्तु वे असम्बद्ध हैं। इस नाटक में कथा-संघटन में एकता का अभाव है।

शक्तिभद्र ने सात अङ्कों में **आश्चर्यचूड़ामणि** नामक नाटक लिखा है। वह शङ्कराचार्य (६३२-६६४ ई०) का शिष्य कहा जाता है। इस नाटक में

भास के नाटकों की बहुत सी समता प्राप्त होती है। इस नाटक से ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत में यह नाटक सबसे प्रथम लिखा गया है। इसका समय ७०० ई० मानना उचित है। राम और सीता को आश्रमवासियों ने एक आश्चर्यजनक रत्न दिया था, उसी से इसका नाम पड़ा है। रावण ने नकली राम, सीता और लक्ष्मण बनाए थे। इस रत्न की सहायता से राम और सीता उसके छल से बच सके। अद्भुत रस इस नाटक का प्रमुख तत्त्व है। इस नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उसने एक और नाटक **उन्मादवासवदत्त** लिखा है। यह नाटक अब नष्ट हो गया है।

कन्नौज का राजा **यशोवर्मा** स्वयं कवि था और कवियों का आश्रयदाता था। नाटककार भवभूति और प्राकृत-भाषा का कवि वाक्पति उसके आश्रित कवि थे। लाटादित्य ने ७३३ ई० में उसको पराजित किया था। उसने रामायण की कथा के आधार पर ६ अङ्कों में **रामाभ्युदय** नाटक लिखा है। साहित्यशास्त्रियों के उद्धरणों से ही यह ज्ञात हुआ है। यह नष्ट हो गया है।

भवभूति यशोवर्मा का आश्रित कवि था। वह वाक्पति का समकालीन था। उसका समय ७०० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने तीन नाटक लिखे हैं—**महावीरचरित, मालतीमाधव** और **उत्तररामचरित**। इन नाटकों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उसका वास्तविक नाम **श्रीकण्ठ** था। शिव-भक्त होने के कारण उसका नाम भवभूति पड़ा। उसके पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। भट्टगोपाल उसके पितामह थे। वह कश्यप गोत्र का था तथा कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का था। वह विदर्भ में पद्मपुर का निवासी था। वह व्याकरण, न्याय और मीमांसा का विशेषज्ञ था। वह साहित्यशास्त्र, उपनिषद्, सांख्य और योग का भी विशेष विद्वान् था। जब वह युवक था, तब वह अभिनेताओं के साथ बहुत प्रेम से घूमा करता था।[१]

१. भवभूतिर्नाम कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेष वर्तमानः। मालतीमाधव की प्रस्तावना।

उसके गुरु का नाम **ज्ञाननिधि** था। मालतीमाधव की एक हस्तलिखित प्रति में उल्लेख है कि कुमारिल भट्ट के शिष्य उवेक ने यह नाटक लिखा है। इस आधार पर एक वाद-विवाद प्रारम्भ हो गया है कि भवभूति और उवेक (६४०-७२५ ई०) एक ही व्यक्ति हैं। परन्तु यह अभी तक सिद्ध नहीं हो पाया है।

महावीरचरित भवभूति की प्रथम रचना ज्ञात होती है। इसमें सात अङ्क हैं। इसमें रामायण की कथा राम-सीता के विवाह से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की है। रावण सीता से विवाह करना चाहता है, परन्तु धनुष-भंग न कर सकने के कारण धनुष को भंग करने वाले राम से पराजित होता है। रावण के मन्त्री माल्यवान् ने राम से बदला लेने का निश्चय किया। शूर्पणखा कैकेयी की दासी के रूप में मिथिला में प्रगट होती है और कैकेई के द्वारा पहले से माँगे हुए दोनों वर दशरथ से मँगवाती है। माल्यवान् ने ही वालि को प्रेरित किया था कि वह किष्किधा में जाने पर राम पर आक्रमण करे। रामायण की कथा में वालि के वध के लिए जो कठिन समस्या उपस्थित हुई है, वह इस प्रकार नहीं उपस्थित होती और राम के द्वारा बालि का वध उचित सिद्ध होता है। यह नाटक नाटकीय दृष्टि से अच्छा नहीं है। इसके दो अङ्कों में राम और परशुराम का मौखिक विवाद है। बातचीत में बहुत लम्बे वक्तव्यों के द्वारा इस नाटक का प्रभाव मारा जाता है। यह माना जाता है कि भवभूति ने चतुर्थ अंक के ४६ श्लोक तक यह ग्रन्थ लिखा है, शेष अंश एक विद्वान् **सुब्रह्मण्य** ने लिखा है। कोई भी कारण पर्याप्त नहीं है कि चतुर्थ अङ्क में भवभूति सहसा रुक क्यों गये ?

मालतीमाधव एक प्रकरण-नाटक है। इसमें दस अङ्क हैं। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार विदर्भ के राजा के मन्त्री देवरात के पुत्र माधव का विवाह पद्मावती के राजा के मन्त्री भूरिवसु

की पुत्री मालती से हुआ और माधव के मित्र मकरन्द का विवाह मालती की एक सखी मदयन्तिका से हुआ । माधव पद्मावती में पढ़ने के लिए आया । माधव और मालती दोनों के पिता की एक सहपाठिनी कामन्दकी नाम की स्त्री संन्यासिनी हो गई थी। वह अपने सहपाठियों के इन बच्चों का सदा कुशल चाहती थी । माधव ने एक दिन मालती को देखा और वह उससे प्रेम करने लगा । मालती भी माधव से प्रेम करने लगी। परन्तु उसके पिता पर राजा की ओर से यह दबाव डाला गया कि वह राजा के कृपा-पात्र और मदयन्तिका के भाई नन्दन से उसका विवाह कर दे । इस प्रकार विवाह का आयोजन हुआ । मकरन्द ने स्त्री का वेष बनाया और उसका विवाह नन्दन से हो गया । उन दोनों विवाहितों में विवाद प्रारम्भ हुआ और स्त्री मकरन्द ने नन्दन से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया । नन्दन की बहिन मदयन्तिका को एक दिन मकरन्द ने एक बाघ से बचाया और वह तब से उससे प्रेम करने लगा । मालती, जिसका विवाह नन्दन से होना था, कामन्दकी के निर्देशानुसार एक मठ में लाई गई । वहाँ एक पाशुपत सम्प्रदाय की स्त्री कापालिका उसे शिव के आगे बलि देने के लिए ले गई। माधव अकस्मात् वहाँ पहुँचा और उसने उस पाशुपत स्त्री से मालती की रक्षा की । प्रतिकार की भावना से पुनः पाशुपत सम्प्रदाय के व्यक्तियों ने मालती को पकड़ा, परन्तु कामन्दकी के एक साथी ने उसे बचाया । तत्पश्चात् मालती और माधव का विवाह सुखपूर्वक हो जाता है । इसकी कथा का संगठन अच्छा नहीं है । इसके नवम अङ्क में मालती के अदृश्य होने पर माधव के दुःख का जो वर्णन हुआ है, वह करुण रस की दृष्टि से कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क के वर्णन से अच्छा है, परन्तु परिष्कार और सौन्दर्य की दृष्टि से उससे घटिया है । इस अङ्क में माधव ने अपनी अदृश्य प्रिया के नाम मेघ के द्वारा सन्देश भेजा है। इस सन्देश के दो श्लोकों पर कालिदास के मेघदूत का प्रभाव पड़ा है । इस नाटक में कई बिखरे हुए सुन्दर दृश्य हैं ।

उत्तररामचरित में सात अङ्क हैं। इसमें रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। इसमें वर्णन किया गया है कि लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की सुरक्षा में जाते हुए अश्वमेध के घोड़े को लव और कुश ने रोका। इस प्रकार राम अपने दोनों पुत्रों से मिल सके। अन्तिम अङ्क में रामायण की कथा का एक छोटा सा दृश्य उपस्थित करके राम और सीता का शुभ मिलन दिखाया गया है। नाटक के दृष्टिकोण से उत्तररामचरित बहुत उच्चकोटि का सिद्ध नहीं होता है। यह नाटक की अपेक्षा एक नाटकीय काव्य अधिक है। इसमें वनों का वर्णन तथा राम और सीता के वियोग का वर्णन अत्यन्त प्रशंसनीय और संस्कृत साहित्य में अतुलनीय है। राम का सीता के आश्रम में अपने पुत्रों और सीता से मिलना, इस वर्णन पर कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल, दिङ्नाग के कुन्दमाला और वेणीसंहार का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भवभूति के ये तीनों नाटक उज्जैन में कालप्रियानाथ के महोत्सव पर अभिनीत किए गए थे। मालतीमाधव का दृश्य पद्मावती में रखा गया है। मालतीमाधव की कथा कवि की अपनी कल्पना है, परन्तु अन्य दोनों नाटकों की कथा रामायण पर आश्रित है। उक्त तीनों नाटकों का अध्ययन करने से स्पष्ट जान पड़ता है कि भवभूति के पास जो कुछ भी था उससे वह सन्तुष्ट था। भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए संसार में असमान संघर्षों का वर्णन करने में उसे विश्वास नहीं था। वह एक आदर्श गृहस्थ था। उसके अनुसार प्रेम केवल एक भावात्मक कार्य नहीं बल्कि आत्माओं का आत्मिक संयोग है[1]। इसकी पूर्णता संतति के माध्यम से होती है[2]। अतः उसने अन्तःपुर के वातावरण या बहुत सी पत्नियों को रखने वाले पात्रों को अपनी रचना का विषय नहीं बनाया। उसने उन परम्पराओं में अपने को नहीं बाँधा जिनका अन्य नाटककारों ने पालन किया। यही

१. उत्तररामचरित १–३९ और मालतीमाधव ६–१८।

२. उत्तररामचरित ३–१७।

कारण है कि उसकी रचनाओं में कोयल, आम्रमञ्जरी, अशोक और वकुल आदि वृक्षों का उल्लेख नहीं है। वह माधव से मनुष्य का मांस बेचवाता है और श्मशान का वर्णन करता है। भवभूति ने कथा के वर्णन में कोई विशेष योग्यता प्रदर्शित नहीं की है। उसने अपने नाटकों में समय की एकता का भी पालन नहीं किया है। उसने चरित्र-चित्रण बहुत अच्छा किया है, अतः उसका यह दोष छिप जाता है। उसके सभी पात्र सजीव और भावपूर्ण हैं। उसके नाटकों में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उनमें विदूषक का सर्वथा अभाव है। उसके नाटकों में से मालतीमाधव में शृङ्गार रस मुख्य है, महावीरचरित में वीररस और उत्तररामचरित में करुण रस मुख्य है। मालतीमाधव आदि के पठन से ज्ञात होता है कि वह भयानक वीभत्स आदि रसों के वर्णन में भी उसी प्रकार दक्ष है, परन्तु करुण रस के वर्णन में अनुपम है। अतएव कहा जाता है कि 'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते' तथा 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' शृङ्गार के वर्णन में उसने विषय-वासना वाले प्रेम तथा अन्तःपुर के वर्णन को नहीं लिया है। उसने स्त्री और पुरुष के आदर्श प्रेम का ही वर्णन किया है, जो आजन्म पवित्र जीवन बिताते हैं। उसकी शैली गौड़ी है, विशेष रूप से महावीरचरित और मालतीमाधव में। उसकी शैली परिपुष्ट, उत्कृष्ट, ओजस्विनी और सामंजस्ययुक्त है। उत्तररामचरित को छोड़कर अन्य नाटकों में उसने जो गद्यांश दिए हैं, वे इतने लम्बे और क्लिष्ट हैं कि उनका सौन्दर्य नष्ट हो गया है। उसकी पंक्तियों में कवित्व की अपेक्षा भाव की अधिकता है। उसने शिखरिणी छन्द का बहुत कुशलता के साथ प्रयोग किया है।[१]

महत्त्व और ख्याति की दृष्टि से नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति का ही स्थान है। उसने चरित्र-चित्रण और शैली का एक नवीन मार्ग उपस्थित किया है। कालिदास ने प्रकृति के कोमल रूप को अपनाया

१. क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलक ३-३३।

है, किन्तु भवभूति ने उसके उन्नत और भयंकर रूप को अपनाया है। कालिदास ने नाट्यशास्त्रों द्वारा निर्धारित परम्पराओं का पालन किया है, अतः वह निश्चित सीमा के अन्दर ही विचरण कर सकता था, परन्तु भवभूति ने उन सीमाओं का उल्लंघन किया है और अपने कौशल के प्रदर्शन के लिए विस्तृत क्षेत्र को अपनाया है। जैसे मालतीमाधव में उसने नाटकीय परम्परा के विरुद्ध रंगमंच पर व्याघ्र को दिखाया है, श्मशान का दृश्य दिखाया है और मनुष्य के मांस का बेचना दिखाया है। उसने भयंकर वनों और पर्वतीय अधित्यकाओं और उपत्यकाओं के दृश्यों का वास्तविक चित्र उपस्थित किया है। कालिदास भवभूति की अपेक्षा कल्पना और भावों में बढ़ा हुआ है और भवभूति गम्भीर, ओजस्वी और भावपूर्ण भावाभिव्यक्ति में सर्वोच्च आचार्य है। कालिदास जो बात सक्षेप में व्यंजना के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, भवभूति उसको व्यापक और ओजस्वी रूप में प्रकट करते हैं। कालिदास पूर्णतया आशावादी थे, अतः उनके पात्र वास्तविक होने की अपेक्षा अधिक रसिक एवं काल्पनिक हैं। भवभूति ने संसार के दुःखों को भुगता था और निराशा का भी अनुभव[1] किया था। उनके पात्र काल्पनिक न होकर अधिक सांसारिक और वास्तविक हैं। 'किसी भी अन्य भारतीय नाटक की अपेक्षा भवभूति के नाटक में प्रायश्चित्त के कारण पवित्र राम और सीता के कोमल प्रेम का अधिक वास्तविकता के साथ वर्णन है।'[2] कालिदास ने अपने पात्रों के द्वारा कुछ सामान्य उपदेशात्मक सूक्तियाँ कहवाई है, किन्तु भवभूति की सूक्तियाँ उच्चकोटि की है। उनके पात्र अपने अनुभव को बाते कहते हैं। जैसे-कर्त्तव्य-पालन और आत्मबलिदान[3]

१. मालती माधव १-८।

२. A. A. Macdonell : History of the Sanskrit literature, पृष्ठ ३६५।

३. उत्तररामचरित १-१२।

सच्ची मित्रता,[1] वास्तविक प्रेम[2], और पुत्र-वात्सल्य[3] आदि की सूक्तियाँ वास्तविकता का प्रदर्शन कराती हैं। उनके नाटकों में हास्य नहीं है, परन्तु पताका-स्थान है। उन्होंने स्मृति, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र और वेदान्त में अपनी विशेषता का परिचय दिया है।

भवभूति शब्दब्रह्मवित् था[4]। वह भाषा पर असाधारण अधिकार रखने का दावा करता है।[5] उसके इस दावे को प्रमाणित करने के लिये तिलकमंजरी के लेखक धनपाल की प्रशस्ति से प्रमाण प्राप्त होता है।

स्पष्टभावरस चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिता।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना।।

अनंगहर्षमात्राराज ने ६ अंकों में **तापसवत्सराज** नाटक लिखा है। आनन्दवर्धन (८५० ई०) ने उसका उल्लेख किया है। उसका निश्चित समय अज्ञात है। वह ८५० ई० से पूर्व हुआ होगा। इसमें नाटक-वर्णन किया गया है कि वासवदत्ता के स्वर्गवास का झूठा समाचार सुनकर उदयन अत्यन्त खिन्न हुआ और वन में इधर-उधर घूमने लगा। वह जीवन से निस्पृह होकर संन्यासी हो गया। अपने को अति दुःखमय देखकर वह अपने आपको नदी में डालकर नष्ट करना चाहता था। उधर वासवदत्ता भी अपने जीवन से तंग आकर नदी में डूबना चाहती थी। वह भी वहीं पहुँची। दोनों एक दूसरे को पाकर प्रसन्न हो जाते हैं और जीवन-त्याग का विचार छोड़ देते हैं।

मायुराज ने रामायण की कथा पर **उदात्तराघव** नामक नाटक लिखा है। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। राजशेखर (९०० ई०) ने इसका उल्लेख किया है। अतः लेखक का समय ९०० ई० से पूर्व मानना चाहिए। कुछ आलोचकों ने अनंगहर्षमात्राराज और मायुराज को एक ही व्यक्ति माना

---

१. उत्तररामचरित ४. १३–१४ २. उत्तररामचरित १.३६
३. उत्तररामचरित ३. १८ ४. उत्तररामचरित ७/२१
५. उत्तररामचरित १/२

है। दामोदर गुप्त ने अनंगहर्ष का उल्लेख किया है। दामोदर गुप्त का समय ८०० ई० है। यदि दोनों व्यक्ति एक ही हैं तो तापसवत्सराज और उदात्तराघव के लेखक का समय ८०० ई० से पूर्व मानना चाहिए।

केरल के एक राजा **कुलशेखरवर्मन्** ने दो नाटक लिखे हैं—**सुभद्राधनंजय** और **तपतीसंवरण**। यह राजा ७०० ई० में केरल में हुए इसी नाम के राजा से भिन्न है। इसका समय ८०० ई० है।

मुरारि श्रीवर्धमानक का पुत्र था। उसने अपने आपको बाल वाल्मीकि लिखा है। रत्नाकर (८५० ई०) के हरविजय में उसका उल्लेख है। उसने भवभूति (७०० ई०) के उत्तररामचरित से उद्धरण दिया है। अतः उसका समय ८०० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने रामायण की कथा पर आश्रित **अनर्घराघव** नाटक लिखा है। इसमें सात अङ्क हैं। कथा के वर्णन में उसने भवभूति के महावीरचरित का अनुसरण किया है। उसने अन्तिम अंक में राम के लौटकर आने के वर्णन में जो भोगोलिक वर्णन किया है, वह बहुत त्रुटिपूर्ण है। लेखक में मौलिकता का अभाव है। परवर्ती साहित्य-शास्त्रियों और वैयाकरणों ने उसकी अलंकृत भाषा और परिष्कृत शैली के आधार पर बहुत प्रशंसा की है। लेखक ने मुरारि की प्रशंसा वक्रोक्ति के एक आचार्य के रूप में की है[1]। 'कतन्दी' नाम की एक रचना का भी उल्लेख मिलता है जो रावणकृत 'वैशेषिकसूत्र' की टीका है। मुरारि भट्टनारायण[2] और भवभूति[3] से प्रभावित था। बहुत कुछ सम्भव है कि

---

१. श्रीकण्ठचरित २५

२. तुलना कीजिए—अनर्घराघव ४/४६ को वेणीसंहार १/१२ से
,, ,, ४/२५ ,, ,, ३/२३ से

३. ,, ,, १/५६ ,, उत्तररामचरित ६/१२ से
,, ,, २/६ ,, ,, २/४ से
,, ,, २/५८ ,, ,, १/१० से
,, ,, ४/२६ ,, महावीरचरित २/३६ से

उसने नाटक की रचना भवभूति की स्पर्धा में की। इसका निर्देश उन विद्वानों की प्रचलित उक्तियों द्वारा ही हो जाता है जिन्होंने माघ की भाँति भाषा पर अधिकार सम्बन्धी उसकी प्रशस्ति की है।

भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया।
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः॥
मुरारिपदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा।
भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु॥
मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे मतिं (रतिं) कुरु।
मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे मतिं कुरु॥

हनुमान ने रामायण की कथा के आधार पर **महानाटक** या **हनुमन्नाटक** लिखा है। यह माना जाता है कि रामायण के एक पात्र राम के आदर्श भक्त हनुमान ने अपने आराध्य देव राम का जीवन नाटक के रूप में लिखा है। उसे जब यह ज्ञात हुआ कि वाल्मीकि रामायण लिख रहे हैं, तब उसने यह सोचा कि उसका यह ग्रन्थ वाल्मीकि के ग्रन्थ के महत्त्व को नष्ट कर देगा, अतः उसने इस ग्रन्थ को समुद्र में डाल दिया। धारा के राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) की प्रेरणा से शिलाओं पर अपूर्ण रूप में लिखा हुआ यह नाटक संग्रह करके ग्रन्थरूप में प्रकट किया गया। इस परम्परा के अनुसार इसका समय १०५० ई० के लगभग प्रतीत होता है। आनन्दवर्धन (८५० ई०) ने इस नाटक का उल्लेख किया है, अतः अपूर्ण रूप में यह नाटक ८५० ई० से पूर्व अवश्य प्राप्त रहा होगा। इस नाटक के दो संस्करण आजकल प्राप्त हैं--(१) मधुसूदन ने ९ अङ्कों में तैयार किया है। (२) दामोदर मिश्र ने १४ अङ्कों में तैयार किया है। इसमें प्राकृत का एक भी गद्यांश नहीं है और न विदूषक ही है। इसमें गद्यभाग बहुत थोड़ा है। वह भी वर्णनात्मक है।

राजशेखर (९०० ई०) ने **भीमट** को पाँच नाटकों का लेखक माना है। अतः भीमट का समय ९०० ई० से पूर्व मानना चाहिए। उसके सभी नाटक

नष्ट हो चुके हैं। उसके नाटकों में से नाम-मात्र से ज्ञात तीन नाटकों **स्वप्न-दशानन, प्रतिज्ञाचाणक्य** और **मनोरमावत्सराज** में से स्वप्नदशानन नाटक सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

राजशेखर यायावरीय वंश में उत्पन्न हुआ था। वह प्रतिहार राजा **निर्भय** (८९५ ई०) का गुरु था। अतः उसका समय ९०० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने चहमान वंश की एक सुन्दर स्त्री अवन्तिसुन्दरी से विवाह किया था। बालरामायण की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उसने ६ नाटक लिखे हैं। उनमें से केवल चार प्राप्त होते हैं—**कर्पूरमंजरी, बालरामायण, विद्धसालभंजिका** और **बालभारत**।

कर्पूरमंजरी उसका सर्वप्रथम नाटक है। यह सट्टक-नाटक है। यह उसने अपनी पत्नी की प्रार्थना पर बनाया था। इसमें राजकुमार चण्डपाल और राजकुमारी कर्पूरमजरी के विवाह का वर्णन है। इसमें दोहद-वर्णन, रानी के द्वारा राजकुमार के बन्दी बनाये जाने आदि के वर्णन से ज्ञात होता है कि इस पर मालविकाग्निमित्र और रत्नावली का प्रभाव पड़ा है। इसके अङ्कों का नाम जवनिकान्तर है। इसका दूसरा नाटक **बालरामायण** है। यह उसने राजा निर्भय के लिए लिखा था। इसके दस अङ्कों में राम-कथा का वर्णन है। इसको महानाटक कहते हैं। इसकी प्रस्तावना नाटक के एक अङ्क के बराबर है और प्रत्येक अङ्क एक नाटिका के बराबर है। रावण सीता के स्वयंवर के लिए एक प्रार्थी था। स्वयंवर में निराश होकर जाते समय उसने प्रतिज्ञा की कि जो भी सीता से विवाह करेगा, उसका मैं वध करूँगा। सीता का विवाह लंका में उसके सामने अभिनय किया जाता है। वह सीता की लकड़ी की प्रतिमा से प्रेम करने लगता है। विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा की तरह वह सीता के वियोग को सहन करने में असमर्थ होकर वन में घूमने लगता है। इसके अन्तिम अङ्क में विमान से राम के लौटने का वर्णन है। इस अङ्क के वर्णन से ज्ञात होता है कि लेखक का भौगोलिक ज्ञान अपूर्ण है। इस नाटक में रावण के प्रेम को महत्त्व दिया गया है। उसका तीसरा नाटक

विद्धसालभंजिका है। इसमें चार अङ्क हैं। यह एक नाटिका है। इसमें वर्णन किया गया है कि राजकुमार विद्याधरमल्ल ने दो राजकुमारियों मृगांकावली और कुवलयमल से विवाह किया। यह नाटिका मालविकाग्निमित्र, रत्नावली और स्वप्नवासवदत्त के अनुकरण पर लिखी गई है। **बालभारत** का दूसरा नाम **प्रचण्डपाण्डव** है। इसमें दो अङ्क हैं। इसमें द्यूतक्रीड़ा तक पाण्डवों के जीवन का वर्णन है। इसका पाँचवाँ नाटक **हरविलास** है। यह अप्राप्य है। बाद के साहित्यशास्त्रियों ने इसका उल्लेख किया है। इसके षष्ठ नाटक का नाम अज्ञात है।

राजशेखर ने अपने आपको वाल्मीकि का अवतार माना है। वह कथा की रचना में विशेष निपुण नहीं है। वह सुन्दर और परिष्कृत शैली के प्रयोग में बहुत दक्ष है। उसने एक पूरा नाटक प्राकृत में लिखा है। उसने अपने नाटकों में उन शब्दों का प्रयोग किया है, जो उसके समय में बोलचाल में प्रचलित थे।

क्षेमीश्वर ने राजशेखर के आश्रयदाता कन्नौज के राजा महीपाल (९१४ ई०) के लिए **चण्डकौशिक** नाम का एक नाटक लिखा है। अतः उसका समय ९०० ई० के लगभग मानना चाहिए। इसमें पाँच अङ्क हैं। इसमें विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की कथा है। इसको **नैषधानन्द** नाटक का भी लेखक माना जाता है। इसके सात अङ्कों में नल का जीवन-चरित वर्णित है।

इनके अतिरिक्त चार और नाटक हैं, जो मूल रूप में अप्राप्त हैं, किन्तु उद्धरणों के द्वारा ज्ञात हैं। ये हैं—**तरंगदत्त, पुष्पदूषितक, पाण्डवानन्द** और **चलितराम**। **धनिक** (१००० ई०) ने अपने **दशरूपावलोक** में इनके उद्धरण दिये हैं। इन नाटकों का निश्चित समय अज्ञात है, तथापि इनका समय १००० ई० के पूर्व समझना चाहिए। इन चारों नाटकों के लेखकों का नाम भी अज्ञात है। इनमें से **तरंगदत्त** और **पुष्पदूषितक** प्रकरण नाटक हैं। तरंगदत्त में एक वेश्या नायिका है और पुष्पदूषितक में एक कुलीन स्त्री

नायिका है। **पुष्पदूषितक** में मूलदेव के मित्र समुद्रदत्त के प्रेम का वर्णन है। **पाण्डवानन्द** महाभारत पर आश्रित है और **चलितराम** रामायण पर आश्रित है।

क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से कुछ नाटक हैं। इनमें से अधिकांश नष्ट हो चुके हैं। क्षेमेन्द्र ने साहित्यशास्त्र पर जो ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें उसने इन नाटकों के उदाहरण दिये हैं, उनसे इनका नामादि ज्ञात होता है। उसके नाटकों में से **चित्रभारत** और **कनकजानकी** दो मुख्य ज्ञात होते हैं। ये दोनों नाटक क्रमशः महाभारत और रामायण पर आश्रित हैं। **विल्हण** (१०८० ई०) ने एक **कर्णसुन्दरी** नाम की नाटिका लिखी है। इसमें अनहिलवाद के कामदेव त्रैलोक्यमल्ल का बड़ी आयु में कर्णाट की राजकुमारी मियनल्लदेवी के साथ विवाह का वर्णन है। **शंखधर** कविराज ने १२वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में एक प्रहसन **लटकमेलक** लिखा है। लगभग इसी समय **पद्मचन्द** के पुत्र **यशश्चन्द्र** ने **मुद्रितकुमुदचन्द्र** नामक नाटक लिखा है। इसमें उसने एक शास्त्रार्थ को नाटकीय रूप दिया है, जिसमें श्वेताम्बर देवसूरि ने दिगम्बर कुमुदचन्द्र को परास्त कर दिया था। यह घटना ११२४ ई० में घटित हुई थी। इसी शताब्दी में **कांचनाचार्य** ने एक व्यायोग नाटक **धनंजय-विजय** लिखा है। उसका दूसरा नाम **कांचनपंडित** था। इसमें विराट के नगर से गायों को चुराने के इच्छुक कौरवों पर अर्जुन की विजय का वर्णन है। **रामचन्द्र जैन** हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) का काणा शिष्य था। उसने लगभग एक सौ ग्रन्थ लिखे हैं। उसके नाटकों में से ये प्रसिद्ध हैं--(१) **नलविलास**। इसमें सात अङ्क हैं। इसमें नल का जीवन वर्णित है। (२) **निर्भयभीम**। इसमें भीम के पराक्रमों का वर्णन है। यह व्यायोग नाटक है। (३) **सत्यहरिश्चन्द्र**। इसमें हरिश्चन्द्र की सत्य-प्रतिज्ञा का वर्णन है। इसमें ६ अङ्क हैं। (४) **कौमुदीमित्रानन्द**। इसमें दस अङ्क हैं। यह एक कहानी पर आश्रित है। रामचन्द्र परिष्कृत और ओज-युक्त वर्णन में आचार्य है।

विग्रहराजदेव विशालदेव १२वीं शताब्दी ई० में चहमान वंश का एक राजा था। उसने ११५३ ई० में **हरकेलिनाटक** लिखा है। इसमें किरात-वेषधारी शिव और अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। यह अधूरा अजमेर में एक शिला पर खुदा हुआ सुरक्षित है। लगभग इसी समय **सोमदेव** ने **ललित-विग्रहराजनाटक** नामक नाटक लिखा है। वह विग्रहराजदेव का आश्रित कवि था। इसमें उसने अपने आश्रयदाता का राजकुमारी देशालदेवी के साथ प्रेम का वर्णन किया है। यह नाटक भी अजमेर में अपूर्ण रूप में एक शिला पर सुरक्षित है।

वत्सराज कालंजर के राजा परमार्दिदेव का मन्त्री था। परमार्दिदेव ने ११६३ से १२०३ ई० तक राज्य किया है। **वत्सराज** एक कवि था। उसने ६ नाटक लिखे हैं। उनमें से प्रत्येक रूपक के अप्रचलित भेदों पर है। (१) **किरातार्जुनीय**। यह भारवि के किरातार्जुनीय पर निर्भर है। यह व्यायोग नाटक है। (२) **कर्पूरचरित**। यह भाण नाटक है। (३) **हास्यचूड़ामणि**। यह एक प्रहसन है। (४) **रुक्मिणीहरण**। यह चार अङ्कों में एक ईहामृग नाटक है। इसमें कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी के हरण का वर्णन है। (५) **त्रिपुरदाह**। यह चार अङ्कों में डिम नाटक है। इसमें शिव के द्वारा त्रिपुर के दाह का वर्णन है। (६) **समुद्रमंथन**। यह तीन अङ्कों में समवकार नाटक है। इसमें समुद्र के मन्थन का वर्णन है।

जयदेव महादेव और सुमित्रा का पुत्र था। वह १३वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में हुआ था। वह महानैयायिक, साहित्यशास्त्री और नाटककार था। उसको **'पक्षधरमिश्र'** की उपाधि न्यायशास्त्र की विद्वत्ता के कारण मिली थी और **प्रसन्नराघव** नाटक में सुन्दर गीतात्मक श्लोकों के कारण पीयूषवर्ष की उपाधि मिली थी। प्रसन्नराघव में सात अङ्क हैं। यह रामायण की कथा पर आश्रित है। इसमें रावण और एक दूसरा राक्षस बाण सीता से विवाह के लिए प्रतिद्वन्द्वी के रूप में हैं। यह पूर्णतया भवभूति के महावीरचरित के अनुकरण पर है। इसमें बहुत से सुन्दर गेय श्लोक हैं। इसके श्लोक अधिक-तर अनाटकीय हैं।

मदन नाम के एक कवि ने एक नाटिका **पारिजातमंजरी** लिखी है। इसका दूसरा नाम **विजयश्री** है। इसमें चार अङ्क हैं। उसकी उपाधि बालसरस्वती थी। वह अपने एक शिष्य परमार वंश के राजा अर्जुनवर्मा का आश्रित कवि था। इसमें वर्णन किया गया है कि अर्जुनवर्मा की छाती पर एक माला गिरी और वह एक स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गई और उसका विवाह अर्जुनवर्मा से हो गया। इस नाटक के दो अङ्क धारा में शिला पर खुदे हुए हैं। एक श्वेताम्बर जैन **जयसिंह सूरि** ने १२३० ई० में **हम्मीर-मदमर्दन** नामक नाटक लिखा है। इसमें पाँच अङ्क हैं। इसमें धोलक के राजा वीरधवल के द्वारा गुजरात पर आक्रमण करने वाले मुसलमानों को परास्त करने का वर्णन

प्रह्लादन परमारवंशी धराधवल का भाई था। वह १३०० ई० के लगभग अपने भाई के नीचे युवराज था। उसने **पार्थपराक्रम** नामक व्यायोग लिखा है। इसमें विराट राजा के यहाँ से गायों को चुराने वाले कौरवों को अर्जुन के द्वारा हराने का वर्णन है। **मोक्षादित्य** ने एक व्यायोग **भीम-विक्रम** लिखा है। उसमें भीम के पराक्रमों का वर्णन है। इसकी सबसे प्राचीन हस्त-लिखित प्रति का समय १३२८ ई० है। अतः इसका लेखक इससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। एक जैन मुनि तथा जयप्रभसूरि के शिष्य **रामभद्रमुनि** ने १३०० ई० के लगभग ६ अङ्कों में **प्रबुद्धरौहिणेय** नामक नाटक लिखा है इसमें डाकू रौहिणेय के पराक्रमों का वर्णन है। केरल के एक राजकुमार **रविवर्मा** ने १३०० ई० के लगभग पाँच अङ्कों में **प्रद्युम्नाभ्युदय** नाटक लिखा है। इसमें पाँच अङ्क हैं। इसमें वज्रपुर के राजा वज्रनाभ के नाश का वर्णन है और राजकुमार प्रद्युम्न का राजकुमारी प्रभावती के साथ विवाह का वर्णन है। **विद्यानाथ** (१३०० ई०) ने **प्रतापरुद्रियकल्याण** नाटक पाँच अङ्कों में लिखा है। इसमें वरंगल के राजा प्रतापरुद्र (१२९४–१३२५ ई०) का राजगद्दी पर बैठने का वर्णन है। वह नाटक लेखक के साहित्य-शास्त्र के एक ग्रन्थ प्रतापरुद्रिययशोभूषण में ही सम्मिलित है। नाटककार ने यह

नाटक इसलिए लिखा है कि उसने साहित्यशास्त्र पर जो ग्रन्थ लिखा है, उसमें नाट्यशास्त्र के विषय में जो नियम दिये हैं, उनका उदाहरण इसमें प्रस्तुत किया जाय। **नरसिंह** विद्यानाथ अथवा अगस्त्य का भतीजा था। उसने १३५० ई० के लगभग आठ अङ्कों में **कादम्बरीकल्याण** नाम से कादम्बरी की कथा को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया है। नरसिंह के भाई तथा मथुरा-विजय की लेखिका गंगादेवी के गुरु **विश्वनाथ** ने १३५० ई० के लगभग **सौगन्धिकाहरण** नामक व्यायोग रूपक लिखा है। इसमें वर्णन किया गया है कि द्रौपदी के कथन पर भीम सौगन्धिका का फूल लाता है। **ज्योतिरीश्वर** ने एक प्रहसन **धूर्तसमागम** लिखा है। उसकी उपाधि कविशेखर थी। वह १४वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में हुआ था। **भास्कर** ने **उन्मत्तराघव** नाम का एक एकांकी नाटक लिखा है। इसमें सीता के वियोग में उन्मत्त राम का वर्णन है। इसके लेखक का निर्णयात्मक परिचय अज्ञात है। यदि इस नाटक में उल्लिखित विद्यारण्य विजयनगर के निवासी प्रसिद्ध विद्वान् विद्यारण्य ही हैं, तो इसका समय १३५० ई० के लगभग माना जा सकता है। सीता स्त्रियों के लिए निषिद्ध एक उपवन में प्रवेश करती है और अदृष्ट हो जाती है। अगस्त्य ऋषि ने राम पर दया की और राम को सीता प्राप्त करा दी। यह पूरा नाटक विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क के अनुकरण पर लिखा गया है। विजयनगर के हरिहर द्वितीय के पुत्र **विरूपाक्ष** ने एक एकांकी नाटक **उन्मत्तराघव** लिखा है। इसका समय १४वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ज्ञात होता है। यह प्रेक्षणक नाटक है। सीता के हर्ता रावण पर लक्ष्मण ने आक्रमण किया और उसको मार दिया। राम उस समय उन्मत्तावस्था में थे। जब लक्ष्मण सीता को ले आये तब राम होश में आये। इस पर विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क का प्रभाव पड़ा है। **विरूपाक्ष** का ही दूसरा नाटक **नारायणविलास** है। एक नैपाली कवि **मणिक** ने १४वीं शताब्दी ई० के अन्तिम भाग में **भैरवानन्द** नामक नाटक लिखा है। इसमें भैरव का एक स्वर्गीय स्त्री मदनवती से प्रेमका वर्णन है। **कोकिलसंदेश** के लेखक **उदण्ड** (१४०० ई०) ने **मल्लिकामरुत** नामक एक दस अङ्कों में

प्रकरण नाटक लिखा है। यह मालतीमाधव के अन्धानुकरण पर लिखा गया है। **काशीपति** कविराज ने एक **भाण** नाटक **मुकुन्दानन्द** लिखा है। इसका समय १३वीं शताब्दी ई० से पूर्व का नहीं है। **वामनभट्ट बाण** (१४२० ई०) ने तीन नाटक लिखे हैं—**पार्वतीपरिणय, कनकलेखा-कल्याण** और **शृङ्गारभूषणभाण**। **पार्वतीपरिणय** में पाँच अङ्क हैं। इसमें पार्वती के शिव से विवाह का वर्णन है। यह कुमारसम्भव पर आश्रित है। **कनकलेखाकल्याण** एक नाटिका है। इसमें चार अंक हैं। **शृङ्गारभूषणभाण** एक भाण नाटक है। **गंगाधर** ने **गंगादासप्रतापविलास** नाटक लिखा है। इसमें १४५० ई० में हुए राजकुमार चम्पानीर और गुजरात के शाह के युद्ध का वर्णन है। **हरिहर** ने पाँच अङ्कों में **भर्तृहरिनिर्वेद** नाटक लिखा है। इसमें राजा भर्तृहरि के वैराग्य का वर्णन है। इसका समय १५वीं शताब्दी ई० पूर्वार्द्ध समझना चाहिए। श्रीकृष्ण चैतन्य का शिष्य **रूपगोस्वामी** (१५०० ई०) तीन नाटकों का लेखक माना जाता है—(१) **विदग्धमाधव**। इसमें सात अङ्क हैं। (२) **ललितमाधव**। इसमें दस अङ्क हैं। (३) **दानकेलिकौमुदी**। यह भाण नाटक है। ये तीनों नाटक कृष्ण के स्तुति-रूप में लिखे गये हैं। इसी समय **गोकुलनाथ** ने सात अङ्कों में **मुदितमदालसा** नाटक लिखा है। **शेषकृष्ण** (१६०० ई०) ने **कंसवध** नाटक लिखा है। इसमें सात अङ्क हैं। इसमें कृष्ण के द्वारा कंस के वध का वर्णन है और कंस के पिता उग्रसेन को गद्दी पर बैठाने का वर्णन है। **अप्पयदीक्षित** से पूर्वोत्पन्न **रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित** (१५७० ई०) ने **भैमीपरिणय** नाटक लिखा है। इसमें दमयन्ती के नल से विवाह का वर्णन है। **गोविन्द दीक्षित** के पुत्र **यज्ञनारायण दीक्षित** ने **रघुनाथविलास** नाटक लिखा है। इसमें तंजौर के राजा रघुनाथ नायक (१६१४-१६३२ ई०) का जीवन-चरित वर्णित है। इसका समय १६३० ई० के लगभग है। इसी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नैपाल के एक आश्रित राजा **जगज्ज्योतिर्मल्ल** ने **हरगौरीविवाह** नाटक लिखा है। इसे एक संगीत-प्रधान नाटक कह सकते हैं। **गुरुराम** (१६३० ई०) तीन नाटकों का

लेखक माना जाता है। (१) **मदनगोपालविलास**--यह भाण नाटक है। **सुभद्राधनंजय**--इसमें पाँच अंक हैं। (३) **रत्नेश्वरप्रसादन**--इसमें पाँच अङ्क हैं। लगभग इसी समय **राजचूड़ामणि दीक्षित** ने तीन नाटक लिखे हैं--**आनन्दराघव नाटक**, **कमलिनीकलहंस नाटक** और **शृंगारसर्वस्वभाण**। शिवलीलार्णव के लेखक **नीलकण्ठ दीक्षित** (१६५० ई०) ने नल की कथा पर आश्रित **नलचरित** लिखा है। इसमें ६ अङ्क हैं, परन्तु यह अपूर्ण ज्ञात होता है। विश्वगुणादर्श के लेखक **वेंकटाध्वरी** (१६५० ई०) ने **प्रद्युम्नानन्द** नाटक लिखा है। इसमें ६ अङ्क हैं। इसमें प्रद्युम्न का रति के साथ विवाह का वर्णन है। इसी समय **रुद्रदास** ने **चन्द्रलेखा** नामक एक संट्टक नाटक लिखा है। इसमें चन्द्रलेखा और मानवेदराज के विवाह का वर्णन है। **महादेव** (१६५० ई०) ने राम की कथा पर आश्रित दस अङ्कों में **अद्भुतदर्पण** नाटक लिखा है। इसमें लंका की घटनाएँ एक अद्भुत दर्पण के द्वारा दिखाई गई हैं। इसमें विदूषक है। **रामभद्र दीक्षित** (१७०० ई०) ने **जानकीपरिणय** नाटक लिखा है। इसमें कई अवास्तविक पात्र भी दिये गये हैं। लंका का एक राक्षस विद्युज्जिह्व, रावण, शरण और ताड़का क्रमशः विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण और सीता का वेष धारण करते हैं। वे इस वेष में राम, लक्ष्मण और सीता को धोखा देने के लिए विश्वामित्र के आश्रम पर आते हैं। शूर्पणखा एक संन्यासिनी के वेष में भरत के पास जाती है और प्रयत्न करती है कि राम की मृत्यु का असत्य समाचार सुनाकर भरत का भी शरीरान्त करा दे। राम विमान से अयोध्या पहुँचते हैं और राक्षसों का यह प्रपंच प्रकट हो जाता है। इस प्रकार उनका प्रयत्न निष्फल रहा। तब राम का राज्याभिषेक होता है। इसका ही एक भाण नाटक **शृंगारतिलक** है। इस नाटक का दूसरा नाम **अय्याभाण** है, क्योंकि लेखक का दूसरा नाम **अय्य** था। **नल्लाकवि** (१७०० ई०) **सुभद्रापरिणय** नाटक और **शृङ्गारसर्वस्व** नामक भाण का लेखक माना जाता है। लगभग इसी समय ये नाटक भी लिखे गये हैं--(१) **कवितार्किक** का **कौतुकरत्नाकर** नामक प्रहसन, (२) **सामराज दीक्षित** का एक प्रहसन

धूर्तनर्तक और पाँच अङ्कों में एक नाटक **श्रीदामचरित**। श्रीदामचरित में कुचेल का जीवन-चरित वर्णित है। कुचेल का वास्तविक नाम श्रीदामन् या सुदामन् था। १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में **विश्वेश्वर** ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं--एक नाटक **रुक्मिणीपरिणय**, एक नाटिका **नवनाटिका** और एक सट्टक **शृंगारमंजरी**। देवराज ने **बालमार्तण्ड-विजय** नाटक लिखा है। इसका समय १८वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इसमें पाँच अङ्कों में कवि के आश्रयदाता ट्रावनकोर के राजा मार्तण्डवर्मन् के पराक्रमों का वर्णन है। लगभग इसी समय **वरदाचार्य** ने **वसन्ततिलक भाण** नाटक लिखा है। इस नाटक का दूसरा नाम अम्माभाण भी है। इसी समय तन्जौर के राजा तुकोजी का मंत्री घनश्याम था। उसकी दो सुशिक्षित स्त्रियाँ थीं सुन्दरी और कमला। दोनों ने राजशेखर के विद्धशालभंजिका की टीका लिखी है। घनश्याम एक सौ से अधिक ग्रन्थों का लेखक माना जाता है। उनमें से कुछ संस्कृत, प्राकृत और विभाषाओं में हैं। कुछ प्राचीन कवियों के काव्यों पर टीकाएँ हैं। उसके ग्रन्थों में से मुख्य नाटक ये हैं--एक भाण ग्रन्थ **मदनसंजीवन**, दो सट्टक ग्रन्थ **नवग्रहचरित** और **आनन्दसुन्दरी** तथा एक प्रहसन **डमरुक**। ट्रावनकोर के युवराज रामवर्मन् (१७५७-१७८६ ई०) ने दो नाटक लिखे हैं--**रुक्मिणीपरिणय** और **शृङ्गारसुधाकर**। लगभग इसी समय हर्ष की रत्नावली के अनुकरण पर **विश्वनाथ** ने **मृगांकलेखनाटिका** लिखा है। **राम** (१८२० ई०) ने एक डिम नाटक **मन्मथोन्मथन** लिखा है। कोटिलिंगपुर (वर्तमान चरंगनौर) के एक राजकुमार ने १८५० ई० के लगभग कुछ काव्य और नाटक लिखे हैं। उनमें से मुख्य **रससदनभाण** है।

कुछ प्रमुख नाटक जिनका समय अज्ञात है, ये हैं—**मथुरादास** की एक नाटिका **वृषभानुजा, जगदीश** का एक प्रहसन **हास्यार्णव, गोपीनाथ चक्रवती** का एक प्रहसन **कौतुकसर्वस्व, नीलकण्ठ** का **कल्याणसौगन्धिक, नरसिंह** की दार्शनिक भावयुक्त नाटिका शिवनारायणभंज महोदय, **लोकनाथभट्ट** का **कृष्णाभ्युदय, कृष्णावधूत घटिकाशत** कवि का **सर्वविनोद**

नाटक, **कृष्णमिश्र** का **वीर-विजय**, **शंकर** का **शारदातिलक**, **रामकृष्ण** की **गोपालकेलिक्रीड़ा** और **माधव** का **सुभद्राहरण**।

रूपकात्मक नाटक

संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक काल से कवियों और विद्वानों में यह प्रवृत्ति रही कि वे निर्जीव वस्तुओं और मानवीय गुणों को मूर्त रूप देकर वर्णन करें। दर्शनों की उत्पत्ति और विकास ने तथा नैतिक शिक्षाओं की आवश्यकता ने इस प्रकार के मूर्तीकरण को बहुत सहायता और बल प्रदान किया है। इस प्रकार की मूर्तीकृत वस्तुओं आदि को नाटकों में भी स्थान प्राप्त होने लगा और वे व्यक्ति के स्थान पर आने लगे। देखिए—

न तच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ताः कलाः।
नासौ योगो न तद्ज्ञानं नाटके यन्न दृश्यते॥

जिन नाटकों में ऐसे मूर्तीकृत पात्रों को स्थान दिया गया है, उनमें से प्रमुख पात्र ये हैं—विवेक, मोह, काम, दम्भ, अहंकार, श्रद्धा।

इस पद्धति पर लिखा हुआ सबसे प्राचीन नाटक अश्वघोष का है जो कि अपूर्ण रूप में प्राप्त हुआ। इसका नाम ठीक ज्ञात नहीं है। **कृष्णमिश्र** ने ६ अंकों में एक रूपकात्मक नाटक **प्रबोधचन्द्रोदय**, **कीर्तिवर्मा** के आश्रित एक व्यक्ति गोपाल के लिए लिखा है। कीर्तिवर्मा का एक शिलालेख १०६८ ई० का प्राप्त हुआ है। इसमें विवेक और महामोह के युद्ध का वर्णन किया गया है। इसमें प्रबोध (ज्ञान) रूपी चन्द्र के उदय का वर्णन अन्त में किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना में लेखक का उद्देश्य अद्वैत मत का महत्त्व सिद्ध करना है और जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विष्णु की भक्ति पर बल देना है। इस नाटक में जैनों, बौद्धों और कापालिकों के जो संवाद हैं वे बहुत रोचक हैं। एक जैन लेखक **यशपाल** ने १२२९-१२३२ ई० के बीच में ५ अङ्कों में **मोहपराजय** नाटक लिखा है। इसमें अनहिलवाद के कुमारपाल के द्वारा जैनमत

स्वीकार करने का वर्णन है । **वेदान्तदेशिक** ने १४वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध एक रूपकात्मक नाटक **संकल्पसूर्योदय** लिखा है । इसमें संकल्परूपी सूर्य के उदय का वर्णन है । इसमें दस अङ्क हैं । इसमें वेदान्त के विशिष्टाद्वैत मत का समर्थन किया गया है । इसमें लेखक ने यह मत प्रस्तुत किया है कि शान्त को भी एक मुख्य रस मानना चाहिए[1] । इसमें छली और अहंकारी व्यक्तियों का जीवन तथा उनकी कमियों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है । तुम्बुरु और नारद आदि मुनि रंगमंच पर आते हैं । विष्णुभक्ति के द्वारा सुखद अन्त होता है । **गोकुलनाथ** ने १६वीं शताब्दी में **अमृतोदय** नाटक लिखा है । इसमें सांसारिक विपत्तियों और कष्टों का वर्णन है तथा उनके निवारण का उपाय बताया गया है । इसके पात्र आन्वीक्षिकी, मीमांसा और श्रुति आदि हैं । **रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित** (१५७० ई०) ने **भावनापुरुषोत्तम** नाटक लिखा है । लगभग इसी समय **कविकर्णपूर** ने चैतन्य सम्प्रदाय की धार्मिक परम्पराओं के आधार पर **चैतन्यचन्द्रोदय** नाटक लिखा है । **वेदकवि** (१६८४-१७२८ ई०) ने सात अङ्कों में एक नाटक **विद्यापरिणय** लिखा है । इसमें विद्या का जीवात्मा से विवाह का वर्णन किया गया है । वेदकवि ने ही सात अङ्कों में **जीवानन्दनम्** नाटक लिखा है । इसमें आयुर्वेद और वेदान्तदर्शन का महत्त्व वर्णन किया गया है । कुछ विद्वानों के अनुसार वेदकवि के ये दोनों नाटक तन्जौर के मराठा राजा शाहजी (१६८४-१७१० ई०) के मन्त्री आनन्दरायमखिन की रचना हैं । **भूदेव शुक्ल** का **धर्मविजयनाटक** १७३७ ई० में लिखा गया है । इसमें उस समय की धार्मिक विधियों का विस्तृत वर्णन है ।

छाया नाटक

छायानाटक आधुनिक देन है । प्राचीन नाट्यशास्त्रों में इसका उल्लेख नहीं है । छाया नाटक में गत्ते के बने हुए चित्र पर्दे पर टांग दिये जाते हैं और धागे की सहायता से उनको चलाया जाता है । उनके बीच का संवाद

१. संकल्पसूर्योदय १.१९ ।

पर्दे के पीछे खड़े हुए व्यक्ति बोलते हैं। यह वर्तमान सिनेमों का प्रारम्भिक रूप समझना चाहिए। प्राचीन नाटकों में इस प्रकार के नाटकों के अभाव से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के नाटक बाद की रचना हैं। इस प्रकार के नाटक भारतवर्ष में कब से प्रचलित हुए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। **अभिनव गुप्त** (१००० ई०) की **अभिनवभारती** में इस प्रकार के नाटकों का अस्पष्ट उल्लेख है।

मेघप्रभाचार्य के **धर्माभ्युदय** नाटक की प्रस्तावना में इस नाटक को छाया-नाटक कहा गया है। इस ग्रन्थ का समय अज्ञात है। **सुभट** का **दूतांगद** नाटक १२४३ ई०में रंगमंच पर दिखाया गया था। इसमें वर्णन किया गया है कि अंगद दूत के रूप में रावण के पास जाता है। सुभट १२०० ई० के लगभग जीवित रहा होगा। **व्यास श्रीरामदेव** ने तीन छाया नाटक लिखे हैं—**सुभद्रा-परिणय, रामाभ्युदय** और **पाण्डवाभ्युदय**। वह १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। अन्य छाया नाटक अगण्य से हैं।

संस्कृत नाटकों का ह्रास

संस्कृत नाटकों के ह्रास के कई कारण हैं। रामायण और महाभारत के प्रभाव ने प्रतिभाशाली नाटककारों को यह अवसर नहीं दिया कि वे अपनी इच्छा के अनुसार नाटकों की कथा रखते। इसका प्रभाव यह हुआ कि कई नाटक एक ही नाम के लिखे गये और कई नाटकों की कथा प्रायः एक ही रही। ज्यों-ज्यों नाटकों की संख्या बढ़ती गयी, त्यों-त्यों नाट्यशास्त्रीय नियम और कठोर होते गये। नाटककारों ने यह कठिनाई अनुभव की कि सभी नाटकीय नियमों का पालन करना बहुत कठिन है, अतः वे एक प्रकार के ही नाटक बनाते रहे। कवियों और नाटककारों ने अपनी भाषा में अप्रचलित शब्दों और भावों को स्थान देना प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप उनकी भाषा कृत्रिम हो गयी और जनसामान्य की समझ में नहीं आती थी। बाद के नाटकों में जो कृत्रिमता दृष्टिगोचर होती है, उसका उत्तरदायित्व उस सुशिक्षित जनता पर है जो कि इस प्रकार की कृत्रिम शैली और भावाभि-

व्यक्ति को रुचिकर मानती थी। इन सब कारणों ने नवाभ्यासी के लिए नाटक का लिखना प्रायः असम्भव कर दिया। भारतवर्ष में जब से मुसलमानों ने अपना राज्य स्थापित किया, तब से भारतीय नाटक साहित्यिक और लौकिक जगत् में अपना महत्त्व खोते रहे हैं। भारतीय नाटक सभी दृष्टिकोण से हिन्दू धर्म से संबद्ध रहे हैं, इसलिए मुसलमान इनको प्रोत्साहित नहीं होने देना चाहते थे। वे ऐसी किसी भी चीज को उन्नति की ओर अग्रसर होता हुआ नहीं देख सकते थे, जो हिन्दू धर्म की उन्नति में सहायक हो। इन विघ्नों के होते हुए भी संस्कृत नाटक लिखे जाते रहे। जब से अङ्गरेजी राज्य प्रारम्भ हुआ, तब से कवियों और विद्वानों को राजाओं का आश्रय मिलना बन्द हो गया, क्योंकि तब से राजाओं की स्थिति दिन-प्रतिदिन अवनत होती गयी। दूसरी ओर सुशिक्षित समाज की यह प्रवृत्ति हो गयी कि वह अङ्गरेजी राज्य की प्रथा के अनुसार अपने आपको शिक्षित और दीक्षित करना चाहता था, अतः उसने भारतीय परम्परा और संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य परम्परा को अपनाया। अतएव संस्कृत नाटकों का प्रतिदिन ह्रास होता गया।

अध्याय २४

इतिहास

संस्कृत में साहित्य के सभी विषयों का विशद विवेचन हुआ है, परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि विषय के रूप में इतिहास का विवेचन नहीं हुआ है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसका कारण यह बताया है कि भारतीय विचारधारा इतिहास लिखने के विरुद्ध रही है। उनका कथन है कि भारतीय भाग्यवाद, कर्म-सिद्धान्त, दैनिक जीवन में दैवी हस्तक्षेप और संसार की अनित्यता में विश्वास रखते हैं। बद्धमूल ये विश्वास उनकी समकालीन घटनाओं की ओर ध्यान देने से रोकते हैं। मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करे या दूसरों का पथ-प्रदर्शन करे। वह कर्मफल आदि के हाथ में एक प्रकार से साधन है। अतएव उसकी उन्नति या अवनति उसके पुण्य या पाप का फल है, इसीलिए उसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। साथ ही यह निश्चय है कि संसार की प्रत्येक वस्तु विनश्वर है, अतः सांसारिक घटनाओं का उल्लेख करने से कोई वास्तविक लाभ नही होगा। इसके अतिरिक्त भारतीयों को प्राचीन काल के वीर महापुरुष राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम, कर्ण आदि बहुत समय का व्यवधान होने पर भी महापुरुष ज्ञात होते हैं। उनकी तुलना में समकालीन वीर नहीं के बराबर प्रतीत होते हैं। अतएव उन्होंने समकालीन वीरों तथा उनके कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया और उनको अपने ग्रन्थों में स्थान नहीं दिया। इस प्रकार के कितने विद्वान् प्रत्येक समय में रहे हैं, जिन्होंने प्राचीन वीरों का गुणानुवाद किया है और उनकी प्रशंसा में काव्य बनाये हैं तथा प्राचीन कवियों की कृतियों की टीका आदि की है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार कश्मीरी कवि कल्हण भी पूर्णतया इतिहास का विद्वान् नहीं था। उसका कार्य

एक इतिहास सम्बन्धी प्रयत्न समझना चाहिए। उनके मतानुसार वह भी देवी घटनाओं पर पूर्ण विश्वास रखता था, अतएव ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्ण तत्त्व ठीक नहीं समझ सकता था। इसीलिये उसने ऐतिहासिक महत्त्व की घटनाओं का जो अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है, उसे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन समझना चाहिए।

सत्य कहा जाय तो भारतीयों ने कोई इतिहास का ग्रन्थ नहीं लिखा है। पाश्चात्य विद्वान् ऐतिहासिक बुद्धि से जो अर्थ समझते हैं, उसका भारत में अभाव था। भारतीय विचारधारा इतिहास लिखने के विरुद्ध है, यह सत्य है। तथापि इस प्रकार के प्रयत्न अवश्य किए जाते रहे हैं कि इतिहास लिखा जाय और समकालीन घटनाओं का उल्लेख किया जाय, परन्तु ये सब कार्य भारतीय विचारधारा के अनुसार ही किये गये हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें ऐतिहासिक तथ्यों को विशेष मुख्यता दी गई है, भाषा को नहीं, परन्तु भारतीयों ने जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें भाषा ही को प्रधानता दी गई है, ऐतिहासिक तथ्यों को उतनी प्रधानता नहीं। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, वह गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, चम्पू या नाटक के रूप में लिखा है। काव्य नाटक आदि के सभी नियमों का इनमें पालन किया गया है। इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थों के लेखक कवि थे। वे किसी राजा के आश्रित थे। अतः वे अपने काव्यों में उतना ही ऐतिहासिक तथ्य रख सकते थे, जितना उनके आश्रयदाताओं को रुचिकर होता था। वह अंश भी राजाओं की रुचि के अनुकूल रखा जाता था। अतः यह स्वाभाविक है कि ऐसे ग्रन्थों से निष्पक्ष ऐतिहासिक तथ्य की प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती है। तथापि कुछ लेखकों ने ऐतिहासिक तथ्यों का सत्यता के साथ उल्लेख किया है। इन लेखकों को इस आधार पर तुच्छ नहीं कहा जा सकता है कि वे कुछ बातों पर विश्वास करते थे। उनके ये विश्वास शताब्दियों के अनुभव पर आश्रित हैं। अतः उनको ऐतिहासिक-चेतना से हीन नहीं कह सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीयों ने इतिहास लिखा है, परन्तु वैसा नहीं जैसा पाश्चात्य विद्वान् चाहते हैं।

इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उनमें एक प्रकार के वर्ष नहीं दिए हुए हैं। भारतवर्ष में कई प्रकार के वर्ष चालू थे, जो कि किसी वंश के द्वारा वंश-नाम से चलाये गये थे। प्रायः तिथियाँ उस अर्थ के बोधक शब्दों के द्वारा बतायी गयी हैं।

इतिहास का व्यापक अर्थ लेने पर संस्कृत साहित्य में इतिहास कई रूपों में प्राप्त होता है। रामायण, महाभारत और पुराणों में ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री विद्यमान है। अश्वघोष, हेमचन्द्र आदि ने बुद्ध और जैन सन्तों के विषय में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत की हैं। ये ग्रन्थ, पुराण तथा रुद्रदामन् आदि के शिलालेख ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

सब से प्राचीन ग्रन्थ, जिसको ऐतिहासिक ग्रन्थ कह सकते हैं, **कौमुदी-महोत्सव** है। यह गुप्त काल के राजनीतिक कुचक्रों पर प्रकाश डालता है। कांची के **महेन्द्रविक्रमन्** के **मत्तविलासप्रहसन** से ज्ञात होता है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों मे किस प्रकार की नाना त्रुटियाँ आ गयी थीं और उनका पतन प्रारम्भ हो गया था। **बाण** के **हर्षचरित** में बाण की आत्मकथा विद्यमान है और हर्ष का जीवन-चरित वर्णित है। यह ऐतिहासिक ग्रन्थ की अपेक्षा ऐतिहासिक काव्य अधिक है। इसमें उसने जो ऐतिहासिक तथ्य वर्णन किये हैं, उनको पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया है। राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा का वध क्यों हुआ? गौड़ राजा ने वस्तुतः क्या छल किया था? हर्ष के आश्रित और कौन से कवि थे? बाण ने इन विषयों पर कोई सूचना नहीं दी है। उसके प्रारम्भिक श्लोकों से अवश्य यह ज्ञात होता है कि उससे पूर्व कौन-कौन विशेष कवि हुए थे। उसने अन्य ऐतिहासिक तथ्यों को भी काव्यात्मक अलंकृत भाषा में प्रस्तुत किया है। तथापि हर्षचरित इस दृष्टि से बहुत महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है कि इसके द्वारा ७वीं शताब्दी के भारतीयों के रीति-रिवाज का अच्छा ज्ञान होता है। "बाण ने इतिहास को यह सामग्री प्रदान की है ..सेना का विशद चित्रण, राजद्वार का विस्तृत परिचय, विविध सम्प्रदायों के अनुयायियों और उनका बौद्धों के साथ व्यवहार का वर्णन, ब्राह्मणों के विविध कार्य

और अपने मित्रों का परिचय।" वाक्पति का गौडरहो भी एतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें यशोवर्मन् की पराजय का वर्ष नहीं दिया है। **कनकसेनवादिराज-का यशोधरचरित** ऐतिहासिक और धार्मिक दोनों दृष्टि से महत्त्व का है। **कल्हण** के ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि **शंकुक** ने एक काव्य **भुवनाभ्युदय** लिखा है और इसमें उसने ८५० ई० में हुए **मम्म** और **उत्पल** के युद्ध का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ नष्ट हो गया है। **पद्मगुप्त** के **नवसाहसांकचरित** में कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के तथ्यों का उल्लेख है। **बिल्हण** का **विक्रमांकदेवचरित** ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ है। उसका आश्रयदाता विक्रमांक या विक्रमादित्य शिव के आदेशानुसार राजा हुआ। उसका राज्य पर अधिकार सिद्ध करने के लिए शिव तीन बार प्रकट हुए उसको अपने बड़े भाई सोमेश्वर और छोटे भाई जयसिंह से निरन्तर युद्ध करना पड़ा। उसने चोलों के विरुद्ध विजय-यात्रा की थी। इसका अन्तिम सर्ग आत्मकथा के रूप में महत्त्वपूर्ण है। इसमें उसने घटनाओं के साथ वर्ष नहीं दिए हैं। **बिल्हण** की लिखी एक नाटिका **कर्णसुन्दरी** है। यद्यपि वह ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं लिखी गई है तथापि उसमें ऐतिहासिक सामग्री है। उसमें अनहिलवाद के राजा कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल का बड़ी आयु में कर्णाटक की राजकुमारी मियानल्लदेवी से विवाह का उल्लेख है। **हेमचन्द्र** का **वय्याश्रयकाव्य** भी इसी प्रकार का है **यशश्चन्द्र** का **मुद्रितकुमुदचन्द्र** धार्मिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक है। **श्रीकण्ठ-चरित** के अन्तिम सर्ग में कश्मीर के राजा जयसिंह के मन्त्री अलंकार के दरबार में रहने वाले कवियों का वर्णन है। **जल्हण** के **सोमपालविलास** में उसके आश्रयदाता राजपुरी के राजा सोमपाल का इतिहास वर्णित है।

कल्हण को भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक विद्वान् कह सकते हैं। उसने लिखा है कि राजतरंगिणी को लिखने से पूर्व उसने ११ ऐतिहासिक ग्रन्थों और नीलमतपुराण को देखकर ग्रन्थ लिखा है। उसने राजा गोनन्द से लेकर राजा जयसिंह के गद्दी पर बैठने तक का कश्मीर के राजाओं का वर्णन किया है। उसने अपना ग्रन्थ अपूर्ण ही छोड़ दिया है। कश्मीरी

होते हुए भी उसने कश्मीर के राजनीतिक कुचक्रों का विस्तृत वर्णन किया है। उसने निरर्थक बातों का त्याग किया है। उसने कतिपय राजाओं को दोषी बताया है कि उन्होंने अपन शत्रुओं के षड्यन्त्रों के विरुद्ध सावधानी से काम नहीं लिया। उसके समय में सैनिक और भृत्य राजभक्त नहीं रहे थे। वे अपने राजाओं को धोखा देते थे और शत्रुपक्ष से मिल जाते थे। कल्हण ने यह अन्तर दिखाया है कि किस प्रकार राजपूत और विदेशी अपने राजाओं को धोखा नहीं देते हैं, किन्तु कश्मीरी धोखा देते हैं। राज्य के कर्मचारी भी लोभी, जनपीडक और अराजभक्त थे। उसने दिखाया है कि राज्य की स्थिति यह थी कि मन्त्रियों में विरोध था, सैनिक लोभी थे, पुरोहित षड्यन्त्र करते थे, सेनाओं के अध्यक्ष राजा के नियन्त्रण में नहीं थे, और प्रजा भी विलासप्रिय हो गई थी। उस समय कश्मीर में छल-प्रपंच, षड्यन्त्र, वध करना, आत्महत्या पारिवारिक विवाद ये मुख्य उल्लेखनीय जीवन की घटनाएँ थीं। कल्हण ने कश्मीर की घटनाओं का एक निष्पक्ष अध्ययन किया है। उसने जो कुछ लिखा है, वह ऐतिहासिक सामग्री से भी संतुष्ट होता है।

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृतः
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ।।

—राजतरङ्गिणी १–७

उसने इस बात पर बल दिया है कि यह संसार अस्थिर है। ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में राजतरंगिणी का स्थान बहुत ऊँचा है। तथापि कश्मीर का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकार में ही है। उसने अपने ग्रन्थ को जो अपूर्ण छोड़ा था, उसको जोंनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट और शुक ने चालू रक्खा। **सन्ध्याकरनन्दी** के **रामपालचरित** में बंगाल के रामपाल (११०४-११५० ई०) का इतिहास वर्णित है। **पृथ्वीराजविजय, जयन्तलिवजय,** सुकृतसंकीर्तन, हम्मीरमदमर्दन, वसन्तविलास सुरथोत्सव, **कीर्तिकौमुदी, मोहपराजय, चन्द्रप्रभचरित, जगद्चरित,** इत्यादि में ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री प्राप्त होती है। **गंगादेवी** के **मथुराविजय, राजनाथ द्वितीय** के **सालुवाभ्युदय,** और **राजनाथ तृतीय** के **अच्युतरा-**

याम्युदय में प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। इन तीनों ग्रन्थों में विजय नगर के राजवंश के कार्यों का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। **वासुदेवरथ** ने **गंगावंशानुचरित** में और **गंगाधर** ने **गंगादासप्रतापविलास** में गंगा वंश का वर्णन किया है। **तिरुमलाम्बा** के **वरदाम्बिकापरिणयचम्पू** और **वामनभट्टबाण** के **वेमभूपालचरित** का सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों से है। **यज्ञनारायण** के **साहित्य-रत्नाकर** और **रघुनाथविलास** में तथा **रामभद्राम्बा** के **रघुनाथाभ्युदय** में तन्जोर के राजा रघुनाथ नायक (१६१४-१६३२ ई०) के पराक्रमों का वर्णन है। इसी प्रकार के महत्त्व के ये ग्रन्थ भी हैं—**रुद्रकवि** का **राष्ट्रौढ-वंशमहाकाव्य**, **देवविमलमणि** का **हीर-सौभाग्य**, **देवराज** का **बालमार्तण्डविजय** और **बाणेश्वर** का **चित्रचम्पू**।

मेरुतुंग ने १३०६ ई० में **प्रबंधचिन्तामणि** लिखा है। इसमें जैन सन्तों, जैन कवियों और जैन धर्म के आश्रयदाताओं की आत्मकथाएँ हैं। **राजशेखर** का १३४९ ई० में लिखा हुआ **प्रबन्धकोश** भी इसी प्रकार का ग्रन्थ है। **विश्वगुणादर्श** में १७वीं शताब्दी के मध्य के दक्षिण भारत की जनता के जीवन का वर्णन है। **आनन्दरङ्गचम्पू** में ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में श्रीगणेश होने का उल्लेख है। मद्रास नगर का चित्र **सर्वदेवविलास** में खींचा गया है। इनके अतिरिक्त, **प्रबोधचन्द्रोदय** जैसे रूपकात्मक नाटक एक विशेष काल के लोगों के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं, जिनकी रचना उस समय हुई।

अध्याय २५

काव्य और नाट्य शास्त्र के सिद्धान्त

काव्य और नाटकों की उत्पत्ति और विकास के साथ कवियों और आलोचकों को आवश्यकता प्रतीत हुई कि नवाभ्यासियों के पथप्रदर्शन के लिए तथा परकाल में रचनाओं को दुर्बोध होने से बचाने के लिए कतिपय नियमों का निर्माण किया जाय। काव्यशास्त्र के नियमों से पूर्व नाट्यशास्त्र के नियम बने। रसोत्कर्ष में सहायक समझकर अलंकारों को भी कुछ महत्व दिया गया। अलंकारों को महत्त्व देने के कारण इस विभाग को अलकारशास्त्र नाम दिया गया। इसको साहित्य का एक विभाग भी माना जाता है, क्योंकि इसमें शब्दार्थ-सम्बन्धों की अविच्छिन्नता पर बल दिया गया है। साधारणतया साहित्यशास्त्र में निम्नलिखित विषयों पर विचार होता है--काव्य के लक्षण और उसके सिद्धान्त, शब्दशक्ति का विवेचन, नायक-नायिका आदि पात्रों के गुण और भेद, रस-निरूपण, गुण और दोषों का विवेचन, नाट्यशास्त्र के तत्त्व और अलंकार-निरूपण।

साहित्यशास्त्र के विकास के विभिन्न कालों में यह प्रयत्न होता रहा है कि यह निश्चय किया जाय कि काव्य के मूल तत्त्व क्या हैं और उनको कैसे प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न दृष्टिकोण से काव्य और नाटकों की विशेषताओं को देखा गया और इसका परिणाम भी विभिन्न प्रकार का प्राप्त हुआ। काव्य और नाटकों पर इस प्रकार के अनुसन्धान का जो परिणाम निकला, उसके आधार पर इनके विषय में विभिन्न वाद प्रारम्भ हुए। इस प्रकार के आठ वाद मुख्य रूप से प्रचलित हैं--प्रत्येक उस तत्त्व को ही मुख्यता देते हैं। उनके नाम है'— रीति, रस, अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, गुण, अनुमान और औचित्य।

रीतिवाद के आचार्यों का मत है कि काव्य की आत्मा रीति (शैली) है। प्रारम्भ में दो शलियाँ प्रचलित थीं—वैदर्भी और गौड़ी। वैदर्भी रीति में परि-

ष्कार और लालित्य को महत्त्व दिया जाता है। यह रीति सर्वोत्तम है। यह रीति विदर्भ से प्रारम्भ हुई, अतः इसको वैदर्भी कहते हैं। गौड़ी रीति का जन्म बंगाल में हुआ है। इसमें ओजगुण वाले शब्द, अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन और रचना में आडम्बर अधिक होता है। वैदर्भी में भाव पर अधिक बल दिया जाता है और गौड़ी में शब्दों पर। ६०० ई० से पूर्व ये दोनों शैलियाँ ही प्रचलित थीं। **दण्डी** (७०० ई०) ने उल्लेख किया है कि निम्नलिखित दस गुण वैदर्भी रीति की आत्मा हैं—श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, उदारत्व, ओज, कान्ति, समाधि और अर्थव्यक्ति। **दण्डी** (७०० ई०) और वामन (८०० ई०) रीतिवाद के प्रमुख आचार्य हैं। वामन का मत है कि रीति काव्य की आत्मा है। ८०० ई० के बाद चार और रीतियाँ प्रचलित हुईं और उनको वैदर्भी तथा गौड़ी के मध्य में स्थान दिया गया। ये चारों रीतियाँ हैं—पांचाली, लाटी, आवन्ती और मागधी। ये रीतियाँ उन प्रदेशों में आरम्भ हुई अतः उनको ये नाम दिए गए। ८०० ई० के बाद इस बात का प्रभाव नष्ट हो गया, क्योंकि इन्होंने काव्य के अत्यावश्यक अंग रस की उपेक्षा कर दी थी।

रस सम्प्रदाय के मानने वाले आचार्यों का मत है कि काव्य की आत्मा रस है। 'रस नाटक के दर्शक, काव्य के श्रोता या पाठक के मन की एक अवस्था-विशेष है, जो कि पात्रों के भावों से या स्वतन्त्र भावों से उत्पन्न होता है। भाव दो प्रकार के विभावों से उद्दीप्त होता है—(१) रस-विशेष की उत्पत्ति के आधार से। जैसे शृंगार रस में प्रिय व्यक्ति आलम्बन है या (२) जिसके कारण वह भाव उद्दीप्त होता है। जैसे, शृंगार में वसन्त आदि।' इन दोनों को क्रमशः आलम्बनविभाव और उद्दीपनविभाव कहते हैं। इन भावों का मनुष्य पर प्रभाव मूर्च्छा, थकान, कम्पन आदि के रूप में प्रकट होता है। इन सब कारणों से एक स्थायी भाव उत्पन्न होता है। वही अन्त में रस का स्थान ले लेता है। रस आठ हैं—उनके नाम ये हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। बाद में शान्त को भी नवें रस के

रूप में माना गया है। भरत के नाट्यशास्त्र के एक श्लोक में इन सबका नाम आता है। वह श्लोक यह है —

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
वीभत्साद्भुताशान्तश्च रसाः पूर्वैरुदाहृताः ।।

नाट्यशास्त्र का पाठ अस्पष्ट होने का कारण यह स्पष्ट नहीं है कि भरत शान्त को पृथक् रस मानते थे कि नहीं। भरत शान्त को मुख्य भाव अवश्य मानते है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से वैराग्य का जो भाव प्रचलित था, वही महाभारत के प्रभाव के कारण रस के रूप में माना गया। कुछ आलोचकों का यह कथन कि यह कुछ परमित व्यक्तियों को ही प्रभावित करता है, अतः प्रधान रस नहीं मानना चाहिए यह कथन उचित नहीं है, क्योकि रस की प्रधानता और अप्रधानता के निर्णय व्यक्तियों की संख्या पर नहीं है। अतएव शान्त को पृथक् रस मानने का निषेध नहीं किया जा सकता है। हर्ष के नागानन्द में शान्त रस ही प्रधान रस है। हर्ष को नाट्यशास्त्र का टीकाकार भी माना जाता है। यह नाटक सम्भवतः इसलिए लिखा गया है कि इस बात का परीक्षण किया जाय कि शान्त पृथक् रस है या नहीं। उद्भट ही सबसे पहला लेखक है, जिसने शान्त को पृथक् रस स्वीकार किया है।

रस की अनुभूति के विषय में कतिपय लेखकों ने अपने विभिन्न मत दिए हैं। **लोल्लट** का मत है कि रस अभिनेता में रहता है। दर्शक जब यह देखता है कि वास्तविक अभिनेय पात्र का अभिनय करने वाला अभिनेता उसी प्रकार का रसानुभव प्रदर्शित करता है तो वह भी प्रसन्न हो जाता है। **शंकुक** का मत है कि अभिनेता के सुन्दर अभिनय को देखकर दर्शक अनुमान के द्वारा यह समझने लगता है कि यह अभिनेता ही वस्तुतः अभिनेय व्यक्ति है। दर्शक अनुमान के द्वारा रस का अनुभव करता है। **भट्टनारायण** के अनुसार रस को न देखा जा सकता है और न रस उत्पन्न किया जा सकता है, किन्तु शब्दार्थ के द्वारा उसका अनुभव किया जा

सकता है। दर्शक में यह योग्यता होती है कि वह विशेष उदाहरण समझता है और जनसामान्य उसका आनन्द लेता है। **अभिनवगुप्त** का मत है कि दर्शक व्यंजना के द्वारा आनन्द का अनुभव करता है। रस-सिद्धान्त के समर्थक उपर्युक्त लेखक हैं। इनके अतिरिक्त रस सिद्धान्त के समर्थक **रुद्रभट्ट, भोज, शारदातनय** आदि हैं।

अलंकारवाद के समर्थक काव्य में सौन्दर्य के आधार तत्त्वों का विशेष रूप से विवेचन करते हैं, वे काव्य से रस के महत्त्व को स्वीकार करते हैं परन्तु उसे अलंकार से गौण मानते हैं। ये अलंकार शब्द और अर्थ पर आश्रित हैं, इनको शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार कहते हैं। **भामह** और **दण्डी** ही सबसे प्राचीन लेखक हैं जिन्होंने अलङ्कारों का विवेचन किया है। अलङ्कारों को सख्या क्रमशः बढ़ती चली गई और बाद के लेखकों ने उनकी संख्या दो सौ से अधिक बताई है।

वक्रोक्तिवाद अलङ्कारवाद की ही एक शाखा है। वक्रोक्ति का अर्थ है किसी बात को घुमा-फिराकर कहना। इस मत के मानने वालों का कथन है कि अलङ्कार वक्रोक्ति के द्वारा ही पूर्णता को प्राप्त होते हैं। वक्रोक्ति को पृथक् अलङ्कार माना जाने लगा। इस सिद्धान्त के समर्थकों में मुख्य **भामह** और **कुन्तक** हैं।

ध्वनिवाद के समर्थक ध्वनित अर्थ अर्थात् व्यंग्य अर्थ को मुख्यता प्रदान करते हैं। यह सिद्धान्त शब्द और अर्थ के विवेचन पर आश्रित है। शब्दों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं--वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। जिन शक्तियों के द्वारा ये तीनों अर्थ बताए जाते हैं, उनको क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहते हैं। अभिधा शक्ति के द्वारा शब्द का मुख्य अर्थ बताया जाता है। लक्षणा शक्ति द्वारा गौण अर्थ बताया जाता है। जहाँ पर शब्द का मुख्य अर्थ लेने से काम नहीं चलता है वहाँ पर उस अर्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ लिया जाता है। जैसे—गङ्गायां घोषः, गङ्गा नदी में कुटिया, यह मुख्यार्थ सङ्गत नहीं होता है, क्योंकि नदी में

कुटी नहीं हो सकती है। अतः यहाँ नदी से सम्बद्ध नदी का तट गङ्गा शब्द का अर्थ पर लिया जाता है, अर्थात् 'गङ्गा नदी के तट पर कुटिया।' जहाँ पर अभिधा और लक्षणा शक्ति से काम नहीं चलता है, वहाँ पर व्यंजना शक्ति से काम चलाया जाता है। व्यंजना शक्ति वहाँ पर विशेष रूप से काम में लाई जाती है जहाँ शब्द के मुख्य अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ भी बताया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि मुख्य अर्थ के साथ ही और अर्थ भी व्यंजना शक्ति के द्वारा बताया जाता है। यह अर्थ शब्द स्वयं मुख्यार्थ के द्वारा नहीं बता सकता है। इस अर्थ में यह ध्वनि-सिद्धान्त वैयाकरणों के स्फोट-सिद्धान्त से बहुत अधिक सम्बन्धित है और इस पर उसका बहुत अधिक प्रभाव है। ध्वनि या व्यंजना के सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि ध्वनि ही काव्य की आत्मा है। उनका मत है कि ध्वनि के बिना कोई भी काव्य निर्जीव समझना चाहिए। व्यंजना के द्वारा जो कुछ बताया जाता है, वह रस या अलङ्कार हो सकता है। यह अर्थ शब्द के अर्थ के द्वारा नहीं बताया जा सकता है। इसका अनुभव व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही होता है। अतएव इसका अनुभव प्रत्येक को नहीं हो सकता है। यह उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित है, जिनका पूर्व जन्मों में अनुभव समान होता है। अतएव वे बातें जब इस जन्म में दुहराई जाती हैं तो वे उसका स्वाद लेते हैं। इस प्रकार के अनुभव जब रङ्गमंच पर अभिनय के द्वारा होते हैं, तब वे व्यक्ति इस अनुभव को अभिनेताओं का या अपना नहीं समझते, अपितु इसको सार्वभौम अनुभव मानते हैं। ऐसे सहृदय व्यक्ति अभिनयों को देखने या काव्यों को पढ़ने से जो अनुभव प्राप्त करते हैं, वह ब्रह्मानन्द के सुख के तुल्य होता है। अतएव नाटक काव्य आदि के देखने या पढ़ने से जो अनुभव होता है, वह दुःख होने पर भी अनुपम आनन्द प्रदान करता है। **आनन्दवर्धन** और **अभिनवगुप्त** इस ध्वनि मत के मुख्य समर्थक हैं। अभिनवगुप्त ने इस मत को रसों तक ही सीमित करके सरल बनाया है। अलङ्कारों और अर्थ

आदि के द्वारा व्यक्त होने वाली ध्वनि रस के आश्रित ही है। गुण और अलङ्कार रस से ही सम्बद्ध हैं इस मत के समर्थकों ने समस्त साहित्यिक रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया है। इसका आधार उन्होंने ध्वनित अर्थ रक्खा है। वे तीन विभाग ये हैं--(१) **ध्वनिकाव्य** जिसमें व्यंग्य को मुख्यता प्रदान की गई है। (२) **गुणीभूतव्यंग्यकाव्य,** जिसमें व्यंग्य अर्थ को गौण स्थान प्रदान किया गया है। (३) **चित्रकाव्य** जिसमें व्यंग्य अर्थ का सर्वथा अभाव है और केवल शाब्दिक चातुर्य दिखाया जाता है। जब रस को व्यंग अर्थ के रूप में रखना हो तो गद्य में भी लम्बे समासों का रखना निषिद्ध है।

अन्य मतों में से **गुणवाद** का विशेष सम्बन्ध **रीतिवाद** से है। गुणवाद के विशेष समर्थक दण्डी हैं। **अनुमानवाद** का विशेष सम्बन्ध **रसवाद** से है। शंकुक और महिमभट्ट इस मत के विशेष आचार्य हैं। **औचित्यवाद** के मुख्य समर्थक क्षेमेन्द्र हैं। इसमें काव्य के उत्कर्ष के लिए औचित्य को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। क्षेमेन्द्र ने यह मत पूर्व आचार्यों के मतों के आधार पर रक्खा है।

इस विषय पर सबसे प्राचीन जो ग्रन्थ प्राप्त होता है, वह है **भरत** का **नाट्यशास्त्र**। वह ईसवीय सन् से बहुत पूर्व हुआ था। **कालिदास** ने **विक्रमोर्वशीय** में उसका उल्लेख किया है, अतः उसका समय ४०० ई० पू० या उससे भी पूर्व मानना चाहिए। नाट्यशास्त्र जो आजकल प्राप्त होता है, वह ३७ अध्यायों में है। इसमें विभिन्न समयों में अनेक प्रक्षेप हुए हैं। नाट्यशास्त्र का समय ४०० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि भरत का लिखा हुआ मूल ग्रन्थ कितना है। यह माना जाता है कि भरत से पूर्व काव्यशास्त्र के मुख्य आचार्य **नन्दिकेश्वर** और **नारद** आदि हो चुके हैं। नाट्यशास्त्र में रङ्गमंच का प्रबन्ध आदि विषयों को लेते हुए नाट्यशास्त्रीय सभी विषयों का वर्णन है। साथ ही नृत्य और संगीत का भी विवेचन है। जहाँ तक नाटक तथा काव्यों के सिद्धान्त

का सम्बन्ध है, नाट्यशास्त्र रस के परिपाक पर ही सबसे अधिक महत्व देता है। भरत ने दस गुणों और उपमा, रूपक, दीपक और यमक, इन चार अलङ्कारों को रस के परिपाक में मुख्य सहायक माना है। भरत ने दोषों का भी वर्णन किया है कि ये दोष नाटकादि में त्याज्य हैं। नाट्यशास्त्र पर बहुत-सी टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें से सबसे प्राचीन एक अज्ञात लेखक की टीका **भरतटीका** है। बाद के लेखकों ने इस टीका से जो उद्धरण दिए हैं, उनसे इस टीका का ज्ञान होता है। **स्थाण्वीश्वर** के राजा **हर्ष** (६०६-६४८ ई०) और **उद्भट** (८०० ई०) ने नाट्यशास्त्र पर टीकाएँ लिखी हैं। **मातृगुप्त, शंकुक** (८४० ई०), **भट्टनायक** (९०० ई०) और **अभिनवगुप्त** ने भी नाट्यशास्त्र पर टीकाएँ लिखी हैं। इनमें से अभिनवगुप्त की टीका प्राप्य है, शेष लुप्त हो गई हैं।

अग्निपुराण में काव्यशास्त्र के विभिन्न विषयों पर विवेचन है। विद्वानों का मत है कि इस पुराण का यह भाग ईसवीय सन् के प्रारम्भ के बहुत बाद लिखा गया है। इसमें **मेधावी** और **रुद्र** काव्यशास्त्र के आचार्य माने गए हैं। ये दोनों भी ईसवीय सन् के प्रारम्भ के बाद हुए होंगे। **राजशेखर** ने **मेधाविरुद्र** और **जानकीहरण** के लेखक **कुमारदास** का उल्लेख जन्मान्ध कवि के रूप में किया है।

नाट्यशास्त्र के बाद काव्यशास्त्र पर सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ **दण्डी** का **काव्यादर्श** है। भारतीय परम्परा दण्डी को **काव्यादर्श** और **दशकुमारचरित** इन दोनों ग्रन्थों का लेखक मानती है। दण्डी के परिचय और समय के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि **अवन्तिसुन्दरीकथा** का लेखक भी यही दण्डी है। यदि इन तीनों ग्रन्थों का लेखक एक ही है तो दण्डी का समय ७वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध समझना चाहिए।[1] दण्डी का समय ८५० ई० के बाद का नहीं माना जा सकता है,

१. काव्यादर्श के समय के लिए देखो अध्याय १७ में दण्डी।

क्योंकि इस वर्ष राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष नृपतुङ्ग ने दण्डी के काव्यादर्श का कन्नड़ भाषा में अनुवाद किया है।

दण्डी ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों का उल्लेख नहीं किया है। उसने उनके नामोल्लेख के बिना उनके ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उसने **सेतुबन्ध** और **बृहत्कथा** का उल्लेख किया है। उसका काव्यादर्श तीन परिच्छेदों में है। उसने प्रथम परिच्छेद में निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया है—भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता, भाव और भाषा की दृष्टि से काव्य के भेद, अपने पूर्वाचार्यों के द्वारा स्वीकृत गद्य-काव्य की कथा और आख्यायिका के रूप में विभाजन का उग्ररूप से खण्डन, वैदर्भी और गौड़ी रीतियों की विशेषताओं का विस्तृत विवेचन। उसने वैदर्भी रीति को विशेषता दी है। उसने द्वितीय परिच्छेद में अर्थालङ्कारों का विवेचन किया है और तृतीय परिच्छेद में शब्दालङ्कारों तथा यमक अलङ्कार का विशेष रूप में विवेचन किया है। उसने अलङ्कारों और रीतियों के महत्त्व पर बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। उसने गुणों और अलंकारों में विशेष अन्तर नहीं किया है। दण्डी की शैली मनोहर और परिष्कृत है। उसका विषय-विवेचन पूर्णतया मौलिक है।

वामन दण्डी के मन्तव्यों का बहुत घनिष्ठ अनुयायी था। वह कश्मीर के राजा **जयापीड** (७७९-८१९ ई०) का आश्रित कवि था। उसने **भवभूति** के ग्रन्थों से उद्धरण दिए हैं। अतः उसका समय ८००ई० के लगभग मानना चाहिए। वह **काव्यालङ्कारसूत्र** का लेखक माना जाता है। इस ग्रन्थ में पाँच अध्याय, १२ अधिकरण और ३१९ सूत्र हैं। इसमें उसने काव्यशास्त्र-संबंधी विषयों पर सूत्ररूप में नियम लिखे है। सूत्रों के बाद उनकी टीका के रूप में स्वलिखित वृत्ति है और उन नियमों के उदाहरण-स्वरूप स्वनिर्मित तथा अन्य लेखकों से संकलित श्लोक आदि हैं। नियमों के सूत्ररूप से ज्ञात होता हैं कि अलङ्कारों के विषय में नियम सूत्ररूप में वामन से पूर्व भी विद्यामान थे। वामन का मत है कि काव्य की आत्मा रीति है। उसने रीतियों को तीन भागों में

विभक्त किया है—वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। दण्डी के तुल्य उसने भी शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का विवेचन किया है। दण्डी और वामन दोनों ने रस और नाट्यशास्त्र पर विवेचन नहीं किया है। वामन के बाद रीतिवाद का समर्थक और कोई नहीं हुआ है। दण्डी और वामन ने जिन विषयों का विवेचन किया है, बाद के लेखकों ने उन विषयों को अपने ग्रन्थों में सम्मिलित किया है।

भामह राक्लिल गोमी का पुत्र था। उसने काव्यशास्त्र पर **अलङ्कार** नाम का ग्रन्थ लिखा है। बाद में इस ग्रन्थ का नाम लेखक के नाम से ही **भामहालङ्कार** कहा जाने लगा। उसने निम्नलिखित लेखकों के ग्रन्थों या उल्लिखित ग्रन्थों से उद्धरण दिए हैं या उनका नामोल्लेख किया है—**न्यासकार, मेधावी, शकवर्धन, रत्नाहरण, रामशर्मा** का **अच्युतोत्तर अलङ्कारवंश** और **राजमित्र**। न्यासकार **जिनेन्द्रबुद्धि** (७०० ई०) था। उसने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर वामन और जयादित्य की जो काशिका नाम की टीका है, उस पर न्यास नाम की टीका लिखी है। यह ज्ञात नहीं है कि भामह ने जिनेन्द्रबुद्धि का उल्लेख किया है या अन्य किसी पूर्ववर्ती न्यासकार का। अवन्तिसुन्दरी कथा में रामशर्मा एक कवि तथा दण्डी का मित्र उल्लिखित है। भामह ने उसी का उल्लेख किया है। **दण्डी** और **रामशर्मा** समकालीन थे। दोनों ७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए हैं। भामह ने अन्य लेखकों या ग्रन्थों का जो उल्लेख किया है, उनका परिचय प्राप्त नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि दण्डी भामह के बाद हुआ है और उसने भामह के मन्तव्यों का उल्लेख किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि दण्डी को अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से काव्यशास्त्र के विषयों में जो कुछ प्राप्त हुआ था, उसने उसी बात को अपने शब्दों और अपनी शैली में लिख दिया है। उसने अपनी ओर से उसमें कुछ नहीं मिलाया है और न अपना विशेष मन्तव्य ही प्रकाशित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दण्डी और भामह जिस मत के अनुयायी थे, वे उस मत के अनुयायी पूर्वाचार्यों के मतों से पूर्णतया परिचित थे। यहाँ यह

स्मरण रखना चाहिए कि काव्यशास्त्र जैसे विषय में कुछ पारिभाषिक शब्दावली और भाव होते हैं, जिनकी बार-बार आवृत्ति होती है और उनके आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता है कि अमुक लेखक ने यह शब्द अमुक से लिया है, अतः वह उससे बाद का है। अतः यह मानना अधिक उचित है कि भामह दण्डी के बाद का समकालीन लेखक है। उसका समय ७०० ई० के बाद और ७५० ई० से पूर्व मानना चाहिए।

भामहालङ्कार अव्यवस्थित शैली में लिखा गया है। इसमें ६ परिच्छेद हैं। वर्णन की दृष्टि से यह **काव्यादर्श** के तुल्य है। **भामह** ने गद्य का **कथा** और आख्यायिका के रूप में विभाजन स्वीकार किया है और वैदर्भी की अपेक्षा गौड़ी रीति को विशेष महत्त्व दिया है। उसने भरत और दण्डी के द्वारा स्वीकृत दस गुणों के स्थान पर केवल तीन गुण स्वीकार किए हैं। उसने काव्य के दोषों का भी विवेचन किया है। काव्यादर्श को उसकी मुख्य देन **वक्रोक्ति** को महत्त्व देना है। सभी अलङ्कारों के मूल में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। उसमें रसों को जो महत्त्व दिया जाता है, उसकी उपेक्षा की है। उसने अलङ्कारों पर जो बल दिया है, उसके कारण ही वह बाद के साहित्य शास्त्रियों के द्वारा विशेष आदृत हुआ। उन्होंने इसके ग्रन्थों से उद्धरण भी दिए हैं। वह **वररुचि** के **प्राकृतप्रकाश** पर एक टीका का लेखक भी माना जाता है।

उद्भट कश्मीर के राजा जयापीड (७७९-८१९ ई०) का आश्रित कवि था। उसने **भामहालङ्कारविवरण** नामक अपने ग्रन्थ में भामह के अलङ्कार पर टीका की है। यह ग्रन्थ नष्ट हो गया है। उसका दूसरा ग्रन्थ जो प्राप्य है, उसका नाम **अलङ्कारसारसंग्रह** है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम **उद्भटालङ्कार** भी है। इस ग्रन्थ के नाम से ज्ञात होता है कि यह **भामहालङ्कारविवरण** का ही संक्षिप्त रूप है। इसमें ६ अध्यायों में मुख्यतया अलङ्कारों का ही वर्णन है। इसका वर्णन भामह के वर्णन से बहुत अधिक मिलता है। उसके अनुसार रीतियाँ तीन हैं — (१) **उपनागरिका** अर्थात् परिष्कृत, (२) **ग्राम्या** अर्थात् साधारण,

(३) **परुषा** अर्थात् कठोर। उसका यह विभाजन केवल शब्दों के आधार पर ही था। भरत के बाद यही सबसे पहला लेखक है, जिसने रस पर बहुत महत्त्व दिया है। यह पहला लेखक है, जिसने शान्त को नवम रस माना है,। ९५०-ई० के लगभग **प्रतिहारेन्दुराज** ने भामहालङ्कार पर टीका लिखी है, परन्तु उसने उद्भट से अधिक कोई बात महत्त्व की नहीं लिखी है।

ध्वनि का सिद्धान्त ८२० ई० के लगभग १२० स्मरणीय कारिकाओं में प्रकट किया गया। इन कारिकाओं के लेखक का नाम ज्ञात नहीं है, किन्तु बाद के लेखकों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि इन कारिकाओं के लेखक को सहृदय की उपाधि प्रदान की गई थी। ८५० ई० के लगभग **आनन्दवर्धन** ने इन कारिकाओं पर टीका की और ग्रन्थ का नाम ध्वन्यालोक रक्खा। इसमें कारिकाएँ है तथा उन पर आदन्दवर्धन की वृत्ति है और उनके उदाहरण-स्वरूप विभिन्न लेखकों से उद्धृत तथा अपने श्लोक हैं। इसमें १२९ कारिकाएँ हैं। ये चार उद्योत (अध्यायों) में विभक्त हैं। बाद के लेखक इन कारिकाओं के लेखक के विषय में भ्रम में रहे हैं और उन्होंने आनन्दवर्धन को ही इन कारिकाओं में से कुछ का लेखक माना है। उसकी शैली सरल और व्याख्यात्मक है। उसने अपने निम्नलिखित ग्रन्थों से भी उद्धरण दिए हैं—**देवीशतक, अर्जुनचरितमहाकाव्य, विषमबाणलीला** और **हरविजय**। अन्तिम दो प्राकृत में लिखे गये हैं। प्रथम को छोड़कर शेष सभी नष्ट हो गये हैं।

अभिनवगुप्त ने १००० ई० के लगभग अपने ग्रन्थ **ध्वन्यालोकलोचन** में **ध्वन्यालोक** की टीका की है। ऐसा माना जाता है कि उसने १९ गुरुओं से विद्याध्ययन किया था।[1] उसको **इन्दुराज** ने ध्वनि की शिक्षा दी थी और **भट्टतौत** ने नाट्यशास्त्र की। अभिनवगुप्त ध्वनि और नाट्यशास्त्र पर प्रामाणिक आचार्य होने के अतिरिक्त शैव मत के **प्रत्यभिज्ञावाद** का मुख्य आचार्य

१. Abhinavagupta, Historical and philosophical study by K. C. Pandey–पृष्ठ ११

है। यह माना जाता है कि उसने ध्वनि, नाट्यशास्त्र और शैव मत पर ४१ ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त उसने शैव आगमों और कुछ स्तोत्र-ग्रन्थों पर भी टीकाएँ लिखी हैं, ऐसा माना जाता है। ध्वनि पर उसने **ध्वन्यालोक-लोचन** लिखा है जो कि ध्वन्यालोक की टीका है। भरत के **नाट्यशास्त्र** पर उसने **अभिनवभारती** नामक टीका लिखी है। **भट्टतौत** के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ **काव्यकौतुक** पर उसने **काव्यकौतुकविवरण** नामक टीका लिखी है। अभिनवगुप्त का काव्यकौतुकविवरण केवल उद्धरणों से ही ज्ञात होता है। यह माना जाता है कि अभिनवगुप्त ने घटकर्पर पर **घटकर्परकुलकविवृति** नामक टीका लिखी है। **ध्वन्यालोकलोचन** के दूसरे नाम हैं—**सहृदयालोकलोचन** या **काव्यालोकलोचन**। उसने उदाहरण के लिए श्लोक अपने तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थों से दिये हैं। अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर चन्द्रिका नामक एक टीका का उल्लेख किया है। उसने इसके लेखक का नाम नहीं दिया है। नाट्य-शास्त्र पर उसकी अभिनवभारती एक महत्त्वपूर्ण टीका है। ध्वनि विषय पर **आनन्दवर्धन** और **अभिनवगुप्त** सबसे प्रामाणिक आचार्य हैं। **महिमभट्ट** और **कुन्तक** ने ध्वनिवाद का उग्रता के साथ खण्डन किया है और उनका विचार आगे माना भी गया है, परन्तु ध्वनिवाद का जो महत्त्व आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त के कारण माना जाता रहा है, वह कदापि कम नहीं हुआ है। ध्वनि-वाद ने काव्यशास्त्र के अन्य वादों **रसवाद** और **अलंकारवाद** आदि को बहुत अधिक प्रभावित किया है। बाद में **रीतिवाद** और **वक्रोक्तिवाद** का महत्त्व प्रायः समाप्त हो गया।

जिस समय ध्वनिवाद का उद्भव और विकास हुआ, उस समय ध्वनिवाद के सिद्धान्तों के प्रचार के होते हुए भी रसवाद के प्रबल समर्थक विद्यमान थे। रस के विषय में इन आचार्यों के स्वतन्त्र और वैयक्तिक विचार थे। इनके अनुयायी बहुत कम हुए हैं। इनमें से कुछ ने ध्वनिवाद के प्रभाव की उपेक्षा की है और कुछ ने ध्वनिवाद का खण्डन भी किया है। **लोल्लट** (७००-८०० ई०) रसवाद का प्रबल समर्थक है। उसने नाट्यशास्त्र की टीका की थी। वह

ग्रन्थ नष्ट हो गया है। **शंकुक** (८५० ई०) आनन्दवर्धन का समकालीन था। उसने नाट्यशास्त्र की टीका लिखी थी। वह टीका नष्ट हो गई है। उसका काव्यग्रन्थ **भुवनाभ्युदय** भी नष्ट हो गया है। उसने लोल्लट के इस मत का खण्डन किया कि रस का अनुभव प्रत्यक्ष होता है और अपना मत स्थापित किया कि रस का अनुभव अनुमान के द्वारा होता है। **भट्टनायक** (लगभग ९०० ई०) ने **हृदयदर्पण** ग्रन्थ लिखा है। यह नाट्यशास्त्र की टीका मानी जाती है। यह ग्रन्थ आजकल अप्राप्य है। वह रस को काव्य की आत्मा मानता था काव्य से पाठकों को और नाटकीय प्रदर्शन से दर्शकों को रस का अनुभव कराया जा सकता है। **कुन्तक** (लगभग १००० ई०) का दूसरा नाम **कुन्तल** भी है। उसने एक ग्रन्थ **वक्रोक्तिजीवित** लिखा है। यह तीन अध्यायों में अपूर्ण प्राप्त होता है। इसमें रीति, रस, गुण और अलङ्कार की समालोचना प्रस्तुत करते हुए उसने पुरानी शैलियों के स्थान पर तीन नई शैलियो को प्रकाशित किया है—सुकुमार, विचित्र तथा मध्यम। इसमें उसने वैदर्भी, गौड़ी जैसे पुराने भौगोलिक नामों को स्थापित करने की निरर्थकता को सिद्ध किया है। अलङ्कारों तथा रस ने प्रत्येक शैली को उत्तम बनाने के लिए पृथक्-पृथक् योग प्रदान किया। इतना ही नहीं, उसने यह भी अनुभव किया कि लेखक का चरित्र उसकी रचना में प्रतिबिम्बित होता है और यह देखा जाता है कि प्रत्येक लेखक की साहित्यिक शैली पृथक् होती है। स्पष्ट बात यह है कि उस समय रचना करने की तीन शैलियाँ थी। कालिदास, हरिविजय के लेखक सर्वसेन इत्यादि सुकुमारमार्ग के आचार्य थ। विचित्रमार्ग के प्रतिनिधि थे—**बाण, भवभूति** तथा **राजशेखर**। बाणविरचित हर्षचरित इसके उदाहरण रूप में आता है। **मातृगुप्त, मायुराज** और **मंजीर** ने मध्यममार्ग का प्रतिनिधित्व किया। वह अभिनवगुप्त का परवर्ती समकालीन था। उसने ध्वनिवाद का खण्डन किया और मत स्थापित किया कि काव्य की आत्मा वक्रोक्ति है। उसने अलङ्कारों को स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति इन दो भागों में विभक्त किया है। उसने ध्वनि और रस को अलङ्कारों से गौ माना है। उसका मत है कि काव्य और नाटक का सौन्दर्य वक्रोक्ति अलङ्कारों में रहता है; ध्वनि

और रस में नहीं। **भट्टतौत** १०म शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। उसने **काव्यकौतुक** नामक ग्रन्थ लिखा था। वह नष्ट हो गया है। उसका मत था कि रस का अनुभव नायक, लेखक और श्रोता समानरूप से करते हैं। वह शान्त रस को सब रसों में मुख्य मानता था। **महिमभट्ट** (लगभग १०५० ई०) ने **शंकुक** का अनुसरण किया है और ध्वनिवाद का खण्डन किया है। उसका मत था कि रस का अनुभव अनमान के द्वारा होता है। उसने अभिनवगुप्त और कुन्तक के मतों का खण्डन किया है। उसने तीन अध्यायों में **व्यक्तिविवेक** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसी में उसने अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वह उच्चकोटि का विद्वान् और आलोचक था। उसकी आलोचना में पूर्ण सूक्ष्मता और गम्भीरता है। उसका दूसरा ग्रन्थ काव्यशास्त्र पर **तत्त्वोक्तिकोश** था। वह नष्ट हो गया है।

इस काल में कुछ ऐसे भी विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने इस विवाद में भाग नहीं लिया, किन्तु काव्यशास्त्र पर कार्य किया है। उनके विचारों पर रसवाद और ध्वनिवाद का प्रभाव अवश्य पड़ता है। **रुद्रट** (८००-८५० ई०) सबसे प्रथम विद्वान् है, जिसने अलंकारों को वैज्ञानिक पद्धति से विभाजित करने का प्रयत्न किया है। उसने १६ अध्यायों में **काव्यालंकार** ग्रन्थ लिखा है। उसने शब्दालंकारों, अर्थालंकारों, वक्रोक्ति और यमक का विस्तृत विवेचन किया है। **वामन** और **दण्डी** के द्वारा स्वीकृत तीनों रीतियों का भी वर्णन किया है और उनके साथ ही चौथी लाटी रीति का भी उल्लेख किया है। उसने रससिद्धान्त का भी विवेचन किया है। लेखक ने छः भाषाओं का उल्लेख किया है—प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी और अपभ्रंश। उसने 'शान्त' को नवाँ तथा 'प्रेय' को दसवाँ रस माना है। उसका दूसरा नाम **शतानन्द** है। नाटककार **राजशेखर** (९०० ई०) ने **काव्यमीमांशा** १८ अध्यायों में लिखी है। उसने काव्यशास्त्रीय विषयों का विश्लेषण नहीं किया है। उसकी पुस्तक कवियों के लिए एक संग्रह-पुस्तिका है। इसमें ज्ञातव्य सभी बातों का समावेश है। इसमें कवि और भाषा आदि के विषय में आवश्यक बातों का उल्लेख है।

ह कवियों के लिए आवश्यक सभी बातों की एक बहुमूल्य निधि है। उसने इस ग्रन्थ में कतिपय कवियित्रियों का भी उल्लेख किया है। लेखक ने साहित्यिक विषयों से सम्बद्ध विषयों पर अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी, पाल्यकीर्ति, श्यामदेव, मङ्गल आदि का उल्लेख किया है। उसने शैवसिद्धान्त तथा पञ्चरात्र इन दो धर्म सिद्धान्तों की भी चर्चा की है। अलङ्कार एक सातवाँ वेदाङ्ग और चतुर्दशवाँ विद्यास्थान है। **रुद्रभट्ट** के **शृंगारतिलक** में केवल रसों का विवेचन है। उसने शान्त को नवम रस स्वीकार किया है। इसी विषय पर उसका ग्रन्थ **रसकलिका** अभी तक अप्रकाशित है। शृङ्गारतिलक में **त्रिपुरवध** का उल्लेख किया गया है जो **रुद्रभट्ट** की ही कृति है। शृङ्गारतिलक का सर्वप्रथम उल्लेख **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) के **काव्यानुशासन** में प्राप्त होता है। उसका निश्चित समय अज्ञात है, परन्तु वह १००० ई० से पूर्व अवश्य हुआ होगा। कुछ विद्वान् **रुद्रभट्ट** और **रुद्रट** को एक ही व्यक्ति मानते हैं।

धारा के राजा मुज के आश्रित कवि, विष्णु के पुत्र, **धनंजय** (लगभग ९०० ई०) ने चार प्रकाशों में नाट्यशास्त्र विषय पर **दशरूपक** ग्रन्थ लिखा है। इसमें रसों पर भी विचार किया गया है। उसने भरत के नाट्यशास्त्र का ही अनुसरण किया है। इसमें नाट्यशास्त्र विषय पर ३०० स्मरणीय कारिकाएँ हैं। विष्णु का पुत्र **धनिक** संभवतः धनंजय का भाई था। उसने दशरूपक पर **अवलोक** नाम की टीका लिखी है। उसने यह टीका मुंज के स्वर्गवास के बाद लिखी है। टीका का समय १००० ई० के लगभग मानना चाहिए। दशरूपक अवलोक टीका के साथ उसी समय से बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ है। उस समय से लेकर आज तक यह नाट्यशास्त्र पर प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। धनिक के काव्यशास्त्र पर एक ग्रन्थ **काव्यनिर्णय** का अवलोक में उल्लेख है। यह ग्रन्थ अप्राप्य है। उपर्युक्त दो ग्रन्थों (दशरूपक और काव्यनिर्णय) के लेखकों (धनंजय और धनिक) ने शान्त रस के विरुद्ध प्रचण्ड प्रतिवाद किया।

भोज ने धारा में १००५ ई० से १०५४ ई० तक राज्य किया है। वह स्वयं बहुत योग्य विद्वान् था और विद्वानों का आश्रयदाता था। इसने साहित्य

के कई अंगों पर ग्रन्थ लिखकर अपनी विशेष योग्यता का परिचय दिया है। उसने काव्यशास्त्र पर दो उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे हैं—**सरस्वतीकण्ठाभरण** और **शृङ्गारप्रकाश**। **सरस्वतीकण्ठाभरण** एक विशाल ग्रन्थ है। इसमें पाँच प्रकाश (अध्याय) हैं। इसमें काव्य के गुणों और दोषों, अलंकारों और रसों का विवेचन है। तीन रीतियों में एक **लाटी** रीति का समावेश रुद्रट ने किया था, उन चार में **अवन्ती** और **मागधी** दो और रीतियों का समावेश करके उनको ६ कर दिया है। उसने अपने से प्राचीन लेखकों के बहुत उद्धरण दिए हैं। अतः उसका ग्रन्थ कवियों के काल-निर्णय में बहुत अधिक सहायक होने से महत्त्वपूर्ण है। **शृङ्गारप्रकाश** में ३६ अध्याय हैं। इसके प्रारम्भिक १२ अध्यायों में महाकाव्य और नाटक के लक्षण, काव्य के गुणों और दोषों का विवेचन है। शेष २४ अध्यायों में रसों का विवेचन है और उनमें **शृङ्गार** को मुख्यता दी गई है।

क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) **अभिनवगुप्त** का शिष्य था। उसने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**औचित्यविचारचर्चा** और **कविकण्ठाभरण**। **औचित्यविचारचर्चा** में लेखक ने अपना मत प्रदर्शित किया है कि रस के परिष्कार में औचित्य मुख्य सहायक है। उसका कथन है कि रस की आत्मा औचित्य है। वह शब्दों, उनके अर्थों, गुणों, अलंकारों, रस तथा काव्य के सभी आश्रयों के औचित्य पर आश्रित है। उसने उदाहरण अपने ग्रन्थों तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थों से दिए हैं। उसके विवेचन पर ध्वनि-मत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। वह अपने विवेचन में सर्वथा निष्पक्ष है। वह बड़े से बड़े प्रसिद्ध कवि के काव्यगत दोषों को प्रकट करने में संकोच नहीं करता है और न उसका कोई विशेष प्रिय कवि है। **कविकण्ठाभरण** में पाँच अध्यायों में इन विषयों पर विचार किया है—कोई व्यक्ति कवि कैसे हो सकता है, कवि ने जो स्थान प्राप्त कर लिया है उसको स्थिर कैसे रक्खे तथा कवि और उनके कार्यसम्बन्धी अन्य सभी बातों पर उपयोगी सूचनाएँ दी हैं। उसने जिन कवियों और ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं, उनमें से बहुत से कवि और ग्रन्थ केवल नाम मात्र ही शेष हैं। उसके अपने लिखे हुए कई

ग्रन्थ थे। उसने अपने ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है, किन्तु वे अब नष्ट हो गये हैं।

मम्मट ११०० ई० के लगभग हुआ था। उसने ध्वनि-मत के आलोचकों को अपने उत्तरों के द्वारा मौन बना दिया और ध्वनि-मत को पुनरुज्जीवित किया। उसने दस उल्लासों (अध्यायों) में **काव्यप्रकाश** नामक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ की रचना में **अल्लट** भी उसका साथी था। **अल्लट** का दूसरा नाम **अलक** भी था। इस ग्रन्थ में उसने नाट्यशास्त्र को छोड़कर काव्यशास्त्र के सभी विषयों का पूर्ण विवेचन किया है। यह माना जाता है कि मम्मट ने नवम उल्लास में परिकर अलंकार तक ग्रन्थ की रचना की है और शेष भाग अल्लट ने लिखा है। इसमें स्मरणीय कारिकाएँ हैं। उनकी टीका मम्मट ने स्वयं उपयुक्त उदाहरणों के साथ की है। इनमें से कुछ कारिकाएँ नाट्यशास्त्र से ली हुई ज्ञात होती हैं। काव्यप्रकाश जब से लिखा गया, तभी से बहुत अधिक प्रचलित हो गया। तब से लेकर आज तक यह काव्यशास्त्र पर सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस बात से ज्ञात होती है कि इस पर अब तक ७० टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। मम्मट ने शब्दशक्ति विषय पर एक और ग्रन्थ **शब्दव्यापारविचार** लिखा है।

हेमचन्द्र (११८८-११७२ ई०) ने **काव्यानुशासन** लिखा है। इस ग्रन्थ पर उसने अपनी टीका **अलंकारचूड़ामणि** लिखी है। इसमें आठ अध्याय हैं। इसमें काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र के सभी विषयों का विवेचन है। **रुय्यक** ने ११५० ई० में **अलंकारसर्वस्व** ग्रन्थ लिखा है। **रुय्यक** का दूसरा नाम **रुचक** भी है। यह ग्रन्थ सूत्ररूप में है और उस पर टीका भी साथ ही है। इस टीका का नाम **वृत्ति** है। इस टीका के लेखक के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूत्र **रुय्यक** के लिखे हुए हैं और टीका उसके शिष्य मंख ने लिखी है। दूसरा मत यह है कि सूत्र और टीका दोनों का लेखक रुय्यक ही है। इस ग्रन्थ में रुय्यक ने अलङ्कारों का वैज्ञानिक विधि से विवेचन और विश्लेषण किया है। रुय्यक,

ने इस ग्रन्थ के अतिरिक्त ये ग्रन्थ और लिखे हैं—**काव्यप्रकाश** की टीका महिभट्ट के व्यक्तिविवेक की टीका, **साहित्यमीमांसा, नाटकमीमांसा**, **बाण** के हर्षचरित की टीका हर्षचरितटीका, **अलंकारानुसारिणी** और **सहृदयलीला**। हर्षचरितटीका के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थ काव्यशास्त्र विषयक हैं। **सहृदयलीला** में इस बात का वर्णन है कि एक सहृदय व्यक्ति को किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए।

सोम के पुत्र एक जैन विद्वान् **वाग्भट्ट** ने अलङ्कारों पर एक ग्रन्थ **वाग्भटालंकार** लिखा है। इसके पाँच अध्यायों में उसने काव्य, काव्य का स्वरूप, भाषा, गुण, अलङ्कार, रस और साहित्यिक परम्पराओं का वर्णन किया है। यह लेखक १३वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ का है। उसी समय **अहलराज** ने रस विषय पर **रसरत्नप्रदीपिका** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। **जयदेव** ने चन्द्रालोक लिखा है। वह एक प्रसिद्ध नैयायिक, नाट्यकार और साहित्यशास्त्री था। वह १२५० ई० के लगभग हुआ था। उसने नाट्यशास्त्र को छोड़कर शेष सभी काव्यशास्त्रीय विषयों का विवेचन सरल और रोचक ढंग से किया है। **शारदातनय** लगभग (१२५० ई०) ने दस अध्यायों में **भावप्रकाशन** ग्रन्थ लिखा है। उसने काव्यशास्त्रीय विषयों के वर्णन में भरत का अनुसरण किया है और भरत से भिन्न विचारों का भी उल्लेख किया है। उसने रस को काव्य की आत्मा माना है। उसने शान्त को रस नहीं माना है। उसने भोज के अनुसार ही शृंगार रस को विकसित किया है। **नेमिकुमार** का पुत्र एक जैन विद्वान् **वाग्भट्ट** और हुआ है। वह वाग्भटालङ्कार के लेखक वाग्भट्ट से भिन्न है। वह १३वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। उसने पाँच अध्यायों में **काव्यानुशासन** ग्रन्थ लिखा है। यह सूत्ररूप में है और उस पर लेखक ने स्वयं **अलंकारतिलक** नाम की टीका भी लिखी है। विषय की दृष्टि से यह वाग्भटालङ्कार के तुल्य ही है। लगभग इसी समय **अमृतानन्दयोगी** ने **अलंकारसारसंग्रह** ग्रन्थ लिखा है। इसमें काव्यशास्त्रीय सभी विषयों का वर्णन है।

एक रेड्डी राजकुमार **सिंगभूपाल** १४०० ई० के लगभग हुआ था। वह स्वय विद्वान् था और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसने **रसार्णवसुधाकर** ग्रन्थ लिखा है। इसमें तीन अध्याय हैं। इसमें उसने रसों और नाट्यशास्त्र का वर्णन किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह ग्रन्थ **सिंगभूपाल** के आश्रित **विश्वेश्वर** नामक विद्वान् की रचना है। **भानुदत्त** १४०० ई० के लगभग हुआ था। उसने **रसमंजरी** और **रसतरंगिणी** नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। दोनों में रस का विवेचन है, विशेषरूप से श्रृगार का। **विश्वनाथ** १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। वह उड़ीसा का निवासी था। उसने दस अध्यायों में **साहित्यदर्पण** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने काव्यशास्त्रीय तथा नाट्यशास्त्रीय सभी विषयों का विवेचन किया है। उसने अन्य कवियों के ग्रन्थों से उद्धरण देने के अतिरिक्त अपने ग्रन्थों से भी उद्धरण दिए हैं। उनके नाम हैं—**रघुविलासमहाकाव्य**, एक प्राकृत में लिखित **कुवलयाश्वचरित**, एक नाटिका **प्रभावती**, **चन्द्रकलानाटिका** और एक ऐतिहासिक काव्य **नरसिंहराजविजय**। ये सभी ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। एक रेड्डी राजकुमार **वेमभूपाल** (लगभग १४२० ई०) ने १३ अध्यायों में **साहित्यचिन्तामणि** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का वर्णन किया है। वह कोण्डवीडू वंश का राजा था। **वामनभट्ट बाण** उसका आश्रित कवि था। **विद्याभूषण** की **साहित्यकौमुदी** उसी समय की रचना है। **रूपगोस्वामी** ने १५३३ ई० में **उज्ज्वलनीलमणि** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें कृष्ण के प्रशंसात्मक श्लोक उदाहरण के रूप में दिये गये हैं। **जीवगोस्वामी** ने इसकी टीका लिखी है। **अप्पय दीक्षित** १५५४ ई० में हुआ था। उसने **कुवलयानन्द**, **चित्रमीमांसा** और **वृत्तिवार्तिक** लिखे हैं। उसने **जयदेव** के **चन्द्रालोक** के पाँचवें अध्याय पर **कुवलयानन्द** में टीका की है और चन्द्रालोक में आवश्यक परिवर्तन भी किये हैं। **कुवलयानन्द चन्द्रालोक** के पाँचवें अध्याय पर आश्रित है, अतः इसमें अर्थालङ्कारों का ही वर्णन है। यह ग्रन्थ दक्षिण भारत में बहुत प्रचलित है। **चित्रमीमांसा** में अलङ्कारों

का वैज्ञानिक विधि से विवेचन है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है। **वृत्तिवार्तिक** में शब्दशक्ति का वर्णन है। **केशवमिश्र** ने १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में **अलंकारशेखर** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का ही मुख्यतया विवेचन किया है। उसने साथ ही साथ कवियों के लिए कुछ आवश्यक निर्देश भी दिये हैं। जिन **श्रीपाद** के विचारों का इस ग्रन्थ में उल्लेख किया गया है उन्हीं के मतानुसार मैथली शैली की भी चर्चा की गयी है। **कविकर्णपुत्र** की रचना **अलंकारकौस्तुभ** इसी समय की कृति है। **जगन्नाथ** (१५९०-१६६५ ई०) ने दो ग्रन्थ लिखे हैं— **रसगंगाधर** और **चित्रमीमांसाखण्डन**। रसगंगाधर अलङ्कारों के विषय में अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें उसने अलङ्कारों के लक्षण दिये हैं। अपने उदाहरण देकर उसने इन लक्षणों का विवेचन किया है और अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मन्तव्यों का उल्लेख किया है। वह अपने विचारों में पूर्णतया स्वतन्त्र है। जहाँ पर वह अन्य सुप्रसिद्ध लेखकों के साथ मतभेद रखता है, वहाँ पर बहुत निर्भीकता के साथ उनके मन्तव्यों का खण्डन करता है। उसने ध्वनि-मत का उग्रता के साथ खण्डन किया है और रस-सिद्धान्त की परिपुष्टि की है। उसके निर्णय का भाव उसकी काव्य-परिभाषा से ही स्पष्ट हो जाता है जिसे उसने एक पंक्ति में ही व्यक्त की है--'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'। उसका **चित्रमीमांसाखण्डन** ग्रन्थ **अप्पय दीक्षित** के **चित्रमीमांसा** ग्रन्थ का खण्डन है। **राजचूड़ामणि दीक्षित** (लगभग १६०० ई०) ने **काव्यदर्पण** ग्रन्थ लिखा है। इस पर उसने अपनी ही टीका **अलंकार चूड़ामणि** लिखी है। **विश्वेश्वर** १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। उसने अलङ्कारों पर दो ग्रन्थ **अलंकारकौस्तुभ** और **अलंकारकर्णाभरण** लिखे हैं।

कतिपय लेखकों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा के लिए काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों में उदाहरण के रूप में जो श्लोक दिये गये हैं, वे अधिकांश में अपने आश्रयदाताओं के प्रशंसात्मक हैं।

इस प्रकार के ग्रन्थों में **विद्याधर** (लगभग १३०० ई०) का **एकावलि** ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ उसने अपने आश्रयदाता **उत्कल** और **कलिंग** के राजा **नरसिंह** की प्रशंसा में लिखा है। यह **काव्यप्रकाश** के अनुकरण पर लिखा गया है। **विद्यानाथ** के **प्रतापरुद्रिययशोभूषण** ग्रन्थ से इस प्रकार के काव्य की विचित्रता ज्ञात होती है। ग्रन्थ का नाम ही आश्रयदाता के नाम से है। वह विद्यानाथ और अगस्त्य एक ही व्यक्ति हैं। यह **वारंगल** के राजा **प्रतापदेव** (लगभग १३०० ई०) की प्रशंसा में लिखा गया है। **विश्वेश्वर** का **चमत्कारचन्द्रिका** ग्रन्थ **शिंगभूपाल** (लगभग १४०० ई०) की प्रशंसा में लिखा गया है। **यज्ञनारायण** ने **अलंकाररत्नाकर** ग्रन्थ **तन्जौर** के राजा **रघुनाथ नायक** (१६१४-१६३२ ई०) की प्रशंसा में लिखा है। **नरसिंह** कवि, जिसकी उपाधि **अभिनवकालिदास** थी, ने **नंजराज** (१८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) की प्रशंसा में **नंजराजयशोभूषण** ग्रन्थ लिखा है। **सदाशिवमखिन्** ने १८वीं शताब्दी के अन्त में **ट्रावनकोर** के राजा **रामवर्मा** की प्रशंसा में **रामवर्मयशोभूषण** ग्रन्थ लिखा है।

नाट्यशास्त्र की परिभाषाओं के विषय में बहुमूल्य सूचना **सागरनन्दी** के **नाटकलक्षणरत्नकोश** नामक ग्रन्थ में मिलती है। इस ग्रन्थ में दिये गये बहुत से दृष्टान्त न केवल कवियों के काल-क्रम को व्यवस्थित करने में सहायता देते हैं। किन्तु अनेक ऐसी रचनाओं की सूचना प्रदान करते हैं जो अब लुप्त हो गये हैं। १७वीं शताब्दी में **कृष्णभट्ट** ने **प्रश्नमाला** की रचना की। यह साहित्यिक समालोचना का एक विशिष्ट ग्रन्थ है। इसमें प्रामाणिक ग्रन्थों के पाठ्य के विषय में कुछ समस्याएँ उठायी गयी हैं और उनका उत्तर भी दिया गया है।

इनमें से कुछ साहित्यशास्त्रियों ने काव्य-लेखन के लक्ष्य और उपयोगिता पर भी विचार किया है। काव्यलेखनका लक्ष्य यश और धन माना गया है। कुछ लेखकों ने काव्यलेखन का लक्ष्य चतुर्वर्गप्राप्ति माना है। काव्य-लेखन के विभिन्न उद्देश्यों का संग्रह **मम्मट** ने अग्रलिखित श्लोक में किया है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासंमिततयोपदेशयुजे ।।[1]

उसने साथ ही यह भी उल्लेख किया है कि कालिदास को काव्यलेखन से यश मिला, बाण को धन और मयूर को रोग से मुक्ति मिली।

काव्यलेखन में सफलता-प्राप्ति के लिए तीन साधन बताये गये हैं—प्रतिभा; सुसंस्कृत विद्याध्ययन और उसका उपयोग।[2] प्रतिभा के अभाव में अन्य दो साधनों से कोई भी व्यक्ति कवि हो सकता है। **हेमचन्द्र** ने नवाभ्यासी के लिए उपदेश दिया है कि वह प्रारम्भिक अभ्यास के लिए किसी कवि के बने हुए श्लोक के तीन चरणों को ले और चतुर्थ चरण स्वयं बनावे। **क्षेमेन्द्र** ने अपने ग्रन्थ **कविकण्ठाभरण** में इस विषय पर विचार किया है कि काव्य जगत् में कौन व्यक्ति किस सीमा तक पहुँच सकता है। उसने अपने ग्रन्थ **औचित्यविचारचर्चा** में यह विवेचन किया है कि रस के परिपाक के लिए औचित्य का ध्यान रखना अनिवार्य है। इन लेखकों ने नवाभ्यासियों के लिए जो उपदेश दिए हैं, वे उपयोगी हैं, परन्तु इसका परिणाम यह हुआ है कि बाद के सामान्य कवियों ने पूर्ववर्ती कवियों के भावों और शब्दावली की ही पुनरावृत्ति की है।

कवि अपनी योग्यता का प्रदर्शन विद्वत्सभा में करते थे और विद्वानों की स्वीकृति पर वह वस्तुतः कवि माने जाते थे। **राजशेखर** ने अपने ग्रन्थ **काव्यमीमांसा** में उल्लेख किया है कि **कालिदास हरिचन्द्र** आदि की परीक्षा **उज्जैन** में हुई थी और **उपवर्ष, पाणिनि, वररुचि, पतंजलि** आदि की परीक्षा **पटना** में हुई थी।[3] कई बार कवि की योग्यता की परीक्षा इस प्रकार भी की जाती थी कि उसे यह कहा जाता था कि वह किसी बताये हुए

१. काव्यप्रकाश १ १०३-१४।

२. दण्डी का काव्यादर्श १.१०३।

३. राजशेखरकृत काव्यमीमांसा, अध्याय १०।

विषय पर उसी समय कविता बनावे, किसी अन्य कवि के द्वारा बनाये हुए अपूर्ण श्लोक को पूर्ण करे या किसी समस्या को पूर्ण करे। इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख **बल्लालसेन** के **भोजप्रबन्ध, मेरुतुंग** के **प्रबन्धचिन्तामणि** और **मंख** के **श्रीकण्ठचरित** में है। एक बौद्ध भिक्षुक **धर्मदास** ने चार भागों में **विदग्धमुखमण्डन** लिखा है। इसमें समस्याओं का वर्णन है। वह १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। अतएव जो कवि राजद्वार में आश्रय चाहता था, उसको विभिन्न प्रकार की रुचि वाले विद्वानों को प्रसन्न करने के लिए अनेक विषयों से परिचित होना पड़ता था। **कामसूत्र** ने इस विषय में कतिपय उपयोगी निर्देश दिये हैं कि कवि को किस प्रकार परिपूर्ण होना चाहिए।

———

अध्याय २६

शास्त्रीय ग्रन्थ

शास्त्रीय ग्रन्थों की विशेषताएँ और व्याकरण

शास्त्र शब्द का प्रयोग साहित्य के उस विभाग के लिए होता है, जिसका विवेचन वैज्ञानिक पद्धति से होता है । शास्त्र शब्द का अर्थ है--जिसके द्वारा किसी बात की शिक्षा दी जाती है ।

शिष्यतेऽनेनेति शास्त्रम् ।

प्रारम्भ में इस शब्द का प्रयोग उन विषयों के लिए ही होता था, जिनका सम्बन्ध वैदिक ग्रन्थों से था । बाद में इस शब्द का प्रयोग उन सभी विषयों के लिए होने लगा, जिनका विवेचन वैदिक विषयों के तुल्य वैज्ञानिक विधि से होने लगा । शास्त्र नाम से निर्दिष्ट विषयों की उत्पत्ति कारण यह ज्ञात होता है कि सभी विषयों का विवेचन वैदिक शीर्षक के अन्दर करने में कतिपय कठिनाइयाँ अनुभव हुई होंगी । धीरे-धीरे प्रत्येक विषय का अपना स्वतंत्र महत्त्व होने लगा और उसका विशेष रूप से अध्ययन होने लगा । इन विशेष अध्ययनों में भी अन्य विषयों के सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता था । इस प्रकार व्याकरण, निरुक्त और यज्ञ आदि के विवेचन के आधार पर वैयाकरण, नैरुक्त, याज्ञिक आदि की शास्त्रीय शाखाएँ बन गयीं ।

शास्त्रों की विशेषताएँ

शास्त्रों के मौलिक सिद्धान्त साधारणतया सूत्र रूप में लिखे गये हैं । सूत्र संक्षेप में सिद्धान्त का निर्देश करते हैं । सूत्रों की विधि इसलिए अपनायी गयी कि विद्यार्थी को स्मरण करने में कठिनाई न पड़े । ये सूत्र केवल गुरुओं की व्याख्या के द्वारा ही समझे जा सकते थे । ये गुरु ही उन सूत्रों की व्याख्या

के लिए प्रामाणिक व्यक्ति थे। विभिन्न शास्त्रों की उत्पत्ति तथा प्रत्येक के विभिन्न विचारों के कारण कतिपय स्थलों पर सर्वथा विरोधी मत प्राप्त होते थे, अतः विद्यार्थी उन शंकास्पद स्थलों को अपने गुरुओं से पूछते थे और वे उनका उत्तर देते थे। सूत्रों पर इन प्रश्नोत्तरों का संग्रह किया गया और उन संग्रहों को **भाष्य** नाम दिया गया। गुरु उन सूत्रों पर कुछ आलोचनात्मक बातें भी कहते थे। उनका संग्रह **वार्तिकों** और **वृत्तियों** के रूप में हुआ देखिए :—

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थ वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः॥

प्रत्येक विषय पर जो सामग्री तैयार हो रही थी, उसके मुख्य सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप में रखने के लिये उनको **कारिकाओं** के रूप में रक्खा गया। अधिकांश में इन कारिकाओं का भाष्य भी लेखक करते थे। समय-समय पर राजद्वारों तथा विद्वत्सभाओं में विभिन्न शास्त्रीय सिद्धान्तों पर वाद-विवाद होते थे। इस प्रकार के वाद-विवादों का परिणाम यह हुआ कि यह शास्त्रीय साहित्य संवादात्मक और विद्वत्तापूर्ण हुआ। साधारणतया ये वादविवाद गद्य में लिखे गये हैं। बाद में इस प्रकार के जो वादविवाद लिखे गये हैं, वे लम्बे-लम्बे समासों से युक्त हैं। उनमें जो श्लोक दिये गये हैं, वे किसी निर्णय के बोधन के लिए हैं या विशेष विचारणीय किसी विषय का निर्देश करते हैं। बाद के शास्त्रीय साहित्य में क्रियाओं का प्रयोग बहुत कम है। नास्तिक दर्शनों को छोड़कर अन्य सभी शास्त्रों ने अपना उद्भव वेद से माना है।

१४ विद्याएँ मानी जाती हैं। उनके नाम ये हैं—४ **वेद**, ६ **वेदांग** **पुराण**, **न्याय**, **मीमांसा** और **धर्मशास्त्र**।[1] **आयुर्वेद**, **धनुर्वेद**, **गान्धर्ववेद** और **अर्थशास्त्र** ये ४ उपवेद हैं। इन चारों को लेकर १८ विद्याएँ अर्थात् शास्त्र हैं।

---

१. पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥ याज्ञवल्क्य स्मृति १.३.

व्याकरण

वेदांगों में व्याकरण का प्रमुख स्थान है। अन्य भाषाओं में व्याकरण साहित्य का एक अंग माना जाता है, परन्तु संस्कृत के अध्ययन के विषय में एक स्वतंत्र विषय है। इसकी उत्पत्ति वैदिक काल से है। इसके विकास पर दो अन्य वेदांगों **निरुक्त** और **शिक्षा** का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

वैदिकोत्तर काल में कई ऐसे वैयाकरण हुए हैं, जिन्होंने यह प्रयत्न किया है कि भाषा के लिए नियमों को बनाया जाय और उन्होंने इसके लिए अपने ग्रन्थ भी बनाए। **पाणिनि** के अतिरिक्त अन्य सभी के ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। वह **अटक** के समीप **शालातुर** स्थान पर उत्पन्न हुआ था। वह **दाक्षि** का पुत्र था। उसका समय ७०० ई० पू० और ६०० ई० पू० के बीच का माना जाता है। **कथासरित्सागर** के अनुसार वह **वर्ष** का शिष्य था। उसके सहपाठी थे—**कात्यायन, व्याडि,** और **इन्द्रदत्त**। उसे आचार्य **वर्ष** से जो शिक्षा प्राप्त हुई उससे वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने भगवान् शिव की उपासना की और उन्होंने प्रसन्न होकर उसको १४ माहेश्वर सूत्र [प्रत्याहार सूत्र] प्रदान किए। उसने उन १४ सूत्रों को विकसित किया। पाणिनि से पूर्ववर्ती कितने ही आचार्य हो चुके हैं। उनके ग्रन्थ पाणिनि को प्राप्त थे। उसने नये पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ की व्याख्या के नये नियम तथा प्रत्ययों आदि का आविष्कार किया। उसने आठ अध्यायों में **अष्टाध्यायी** नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें लगभग ४ सहस्र सूत्र हैं। **पाणिनि** ने बहुत छोटे पारिभाषिक शब्द रक्खे हैं, प्रत्याहारों का उपयोग किया है तथा सूत्रों में उन शब्दों को नहीं रक्खा है जो पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति के द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार उसके सूत्रों में अति संक्षेप हो सका है। उसने शब्दरूपों और धातुरूपों का अतिसूक्ष्मता के साथ प्रकृति और प्रत्यय के रूप में विश्लेषण किया है। पाणिनि को अष्टाध्यायी विश्व का एक आदर्श ग्रन्थ है। इसमें सर्वाङ्गपूर्ण अनुसन्धान तथा पारिभाषिक पूर्णता है। पाणिनि ने धातुपाठ,

गणपाठ और उणादिसूत्र भी लिखे हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि पाणिनि के उणादि सूत्रों का संशोधन **कात्यायन** ने किया है और कुछ का मत है कि उणादि सूत्रों का लेखक ही कात्यायन है।

पाणिनि की **अष्टाध्यायी** की समीक्षा और उसका भाष्य बहुत लेखकों ने किया था, परन्तु उनके ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। यह माना जाता है कि आचार्य **व्याडि** ने पाणिनि की अष्टाध्यायी की व्याख्या के रूप में एक लाख श्लोकों से युक्त एक **संग्रह** नामक ग्रन्थ लिखा था। **पतंजलि** ने इस ग्रन्थ के उद्धरण दिये हैं, परन्तु यह ग्रन्थ अब नष्ट हो गया है। कात्यायन ने पाणिनि की अष्टाध्यायी की व्याख्या के रूप में गद्य और पद्य में वार्तिक लिखे हैं। कात्यायन का समय ५०० ई० पू० और ३५० ई० पू० के बीच में है। उसने अष्टाध्यायी में आवश्यक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन किये हैं। उसने कई स्थानों पर अपने सुझाव प्रस्तुत किये हैं और कई स्थानों पर पाणिनि के नियमों को अनावश्यक भी बताया है। वह **वाजसनेयि प्रातिशाख्य** और **वाजसनेयि श्रौतसूत्र का** भी लेखक माना जाता है। **कात्यायन** और **वररुचि** एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। वररुचि के लिखे हुए ये ग्रन्थ माने जाते हैं—**लिंगानुशासन,** कारकरचना, समाज आदि के विषय में २५ स्मरणीय पंक्तियों में **वररुचिसंग्रह, पुष्पसूत्र** और एक काव्य **वररुचिकाव्य**।

इसके पश्चात् जिस वैयाकरण का ग्रन्थ उपलब्ध होता है, वह है **पतंजलि**। उसने **महाभाष्य** ग्रन्थ लिखा है। उसका समय १५० ई० पू० के लगभग है। पतंजलि ने व्याडि के संग्रह ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता ली है। उसने पाणिनि के सूत्रों के विषय में अपनी इष्टियाँ भी लिखी हैं कि यहाँ पर ऐसा होना चाहिए। पाणिनि पर कात्यायन ने जो कतिपय स्थलों पर आक्षेप किये हैं, उनका उसने उत्तर दिया है और पाणिनि का समर्थन किया है। उसने अपने पूर्ववर्ती कतिपय वैयाकरणों का उल्लेख किया है। महाभाष्य में उसकी शैली अत्यन्त मनोरम और सरल है। इसी कारण सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उसकी शैली आदर्श और अनुपम है। आकार और विषय दोनों की दृष्टि से इसे महाभाष्य

कहा जाता है। इसीलिए यह कहावत प्रचलित है—"महाभाष्यं वा पठनीयम्, महाराज्यं वा शासनीयम्"। पतंजलि को आदिशेष का अवतार माना जाता है उसका जन्म **गौनर्द** (गोंडा) में हुआ था। वह **पातंजलयोगदर्शन** और **चरकसंहिता** का भी लेखक माना जाता है।

पतंजलि के बाद चौथी शताब्दी ई० तक व्याकरण का कोई मौलिक ग्रन्थ नहीं लिखा गया। ऐसा ज्ञात होता है कि इस बीच में महाभाष्य का ही अध्ययन होता रहा। भर्तृहरि चौथी शताब्दी ई० में हुआ था। उसने महाभाष्य की टीका **महाभाष्यदीपिका** नामक ग्रन्थ में की है। वह अपूर्ण उपलब्ध है। वह चीनी यात्री ईत्सिंग (६७२-६७५ ई०) की भारतयात्रा के समय महावैयाकरण के रूप में सुप्रसिद्ध था। उसने एक दूसरा ग्रंथ **वाक्यपदीय** नामक लिखा है। इसमें तीन काण्ड (अध्याय) हैं। उनके नाम हैं—आगमकाण्ड, वाक्यकाण्ड और पदकाण्ड। इनमें क्रमशः स्फोट, वाक्य और शब्द का वर्णन है। इसमें उसने व्याकरण का दार्शनिक विवेचन किया है। उसने स्फोटवाद को स्वीकार किया है और शब्दब्रह्म के रूप में अद्वैतवाद को स्वीकार किया है। वह बौद्ध दार्शनिक **वसुबन्धु** (३५० ई०) के समकालीन तथा विरोधी विद्वान् **वसुरात** का शिष्य था।

वामन और **जयादित्य** ने पाणिनि की अष्टाध्यायी के ऊपर **काशिका** नाम की टीका लिखी है। **ईत्सिंग** (६७२-६७५ ई०) ने अपनी यात्रा के समय इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि का उल्लेख किया है। उस समय चीनी लोग संस्कृत जानने के लिए इस ग्रन्थ को पढ़ते थे। यह ग्रन्थ ६०० ई० के लगभग अवश्य लिखा जा चुका होगा। यह माना जाता है कि अष्टाध्यायी के प्रारम्भिक पाँच अध्यायों की टीका जयादित्य ने की और शेष तीन अध्यायों की टीका वामन ने की। इसकी टीका एक जैन विद्वान् **जिनेन्द्रबुद्धि**, जिनका दूसरा नाम **पूज्यपाद देवनन्दी** है, ने **काशिकाविवरणपंजिका** नाम से की है। यह टीका न्यास नाम से विशेष प्रसिद्ध है। जिनेन्द्रबुद्धि ७वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में हुआ था। काशिका और न्यास में कतिपय पूर्ववर्ती लेखकों और उनके ग्रन्थों का उल्लेख

हैं, अतः ये दोनों टीकाएँ संस्कृत लेखकों के समय-निर्धारण में बहुत सहायक हैं। **हरदत्त** ने ११वीं शताब्दी ई० में **काशिका** की टीका **पदमंजरी** नामक ग्रंथ में की है।

धारा के राजा **भोज** (१००५-१०५४ ई०) ने पाणिनि को अष्टाध्यायी के अनुकरण पर **सरस्वतीकंठाभरण** ग्रन्थ लिखा है। इसमें आठ अध्याय हैं और ६ सहस्र से अधिक सूत्र हैं। लेखक का यह उद्देश्य ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के द्वारा संस्कृत-व्याकरण को सरल बनाया जाय।

११वीं शताब्दी ई० में ही **जैयट** के पुत्र **कैयट** ने पतंजलि के महाभाष्य की टीका **प्रदीप** नाम से की। इस प्रदीप टीका की टीका **नागेश भट्ट** ने **उद्योत** नाम से १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की और **अन्नंभट्ट** (लगभग १७०० ई०) ने **उद्योतन** नाम से की।

लङ्का के एक बौद्ध भिक्षुक **धर्मकीर्ति** ने **रूपावतार** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने संस्कृत व्याकरण के नव पाठकों के लिए कुछ क्रमभेद से पाणिनि के सूत्रों की व्याख्या की है। वह १२वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में हुआ था। एक बौद्ध विद्वान् **शरणदेव** ने ११७३ ई० में **दुर्घटवृत्ति** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने ऐसे शब्दों और प्रयोगों को, जो कि पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं किन्तु जिनका प्रयोग उच्चकोटि के कवियों ने किया है, शुद्ध सिद्ध किया है। **विमल सरस्वती** ने १४वीं शताब्दी में **रूपमाला** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने शब्दरूपों और धातुरूपों का विवेचन किया है।

रामचन्द्र (लगभग १४५० ई०) ने **प्रक्रियाकौमुदी** लिखी है। इसमें उसने पाणिनि के सूत्रों को नवपाठकों के लिए अपने ढंग से क्रमबद्ध किया है। **नारायणीय** के लेखक **नारायणभट्ट** (१६०० ई०) ने **प्रक्रियासर्वस्व** लिखा है। इसमें उसने पाणिनि के सूत्रों को प्रक्रियाओं के अनुसार क्रमबद्ध किया है। **अप्पयदीक्षित** (लगभग १६०० ई०) ने व्याकरण के विवादास्पद विषयों पर **पाणिनिवादनक्षत्रमाला** ग्रन्थ लिखा है।

भट्टोजिदीक्षित १७वीं शताब्दी ई० में सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण था। यह कहा जाता है कि वह **अप्पयदीक्षित** का शिष्य था और उसने वेदान्त पढ़ा था। भट्टोजिदीक्षित, उसके परिवार के व्यक्तियों और उसके शिष्यों ने व्याकरण-शास्त्र को बहुत बड़ी देन दी है। उसने १६३० ई० में रामचन्द्र की प्रक्रिया-कौमुदी के अनुकरण पर **सिद्धान्तकौमुदी** लिखी है। उसके ग्रन्थ पर रामचन्द्र का प्रभाव पड़ा है। इस ग्रन्थ का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। जब से यह ग्रन्थ लिखा गया है, तब से इसने इतना प्रभाव डाला है कि इससे पहले के सभी ग्रन्थ इसके सामने तुच्छ पड़ गये। काशिका का भी महत्त्व जाता रहा। यह संस्कृत के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए व्याकरण का सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ हो गया है। भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी पर अपनी टीका **प्रौढमनोरमा** ग्रन्थ के रूप में लिखी है। उसके अन्य ग्रन्थ ये हैं—(१) **शब्दकौस्तुभ**। यह पाणिनि के सूत्रों पर अष्टाध्यायी के क्रम से ही टीका है। (२) **लिंगानुशासनवृत्ति**। यह पाणिनि के द्वारा शब्दों के लिंगों के विषय में लिखित लिंगानुशासन पर टीका है। (३) **वैयाकरणमतोन्मज्जन**। यह पद्यात्मक ग्रन्थ है। इसमें वैयाकरणों के दार्शनिक सिद्धान्तों को संक्षेप में वर्णन किया गया है।

भट्टोजिदीक्षित के शिष्य **वरदराज** (लगभग १६५० ई०) ने **मध्य-सिद्धान्कौमुदी** और **लघुसिद्धान्तकौमुदी** ग्रन्थ लिखे हैं। ये दोनों ग्रन्थ सिद्धान्तकौमुदी के संक्षेप हैं। इसी समय भट्टोजिदीक्षित के भतीजे **कौण्ड भट्ट** ने **वैयाकरणभूषणसार** ग्रन्थ लिखा है। यह भट्टोजिदीक्षित के वैया-करणमतोन्मज्जन की टीका है।

नागेशभट्ट भट्टोजिदीक्षित के पौत्र **हरिदीक्षित** का शिष्य था। उसका समय १७वीं शताब्दी का अन्त माना जाता है। उसने व्याकरण, योग धर्मशास्त्र और काव्यशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उसने **जगन्नाथ** के **रसगंगाधर** की टीका लिखी है। उसने सिद्धान्तकौमुदी की टीका के रूप में **बृहच्छब्देन्दुशेखर** और **लघुशब्देन्दुशेखर** दो ग्रन्थ लिखे हैं ये दोनों क्रमशः

बड़ी और छोटी टीकाएँ हैं । उसने **महाभाष्य** पर की गई **कैयट** की टीका **महाभाष्यप्रदीप** पर **महाभाष्यप्रदीपोद्योत** अर्थात् **उद्योत** नामक टीका लिखी है। उसने संस्कृत व्याकरण के दार्शनिक दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखते हुए तीन ग्रन्थ लिखे हैं—**मंजूषा, लघुमंजूषा, परमलघुमंजूषा** । ये तीनों एक ही विशाल ग्रन्थ मंजूषा के संक्षिप्त और अतिसंक्षिप्त रूप हैं । उसने अपने ग्रन्थ **स्फोटवाद** में वैयाकरणों के स्फोटवाद का विवेचन किया है । उसने परिभाषेन्दुशेखर में वैयाकरणों द्वारा स्वीकृत परिभाषाओं का विवेचन किया है । **नागेश** के शिष्य **पायगुण्ड वैद्यनाथ** (लगभग १७५० ई०) ने व्याकरण विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं । इसमें से अधिकांश अपने पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों पर टीकाएँ हैं । सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन निम्नलिखित दो टीकाओं से बहुत सरल हो गया—(१) **जिनेन्द्रसरस्वती** (लगभग १७५० ई०) की **तत्त्वबोधिनी टीका** । यह टीका बहुत विद्वत्तापूर्ण तथा आलोचनात्मक है। (२) **वासुदेव दीक्षित** (लगभग १७५० ई०) की **बालमनोरमा** टीका । यह टीका बहुत सरल है और इसमें विस्तार के साथ सब बातें स्पष्ट की गई है ।

११२० ई० में **क्षीरस्वामी** ने **निपाताव्ययोपसर्ग** नामक ग्रन्थ की रचना की । इसमें उन्होंने अव्ययी शब्दों की यथाक्रम विस्तृत व्याख्या की है । **विजयनगर** के **माधव** (लगभग १३५० ई०) के भाई **सायण** ने **धातुवृत्ति** नामक ग्रन्थ लिखा है । उसने अपने भाई के नाम से इस ग्रन्थ का नाम **माधवीय-धातुवृत्ति** रक्खा है । इसमें सभी धातुओं के सारे लकारों में रूप दिये हैं तथा धातुओं से बनने वाले कृदन्त शब्दों को भी दिया है ।

निम्नलिखित ग्रन्थों की सहायता से व्याकरण-शास्त्र का अध्ययन बहुत अधिक विकसित हुआ—**पाणिनि, वररुचि, शबरस्वामी** और **हर्षवर्धन** आदि के लिंगानुशासन, शब्दों की रचना को बताने वाले उणादिसूत्र, स्वरों के नियमबोधक फिट्सूत्र तथा गणपाठ आदि । इनमें से बहुतों का लेखक पाणिनि माना जाता है । कुछ विद्वान् **फिट्सूत्रों** का लेखक **शान्तनवाचार्य** को मानते हैं और कुछ **शान्तनु** को ।

वैयाकरणों का स्फोटवाद

वैयाकरणों ने व्याकरण को शास्त्र की कोटि से ऊपर उठाकर दर्शन की कोटि में लाने के लिए स्फोट-सिद्धान्त की स्थापना की। स्फोट-सिद्धान्त को संक्षेप में इस प्रकार रख सकते हैं--शब्द के प्रत्येक वर्ण पृथक्-पृथक् और सम्मिलित दोनों रूपों में अर्थ का बोध कराने में असमर्थ हैं, क्योंकि ज्योंही एक वर्ण का उच्चारण किया जाता है, वह नष्ट हो जाता है और जिस समय तक अन्तिम वर्ण का उच्चारण किया जाता है, उस समय तक पहले का कोई वर्ण शेष नहीं रहता है। अतः वर्ण स्वयं किसी अर्थ का बोध कराने में असमर्थ हैं। अतः वर्णों के अतिरिक्त अन्य किसी की अर्थबोधन के लिए सत्ता स्वीकार करनी चाहिए। अतः अर्थबोधन के लिए स्फोट की सत्ता स्वीकार की जाती है। स्फोट शब्द का अर्थ है कि जिसके द्वारा अर्थ प्रस्फुटित होता है।--"स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोटः" (नागेशभट्ट का स्फोटवाद)। अतः वर्णों के द्वारा जो अर्थ प्रकट नहीं होता है, उसको स्फोट प्रकट करता है। स्फोट एक है, अविनाशी है और सर्वव्यापक है। जब वर्णों का उच्चारण होता है, तब स्फोट की उच्चारण-सम्बन्धी चार अवस्थाएँ होती हैं--**वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा।**

पतंजलि ने स्फोट-सिद्धान्त का उल्लेख किया है। **नागेश** के मतानुसार स्फोट-सिद्धांत का प्रवर्तक **स्फोटायन** ऋषि था। **भर्तृहरि** ही सर्वप्रथम लेखक हैं जिसने स्फोट-सिद्धान्त का सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन **वाक्यपदीय** में किया है। उच्चरित शब्दों के विनश्वर रूप में और शब्दब्रह्म के मायारूप में समता है। देखिए :--

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

वाक्यपदीय १-१

अतएव उसको ध्वनि कहते हैं। जिसके द्वारा अर्थ का बोध होता है, वह शब्द का स्फोट रूप है। शब्दों के उच्चारण के साथ चैतन्य का प्रका-

शन होता है । उसको ही स्फोट कहा जाता है । शब्द केवल ध्वनिमात्र नहीं है। उनमें स्फोट का अंश रहता है, जो कि बहुत सूक्ष्म और अदृश्य है। शुद्ध शब्दों का उच्चारण धर्म करने के तुल्य है । स्फोट ब्रह्म है। उसको मानने के कारण वैयाकरणों को शब्दब्रह्मवादी कहा जाता है । संगीतज्ञ भी शब्दब्रह्म के उपासक होते हैं । **मण्डन मिश्र** (६१५-६९५ ई०) ने अपने ग्रन्थ **स्फोटसिद्धि** में स्फोट सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। **नागेश भट्ट** ने अपने ग्रन्थ **स्फोटवाद** में इस सिद्धान्त को विधिवत् रक्खा है ।

पाणिनीय व्याकरण के अतिरिक्त अन्य व्याकरण की शाखाएँ

पाणिनीय अष्टाध्यायी के बहुत समय बाद यह आवश्यकता अनुभव हुई कि पाणिनि के विशाल ग्रन्थ को जनता की सुविधा के लिए सरल बनाया जाय । बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों के अनुयायियों ने यह प्रयत्न किया कि पाणिनीय पद्धति के आधार पर ऐसी पद्धति निकाली जाय जो कि उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके । इनमें से कई ऐसी शाखाएँ थीं, जो कि वेदोक्त धर्म को नहीं मानती थीं, अतः उन्होंने अपने ग्रन्थों से वैदिक भाग को निकाल दिया । साथ ही उन्होंने धातुपाठ, गणपाठ उणादिसूत्र और लिंगानुशासन भी अपने ढंग से पृथक् रक्खे है । पाणिनीय व्याकरण का प्रकट रूप से विरोध करने के कारण तथा जनप्रियता न प्राप्त कर सकने के कारण ये शाखाएँ बहुत शीघ्र नष्ट हो गई । ये शाखाएँ धर्म-विशेष के अनुयायियों के आधार पर ही कुछ समय तक चलीं । इनमें से अधिकांश शाखाएँ अब नष्ट हो चुकी हैं या उनके बहुत थोड़े अनुयायी हैं ।

चान्द्र व्याकरण की शाखा का संस्थापक एक बौद्ध **चन्द्रगोमी** था । उसने **चान्द्रव्याकरण** लिखा है । इसमें ६ अध्याय और ३१०० सूत्र हैं । उसके इस ग्रन्थ का प्रभाव काशिका पर दिखाई देता है, अतः उसका समय ५०० ई० से पूर्व मानना चाहिए । इस ग्रन्थ का तथा इस शाखा के लगभग दस ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में हुआ है । इस शाखा का लंका में विशेष

प्रचार हुआ और वहाँ १३वीं शताब्दी में एक बौद्धपुरोहित **काश्यप** ने **बालावबोध** नामक ग्रन्थ लिखकर इस शाखा को नवीन रूप दिया।

जैनेन्द्र शाखा के अनुयायी अपनी शाखा की उत्पत्ति **जिन महावीर** से मानते हैं। उनका कथन है कि जिन महावीर ने इन्द्र के प्रश्नों के उत्तर दिये थे। इन उत्तरों के आधार पर ही यह नवीन शाखा प्रचलित हुई थी। यह शाखा जिन और इन्द्र के प्रश्नोत्तर से चली, अतः इसका नाम दोनों के नाम से जिनेन्द्र शाखा के रूप में प्रचलित हुआ। इसका मूल ग्रन्थ दो रूपों में प्राप्त हुआ है। एक में ७०० सूत्र हैं और दूसरे में ३०० सूत्र हैं। इसकी पारिभाषिक शब्दावली पाणिनि की पारिभाषिक शब्दावली से अधिक कठिन है, अतएव यह व्याकरण पाणिनीय व्याकरण से अधिक कठिन है। **देवनन्दी** इन सूत्रों का रचयिता माना जाता है। इसकी उपाधि पूज्यपाद थी। यह और जिनेन्द्र-बुद्धि एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। इन सूत्रों पर केवल दो टीकाएँ लिखी गई हैं। एक **अभयनन्दी** (७५० ई०) की और दूसरी **सोमदेव** (११वीं शताब्दी ई०) की। इसके अतिरिक्त इस शाखा पर और कोई ग्रन्थ नहीं लिखा गया है। एक नवीन ग्रन्थ **पंचवस्तु** इन सूत्रों का नवीन रूप है। इसका समय और लेखक अज्ञात है। यह आधुनिक रचना है। यह शाखा दिगम्बर जैनों में प्रचलित थी।

एक श्वेताम्बर जैन **शाकटायन** ने ९वीं शताब्दी ई० में **शाकटायन शाखा** की स्थापना की। शाकटायन ने **शब्दानुशासन** नामक ग्रन्थ लिखा है और उस पर **अमोघवृत्ति** नामक टीका भी स्वयं लिखी है। यह ग्रन्थ पाणिनि चान्द्र और जैनेन्द्र व्याकरणों के अनुकरण पर लिखा गया है। इसमें चार अध्याय हैं और ३२०० सूत्र हैं। इसकी पद्धति **सिद्धान्तकौमुदी** के तुल्य है। इस पद्धति को ११वीं शताब्दी में **दयापाल** ने नवीन रूप दिया और रूपसिद्ध नामक ग्रन्थ लिखा। १४वीं शताब्दी में **अभयचन्द्र** ने **प्रक्रियासंग्रह** ग्रन्थ लिखकर इसको नवीन रूप में प्रस्तुत किया है।

धारानरेश **भोज** (१००५–१०५४ ई०) ने **सरस्वतीकण्ठाभरण** नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें ६००० सूत्र हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी के प्रतिरूप

इसमें ८ अध्याय हैं। अध्ययन के लिए इस पद्धति को सरल बनाने के लिए लेखक ने ग्रन्थ के कलेवर में वार्तिक, उणादिसूत्र और परिभाषाओं को एकत्र कर दिया है। वैदिक धर्म का अनुयायी होने के कारण उसका प्रयास पणिनि-विरुद्ध नहीं है। संस्कृत के अध्ययन को सरल करने के लिए उसने सूत्रों की रचना स्वत: की थी।

हेमचन्द्र शाखा का संस्थापक जैन **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) था। उसने **शब्दानुशासन ग्रन्थ** लिखा है। इसमें आठ अध्यायों मे ४५०० सूत्र हैं। इसके अन्तिम अध्याय में प्राकृत व्याकरण है। इस पर हेमचन्द्र ने ही **बृहद्-वृत्ति** नामक टीका लिखी है। हेमचन्द्र के शब्दानुशासन पर **मेघविजय** (१७वीं शताब्दी ई०) ने **शब्दचन्द्रिका** नामक टीका लिखी है। हेमचन्द्र की **बृहद्वृत्ति** पर **देवेन्द्र सूरि** (समय अज्ञात) ने **हेमलघुन्यास** नामक टीका लिखी है।

कातन्त्र शाखा की स्थापना पाणिनीय व्याकरण के संक्षेप के रूप में हुई। **शरवर्मा,** जिसका दूसरा नाम **शर्ववर्मा** है, **गुणाढ्य** का प्रतिद्वन्द्वी था। उसने राजा सातवाहन से प्रतिज्ञा की कि वह उसे ६ मास में संस्कृत भाषा सिखा देगा। उसने सुब्रह्मण्य की उपासना की और उसने प्रसन्न होकर उसको सरल व्याकरण प्रकट किया। उसका ही नाम **कातन्त्र, कलाप** या **कौमार** व्याकरण है। इस ग्रन्थ का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० या ई० में मानना चाहिए। यह पाणिनि की अष्टाध्यायी से कुछ संक्षिप्त है। इस **कातन्त्र व्याकरण** में चार अध्याय हैं और १४०० सूत्र है। इसमें प्रत्याहारों को हटाकर उनका पूरा रूप दिया गया है। इसमें सूत्रों को सिद्धान्तकौमुदी के तुल्य ही विषयानुसार रक्खा गया है। इस पर ८वीं शताब्दी में **दुर्गासिंह** ने टीका लिखी है। यह ग्रन्थ कश्मीर और लङ्का में बहुत प्रचलित हुआ है। कश्मीर में भट्ट **जयधर** ने इसी शाखा पर **बालबोधिनी** नामक ग्रन्थ लिखा है। इस पर **उग्रभूति** ने **न्यास** नाम की टीका लिखी है।

सारस्वत शाखा की उत्पत्ति मुस्लिम राजाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई थी। इस व्याकरण में केवल ७०० सूत्र हैं। इस व्याकरण

की विशेषता यह है कि यह संक्षिप्त है। इसका विषय-विवेचन सरल है और इसमें कठिन तथा अप्रचलित रूपों को हटा दिया गया है। इसका नाम सारस्वत इसलिए पड़ा कि इसके सूत्रों को देवी सरस्वती ने प्रगट किया था। यह शाखा १२५० ई० के लगभग प्रारम्भ हुई। इन सूत्रों का कर्ता एक **नरेन्द्र** नामक व्यक्ति माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि **अनुभूतिस्वरूपाचार्य** ने इन सूत्रों को क्रमबद्ध किया है और इन पर **सारस्वतप्रक्रिया** नामक टीका लिखी है। वह १३वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। इस सारस्वतप्रक्रिया पर १५ टीकाएँ लिखी गई हैं। उनमें से कुछ टीकाएँ ये हैं—**मण्डन** का **मण्डनभाष्य** तथा **रामचन्द्राश्रम** की **सिद्धान्तचन्द्रिका**। रामचन्द्राश्रम का समय १५५० ई० माना जाता है। इस शाखा के लिए **हर्षकीर्ति** (१५५० ई०) ने धातुपाठ तैयार किया। यह पद्धति भट्टोजि-दीक्षित के समय तक प्रचलित थी।

बोपदेव शाखा का ग्रन्थ **बोपदेव** कृत **मुग्धबोध** है। बोपदेव १३वीं शताब्दी ई० में हुआ था। यह शाखा पाणिनीय व्याकरण को सरल बनाने के लिए प्रारम्भ हुई थी। इस पद्धति की ये विशेषताएँ हैं—विषय-विवेचन की सरलता, संक्षेप तथा धार्मिक भावों का सम्मिश्रण। इस शाखा में जो पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है, वह कठिनता से समझ में आता है, अतएव यह व्याकरण कठिन हो गया है। **रामतर्कवागीश ने मुग्धबोध** की टीका की है। बोपदेव **कविकल्पद्रुम** का भी लेखक माना जाता है। इसमें धातुओं को अन्त्याक्षर के अनुसार क्रमबद्ध किया गया है। इस पर बोपदेव ने ही **कामधेनु** नाम की टीका भी लिखी है।

जौमरशाखा का संस्थापक **क्रमदीश्वर** था। उसने पाणिनीय अष्टाध्यायी का संक्षिप्त रुप **संक्षिप्तसार** ग्रन्थ लिखा है। लेखक का समय ११वीं शताब्दी के बाद और १४वीं शताब्दी के पूर्व का है। **जूमरनन्दी** ने इस शाखा को नवीन रूप दिया है, अतः इस शाखा का नाम उसी के नाम पर पड़ा है। जूमरनन्दी ने संक्षिप्तसार पर **रसवती** नाम की एक टीका लिखी है।

१२वीं शताब्दी में संक्षिप्तसार पर एक दूसरी टीका **गोयीचन्द्र** की लिखी हुई **गोयीचन्द्रिका** है।

सौपद्म शाखा की स्थापना **पद्मनाभभट्ट** ने की थी। वह १४वीं शताब्दी में हुआ था। उसने पाणिनीय व्याकरण के अधिकांश भाग को **सौपद्म-व्याकरण** लिखकर नवीन रूप दिया है। इस पर उसने स्वयं **सौपद्म-पंजिका** नाम की टीका लिखी है।

चैतन्य के एक शिष्य **रूपगोस्वामी** ने **हरिनामामृत** नामक व्याकरण का एक ग्रन्थ लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि उसने व्याकरण को साम्प्रदायिक रूप मे प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार के और दो ग्रन्थ हैं—**जीवगोस्वामी** का **हरिनामामृत** और एक अज्ञात लेखक का **चैतन्यामृत**। इन ग्रन्थों में कृष्ण की प्रशंसा की गई है, परन्तु इसके विपरीत **बालरामपंचानन** की **प्रबोधचन्द्रिका** में शिव की प्रशंसा की गई है।

संस्कृत व्याकरण के साथ ही साथ प्राकृत व्याकरण का भी स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ। इसका सबसे प्राचीन ग्रन्थ **वररुचि** का **प्राकृतप्रकाश** है। इसमें प्रथम ९ अध्यायों में **महाराष्ट्री** प्राकृत का वर्णन है और बाद के तीन अध्यायों में क्रमशः **पैशाची, मागधी** और **शौरसेनी** प्राकृत का वर्णन है। इसमें अपभ्रंश का वर्णन नहीं है। वररुचि का समय ५०० ई० के पूर्व का मानना चाहिए, क्योंकि ५०० ई० से अपभ्रंश विभाषा के रूप में विकसित हुआ है। भारतीय परम्परा **वररुचि** और **वार्तिककार कात्यायन** को एक ही व्यक्ति मानती है। अतः उसका समय कात्यायन का ही समय मानना चाहिए। प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री **भामह** (लगभग ७०० ई०) ने केवल अन्तिम अध्याय को छोड़कर शेष सभी अध्यायों पर **मनोरमा** नाम की टीका लिखी है। १०वीं शताब्दी में **रामपाणिवाद** ने प्रथम ९ अध्यायों पर **प्राकृत-प्रकाशवृत्ति** नाम की टीका लिखी है। **कृष्णलीलाशुक** (लगभग ११५० ई०) ने **श्रीचिह्नकाव्य** लिखा है। इसमें उसने वररुचि के प्राकृतप्रकाश के नियमों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

प्राकृतसूत्रों के रचयिता रामायण के लेखक **वाल्मीकि** ऋषि माने जाते हैं। उनको **वाल्मीकिसूत्र** भी कहते हैं। इन सूत्रों का समय इतना प्राचीन नहीं हो सकता है, क्योंकि जिस रूप में यह अब प्राप्त होता है, उसमें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका और अपभ्रंश इन सबका वर्णन है। **त्रिविक्रम** ने १४वीं शताब्दी में इन सूत्रों पर **प्राकृतसूत्रवृत्ति** नाम की टीका लिखी है। सम्भवतः यही इन सूत्रों का रचयिता है। **हेमचन्द्र** ने अपने **शब्दानुशासन** में स्वरचित प्राकृतसूत्रों को आठवें अध्याय में रक्खा है। उसने स्वयं उन पर टीका लिखी है। उसने इस ग्रन्थ में **प्राकृत भाषा, जैन महाराष्ट्री** और **आर्ष प्राकृत** का वर्णन किया है।

त्रिविक्रम ने १४वीं शताब्दी में प्राकृतसूत्रों पर टीका के अतिरिक्त **प्राकृतशब्दानुशासन** ग्रन्थ लिखा है। १४वीं शताब्दी के ही एक लेखक सिंहराज ने **प्राकृतरूपावतार** ग्रन्थ लिखा है। १६वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में **लक्ष्मीधर** ने **षड्भाषाचन्द्रिका** नामक ग्रन्थ लिखा था। इसमें उसने प्राकृत की ६ विभाषाओं अर्थात् **महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी, पैशाची चूलिका, पैशाची** और **अपभ्रंश** का वर्णन किया है। एक **चन्द्र** नामक लेखक (समय अज्ञात) ने **प्राकृतलक्षण** ग्रन्थ लिखा है। इसका समय अनिश्चित है। एक **लंकेश्वर** ने **शेषनाग** के **प्राकृतव्याकरणसूत्र** पर **प्राकृतकामधेनु** नामक टीका लिखी है। इस **लंकेश्वर** का दूसरा नाम **रावण** था। १७वीं शताब्दी में **रामतर्कवागीश** ने **प्राकृतकल्पतरु** ग्रन्थ लिखा है। इस पर प्राकृतकामधेनु का प्रभाव पड़ा है। प्राकृतकल्पतरु ने १७वीं शताब्दी के एक लेखक **मार्कण्डेय** को **प्राकृतसर्वस्व** लिखने के लिए प्रेरित किया।

अध्याय २७

छन्दःशास्त्र और कोशग्रन्थ

छन्दःशास्त्र

शांख्यायनश्रौतसूत्र, निदानसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य और कात्यायन की अनुक्रमणियों आदि में वैदिक छन्दों का विवेचन किया गया है। श्रेण्यकाल में छन्दःशास्त्र का निरन्तर विकास होता रहा है। इस काल में छन्द को दो भागों में विभक्त किया गया था—**वृत्त** और **जाति**। वृत्त का नियमन गणों के द्वारा होता है। प्रत्येक गण में तीन वर्ण होते हैं। इन तीनों वर्णों में ह्रस्व और दीर्घ के स्थान का अन्तर होने से आठ विभिन्न गण हो जाते हैं। इसमें प्रत्येक वर्ण में प्राप्त ह्रस्व या दीर्घ मात्राओं की गणना की जाती है। तदनुसार ही छन्दों में अन्तर होता है। ये छन्द दो प्रकार के होते हैं—**सम** और **विषम**। प्रत्येक श्लोक में चार पाद होते हैं। समवृत्तों में प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या समान ही होती है और विषम वृत्तों में प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या समान नहीं होती है। जाति छंदों में वर्णों की संख्या नहीं गिनी जाती है, अपितु मात्राओं की सख्या गिनी जाती है। प्रत्येक पाद में निश्चित मात्राओं की संख्या होनी चाहिए। इन छन्दों में निश्चित स्थान पर यति (विराम) होना चाहिए। महाभारत में भी वैदिक छन्द प्राप्त होते हैं। वैदिक काल का अनुष्टुप् छन्द ही श्रेण्यकाल में श्लोक हो गया है। वैदिक छन्दों में से बहुत से छन्द श्रेण्यकाल में लुप्त हो गये हैं और उनके स्थान पर कितने ही नये छन्द आ गये हैं।

वैदिक काल के पश्चात् इस विषय के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं **पिंगल** या **पिंगलनाग** का **छन्दःसूत्र** तथा **जयदेव** का **जयदेवछन्द**। इसकी शैली वैदिक

ग्रन्थों के तुल्य है, परन्तु इसमें वैदिक छन्दों का विवेचन नहीं है। जिस प्रकार पाणिनि ने संक्षेप के लिए प्रत्याहारों का उपयोग किया है, उसी प्रकार पिंगल ने संक्षेप के लिए छन्दों के लक्षण में गणों का उपयोग किया है। ये ग्रन्थ श्रेण्यकालीन छन्दों का वर्णन नहीं करते। **प्राकृतछन्दःसूत्र** का लेखक भी वही माना जाता है। वह कालिदास से बहुत पूर्व हुआ होगा।

वृत्तरत्नावली और **श्रुतबोध** ये दोनों कालिदास की रचनाएँ मानी जाती हैं। किन्तु यह गलत है। दोनों में श्रेण्यकाल के छन्दों का विवेचन है। **जनाश्रय** (लगभग ८०० ई०) ने **छन्दोविचिति** ग्रन्थ लिखा है। उसने उसमें छन्दों के उदाहरण अपने पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों से दिये हैं। **वराहमिहिर** (५८७ ई०) ने अपनी **बृहत्संहिता** में ग्रहों आदि की गति का वर्णन किया है। साथ ही उसने छन्दों के विषय में एक अध्याय दिया है। **क्षेमेन्द्र** (१०५० ई०) ने अपने **सुवृत्ततिलक** में अपने पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों का उल्लेख किया है। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) ने छन्दों के विषय में **छन्दोऽनुशासन** ग्रन्थ लिखा है। **केदारभट्ट** ने **वृत्तरत्नाकर** ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ जब से लिखा गया है, तभी से बहुत प्रसिद्ध हो गया है। केदारभट्ट १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। **प्राकृतछन्दःसूत्र** में प्राकृत भाषा के छन्दों का वर्णन किया गया है। कुछ लोगों का मत है कि इस ग्रन्थ का लेखक **पिंगल** है। किन्तु यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। इसका लेखक अज्ञात है। ऐसा निरूपण किया जाता है कि वह १५वीं शताब्दी के पूर्व लगभग १४२५ ई० में रहा होगा। छन्द विषय पर अन्य ग्रन्थ ये हैं--**गंगादास** (१५वीं शताब्दी ई०) की **छन्दोमंजरी**, **दामोदर मिश्र** (१६वीं शताब्दी ई०) का **वाणी-भूषण** और **दुःखभंजन** कवि का **वाग्वल्लभ**।

श्रेण्यकाल के छन्दों में ये छन्द अधिक प्रचलित हैं--मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलक, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, अनुष्टुभ्, आर्या और उपजाति।

कोशग्रन्थ

कोशग्रन्थ निघण्टु-परम्परा के ही अविच्छिन्न रूप हैं। निघण्टु में वैदिक शब्दों का संग्रह है। इसकी व्याख्या **निरुक्त** नाम से **यास्क** ने की है। कोशग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दों का संग्रह होता था और कवियों आदि को सुविधा प्राप्त होती थी कि वे उन शब्दों में से उचित शब्दों को छाँट लें। इनमें किसी विशेष ग्रन्थ के ही शब्दों का संग्रह नहीं होता था। निरुक्त में संज्ञाशब्दों और धातुओं दोनों का ही वर्णन है। अन्य कोशग्रन्थों में संज्ञाशब्दों और अव्ययों का अधिक वर्णन है, धातुओं का कम। इन कोशग्रन्थों में शब्दों को अकारादि क्रम से नहीं रक्खा गया है। उनको पद्य का रूप दिया गया है। उनके श्लोकों को स्मरण किया जाता था। कोशग्रन्थों में दो प्रकार के शब्दों को स्थान दिया जाता था—समानार्थक और नानार्थक। समानार्थक शब्दों में शब्दों को अर्थ के अनुसार रक्खा जाता है। कहीं पर शब्दों को प्रारम्भिक अक्षरों के अनुसार और कहीं पर अन्तिम अक्षर के अनुसार और कहीं पर दोनों के मिश्रित रूप में रक्खा गया है। कहीं पर शब्दों को अक्षरों की संख्या के अनुसार भी रक्खा गया है। कहीं-कहीं पर लिंगनिर्देश किया गया है। संज्ञाशब्द प्रथमा विभक्ति में दिये गये हैं। कतिपय कोशग्रन्थों में केवल नानार्थक शब्दों को ही रक्खा गया है। जिसमें समानार्थक शब्द रक्खे गये हैं, उनमें भी नानार्थक शब्दों के लिए एक अध्याय दिया गया है।

सबसे प्राचीन शब्दकोश ये हैं—**कात्यायन** कृत, **नाममाला, वाचस्पति** का **शब्दकोश, विक्रमादित्य** का **शब्दकोश, शब्दार्णव ग्रन्थ, संसारावर्त** तथा **व्यडि** कृत **उत्पलिनी**। ये सभी ग्रन्थ अब नष्ट हो चुके हैं। नानार्थक शब्दों पर एक ग्रन्थ है **नानार्थशब्दरत्न**। इसका रचयिता कालिदास को माना जाता है। महाराज भोज से प्रेरित होकर **निचुल** कवि ने इस पर **तरला** नाम की एक टीका लिखी है। इस विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता कि कालिदास ने नानार्थशब्दरत्न की रचना की थी। निचुल कवि की

एकरूपता भी अज्ञात है। आजकल सबसे प्राचीन जो शब्दकोश प्राप्त होता है, वह है **अमरसिंहकृत अमरकोश**। अमरसिंह एक बौद्ध लेखक था। वह राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक माना जाता है। उसका समय ४०० ई० और ६०० ई० के बीच का माना जाता है। इस कोश का दूसरा नाम **नामलिंगानुशासन** है। इसमें प्रथम तीन काण्डों में समानार्थक शब्दों का वर्णन है। अन्त में नानार्थक शब्दों, अव्ययों तथा लिंगों का वर्णन है। अमरसिंह के समकालीन एक लेखक **शाश्वत** ने **अनेकार्थसमुच्चय** ग्रन्थ लिखा है। **हलायुध** ने ९५० ई० के लगभग **अभिधानरत्नमाला** ग्रन्थ लिखा है। **नाममालिका** धारानरेश **भोज** (१००५-१०५४ ई०) की रचना है। **यादवप्रकाश** ने ११ वीं शताब्दी के मध्य में **वैजयन्ती** ग्रन्थ लिखा है। इसमें समानार्थक और नानार्थक दोनों शब्दों का संग्रह है। यादवप्रकाश पहले अद्वैतवादी था, परन्तु बाद में रामानुज के प्रभाव के कारण वह विशिष्टाद्वैतवादी हो गया था। **अजयपाल** (१०७५-११४० ई०) **नानार्थरत्नमाला** ग्रन्थ का लेखक माना जाता है। इसमें अनेकार्थक शब्दों का वर्णन है। १२ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ये ग्रन्थ लिखे गये—(१) **केशवस्वामी** ने **नानार्थार्णवसंक्षेप** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने नानार्थक शब्दों के अर्थ और उनके लिंग लिखे हैं। (२) **महेश्वर** ने **विश्वप्रकाश** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने समानार्थक और नानार्थक शब्दों का वर्णन किया है। इसी समय दूसरे **महेश्वर** ने शब्द-विन्यास का वर्णन करते हुए **शब्दभेदप्रकाश** नामक ग्रन्थ लिखा है। (३) **हेमचन्द्र** ने **अभिधानचिन्तामणि** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने समानार्थक शब्दों का वर्णन किया है। साथ ही जैन देवताओं का भी वर्णन किया है। उसने इस ग्रन्थ का एक परिशिष्ट **निघण्टुशेष** लिखा है। इसमें उसने औषधियों और वनस्पतियों का वर्णन किया है। उसने एक दूसरा परिशिष्ट **अनेकार्थसंग्रह** लिखा है। इसमें उसने अनेकार्थ शब्दों का वर्णन किया है। इसमें एक अक्षर वाले शब्दों से लेकर ६ अक्षर वाले अनेकार्थक शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। **श्रीकण्ठचरित** के लेखक **मंख** ने **अनेकार्थकोश** ग्रन्थ लिखा है। **राघवपाण्डवीय** का लेखक जैन कवि **धनंजय नाममाला** और **निघण्टसमय**

का लेखक माना जाता है। १२०० ई० के लगभग **पुरुषोत्तमदेव** ने अमरकोश का परिशिष्ट **त्रिकाण्डशेष** लिखा है। इसमें अधिकतर बौद्ध धर्म से सम्बद्ध शब्द हैं। ये शब्द प्रयोग में कम आते हैं। उसने अमरकोश के समानार्थक और नानार्थक शब्दों पर **हारावली** व्याख्या लिखी है। **भट्टमल** ने समानार्थक धातुओं पर **आख्यातचन्द्रिका** ग्रन्थ लिखा है। वह १४वीं शताब्दी से पूर्व हुआ था। **हरिहर** द्वितीय के मन्त्री **इरुगप्पदण्डनाथ** ने १४वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में **नानार्थरत्नमाला** ग्रन्थ लिखा है। **वामनभट्टबाण** (लगभग १४२० ई०) ने दो कोशग्रन्थ लिखे हैं—**शब्दचन्द्रिका** और **शब्दरत्नाकर**। **मेदिनीकर** ने १४वीं शताब्दी ई० में नानार्थक शब्दों के विषय में **अनेकार्थशब्दकोश** ग्रन्थ लिखा है। **केशवदैवज्ञ** ने समानार्थक शब्दों के विषय में **कल्पद्रु** नामक कोश लिखा है। वह १७वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में हुआ था। समानार्थक शब्दों के विषय में लिखे गये **नामसंग्रहमाला** ग्रन्थ का लेखक **अप्पयदीक्षित** माना जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ छोटे कोशग्रन्थ हैं--**एकाक्षरकोश,** इसमें एक अक्षर वाले शब्दों का वर्णन है। **द्विरूपकोश**, इसमें दो वर्ण वाले शब्दों का वर्णन है। इनके अतिरिक्त गणित ज्योतिष, फलित ज्योतिष और वैद्यक सम्बन्धी कोष हैं। उनका समय अज्ञात है। संस्कृत और फारसी के शब्दों का कोश **पारसीप्रकाश** है। गणित ज्योतिष और फलित ज्योतिष के पारिभाषिक शब्दों को लेकर **वेदांगराय** ने १६४३ ई० में **पारसीप्रकाश** ग्रन्थ लिखा है। **महादेव वेदान्ती** ने उसी समय **उणादिकोश** लिखा है। **धनपाल** (१००० ई०) लिखित **पैयालच्छि** ग्रन्थ प्राकृत शब्दों का कोश है। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) लिखित **देशीनाममाला** प्राकृत शब्दों का ही कोश है। **तारानाथ तर्कवाचस्पति**-लिखित **वाचस्पत्य** और **राधाकान्तदेव**-लिखित शब्दकल्पद्रुम, ये दोनों ग्रन्थ विश्वकोश के तुल्य हैं। ये दोनों ग्रन्थ आधुनिक कृति हैं।

अध्याय २८

ज्योतिष

श्रेण्यकालीन ज्योतिष का सम्बन्ध वैदिक काल के ज्योतिष के साथ है। इस विषय की मुख्य शाखाएं गणित-ज्योतिष, फलित ज्योतिष और गणित हैं। इसमें दिनों की गणना की जाती थी और नक्षत्रों का ग्रहों के साथ गति आदि का निरीक्षण किया जाता था। वैदिक पंचांग **चान्द्र** और **सौर** दोनों प्रकार का था। उत्तरायण और दक्षिणायन का निरीक्षण किया जाता था। चन्द्रग्रहण का कारण चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया माना गया है। बहुत प्राचीन समय से ग्रहों और नक्षत्रों की गतिविधि तथा उनका मनुष्यों पर प्रभाव स्वीकार किया गया है और उसका अध्ययन किया गया है। इस विषय का विशेष विवेचन फलित ज्योतिष में किया जाता था। फलित ज्योतिष का सम्बन्ध गणित ज्योतिष से है और यह गणित ज्योतिष पर आश्रित है। गणित ज्योतिष में ग्रहों की गति का विशेष विवेचन होता है। फलित ज्योतिर्विद् मनुष्यों के भावी जीवन के विषय में भविष्यवाणी करते थे। राजाओं के लिए शान्ति और युद्ध दोनों समयों में ज्योतिषी की सहायता लेना अनिवार्य होता था। तथापि ज्योतिषी को समाज में उच्च स्थान नहीं प्राप्त था, क्योंकि वह वैदिक कर्म-काण्ड में भाग न लेने के कारण अपवित्र माना जाता था। ग्रहों की गति की गणना तथा उनकी स्थिति का निर्णय करना, इन दोनों कारणों ने गणितशास्त्र को जन्म दिया। भारतवर्ष को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसने बीजगणित और संकेतचिह्नात्मक विधि की स्थापना की। भारतवर्ष में ज्यामिति और त्रिकोण-मिति में बहुत प्रगति की जा चुकी थी। ज्योतिष-विषय के जो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, उनमें इन विषयों का विवेचन है। किसी में एक और किसी में दो विषयों का वर्णन है।

गणित ज्योतिष के जो प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, वे अपूर्ण ही प्राप्य हैं। प्राचीन लेखकों के ये ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—**गार्गीसंहिता, वृद्धगार्गीसंहिता** (३००० ई० पू० से प्राचीन), **पौष्करसादि** के ग्रन्थों के कुछ अपूर्ण अंश, नक्षत्रों के विषय में **अथर्ववेद** के परिशिष्ट और **पैतामहसिद्धान्त**। **वराहमिहिर** ने उल्लेख किया है कि ज्योतिष के इन प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थ उसे अपूर्ण रूप में प्राप्त थे—**असितदेवल, गर्ग, वृद्धगर्ग, नारद** और **पराशर**। वराहमिहिर का स्वर्गवास ५८७ ई० में हुआ था। भारतवर्ष के विषय में जो यूनानी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है, उससे ज्ञात होता है कि गर्गसंहिता और वृद्धगर्गसंहिता ईसवीय सन् से बहुत पूर्व विद्यमान् थे। इस समय भारतीयों को गणित ज्योतिष के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान था, यह उस समय के ज्योतिष के ग्रन्थों तथा अन्य विषय के ग्रन्थों से ज्ञात होता है। चन्द्रमा जलीय ग्रह माना जाता था।[1] इन्द्रधनुष जलयुक्त बादलों पर सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्बित होने से बनता है।[2] सूर्य और चन्द्रमा का स्थिति-स्थान तथा उनकी गति का वस्तुतः निरीक्षण किया गया था। सूर्य-बिम्ब की वास्तविकता को ठीक ढंग से समझा गया था। जो नक्षत्र सूर्य के मार्ग में हैं तथा जो नक्षत्र और ग्रह सूर्य-मण्डल के समीप हैं, उनके ही स्थान का अध्ययन और निरीक्षण किया गया। पृथिवी के आकर्षण के नियम को विद्वान् जानते थे। गोले और घटिका (आधे घड़े के बराबर आकृति के ताँबे के बर्तन) निरीक्षण के काम में आते थे। इनसे समय का भी निर्धारण किया जाता था।

वराहमिहिर के ग्रन्थ **पंचसिद्धान्तिका** से ज्ञात होता है कि ज्योतिष की पाँच शाखाएँ थीं। उनके नाम हैं—**पैतामह, रोमक, पौलिश, सूर्य** और **वसिष्ठ**। **पैतामहसिद्धान्त** सौर और चान्द्र दोनों गणनाओं को मानता है। **रोमकसिद्धान्त** में गणित ज्योतिष के यूनानी सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है। इसमें भारतीय युगों की पद्धति को स्वीकार नहीं किया गया है। इसमें ग्रहणों का बहुत थोड़ा विवेचन है। मध्याह्न रेखा की

---

१. कुमारसंभव ५-२२। २. कुमारसंभव ८-३१।

गणना यूनानियों के नगर से की गई है। सूर्य और चन्द्रमा के अयनवृत्त संबंधी संक्रमणों की गणना की गई है। **पौलिशसिद्धान्त** का वर्णन शुद्ध है। इसमें ग्रहणों का संक्षिप्त विवेचन है। यूनानियों के नगर और उज्जैन के मध्य देशान्तरों की दूरी का उल्लेख किया गया है। इसमें भूमध्यरेखाओं के विस्तृत चित्र दिए गए हैं। इसने मण्डलात्मक गणित ज्योतिष को विशेष देन दी है। नक्षत्रों के भ्रमण तथा ग्रहों की गति में वैषम्य का निरीक्षण किया गया। इन सभी शाखाओं में **सूर्यसिद्धान्त** सबसे अधिक शुद्ध और मान्य है। इसने केन्द्र के समीकरण के लिए सामान्य नियम दिए हैं। इसमें ग्रहणों का विस्तृत विवेचन किया गया है। **वसिष्ठ शाखा** वालों ने ग्रहों की गति और स्थिति की विषमता का विवेचन किया है।

भारतीय गणित ज्योतिष का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक आचार्य **वराहमिहिर** है। उसका ५८७ ई० में स्वर्गवास हुआ था। उसने अपनी **पंचसिद्धान्तिका** में पूर्वोक्त पाँचों ज्योतिष की शाखाओं का वर्णन किया है। **लल्ल** ने ७४८ ई० के लगभग **शिष्यधीवृद्धितन्त्र** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने ज्योतिष की ओर छात्रों की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है। इस पर **भास्कर** ने १२वीं शताब्दी में टीका लिखी है। **आर्यभट्ट** ने ९५० ई० के लगभग **आर्यसिद्धान्त** ग्रन्थ लिखा है। **आदित्यप्रतापसिद्धान्त** महाराज **भोज** (१००५-१०५४ ई०) की रचना है। एक अज्ञात लेखक का १३५० ई० से पूर्व का लिखा हुआ **विद्यामाधवीय** ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसमें लेखक ने वसिष्ठ, बृहस्पति और गार्ग्य आदि प्राचीन लेखकों की उक्तियों का विशद विवेचन किया है। एक **वृद्धवासिष्ठसंहिता** प्राप्त होती है। इसका समय अज्ञात है, किन्तु यह एक प्राचीन ग्रन्थ है। **ज्योतिर्विदाभरण** ग्रन्थ का लेखक **कालिदास** माना जाता है। इसमें ज्योतिष सम्बन्धी विषयों का विवेचन किया गया है। यह नवीन रचना है।

फलित ज्योतिष पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ **यवनजातक** है। वह नैपाली हस्तलिखित प्रति के रूप में सुरक्षित है। उस ग्रन्थ में यह लिखा हुआ है कि

९१ ई० में एक **यवनेश्वर** ने अपने कथनों को संस्कृत में अनूदित किया। यही यवन-जातक के नाम से प्रचलित हुआ। **भट्टोत्पल** (लगभग १००० ई०) के कथनानुसार उस ग्रन्थ में दिया हुआ संवत् शक संवत् है। यदि इस साक्ष्य को प्रामाणिक माना जाय तो इस ग्रन्थ का समय १६९ ई० होता है। **यवनजातक** नाम का एक दूसरा ग्रन्थ १९१ वें वर्ष (२६८ ई०) में **स्फूर्जिध्वज** के द्वारा लिखा गया है। इसमें ४ सहस्र श्लोक हैं। यवनजातक नाम के अन्य दो ग्रन्थ और हैं। इनके लेखक का नाम और समय अज्ञात है। इसमें से एक का नाम **वृद्धयवनजातक** है। इसमें ८ सहस्र श्लोक हैं। कुछ विद्वान् दूसरे ग्रन्थ का लेखक **मीनराज** को यवनाचार्य मानते हैं, जैसा कि इन ग्रन्थों के नामों से ज्ञात होता है। ये यवनजातक यूनानी उद्भव वाली फलित ज्योतिष की समस्यायों का विवेचन करते हैं।

वराहमिहिर ने ज्योतिष को तीन भागों में विभक्त किया है—(१) **तन्त्र**। इसमें गणित ज्योतिष और गणित का विवेचन होता है। (२) **होरा**। इसमें जन्मकुण्डली का वर्णन होता है। (३) **संहिता**। इसमें फलित ज्योतिष का वर्णन होता है। उसने **बृहत्संहिता** ग्रन्थ लिखा है। इसमें १०६ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वह अनेक विषयों का विद्वान् था। इसमें उसने ग्रहों और नक्षत्रों का वर्णन किया है, उनकी गति तथा उनका मनुष्य के जीवन पर प्रभाव का भी वर्णन किया है। इन विषयों के अतिरिक्त उसने इस ग्रन्थ में इन विषयों का भी वर्णन किया है—भारतीय भूगोल का संक्षिप्त वर्णन, ऋतु-चिह्न आदि, पुरुष स्त्री और पशु-पक्षियों के विशेष चिह्न तथा रेखाएँ, शकुन-वर्णन और विवाह का महत्त्व। उसने कामशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की है। उसने **बृहद्विवाहफल** और **स्वल्पविवाहफल** नामक दो ग्रन्थों में विवाह सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार किया है। ये दोनों ग्रन्थ एक ही ग्रन्थ के विशाल और लघु रूप हैं। उसने **योगयात्रा** ग्रन्थ में अन्य राजाओं के साथ युद्ध का वर्णन किया है। उसके **बृहज्जातक** और **लघुजातक** ग्रन्थ फलितज्योतिष के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

बृहज्जातक में उसने प्रायः यवनाचार्य के विचारों का उल्लेख किया है और उनकी समालोचना की है।

वराहमिहिर के पुत्र **पृथुयशाः** (लगभग ६०० ई०) ने **होराषट्पंचाशिका** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने जन्म-सम्बन्धी बातों का विवेचन किया है। **भट्टोत्पल** ने वराहमिहिर और उसके पुत्र पृथुयशाः के ग्रन्थों की टीका लिखी है। वह ९९६ ई० के लगभग हुआ था। उसने **होराशास्त्र** ग्रन्थ भी लिखा है। **विद्वज्जनवल्लभ** तथा **राजमार्तण्ड** ग्रन्थ का लेखक धारा का राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) माना जाता है। इस काल के बाद लिखे गए विवाह और अन्य संस्कार सम्बन्धी छोटे ग्रन्थों में ताजिकों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इन पर अरबी और फारसी साहित्य का भी प्रभाव पड़ा है। ताजिकों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान **नीलकण्ठ** के **ताजिका** का है। वह १५८७ ई० में लिखा गया था। **हर्षकीर्ति-सूरि-लिखित ज्योतिषसारोद्धार** ग्रन्थ का समय अज्ञात है।

हस्तरेखाशास्त्र (सामुद्रिकशास्त्र) का विवेचन **सामुद्रिकतिलक** ग्रन्थ में हुआ है। इस ग्रन्थ को **दुर्लभराज** ने ११६० ई० में प्रारम्भ किया था और उसके पुत्र **जगद्देव** ने इसको पूर्ण किया था। **स्वप्नचिन्तामणि** ग्रन्थ का लेखक भी जगद्देव माना जाता है। इस ग्रन्थ में स्वप्नसम्बन्धी बातों का वर्णन है। नरहरि ने ११७६ ई० में **नरपतिजयचर्यास्वरोदय** ग्रन्थ लिखा है। इसमें चामत्कारिक रेखाचित्र दिए गए हैं और उनमें रहस्यात्मक अक्षर रक्खे गए हैं। **अद्भुतसागर** ग्रन्थ को बंगाल के राजा **वल्लालसेन** ने ११६८ ई० में प्रारम्भ किया था और उसके पुत्र राजा **लक्ष्मणसेन** ने इसको पूर्ण किया था। इसमें शकुनों तथा भविष्यवाणियों का विवेचन है। **भयभंजन** ने **रमल-रहस्य** में रेखाओं से भविष्यवाणी का वर्णन किया है तथा **पाचककेवली** में धन रेखाओं से भविष्यवाणी का वर्णन किया है। उसका समय अज्ञात है।

फलित ज्योतिष-विषयक समस्याओं का वर्णन प्राकृत भाषा के लेखकों ने किया है। **अङ्गविज्जा** इस प्रकार का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। शरीर के

चिह्नों के आधार पर इसमें शकुनों का वर्णन किया गया है। यह किसी अज्ञात लेखक की रचना है जो ४थी शताब्दी ई० में रखा जाता है।

प्रभाशंकर का पुत्र **कानजित वायुशास्त्र** का लेखक है। वह कच्छ में स्थित **भुजङ्गपुर** का निवासी था। वह ग्रन्थ की तिथि १८२२ शक सम्वत् देता है जो १९०० ई० के सदृश है। इसमें दस अध्याय हैं। यह ग्रन्थ अन्तरिक्ष-विद्या सम्बन्धी विषयों का वर्णन करता है। इसमें प्रमुख रूप से वर्षा का वर्णन है। इस ग्रन्थ में असामयिक और सहसा होने वाली वर्षा के प्रभावों और भविष्यवाणियों की चर्चा की गई है। लेखक के अनुसार वराह, कश्यप, भद्रबाहु और वशिष्ठ की संहिताएँ तथा पराशरसूत्र इस ग्रन्थ के आधार हैं।

ज्योतिष में गणित का भी विवेचन होता है। गणित में गणित ज्योतिष, अंकगणित और बीजगणित इन तीनों का वर्णन होता है। इसमें रेखागणित का भी वर्णन है। रेखागणित का प्रारम्भ शुल्वसूत्रों से हुआ था। भारतीय गणितज्ञों ने परार्ध (१०,१४) तक की गणना करके गणित में पूर्णता प्राप्त की थी। शुद्धता भारतीय गणित की प्रमुख विशेषता है। घटाने के सिद्धान्त का ज्ञान वैदिक काल में था। अंकों का सम और विषम दो रूपों में वर्णन किया गया है। भारतीय गणितज्ञों ने ही दशमलव की विधि तथा बीजगणित की पद्धति का आविष्कार किया था। इन दोनों विधियों की पूर्णता छन्दः-शास्त्र और व्याकरण में दृष्टिगोचर होती है। सरल रेखात्मक क्षेत्रों का बनाना, क्षेत्रफल और घनफल तथा पैथागोरस के प्रमेयों का वर्णन प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने किया है। **बोधायन श्रौतसूत्र** (५०० ई० पू०) तथा **शतपथ-ब्राह्मण** में पैथागोरस के प्रमेयों के सिद्धान्त के प्रयोग का वर्णन है।

आर्यभट्ट का जन्म ४७६ ई० में **कुसुमपुर** में हुआ था। वही सबसे प्रथम भारतीय ज्योतिषी है, जिसने गणित ज्योतिष के आधार पर गणित लिखा है। उसने ४९९ ई० में **आर्यभटीय** ग्रन्थ लिखा है। इसमें आर्या छन्द में दस श्लोक हैं। उसने दूसरा ग्रन्थ **दशगीतिकासूत्र** लिखा है। इसमें १०८ श्लोक हैं। इन श्लोकों में से ३३ श्लोक **गणित** के विषय में हैं, २५

श्लोक समय के माप के विषय में हैं और ५० मण्डलों के विषय में हैं। आर्यभट्ट का मत था कि पृथ्वी गोल है और वह अपनी धुरी पर घूमती है। उसने सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण के विषय में जो मत प्रकट किया है, वही आधुनिक विद्वान् भी मानते हैं। उसने अपने ग्रन्थ में विकास, परिक्रमण, क्षेत्र, आयतन, परिधि, क्रमिक-विकास तथा बीजगणित की इकाइयों का वर्णन किया है। उसे दो का वास्तविक मूल्य ज्ञात था। उसने π का मान ३५५/२१२ दिया है जो आधुनिक गणितज्ञों द्वारा दी गई २२/७ से कहीं अधिक शुद्ध है। आर्यभट्ट के शिष्य **भास्कर** ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**लघुभास्करीय** और **महाभास्करीय**।

ब्रह्मगुप्त ने ६२८ ई० में **ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें एक अध्याय में गणित-ज्योतिष-सम्बन्धी समस्याओं को हल किया गया है। उसका जन्म ५९८ ई० में हुआ था। वह गणित में निपुण था। उसने ६६५ ई० में **खण्डखाद्यक** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने गणित ज्योतिष सम्बन्धी गणनाओं को हल करके दिया है।

बाक्षलि की हस्तलिखित प्रति का समय ८वीं शताब्दी ई० है। इसमें सूत्रों के रूप में गणित का वर्णन किया गया है। **गृहचारनिबन्धन** और **गृहचारनिबन्धनसंग्रह**—इन दो ग्रन्थों का लेखक **हरिदत्त** है जो ८६९ ई० पूर्व था। प्रथम पुस्तक की रचना पद्यात्मक है। इसमें **ग्रहित** नामक पद्धति के सिद्धान्तों के आधार पर फलित ज्योतिष सम्बन्धी गणनाओं का वर्णन है। द्वितीय पुस्तक प्रथम का संक्षिप्त रूप है। इसमें ४५ श्लोक हैं। **महावीराचार्य** ने १०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में **गणितसारसंग्रह** ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ से सरल है। इसमें गुणोत्तर श्रेणियों का वर्णन है। **श्रीधर** ने ९९१ ई० में वर्ग-समीकरण विषय पर **त्रिशती** ग्रन्थ लिखा है। धारा के राजा भोज ने १०४२ ई० में करण विषय पर **राजमृगांक** ग्रन्थ लिखा है।

भास्कराचार्य ने ११७२ ई० में **सिद्धान्तशिरोमणि** ग्रन्थ लिखा है। इसमें चार भाग हैं—(१) लीलावती। इसमें संयोगों का वर्णन है। (२) बीज-

गणित। (३) ग्रहगणित। इसमें ग्रह-सम्बन्धी गणना का वर्णन है। (४) गोल। इसमें गणित ज्योतिष सम्बन्धी समस्याओं तथा गणित ज्योतिष सम्बन्धी यन्त्रों का वर्णन है। उसने करण विषय पर ११८३ ई० में **करणकुतूहल** ग्रन्थ लिखा है। करण विषय पर **शतानन्द** ने **भास्वती** ग्रन्थ लिखा है। उसका समय अज्ञात है। **केरल** के **परमेश्वर** ने **गोलदीपिका** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें आकाश-ज्योतिष का वर्णन किया गया है। परमेश्वर का समय १५वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इसके अतिरिक्त उसने गणित ज्योतिष और फलित ज्योतिष पर दस से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से कुछ तो टीकायें हैं; जैसे, **आर्यभट्टीय**, **सूर्यसिद्धान्त**, **लीलावती** तथा अन्य। १६वीं शताब्दी के अन्त में **केरल** के **अच्युत** ने **राशिगोलस्फुटानीति** नामक ग्रंथ लिखा। इसमें ग्रहों और नक्षत्रों की लम्बाई की माप का वर्णन है साथ ही क्रान्तिवृत्त की भी चर्चा है। उसने क्रान्तिवृत्त की कमी का भी नियम दिया है। गणित ज्योतिष पर उसके कुछ और भी ग्रन्थ हैं; जैसे, **कर्णोत्तम** तथा **उपरागक्रियाकर्म**। **मालजित्** ने १६४३ ई० मे **पारसी-प्रकाश** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने पद्धति दी है कि किस प्रकार हिन्दू तिथियों को मुसलमानी तारीखों में बदला जा सकता है। उसके आश्रयदाता मुसलमान बादशाह **शाहजहाँ** ने उसको **वेदांगराय** की उपाधि दी थी। **नील-कण्ठसोमयाजिन** ने **सिद्धान्तदर्पण** नामक ग्रन्थ लिखा है। उसका जन्म १४४२ ई० में केरल में हुआ था। इसमें ज्योतिष विद्या सम्बन्धी लघुवृत्त, ज्योतिष-विद्या की स्थिरताओं, ग्रहण-सम्बन्धी रविमार्ग या क्रान्तिवृत्त, ग्रहों की पृथ्वी को केन्द्र मानकर विचार को हुई स्थिति आदि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त वह ज्योतिष विद्या के अन्य ९ ग्रन्थों का लेखक है। उसने अपने ही ग्रन्थ **सिद्धान्त दर्पण** की **सिद्धान्त दर्पण व्याख्या** नाम की टीका लिखी है। **आर्यभट्ट** के **आर्यभट्टीय** पर **आर्यभट्टी भाष्य** लिखा है। सूर्य और चन्द्रग्रहण की गणना पर **ग्रहणनिर्णय** नामक ग्रन्थ भी लिखा है।

भारतीय और यूनानी गणित ज्योतिष में कुछ समय-सम्बन्धी घटना-साहचर्य है। दोनों स्थानों पर राशियों के नाम समान हैं। भारतीय ज्योतिष-

विषयक ग्रन्थों के साथ जो यवन नाम मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि भारतीय ज्योतिष का सम्बन्ध यूनानी ज्योतिष से था। दोनों में अन्य समानताएँ ये हैं—गणना की पद्धति में समानता, सूर्य के उदय और अस्त, नक्षत्रों आदि का उदय और अस्त होना, दिन और रात्रि का ठीक-ठीक माप तथा सप्ताह के दिनों का नाम ग्रहों के नाम पर रखना। इन घटना-साहचर्यों के आधार पर पाश्चात्य विद्वान् यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि भारतीय ज्योतिष को उत्पत्ति और उसका विकास यूनानी ज्योतिष से हुआ। यह मन्तव्य सर्वथा अशुद्ध है। **बौधायन** के धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि ५०० ई० पू० से पूर्व भारतीय ज्योतिष की ये विशेषताएँ विद्यमान थीं, जिनको यूनानी विशेषताओं के समान मानते हैं। सिकन्दर के साथ यूनान को लोटते समय यूनानी भारत से बहुत से बहुमूल्य ग्रन्थ अपने साथ लेते गए थे। सम्भवतः इन ग्रन्थों से उनको अपने ज्योतिष-विषयक ज्ञान की वृद्धि में विशेष सहायता प्राप्त हुई। अतएव उनके ज्योतिष में भारतीय ज्योतिष के समान विषय आदि प्राप्त होते हैं। यहाँ पर यह मानना उचित है कि भारतीय ज्योतिषियों के यूनानियों के साथ सम्पर्क के कारण भारतीय ज्योतिष के विकास पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है। अतः यह मानना उचित है कि भारतीय ज्योतिष का जन्म और विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है। ज्योतिष केवल कल्पना का विषय नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि बहुत समय तक ग्रहों की स्थिति तथा उनकी गति आदि का निरीक्षण किया जाय और सूक्ष्मता के साथ उनकी गणना की जाय।

अध्याय २९

धर्मशास्त्र

भाव और अनुमान की दृष्टि से '**धर्म**' शब्द विस्तृत है। प्राथमिक अर्थ तो यह है कि जो संसार को स्थिर करता है वही धर्म है। यह आचार, कर्तव्य, विधान, धर्म, न्याय, नैतिकता तथा अन्य अर्थों को सूचित करता है। **मीमांसक** इसे इस अर्थ में स्वीकार करते हैं कि यह एक ऐसा कार्य है जो आत्मा में 'अपूर्व' नामक फल उत्पन्न करता है। **धर्मशास्त्र** इसका प्रयोग कर्तव्य के अर्थ में करते हैं। वे कर्तव्य पाँच प्रकार के कहे गए हैं—वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म, नैमित्तिकधर्म तथा गुणधर्म। इनके आधार हैं—**वेद**, स्मृति और धर्म तथा अपने आचार जानने वालों की परम्पराएँ तथा व्यक्तिगत सन्तोष। धर्मशास्त्रों को स्मृति कहा जाता है। देखिए :—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ॥

मनुस्मृति २–१०

'**स्मृति**' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की जा सकती है—स्मर्यते वेदधर्मोऽनेनेति।

कल्पसूत्र वेदों के आवश्यक अङ्ग हैं। बाद में धर्मशास्त्रों में जिन विषयों का वर्णन किया गया है, उनके मूलभूत नियम इन कल्पसूत्रों में प्राप्त होते हैं। अतएव ये कल्पसूत्र धर्मशास्त्र के आधार हैं। कल्पसूत्रों की शाखा **धर्मसूत्र** हैं। इनमें धार्मिक और लौकिक कर्तव्यों का विवेचन किया गया है। धर्मसूत्रों में मनुष्य के दैनिक जीवन के लिए नियम बताए गए हैं। ये नियम क्रमशः विस्तृत होकर और अन्य सामग्री के साथ सम्मिलित होकर धर्मशास्त्र के रूप में परिणत हुए। इन ग्रन्थों के लेखन में **रामायण, महाभारत और पुराणों** से विशेष सहायता मिली है। इनमें से महाभारत में

विशेष रूप से इन विषयों पर विस्तृत विवेचन है। इन ग्रन्थों से तथा अन्य ग्रन्थों से इन धर्मशास्त्रों में श्लोकादि लिए गए हैं। यही कारण है कि इन ग्रन्थों में उपदेशात्मक श्लोकादि प्राप्त होते हैं। इन ग्रन्थों में कुछ ऐसे भी श्लोकादि हैं, जो कि कई धर्मग्रन्थों में एक ही प्रकार से प्राप्त होते हैं। इसका कारण यह है कि ये श्लोक एक ही मूलग्रन्थ महाभारत आदि से लिए गए हैं, अतः समान हैं। अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि इस धर्मशास्त्र ने उस धर्मशास्त्र से श्लोक उद्धृत किया है। साधारणतया ये शर्मशास्त्र पद्य और गद्य में हैं। गद्यभाग का व्यवहार वहाँ किया गया है, जहाँ उस विषय पर कुछ विवेचन किया गया है।

धर्म का अर्थ कर्तव्य है। यह मनुष्य के विचार का स्वरूप है। इसमें नीतिशास्त्र का भी विवेचन होता है और इसमें प्रायश्चित्त के साधन भी दिये जाते हैं। धर्म का एक अङ्ग व्यवहार है। मुख्य रूप से धर्मशास्त्रों में चार बातों का वर्णन होता है। वे ये हैं--(१) **आचार**। इसमें मनुष्य के आचार-सम्बन्धी विषयों का वर्णन होता है। (२) **व्यवहार**। इसमें वैध और राजकीय कर्तव्यों का वर्णन होता है। (३) **प्रायश्चित्त**। इसमें प्रायश्चित्तों का वर्णन होता है। (४) **कर्मफल**। इसमें पूर्वकृत कर्मों के फल का वर्णन होता है। इन धर्मशास्त्रों में चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लिए प्रत्येक पुरुष और स्त्री के लिए अपने-अपने आश्रमादि के अनुसार जीवनपर्यन्त क्या काम करने चाहिए और किन कर्मों का परित्याग करना चाहिए, इसका विस्तृत विवेचन होता है।

वैदिक ग्रन्थों के द्वारा जनता की लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती थी, अतः विभिन्न धर्मशास्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। धर्मशास्त्र पर प्राचीन ग्रन्थ ये हैं **गौतम** (६००-४०० ई० पू०) का **धर्मसूत्र, बौधायनधर्मसूत्र** (५००-२०० ई० पू०), **आपस्तम्बधर्मसूत्र** (६००-३०० ई० पू०), **वासिष्ठ-धर्मसूत्र, विष्णुधर्मसूत्र** (३००-१०० ई० पू०), **हारीतधर्मसूत्र, शंख और लिखित** (३००-१०० ई० पू०) के **धर्मसूत्र, विखानस्, पैठीनसी, उशनस,**

काश्यप और **बृहस्पति** के धर्मसूत्र । इस धर्मशास्त्रश्रेणी का समय ६०० ई० पू० से ४०० ई० तक है ।

मनुस्मृति ही सबसे प्राचीन स्मृति-ग्रन्थ है । इसमें अनेक विषयों का वर्णन है । इसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर वेदान्त के सदृश दार्शनिक विषयों का वर्णन है । इसका दूसरा नाम **मानवधर्मशास्त्र** है । जो ग्रन्थ आजकल प्राप्त है, उसमें १२ अध्याय हैं । इसमें यह कहा गया है कि यह भृगु ने कहा है । इससे यह ज्ञात होता है कि **भृगु** ने **मनु** के वक्तव्यों को प्रकाशित और प्रचारित किया है । इसमें बहुत से स्थलों पर मनु की सम्मति का उल्लेख है । सम्भवतः वह मनु कोई अन्य है । **यास्क** के **निरुक्त** में और **महाभारत** में **मनु** का उल्लेख है । मनु ही धर्मशास्त्र पर सबसे प्राचीन और प्रामाणिक लेखक है । किन्तु इतने से उसके समय-निर्धारण में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है । यह ग्रन्थ **बर्मा**, **श्याम** और **जावा** में भी पहुँचा है और वहाँ के विधानों को सने बहुत अधिक प्रभावित किया है । इसके ही अनुकरण पर वहाँ के विधान बने हैं । इसकी टीकाओं में अधिक प्रसिद्ध टीकाएँ **मेधातिथि** (८२५-९०० ई०) और **कुल्लूक भट्ट** (लगभग १२०० ई०) की हैं ।

मनुस्मृति के बाद महत्त्व की दृष्टि से दूसरा स्थान **याज्ञवल्क्यस्मृति** का है । इसका समय १०० ई० पू० से लेकर ३०० ई० के मध्य में माना जाता हैं । इसमें तीन अध्याय हैं । इनमें क्रमशः एक एक अध्याय में **आचार**, **व्यवहार** और **प्रायश्चित्त** का वर्णन है । मनुस्मृति के तुल्य इसमें भी वेदान्त के सिद्धान्तों का वर्णन है । इसकी कई टीकाओं में से तीन टीकाएँ प्रमुख हैं, जिनसे इसकी प्रसिद्धि और प्रामाणिकता का ज्ञान होता है । इन टीकाओं की भी बहुत प्रसिद्धि हुई है । वे टीकाएँ ये हैं–(१) **विश्वरूप** (८००-८२५ ई०)[1] कृत **बालक्रीडा** टीका । (२) **चालुक्य** राजा **विक्रमादित्य** षष्ठ के निरीक्षण में ११२० ई० में **विज्ञानेश्वर** के द्वारा लिखी गई **मिताक्षरा** टीका । (३)

---

१. A History of Dharmasastra by P. V. Kane. भाग १ पृष्ठ २६३ ।

१२वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में **अपरार्क** द्वारा लिखित **अपरार्कयाज्ञवल्कीयधर्मशास्त्रनिबन्ध** नाम की टीका। इनमें से मिताक्षरा टीका व्यवहार के विषय में एक स्वतन्त्र प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस पर बालभट्ट ने टीका की है। उसका दूसरा नाम **बालकृष्ण** था। वह **नागेशभट्ट** के शिष्य वैयाकरण **वैद्यनाथ पायगुण्ड** (१७५० ई०) का पुत्र था। कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि इस टीका का लेखक वैद्यनाथ स्वयं है। इस टीका का नाम **लक्ष्मीव्याख्यान** या बालभट्टि है। यह माना जाता है कि इस टीका के लेखक, वैद्यनाथ या उसके पुत्र ने, यह टीका वैद्यनाथ की पत्नी **लक्ष्मीदेवी** के नाम से लिखी है। इसमें पैतृक सम्पति पर स्त्रियों के अधिकार पर बहुत बल दिया गया है।

नारदस्मृति (१००-३०० ई०)।[1] वृहत् और लघु दो संस्करणों के रूप में प्राप्त होती है। बाण को इस स्मृति के अस्तित्व का ज्ञान था। यह माना जाता है कि **पराशरस्मृति** का वृहत् संस्करण नष्ट हो गया है। पराशरस्मृति का लघु संस्करण प्राप्य है। इस पर **विजयनगर** के **माधव** (१२९७-१३८६ ई०) ने टीका लिखी है। इसके मूलग्रन्थ का समय १०० ई० और ५०० ई०[2] के बीच में माना जाता है। **बृहस्पतिस्मृति** (२००-४०० ई०) अपूर्ण रूप में प्राप्त होती हैं। यह मनुस्मृति को आलोचनामात्र ज्ञात होती है। इनके अतिरिक्त बहुत सी स्मृतियाँ हैं। इनकी संख्या १५२ मानी जाती है।

स्मृति-ग्रन्थों पर लिखे गए छोटे ग्रन्थ बहुत महत्त्व के हैं। वे अनेक हैं। वे प्रामाणिक ग्रन्थ के तुल्य माने जाते हैं। **जीमूतवाहन** ने १२वीं शताब्दी ई० में **धर्मरत्न** नामक एक ग्रन्थ लिखा है इसमें विधान-सम्बन्धी बातों का विवेचन किया गया है। इसके तीन भाग हैं—**कालविवेक, व्यवहारमातृका** और **दायभाग**। इसी समय लक्ष्मीधर ने **स्मृतिकल्पतरु** ग्रन्थ लिखा है। बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के लिए १२०० ई० के लगभग **हलायुध** ने

१. A History of Dharmasastaa by P. V. Kane.
पृष्ठ (भूमिका) २९।

२. " " " पृष्ठ (भूमिका) ३०।

ब्राह्मणसर्वस्व ग्रन्थ लिखा था। **देवण्णभट्ट** ने १२२५ ई० के लगभग **स्मृति-चन्द्रिका** ग्रन्थ की रचना की। **वरदराज** ने १३वीं शताब्दी ई० में एक विशाल ग्रन्थ **स्मृतिसंग्रह** लिखा था। उसका केवल एक भाग **व्यवहारनिर्णय** आजकल प्राप्त है। **हेमाद्रि** ने १२७० ई० के लगभग **चतुर्वर्गचिन्तामणि** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने व्रत, दान, तीर्थ और मोक्ष इन चारों विषयों का संकलन किया है और साथ ही एक परिशिष्ट भी दिया है। इसमें अनेक लेखकों के ग्रन्थों से उद्धरण दिए गए हैं, अतः यह ग्रन्थ बहुमूल्य है। **विश्वेश्वर** (लगभग १४०० ई०) को **मदनपारिजात** ग्रन्थ का लेखक माना जाता है। इसमें धार्मिक कर्तव्यों और उत्तराधिकार के नियमों का वर्णन है। इसी समय की अन्य दो रचनाएँ हैं—**चंडेश्वर** का **स्मृतिरत्नाकर** और **पराशरस्मृति** के टीकाकार **माधव** का **कालमाधवीय**। १५वीं शताब्दी ई० में **वाचस्पति** ने **चिन्तामणि** नाम से कई छोटे ग्रन्थ लिखे हैं। १६वीं शताब्दी ई० में ये ग्रन्थ लिखे गए—**उत्कल** के **प्रतापरुद्रदेव** ने **सरस्वतीविलास** ग्रन्थ लिखा। **रघुनन्दन** ने अग्निपरीक्षा और पद्धति विषय पर तत्त्व नामक कई छोटे ग्रन्थ लिखे हैं। **वैद्यनाथ दीक्षित** ने **स्मृतिमुक्ताफल** ग्रन्थ लिखा है। १७वीं शताब्दी ई० में ये ग्रन्थ लिखे गए—**भट्टोजिदीक्षित** ने **तिथिनिर्णय** ग्रन्थ लिखा। **कमलाकर भट्ट** (१६१२ ई०) ने **निर्णयसिंधु** ग्रन्थ लिखा। **नीलकण्ठ** (१६३० ई०) ने **भगवन्तभास्कर** ग्रन्थ लिखा और **मित्रमिश्र** ने **विश्वकोश** के तुल्य एक **वीरमित्रोदय** ग्रन्थ लिखा।

अध्याय ३०

उपवेद

आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र और सहायक शास्त्र

चारों वेदों और वेदांगों के अतिरिक्त चार उपवेद हैं। उनके नाम हैं— **आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद** और **अर्थशास्त्र**। ये क्रमशः आधुनिक **आयुर्वेद, संगीत, धनुर्विद्या** और **राजनीति-विज्ञानों** का प्रतिनिधित्व करते हैं। **कामशास्त्र आयुर्वेद** के अन्दर ही आता है।

आयुर्वेद

आयुर्वेद उपवेद माना जाता है। आयुर्वेद का अर्थ है कि जिस वेद की सहायता से आयु-वृद्धि होती है। जीवन में जो कुछ भी लक्ष्य है, उसे प्राप्त करने के लिए मूल कारण स्वास्थ्य है। इसके विपरीत यदि मनुष्य रोग का शिकार हो जाता है तो उसके जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं होता। देखिए—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥

चरकसंहिता-सूत्रस्थान १.१४

आयुर्वेद का प्रयोजन न केवल रोग को ठीक कर देना है बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना है जिससे वह कहीं रोगों से ग्रस्त न हो जाय। देखिए—

आयुर्वेदप्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः,
स्वस्थस्य स्वास्थ्यस्य रक्षणञ्च॥

सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान १

इस वेद का आरम्भ अथर्ववेद से हुआ है। वैदिक ग्रन्थों में गर्भ-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान और शल्य-चिकित्सा का उल्लेख है। आयुर्वेद के जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें **आत्रेय, काश्यप, हारीत, अग्निवेश** और **भेल** के नाम का उल्लेख है। ऐसा माना जाता है कि इनमें से प्रत्येक ने आयुर्वेद का कोई ग्रन्थ लिखा है या आयुर्वेद की किसी शाखा की स्थापना की है।

आयुर्वेद के विकास का **धर्मशास्त्र** के विकास के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुराणों और स्मृति-ग्रन्थों में वैद्यक का कुछ अंश वर्णन किया गया है। स्मृतियों और पुराणों में मनुष्य के कर्तव्य का जो वर्णन किया गया है, उसमें स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का भी वर्णन विद्यमान है। उनका आयुर्वेद पर प्रभाव पड़ा है, क्योंकि आयुर्वेद धर्मशास्त्रों में वर्णित विधि के साथ मनुष्य जीवन के यापन को ध्यान में रखकर विभिन्न विषयों का वर्णन करता है। सांख्य और योग दर्शनों ने आयुर्वेद के बौद्धिक पक्ष को प्रभावित किया है और वेदान्त दर्शन ने आध्यात्मिक पक्ष को प्रभावित किया है। अपने सिद्धान्तों के अनुसार ही रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। कई धार्मिक कार्यों ने आयुर्वेद को बहुत अंश तक प्रभावित किया है। हिन्दू धर्म के अनुयायी उपवास को विशेष अवसरों पर आवश्यक समझते हैं। स्वस्थ शरीर में आत्मा को स्वस्थ रखने के लिए आयुर्वेद उपवास को आवश्यक कार्य मानता है। शरीर और मन की रचना के विकास के लिए यह आवश्यक है कि इस बात का ध्यान रक्खा जाए कि किस प्रकार का भोजन करना चाहिए, किस समय और किस स्थान पर तथा किस विधि से किया जाय। प्रकृति के तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् का शरीर के त्रिदोष कफ, वात और पित्त के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा इन त्रिदोषों का उन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। भोजन केवल क्षुधा की शान्ति और शरीर की पुष्टि के लिए ही नहीं खाया जाता है। भोज्य-पदार्थ के गुणों के द्वारा यह निर्णय किया जा सकता है कि भोजन किस

प्रकार का है। ऐसा भोजन ही सर्वोत्तम माना गया है, जिससे सत्त्व गुण की वृद्धि हो। अतएव आयुर्वेद की पद्धति **नीति-शास्त्र** के भी सिद्धान्तों का वर्णन करती है।

आयुर्वेद में दार्शनिक तथा शरीर-तत्त्व सम्बन्धी सभी जीवन की परिस्थितियों का वर्णन है। इसमें औषधि-चिकित्सा तथा शल्य-चिकित्सा दोनों दृष्टि से अवरोधात्मक तथा रोगनाशक चिकित्सा का वर्णन किया गया है। आयुर्वेद में स्वीकृत त्रिदोषों में से **कफ** का कार्य है—शीतलता प्रदान करना, विभिन्न रसों को सुरक्षित रखना और उनकी वृद्धि करना। **वात** या **वायु** में शारीरिक चेष्टा-सम्बन्धी सभी चीजों का समावेश है। **पित्त** के द्वारा शरीर में उष्णता की उत्पत्ति होती है और शरीर के पोषक तत्त्वों को जीवन प्राप्त होता है। भोजन का पाचन तथा रक्त में रंग का आना आदि भी इसी के द्वारा होता है। रोगों की चिकित्सा का सामान तैयार करने से पूर्व इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि वात, पित्त और कफ की विषमता को ठीक ढंग से समझ लिया जाए। साथ ही **ऋतु** का प्रभाव जो स्वास्थ्य पर पड़ता है, उसको भी ध्यान में रक्खा गया है। चिकित्सा को दो भागों में विभक्त किया गया है—उष्ण और शीत। रक्त-संचार का पर्याप्त स्पष्टता के साथ अध्ययन किया गया है। शल्य-चिकित्सा का बड़े रूप में प्रयोग होता था और कठिन चीर-फाड़ भी की जाती थी। प्राचीन ग्रन्थों में शल्य-चिकित्सा के उपयोगी औजारों का भी वर्णन है। गर्भविज्ञान का अध्ययन और प्रयोग दोनों होता था।[1] क्षयरोग का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

आयुर्वेद में आठ विभाग हैं। (१) **शल्य** इसमें शल्य-चिकित्सा और प्रसूतिकर्म का वर्णन है। (२) **शालाक्य**। इसमें सिर तथा उसके अंगों के रोगों का अध्ययन किया जाता है। (३) **काय-चिकित्सा**। शरीर के रोगों की चिकित्सा। (४) **भूत-विद्या**। कृत्रिम निद्रा के द्वारा रोगों की चिकित्सा।

---

१. रामायण, सुन्दरकाण्ड २८-६।

(५) **कौमारभृत्य**। शिशु-चिकित्सा का वर्णन। (६) **अगद-तन्त्र**। विषविद्या का वर्णन। (७) **रसायनतन्त्र**। पौष्टिक रसायनों का वर्णन। (८) **वाजीकरणतन्त्र**। वीर्यवर्धक औषधियों का वर्णन। आयुर्वेद का अध्ययन ८ विभागों में किया गया है। वे विभाग ये हैं—**सूत्र, शारीत्र, इन्द्रिय, चिकित्सा, निदान, विमान, विकल्प** और **सिद्धि**।

आजकल जो ग्रन्थ प्राप्त हैं, उनसे ज्ञात होता है कि **आत्रेय पुनर्वसु** आयुर्वेद को निश्चित रूप देने वाला था। बौद्ध लेखों से ज्ञात होता है कि वैद्य **आत्रेय, गौतम बुद्ध** के जन्म से पूर्व **तक्षशिला** में रहता था। अतः उसका समय ६०० ई० पू० से पूर्व है। उसने यह आयुर्वेद **अग्निवेश** को पढ़ाया और उसने यह विद्या **चरक** को पढ़ाई। **चरक** और **दृढ़बल** ने जो कुछ पढ़ा था, उसको उन्होंने ग्रन्थरूप में परिणत किया। उस ग्रन्थ का ही नाम **चरकसंहिता** पड़ा। **चरक** आयुर्वेद का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक आचार्य है। भारतीय परम्परा के अनुसार चरक और वैयाकरण **पतंजलि** (१५० ई० पू०) एक ही व्यक्ति हैं। बौद्ध पिटक ग्रन्थों में उल्लेख किया गया है कि राजा **कनिष्क** (प्रथम शताब्दी ई०) के राजद्वार में चरक नाम का वैद्य रहता था। चरक गान्धार का निवासी था। उसका समय शताब्दी ई० मानना चाहिए। **वाग्भट** (६ठीं शताब्दी ई०) ने **दृढ़बल** का उद्धरण दिया है। अतः उसका समय चतुर्थ शताब्दी ई० मानना चाहिए। उसने चरक के ग्रन्थ में कुछ और विषय जोड़े तथा उसको नवीन रूप में प्रस्तुत किया। **चरकसंहिता** ८ विभागों में है। इसमें ३० अध्याय हैं। इसके ८ विभागों के नाम हैं—(१) **सूत्रस्थान**। इसमें चिकित्सा, पथ्य और वैद्य के कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। (२) **निदानस्थान**। इसमें मुख्य रोगों का वर्णन है। (३) **विमानस्थान**। इसमें निदान, आयुर्वेदीय विवेचन और आयुर्वेद के छात्र के कर्तव्यों का वर्णन है। (४) **शरीरस्थान**। इसमें शल्य-चिकित्सा और गर्भविज्ञान का वर्णन है। (५) **इन्द्रियस्थान**। इसमें रोगों के निदानों का वर्णन है। (६) **चिकित्सास्थान**। इसमें मख्य चिकित्साओं का वर्णन है। (७) **कल्पस्थान**।

(८) **सिद्धिस्थान**। इन दोनों में सामान्य चिकित्सा का वर्णन है। इसका अरबी में ८०० ई० के लगभग अनुवाद हुआ था और फारसी में इससे भी पूर्व इसका अनुवाद हो चुका था। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं।

सुश्रुतसंहिता का लेखक **सुश्रुत** है। यह आयुर्वेद का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है इसमें शल्य-चिकित्सा पर विशेष बल दिया गया है। इसमें शल्य-चिकित्सा के औजारों और प्रयोगों का वर्णन है। ९वीं शताब्दी ई० में उसका नाम विदेशों में भी फैल गया था।

काश्यपसंहिता में १३ अध्याय हैं। इसमें मन्त्रों के द्वारा विष के प्रभाव के निवारण का वर्णन किया गया है। **भेल** (भेद) **संहिता** अपूर्ण और अशुद्ध रूप में प्राप्त होती है। **नावनीतक** ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति १८९० ई० में प्राप्त हुई है। इसमें चूर्ण, तेल और पौष्टिक चीजों के विषय में बहुमूल्य बातें बताई गई हैं। यह ग्रन्थ सभी प्राचीन ग्रन्थों का सार माना जाता है। इसका समय चतुर्थ शताब्दी ई० समझना चाहिए। **वृद्धजीवक** द्वारा लिखित **वृद्धजीवकीय** ग्रन्थ **कौमारभृत्य** विषय पर है। यह अपूर्ण रूप में प्राप्य है।

वाग्भट्ट ने षष्ठ शताब्दी ई० में **अष्टांगहृदय** और **अष्टांगसंग्रह** दो ग्रन्थ लिखे हैं वह **सिंहगुप्त** का पुत्र और दूसरे **वाग्भट्ट** का पौत्र था। यह कहा जाता है कि **ईत्सिंग** (६७२-६७५ ई०) ने वाग्भट्ट के ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इन दोनों वाग्भट्टों को पाश्चात्य विद्वान् बौद्ध व्यक्ति मानते हैं, परन्तु इनके ग्रन्थों में आर्यजीवन की परम्परा का वर्णन होने से सिद्ध होता है कि ये दोनों वाग्भट्ट हिन्दू थे। आलोचकों का मत है कि वृद्ध वाग्भट्ट ने अष्टांगसंग्रह ग्रन्थ लिखा है और छोटे वाग्भट्ट ने अष्टांगहृदय ग्रन्थ लिखा है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ये दोनों ग्रन्थ दो विभिन्न व्यक्तियों के लिखे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अष्टांगसंग्रह प्राचीन ग्रन्थों से उपलब्ध सामग्री को एकत्र करके बनाया गया है। **अष्टांगहृदय** का दूसरा

नाम **अष्टांगहृदयसंहिता** है। यह अष्टांगसंग्रह पर आश्रित है। आजकल अष्टांगहृदय का असाधारण प्रचार है।

योगसार और **योगशास्त्र** ग्रन्थों का लेखक **नागार्जुन** माना जाता है। इसका पूर्ण परिचय अज्ञात है। कुछ आलोचक नागार्जुन नामक बौद्ध दार्शनिक को और इस वैद्य को एक ही व्यक्ति मानते हैं। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन राजा कनिष्क के दरबार में था। **माधवकार** ने ८वीं शताब्दी ई० में निदान विषय पर **रुग्विनिश्चय** ग्रन्थ लिखा था। **वृन्द** ने **सिद्धियोग** नामक ग्रन्थ लिखा था। इसमें रोगों की औषधियाँ लिखी हुई है। **सिद्धियोग** का दूसरा नाम **वृन्दमाधव** है। वृन्द का समय अज्ञात है। **चक्रपाणिदत्त** ने १०६० ई० के लगभग चिकित्सा विषय पर **चिकित्सासार** ग्रन्थ लिखा है। इस पर वृन्द का प्रभाव पड़ा है। इसी शताब्दी में **चिकित्सासार** नामक दूसरा ग्रन्थ **वंगसेन** ने लिखा है। **मिल्हण** ने १२२४ ई० में चिकित्सा विषय पर ही **चिकित्सामृत** ग्रन्थ लिखा है। **बोपदेव** नामक व्याकरण की शाखा के स्थापक बोपदेव ने एक मौलिक एवं प्राचीन ग्रन्थ **शार्ङ्गधरसंहिता** की टीका १३ वीं शताब्दी में की है। **शतश्लोकी** ग्रन्थ का भी लेखक बोपदेव माना जाता है। इसमें चूर्णों और गोलियों का वर्णन है। १४वीं शताब्दी में **तिसट** द्वारा लिखित **चिकित्साकलिका** ग्रन्थ, १६वीं शताब्दी में **भावमिश्र** द्वारा लिखित **भावप्रकाश** और १७वीं शताब्दी में **लोलम्बराज** द्वारा लिखित **वैद्यजीवन** ग्रन्थ भी विशेष महत्त्व के हैं।

आयुर्वेद में धातु-निर्मित औषधियों और उनमें भी पारे की बनी हुई औषधियों को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह निकृष्ट धातुओं को रूपान्तरित करने के लिए उपयोग में आता था। इसका उपयोग पौष्टिक पदार्थों के निर्माण के लिए भी होता था। यह माना जाता है कि रस विषय पर **नागार्जुन** ने **रसरत्नाकर** ग्रन्थ लिखा है। **रसरत्नसमुच्चय** के लेखक **वाग्भट्ट, अश्विनीकुमार** और **नित्यनाथ** माने जाते हैं। उसका समय १३०० ई० माना जाता है। **नित्यनाथ** ने **रसरत्नाकर** ग्रन्थ भी लिखा है। पारे को जो

विशेष महत्त्व दिया गया, उसका परिणाम यह हुआ कि पारे के विषय में एक पृथक् शाखा प्रचलित हो गई जिसका नाम **रसेश्वरसिद्धान्त** रक्खा गया। इसका **सर्वदर्शनसंग्रह** में वर्णन हुआ है इस शाखा के अधिष्ठातृदेवता शिव और पार्वती हैं।

पशुओं वृक्षों आदि के रोगों को दूर करने के लिए भी वैद्यक के ग्रन्थ लिखे गये थे। **सुरपाल** ने **वृक्षायुर्वेद** में वृक्षों के रोगों का इलाज बताया है। **नारायण** ने **मातंगलीला** में हाथियों के रोगों का वर्णन किया है। अश्वचिकित्सा पर ये ग्रन्थ हैं—**गुण** का **अश्वायुर्वेद, जयदत्त** और **दीपंकर** का **अश्ववैद्यक, वर्धमान** की **योगमंजरी, नकुल** की **अश्वचिकित्सा,** धारा के राजा **भोज** का **शालिहोत्र** और **सुखानन्द** का **अश्वशास्त्र**।

वैद्यक विषय पर कोशग्रन्थ भी हैं। उनके नाम हैं—**धन्वन्तरिनिघण्टु** (समय अज्ञात), **सुरेश्वर** (१०७५ ई०) का **शब्दप्रदीप, नरहरि** (१२३५ ई०) का **राजनिघण्टु, मदनपाल** (१३७४ ई०) का **मदनविनोद-निघण्टु** और एक अज्ञात लेखक का **पथ्यापथ्यनिघण्टु**।

पाश्चात्य विद्वानों ने यह प्रयत्न किया है कि भारतीय आयुर्वेद का उद्भव यूनानी आयुर्वेद से हुआ है। किन्तु यह मत व्यर्थ ही है। बहुत से ऐसे दृष्टान्त हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय आयुर्वेद-पद्धति ने अरबनिवासियों, फारसनिवासियों तथा इन दोनों के माध्यम से यूनानियों को प्रभावित किया। जब **सिकन्दर** (३२३ ई० पू०) ने भारत पर आक्रमण किया तो पंजाब में उसके आदमी सर्प-दंश से पीड़ित हो गए। उनको चंगा करने के लिए अपने चिकित्सकों को असमर्थ पाकर उसने भारतीय वैद्यों की सहायता ली। उसने उनकी चिकित्सा की प्रशंसा की। उसके मन में कुछ लालच आई और वह अपने साथ भारत के कुछ प्रमुख वैद्यों को ले गया। उनकी सेवाओं ने यूनानियों की सहायता अवश्य की होगी जिससे उन्होंने अपनी आयुर्वेद-पद्धति में सुधार किया। इसके अतिरिक्त

कफ, वात और पित्त का भारतीय सिद्धान्त यूनानियों के त्रिदोष-सम्बन्धी सिद्धान्त से भिन्न है।

कामशास्त्र

आयुर्वेद के वाजीकरण अध्याय में **कामशास्त्र** का भी संग्रह किया गया है। ऐसा करने का प्रयोजन यह दिखाना है कि जीवन में प्रेम ही लक्ष्य नहीं है और यह कि ऐन्द्रिक सुखों की अत्यासक्ति मनुष्य को पूर्ण विनाश की ओर ले जाती है। जिससे मनुष्य स्वस्थ नहीं होता। अतः इस शास्त्र का उद्देश्य विलासी जीवन के अनुसार चलने के कारण होने वाले खतरों के विरुद्ध कामीजनों को प्रोत्साहित करना है। इस विषय पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ **वात्स्यायन मल्लनाग** नामक वैद्य का **कामसूत्र** ग्रन्थ है। इसमें काम के विभिन्न रूपों का बहुत निःसंकोच वर्णन किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि विवाह के द्वारा ही सुख की प्राप्ति की जा सकती है। काम का उसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए, जिससे वह धर्म और अर्थ के महत्त्व को कम न कर सके। इसका समय द्वितीय शताब्दी ई० माना जाता है। इसमें सात अध्याय हैं। **वात्स्यायन** ने इस विषय के अन्य प्राचीन लेखकों में **बाभ्रव्य, चारायण** और **गोनर्दीय** आदि का नामोल्लेख किया है। इनमें से कुछ अन्य विषयों के भी आचार्य माने जाते हैं। इनका नाम कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** और पतंजलि के **महाभाष्य** में भी आता है। **वात्स्यायन** ने **दक** का नामोल्लेख किया है। उसने **कामसूत्र** लिखा है। वह नष्ट हो गया है। वात्स्यायन के कामसूत्र पर **यशोधर** (१२४३-१२६१ ई०) ने **जयमङ्गल** नाम की टीका लिखी है। इस विषय पर अन्य ग्रन्थ ये हैं—(१) **ज्योतिरीश्वर** का **पंचसायक**। इसका समय ११वीं शताब्दी ई० के बाद का है। (२) **कोक्कन** का **रतिरहस्य**। यह १२०० ई० से पू० लिखा गया था। (३) **जयदेव** की **रतिमंजरी**। इसका समय अनिश्चित है। (४) **विजयनगर** के राजा **इम्मदि प्रौढदेवराय** (१४२२-१४४८ ई०) की **रतिरत्नप्रदीपिका**। (५) **कल्याणमल्ल** का

अनङ्गरङ्ग। यह १६वीं शताब्दी ई० में लिखा गया है। (६) **वीरभद्र** का **कन्दर्पचिन्तामणि**। यह १६वीं शताब्दी ई० में लिखा गया है।

गान्धर्व-वेद

गान्धर्व-वेद भी उपवेद है। इसका सम्बन्ध **सामवेद** से है। इसमें नृत्य और संगीत का समावेश होता है। भारतीय संगीत में स्वरों के अस्तित्व का कारण वैदिक स्वर है। पुराणों में संगीत और नृत्य का वर्णन है। **सदाशिव, ब्रह्मा** और **भरत**—ये नृत्य विषय पर सबसे प्राचीन प्रामाणिक आचार्य हैं। **भरत** के **नाट्यशास्त्र** ने नृत्य और संगीत की आधारशिला रक्खी है। **नाट्यशास्त्र** नाम से ही ज्ञात होता है कि इसमें नाटकीय अभिनय को मुख्यता दी गई है। नाटकीय अभिनय में संगीत का भी समावेश होता है। बाद के लेखकों ने जो उद्धरण दिए हैं, उससे ज्ञात होता है कि इस विषय पर दो प्रामाणिक आचार्य हुए थे। एक का नाम **वृद्ध भरत** था और दूसरे का नाम **भरत** था। **वृद्ध भरत** ने **नाट्यवेदागम** ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम **द्वादशसाहस्री** है। इसका ज्ञान केवल उद्धरणों से होता है। **भरत** ने **नाट्यशास्त्र** लिखा है। इसका दूसरा नाम **शतसाहस्री** है। नाट्यशास्त्र में नृत्य और संगीत के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त रसों और अभिनयों का भी वर्णन है। अतएव नाट्यशास्त्र, संगीत, नृत्य, नाटक और काव्यशास्त्र के विषय में प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। भरत के शिष्य **दत्तिल** ने संगीत और नृत्य विषय पर **दत्तिल** नाम का ग्रन्थ लिखा था। वह नष्ट हो गया है। **नन्दिकेश्वर** या **नन्दी** ने संगीत और नृत्य विषय पर **भरतार्णव** ग्रन्थ लिखा है। इसमें ४ सहस्र श्लोक हैं। वह संभवतः भरत का समकालीन था। **नाट्यार्णव** और **अभिनयदर्पण** आजकल प्राप्य हैं। ये दोनों मूल **भरतार्णव** के अंश माने जाते हैं। इनमें नृत्यकला का विस्तृत विवेचन है। इन दोनों ग्रन्थों का समय द्वितीय शताब्दी ई० है। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) के शिष्य **रामचन्द्र** (लगभग १२०० ई०) ने **गुणचन्द्र** के साथ मिलकर अपनी टीका के सहित **नाट्यदर्पण** ग्रन्थ लिखा है।

भारतीय संगीत में लय को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसमें माधुर्य लाने के लिए संगीत के प्रत्येक विभाग में पूर्णता लाई गई। ध्वनि के प्रत्येक रूप का बहुत सावधानी और आलोचना के साथ अध्ययन किया गया। श्रव्य ध्वनि को **श्रुति** कहा जाता है। संगीताचार्यों ने श्रुति के २२ भेद माने हैं। श्रुति से स्वरों की उत्पत्ति होती है। स्वर कोमल और मधुर ध्वनि हैं। ये स्वयं श्रोताओं को प्रसन्न करते हैं। देखिए--

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते॥

संगीतरत्नाकर १-३-२४, २५

स्वरों से राग उत्पन्न होते हैं। लय के नियमों के अनुसार आरोह और अवरोह के अनुसार राग विभिन्न भागों में क्रमबद्ध किए गए हैं। संगीत में **गमक** को विशेष महत्त्व दिया गया है। स्वरों को परिष्कृत रूप देने से गमक की उत्पत्ति होती है। देखिए--

स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः।

संगीतरत्नाकर २, ३-८७

संगीत में कठोरता के साथ संगीत के नियमों का पालन किया जाता है। संगीत को स्थूल रूप में दो भागों में विभक्त किया गया है—मौखिक और यान्त्रिक। सितार, वीणा और ढोल ये राष्ट्रीय वाद्य हैं। वैदिक ग्रन्थों में संगीत के वाद्यों का उल्लेख है। संगीत दो प्रकार का होता है--**मार्ग** और **देशी**। मार्ग संगीत में संगीत के नियमों का पालन किया जाता है और तदनुसार उनकी रचना होती है। देशी संगीत में केवल जन-प्रियता का ध्यान रक्खा जाता है।

यमलाष्टकतन्त्रों में कुछ संगीत का वर्णन हैं। **नाट्यशास्त्र** संगीत-विषय पर सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह कहा जाता है कि **भरत** के शिष्य **कोहल** ने संगीत-विषय पर एक ग्रन्थ लिखा था। उनका **तालाध्याय** ही आज कल प्राप्य है। **मातंग** ने देशी संगीत विषय पर **बृहद्देशी** ग्रन्थ लिखा है।

यह अपूर्ण रूप में उपलब्ध होता है। मातंग चतुर्थ शताब्दी ई० पू० से पूर्व हुआ था। संगीत विषय पर उसके विचारों को **अभिनवगुप्त** आदि ने उद्धृत किया है। **संगीतमकरंद** का लेखक **नारद** को माना जाता है। यह ग्रन्थ आजकल जिस रूप में प्राप्त होता है, उसमें अभिनवगुप्त के विचारों का उल्लेख है। आलोचकों ने इसका समय ७वीं और ११वीं शताब्दी ई० के बीच में माना है। **यादवराजा सिंघन** (११३२-११६९ ई०) के आश्रित **शार्ङ्गदेव** ने संगीत विषय पर सात अध्यायों में **संगीतरत्नाकर** ग्रन्थ लिखा है। उसका दूसरा नाम निःशंक था। वह संगीत, दर्शन और वैद्यक में निष्णात था, यह उसके ग्रन्थ से ज्ञात होता है। उसका यह ग्रन्थ एक मौलिक ग्रन्थ है। इसमें उसने विषय का लक्षण, उदाहरण और विवेचन पूर्णतया दिया है। **नान्यदेव** ने ११८० ई० में रोगों के नियमों के विषय में १७ अध्यायों में **सरस्वतीहृदयालंकारहार** ग्रन्थ लिखा है। **चालुक्य विक्रमादित्य** के पुत्र तथा **बिल्हण** के आश्रयदाता **सोमेश्वर** ने १२वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में **मानसोल्लास** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने संगीत तथा वाद्यों के विषय में वर्णन किया है। इस विषय के अन्य ग्रन्थ ये हैं—१३वीं शताब्दी ई० के जैन **पार्श्वदेव** का **संगीतसमयसार**, १४वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध के **हरिपाल** का **संगीतसुधाकर** और **विद्यारण्य** का **संगीतसार**। विद्यारण्य और माधव (लगभग १३५० ई०) एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। रेड्डी राजा **वेम भूपाल** ने १५वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में **संगीतचिन्तामणि** ग्रन्थ लिखा है। **कुम्भकर्ण** ने १४४० ई० में **संगीतराज** ग्रन्थ लिखा है। संगीत विषय पर इस ग्रन्थ की बहुत बड़ी देन है। १६वीं शताब्दी ई० के मध्य में **रामामात्य** ने कर्णाटक के संगीत के रोगों के विषय में **स्वरमेलकलानिधि** ग्रन्थ लिखा है। उत्तर भारतीय संगीत को **पुण्डरीक विट्ठल** (लगभग १६०० ई०) के ग्रन्थों ने समृद्ध किया है। उसने **नर्तननिर्णय, रागमंजरी, रागमाला** और **षड्रागचंद्रिका** ग्रन्थ लिखे हैं। **तन्जौर** के राजा **रघुनाथ नायक** के लिए **गोविन्ददीक्षित** (लगभग १६०० ई०) ने **संगीतसुधा** नामक ग्रन्थ लिखा

है। १७वीं शताब्दी ई० में संगीत विषय पर ये ग्रन्थ लिखे गये थे—**सोमनाथ** का १६०९ ई० में लिखित **राजविबोध, चतुरदामोदर** का **संगीतदर्पण, गोविन्ददीक्षित** के पुत्र **वेंकटमखिन्** का **चतुर्दण्डिप्रकाशिका,** नेपाल के राजा **जगज्ज्योतिर्मल्ल** (१६१७-१६३३ ई०) का **संगीतसारसंग्रह, अहोबिल** का **संगीतपारिजात** और शुभंकर का **संगीतदामोदर**। **ट्रावनकोर** के राजा **बालरामवर्मा** (१७५३-१७९८ ई०) ने संगीत और नृत्य के विषय में **बालरामभरत** ग्रन्थ लिखा है।

धनुर्वेद

धनुर्वेद एक उपवेद माना जाता है। कहा जाता है कि **विश्वामित्र** ने इस विषय पर एक ग्रन्थ लिखा था जो इस समय उपलब्ध नहीं है। विश्वास किया जाता है कि चार भागों में विभक्त है—**दीक्षा** अर्थात् शिक्षण या ट्रेनिङ्ग, **संग्रह** अर्थात् अस्त्रप्राप्ति, **सिद्धि** अर्थात् अस्त्रों को प्रयोग करने की कुशलता और **प्रयोग** अर्थात् उन अस्त्रों का प्रयोग। विक्रमादित्य सदाशिव और शार्ङ्गदत्त ने इस शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे थे किन्तु वे ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। **कोदण्डमण्डन** भी धनुर्विद्या का एक ग्रन्थ है। **शार्ङ्गधर** (१३६३ ई०) के **वीरचिन्तामणि** में युद्ध सम्बन्धी विषयों का वर्णन है।

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र जीवन के द्वितीय लक्ष्य अर्थ का वर्णन करता है। इसमें राजनीति का भी समावेश है अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का वर्णन **रामायण** और **महाभारत** में प्राप्त होता है। इस विषय का प्रारम्भ महाभारत और धर्मशास्त्र आदि के नीति-विषयक श्लोकों से होता है। यह माना जाता है कि **इन्द्र** ने अर्थ-शास्त्र विषय पर एक ग्रन्थ **बाहुदन्तक** लिखा था। **मनुस्मृति** और **याज्ञवल्क्य-स्मृति** में अर्थशास्त्र-सम्बन्धी समस्यायों पर विवेचन मिलता है। इस शास्त्र को नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और दण्डनीतिशास्त्र भी कहते हैं। अर्थशास्त्र का सबसे प्राचीन आचार्य **बृहस्पति** माना जाता है।

अर्थशास्त्र विषय पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ **कौटिल्य** का **अर्थशास्त्र** प्राप्त होता है। **कौटिल्य** का दूसरा नाम **चाणक्य** है। इसमें **बृहस्पति, उशनस्, विशालाक्ष, भरद्वाज** और **पराशर** आदि को अर्थशास्त्र का प्राचीन आचार्य माना गया है। इसमें १५ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में कई खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड गद्य में है और अन्त में श्लोक होता है, जिसमें खण्ड के विवेच्य विषय का उपसंहार होता है। इसमें कुछ सूत्र भी हैं। उन पर भाष्य हुआ है। इन सूत्रों के लेखक का नाम अज्ञात है। इस ग्रन्थ में व्यावहारिक जीवन के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसमें राज्य के प्रबन्ध-सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर विस्तृत विवेचन हुआ है। इन विषयों में से कुछ विषय ये हैं—राजकुमारों को कैसी शिक्षा दी जानी चाहिए, मन्त्रि-परिषद् का निर्माण, दूतों की उपयोगिता, राजदूतों के कर्तव्य, राज्य के प्रबन्ध का नियन्त्रण, न्याय का संचालन, आक्रमण, दण्ड, मूल्य-वृद्धि, कर-विधान, राजा के कर्तव्य ६, राज पुरोहित और भाटों के दुर्गुण, कुछ रहस्यात्मक कार्य। अर्थ-शास्त्र के लिखने का उद्देश्य यह था कि राज्य को सुरक्षित बनाया जाय। इसके लेखानुसार राजा राज्य का केवल सेवक होता था।

इस ग्रन्थ का लेखक **चाणक्य** माना जाता है। उसी के अन्य नाम **विष्णुगुप्त** और **कौटिल्य** हैं। वह मौर्य राजा **चन्द्रगुप्त** का मन्त्री था। भारतवर्ष के विषय में **मेगस्थनीज** ने जो विवरण लिखा है, वह अर्थशास्त्र के विवरण से मिलता है। **दण्डी** ने **दशकुमारचरित** में **विष्णुगुप्त** के **अर्थशास्त्र** में ६००० श्लोकों का होना लिखा है[1]। इस ग्रन्थ की शैली के आधार पर इसका समय ३२० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए।

इस ग्रन्थ का लेखक चाहे कोई भी हो, अर्थशास्त्र के देखने से ज्ञात होता है कि इसके लेखक की राजनीति-सम्बन्धी योग्यता बहुत विकसित थी। इसने इस बात को पूर्णतया स्पष्ट किया है कि राज्य का प्रबन्ध वे ही

१. दशकुमारचरित अध्याय ८।

कुशलता के साथ चला सकते हैं, जो बहुत आदर्शवादी या छिद्रान्वेषी नहीं है। "इस समस्त ग्रन्थ में नवीनता और सत्यता भरी हुई है। इससे ज्ञात होता है कि इसके लेखक को उन सभी विषयों का वैयक्तिक अनुभव था, जिनका उसने बड़े आकर्षक रूप में वर्णन किया है।"[1]

शुक्रनीतिसार में २२०० श्लोकों में राजनीति का वर्णन है। यह एक विशाल ग्रन्थ **शुक्रनीति** का संक्षिप्त संस्करण माना जाता है। इस ग्रन्थ की शैली और विषय-विवेचन के आधार पर इसका समय ईसवीय सन् से पूर्व मानना चाहिए।

कामन्दक का **नीतिसार** कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर आश्रित है। इसमें **विष्णुगुप्त** का उल्लेख है। इसमें बहुत से उपदेशात्मक श्लोक हैं। **काव्यालंकारसूत्र** के लेखक वामन को इस ग्रन्थ का ज्ञान था। इस ग्रन्थ का समय ७वीं शताब्दी ई० में मानना चाहिए। **सोमदेवसूरि** ने **नीतिवाक्यामृत** ग्रन्थ लिखा है। यह **सोमदेवसूरि** और **यशस्तिलक** का लेखक **सोमदेवसूरि** एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। यह लेखक जैन होने के कारण अर्थशास्त्र के लेखक कौटिल्य से प्रबन्ध और युद्ध-सम्बन्धी कई बातों में सहमत नहीं है। इसमें उसने शासकों को नीति विषयक उपदेश दिए हैं। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) की **लघ्वर्हन्नीति** जैन-दृष्टिकोण से लिखी गई है। अर्थशास्त्र विषय पर अन्य ग्रन्थ ये हैं—धारा के राजा **भोज** (१०४० ई०) का **युक्तिकल्पतरु**, **चण्डेश्वर** का **नीतिरत्नाकर**, **नीतिप्रकाशिका** आदि।

अन्य शास्त्र

प्राचीन समय में **शिल्पशास्त्र** या **वास्तुविद्या** बहुत उन्नत अवस्था में थी। इस विषय पर **बौद्ध** और जैन विद्वानों की बहुत बड़ी देन है। धर्म और उपयोगिता इस विषय की मुख्य विशेषता हैं। दक्षिण भारत के विशाल मन्दिर, **सारनाथ** और **अजन्ता** के स्तूप **विहार** और **चैत्य** आदि प्राचीन

१. History of Indian Civilization by C. E.M. Joad. पृष्ठ ८८।

भारत के शिल्पविद्याविशारदों के बौद्धिक और नैतिक उत्कर्ष को सूचित करते हैं। नगरों का वैज्ञानिक विधि से निर्माण इस विषय का ही एक विभाग था। इस विषय पर जो ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनकी विशेषता यह है कि उनमें "वैज्ञानिक तथ्यता है, प्रशंसनीय व्यावहारिक ज्ञान की सत्ता है, स्वच्छता सम्बन्धी सभी बातों का पूरा ध्यान रक्खा गया है और सैनिक आवश्यकताओं का भी पूरा विचार रक्खा गया है।" वास्तुविद्या और मूर्तिकला विषय पर ये ग्रन्थ हैं—**मयमत, सनत्कुमारवास्तुशास्त्र** और **मानसार**। वास्तुविद्या विषय पर ये ग्रन्थ हैं—**श्रीकुमार** (१६वीं शताब्दी ई०) का **शिल्परत्न** और धारा के राजा **भोज** (१०४० ई०) का **समरांगणसूत्रधार**। **मानसार** में उन सभी शिल्पविद्या-सम्बन्धी बातों का वर्णन है, जिनमें कलात्मकता को स्थान दिया गया है। राजा **कुम्भकर्ण** (१४१६-१४६६ ई०) के आश्रित एक शिल्पकार **मण्डन** ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**वास्तुमण्डन** और **प्रासादमण्डन**।

प्राचीन भारत में चित्रकला पूर्ण उन्नत अवस्था में थी। **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण** में एक अध्याय चित्रकला पर है। अजन्ता की गुफा के चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि यह कला पूर्ण उन्नति को प्राप्त हो चुकी थी। भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला में आध्यात्मिक भावों को विशेषता दी गई है। उसमें अस्थियों और मांसपेशियों आदि की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। संगीत, नृत्य, मूर्तिकला और चित्रकला का उद्देश्य यह है कि जनता के समक्ष संसार का सौन्दर्य उपस्थित किया जाय। जो वस्तुएँ सुन्दर मानी जाती हैं, उनमें परमात्मा का अस्तित्व प्रतिबिम्बित माना जाता है। अतएव इन कलाओं का उद्देश्य उच्च है और इनके द्वारा परमात्मा का महत्त्व प्रकट किया जाता है। अनिर्वचनीय परमात्मा का गौरव इन कलाओं के माध्यम से ही प्रकट किया जा सकता है। "कला वस्तुतः एक खिड़की है, जिससे मनुष्य वास्तविकता को देख सकता है।[1]" जो चित्र चित्रित किये जाते हैं, वे दो प्रकार

१. History of Indian Civilization by C. E. M. Joad पृष्ठ ६३।

के हैं विद्ध और अविद्ध । प्रथम में चित्र की वास्तविकता का पूरा ध्यान रक्खा जाता है और द्वितीय में पूर्ण वास्तविकता का होना आवश्यक नहीं है, उसके द्वारा मूल वस्तु का ज्ञानमात्र होता है । चित्रों के इन दो प्रकारों का उल्लेख दो ग्रन्थों में प्राप्त होता है--कल्याण के चालुक्य राजा **विक्रमादित्य** षष्ठ (लगभग १२०० ई०) के पुत्र **सोमेश्वर** के **अभिलषितार्थचिन्तामणि** ग्रन्थ में तथा **धनपाल** (लगभग १००० ई०) की **तिलकमंजरी** में । **विजयनगर के विद्यारण्य** (१४वीं शताब्दी ई०) की **पञ्चदशी** में चित्रकला का वर्णन है । यह ग्रन्थ अब नष्ट हो गया है । आजकल इस विषय पर कोई प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त नहीं है ।

रत्नों के प्रयोग के कारण **रत्नशास्त्र** का प्रादुर्भाव हुआ । **वराहमिहिर की बृहत्संहिता** में इस विषय का कुछ वर्णन प्राप्त होता है । इस विषय पर ये ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—**अगस्तिमत, बुद्धभट्ट** की **रत्नपरीक्षा** और **नारायण की नवरत्नपरीक्षा** आदि ।

चोरी को भी एक कला माना गया है । **कर्णीसुत** और **मूलदेव** चोरविद्या के प्रामाणिक आचार्य माने जाते हैं । इन्होंने इस विषय पर ग्रन्थ लिखे हैं, परन्तु वे नष्ट हो गये हैं । एक **षण्मुखकल्प** नामक ग्रन्थ आजकल प्राप्य हैं ।

प्राचीन समय में वनस्पति-विज्ञान-सम्बन्धी अध्ययन भी होता था । इस विषय के अध्ययन का कोई पृथक् विभाग विद्यमान नहीं था । वृक्षों और वनस्पतियों की उत्पत्ति, उनका विकास तथा वनस्पति-सम्बन्धी अन्य विषयों का विवेचन इन ग्रन्थों में हुआ है--**वृक्षायुर्वेद**[1], **अग्निपुराण, अर्थशास्त्र, बृहत्संहिता, सुश्रुतसंहिता** तथा **वैशेषिकदर्शन** के सूत्रों पर **शंकरमिश्र** की टीका । **शार्ङ्गधर** ने वनस्पतियों के विभिन्न अङ्गों पर १३वीं शताब्दी में **उपवनविनोद** ग्रन्थ लिखा है ।

---

१. वाग्भट्ट का लिखा हुआ वृक्षायुर्वेद ग्रन्थ है । देखो आचार्य ध्रुव स्मृतिग्रन्थ में पी० के० गोडे का 'भारतीय वनस्पतियों के अध्ययन का इतिहास' लेख ।

नागार्जुन रसायन-विज्ञान और आयुर्वेद का आचार्य माना जाता है। उसका रसायन-विज्ञान के विकास में बहुत हाथ था। उसने धातु-सम्बन्धी मिश्रणों के तैयार करने में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। पारे और लोहे के जो उसने रासायनिक मिश्रण तैयार किए थे, उनका उल्लेख चीनी यात्री **ह्वेनसांग** (६२९-६४५ ई०) तथा मुसलमानी लेखक **अलबेरुनी** (१०१७-१०३० ई०) ने भी किया है। यह कहा जाता है कि **नागार्जुन** ने रसायनविज्ञान पर एक ग्रन्थ लिखा था। संखिया से जो दवाएँ तैयार की जाती थीं, उनका आयुर्वेदिक कार्यों के लिए पान आदि भी कराया जाता था। **सुश्रुत** ने क्षारों के निर्माण और प्रयोग के विषय में विस्तृत विचार किया है। कुतुबमीनार को १४सौ वर्ष हो गये हैं, परन्तु उस पर आजतक न मोर्चा लगा है और न उस पर लिखे हुए अक्षर ही मिटे हैं, इससे ज्ञात होता है कि उस समय लोहे को विशेष प्रकार से तैयार किया जाता था और उसका विशेष कार्यों में भी प्रयोग होता था। **रसार्णव** और **रसरत्नसमुच्चय** में यह विधि दी गई है कि किस प्रकार कच्ची धातु से जस्ता निकाला जा सकता है। बौद्धों ने रसायनविज्ञान के विषय में बहुत बड़ी देन दी है। बौद्ध लोग अपने रसायनविज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों के साथ जो चीन और तिब्बत को चले गये, उसी कारण से भारत में रसायन विज्ञान और कुछ अंश में वैद्यक का भी ह्रास हुआ है।

शल्य और ज्योतिष के साथ ही साथ वैद्यकशास्त्र के क्षेत्र में पुराकालीन भारतीयों का अनुभव श्लाघ्य है। इस अनुभव का प्रमाण अध्ययन की पृथक्-पृथक् शाखाओं के ग्रन्थों से प्राप्त होता है। यह वनस्पतिशास्त्र, पदार्थ-सम्पत्तिओं, नक्षत्रों तथा ग्रहों की पूर्व कल्पना करता है। यह ज्ञान केवल सिद्धान्त रूप तक ही सीमित न था। इन शास्त्रों से सम्बन्धित पदार्थों का प्रयोग प्रयोगशालाओं में अवश्य किया जाता रहा होगा। किये जाने वाले प्रयोगों का ढंग, तत्सम्बन्धी प्रयुक्त प्रायोगिक यन्त्रों तथा अन्य पदार्थों को सन्तति के हाथों नहीं सौंपा गया। इसका कारण आसानी से जाना जा सकता था। भारतीय वैद्यकशास्त्र के शल्य-पक्ष के विलयन का मुख्य रूप से

उत्तरदायी अहिंसा का सिद्धान्त है। जिस पर बौद्ध और जैन उपदेशकों ने बहुत अधिक जोर दिया। बौद्ध अपने रसायनशास्त्र के बहुमूल्य ग्रन्थों के साथ चीन और तिब्बत गये। इस प्रकार रसायनशास्त्र का ह्रास हुआ। यवन आक्रमण के घोर अत्याचार से पीड़ित हो हिन्दू अपनी सुरक्षा की खोज में इधर-उधर चले। फलतः बहुमूल्य ज्ञानकोश और अपनी प्रिय वस्तुएँ भी छोड़ गये। कालान्तर में लोगों का सम्बन्ध परम्परागत कलाओं और शास्त्रों से टूट गया। अन्त में इन उपयोगी शास्त्रों के बहुमूल्य ग्रन्थ खो गये। उन्हें विदेशी लूट ले गये और हमारे पास कुछ भी शेष न रहा।

अध्याय ३१

भारतीय दर्शन और धर्म

सामान्य सिद्धान्त और विभिन्न दर्शन

दर्शन का अभिप्राय है ज्ञानप्राप्ति की इच्छा । यह ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान के साथ विश्व के ज्ञान के विषय में है । इसमें जीव और प्रकृति की उत्पत्ति तथा विकास के विषय में विवेचन किया गया है । किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए युक्तियों का आश्रय लिया गया है । अतः दर्शन बहुत अधिक विचारात्मक है ।

धर्म का अभिप्राय है किसी विषय में श्रद्धा या विश्वास । इस श्रद्धा या विश्वास को क्रियात्मक रूप दिया जाता है । श्रद्धा का सम्बन्ध जीवात्मा और परमात्मा से तथा इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध से है । जीव और प्रकृति के ऊपर ईश्वर की प्रधानता स्वीकार की जाती है । इस प्रकार धर्म अनुभव की वस्तु हो जाता है । यह एक प्रकार का आध्यात्मिक आविष्कार है, इसमें बुद्धि से अतीत परमात्मा का अनुभव किया जाता है । यह अनुभव स्पष्ट, साक्षात्, स्फूर्तिप्रद और आश्चर्यजनक होता है । इस प्रकार धर्म क्रियात्मक और प्राप्तिरूप है ।

दर्शन और धर्म का बाह्य दृष्टिकोण विभिन्न है । पाश्चात्य देशों में दर्शन और धर्म को पृथक्-पृथक् रक्खा गया है । परन्तु भारतवर्ष में इन दोनों का एकत्र ही वर्णन किया गया है और दोनों के मध्य कोई विभेदक सीमा नहीं खींची गई है । भारतवर्ष में दर्शन विचारात्मक होते हुए भी सत्य का अनुसन्धान करता है और वहीं पर स्थिर नहीं रहता है । इसमें इस बात का भी वर्णन किया जाता है कि किस प्रकार का जीवन बिताने से उस सत्य को प्राप्त कर सकते हैं । इस अन्तिम विवेचन में दर्शन धर्म

का स्थान ले लेता है। अतएव भारतवर्ष में इस प्रकार का कोई दर्शन नहीं है, जिसमें धर्म का समावेश सर्वथा न हो। दर्शन ज्ञान का द्वार उद्घाटित करता है और धर्म ज्ञान का मार्ग प्रदर्शित करता है। दार्शनिक विवेचनों के द्वारा जिस सत्य की स्थापना की जाती है, उसको प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य है। भारतवर्ष में दो मुख्य कारणों से दर्शन और धर्म में पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना की गई है। ये दोनों कारण भारतीय श्रद्धा की विशेषता हैं। (१) संसार आध्यात्मिक है। इसमें जीव और प्रकृति का अस्तित्व रहता है। (२) विश्व में अनेकता में भी एकता है। इन कारणों से यह माना जाता है कि वास्तविक सत्य केवल एक ही है, किन्तु उस सत्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न धर्मों के अनुसार मार्ग पृथक् हैं। इन विभिन्न मार्गों का कारण यह है कि उस सत्य को विभिन्न दृष्टि-कोण से देखा गया है। अतएव न केवल धर्मों में ही भेद है, अपितु वास्तविक सत्य के विषय में उनके दार्शनिक विचारों में भी मतभेद है। इस प्रकार विभिन्न विश्वासों में एकता की प्राप्ति होती है। प्राचीन भारत में इस सिद्धान्त को भली भाँति समझा गया था। इसका प्रभाव यह हुआ कि भारतीयों में धार्मिक सहिष्णुता की भावना उत्पन्न हुई और एक धर्म के अनुयायी, दूसरे सर्वथा विपरीत विचार वाले धर्म के अनुयायी के प्रति सहिष्णुता का भाव प्रदर्शित करते थे। इस धार्मिक सहिष्णुता की भावना के कारण ही विभिन्न दर्शनों और धर्मों का साथ ही साथ उद्भव और विकास हुआ।

धर्मशास्त्रों में मनुष्य के कर्तव्यों का जो वर्णन किया गया है वह धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर ही है। जो इन कर्तव्यों का पालन करना चाहते थे, उनके जीवन को व्यवस्थित और नियमित रखने के लिए वर्णों और आश्रमों की स्थापना की गई। वर्ण-व्यवस्था एक महान् प्रयत्न था कि विभिन्न परम्पराओं, कर्मकाण्डों और रीतियों को मानने वाले विभिन्न जातीय तत्त्वों को समन्वित करके एक सामाजिक रूप दिया जाय और उनकी संस्कृति तथा धर्म को एक सूत्र में बाँधा जाय। आश्रमों ने यह व्यवस्था की कि मनुष्य

जीवन के किस काल में किन कर्तव्यों को मुख्य रूप से करे। जीवन के चार उद्देश्य माने गये थे —धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ और काम धर्म के आश्रित थे तथा ये तीनों जीवन के चरम-लक्ष्य मोक्ष के आश्रित थे। अर्थ और काम में आसक्ति मनुष्य की आत्मा को सांसारिक बन्धनों में बाँधती है, अतएव इन दोनों को स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए। उनको इस प्रकार से नियन्त्रित किया जाना चाहिये कि वे आत्मा को उन्नति में सहायक सिद्ध हों। यदि ये तीनों चरम लक्ष्य मोक्ष के अधीन नहीं किए जाते हैं तो मृत्यु के पश्चात् जीव को पुनः जन्म और मृत्यु के बन्धन में आना पड़ता है। ऐसा होना स्वाभाविक है, अन्यथा विश्व में नैतिकता की व्यवस्था नहीं हो सकती है। भारतीय पुनर्जन्मवाद में विश्वास रखते हैं। पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस नैतिक सिद्धान्त पर आश्रित है कि 'मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है'। इसी सिद्धान्त के अनुसार मोक्ष का भी सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य ज्ञान के द्वारा पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। जो मनुष्य को उचित कार्य करने से रोकता है, वह अज्ञान है। सत्य का ज्ञान मनुष्य को सन्मार्ग पर लाता है। इस सत्य का ज्ञान दार्शनिक विवेचन से ही प्राप्त होता है। धर्म के द्वारा निर्धारित नैतिक अनुशासन मनुष्य के अज्ञान को समाप्त करता है। इस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति केवल श्रद्धा से नहीं, अपितु कर्म के द्वारा होती है। भारतीय पद्धति में केवल दार्शनिक विवेचन की अपेक्षा धर्म को विशेष महत्त्व दिया गया है।

वैदिक ग्रन्थों में दार्शनिक भावों के बीज विद्यमान हैं। उनसे ही विभिन्न दर्शनों का उद्भव और विकास हुआ है। इन दर्शनों की मुख्य सत्यता यह है कि ये परमात्मा के अस्तित्व को मानते हैं। वेदों में ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि परमात्मा के स्वरूप को जानने का प्रयत्न उस समय किया गया था। इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि बहुत प्राचीन समय से ही दार्शनिक अन्वेषण प्रारम्भ हो गया था, जो अन्वेषण एक देवता

के विषय में प्रारम्भ हुआ था, वह अनेक देवताओं के विषय में भी चालू रहा। एकदेवता वाद ही अनेकदेवता वाद के रूप में परिणत हुआ और जब उन सभी देवताओं को एक देवता का ही रूपान्तर माना जाने लगा, तब उन सबकी पूजा प्रारम्भ हुई। ब्राह्मण ग्रन्थों में जीवन के धार्मिक विकास का परिचय प्राप्त होता है। उपनिषदों में ऐसे सन्दर्भ मिलते हैं, जिनसे दार्शनिक साहित्य का विकास हुआ है, परन्तु उनमें किसी सिद्धान्त का विधिपूर्वक स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। प्रत्येक उपनिषद् में कई सिद्धान्त विद्यमान हैं। तथापि उपनिषदों में मौलिक रचना विद्यमान है, जिनसे सुसम्बद्ध दार्शनिक भावों का विकास हो सके।

प्रत्येक दर्शन उस दर्शन के पढ़ने वाले विद्यार्थी से आशा रखता है कि वह इन दर्शनों के आधारभूत प्राचीन ग्रन्थों पर दृढ़ आस्था रक्खेगा और उन ग्रन्थों में जो निष्कर्ष निकाले गये है, उनको मानेगा। ऐसा कोई भी दर्शन नहीं है, जो प्राचीन ग्रन्थों (वेद, उपनिषद् आदि) की प्रामाणिकता को स्वीकार न करता हो और उनमें निर्दिष्ट सिद्धान्तों को न माने। इस दृष्टि से दर्शनों की उपमा एक विकसित होते हुए फूल से दे सकते हैं, जिसके दल अपने फूल से पृथक् न होकर उसके साथ ही संबद्ध रहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय दर्शनों पर निराशावादी होने का दोषारोपण किया है। उन्होंने उसके समर्थन के लिए युक्ति दी है कि इनमें अर्थ और काम को हीन स्थान दिया गया है और संन्यास का महत्त्व वर्णन किया गया है। उनका यह दोषारोपण सर्वथा असत्य है, क्योंकि निराशावाद सभी वस्तुओं को दोषमय मानता है और मनुष्य को आशा दिलाने के स्थान पर उसके मस्तिष्क को निराशापूर्ण बनाता है। भारतीय दार्शनिकों ने अर्थ और काम को जो महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है, उसका कारण केवल यह नहीं है कि ये आत्मा के बन्धन के कारण हैं, अपितु मुख्य कारण यह है कि अर्थ और काम को गौण स्थान देने से एक विशेष लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। भारतीय, जो संन्यास

की भावना को महत्त्व देते हैं, उसका भी कारण यही है कि संन्यास के द्वारा उत्तम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः यह मानना ठीक है कि भारतीय दर्शनों में आशावाद की भावना व्याप्त है।

विचारों की विभिन्नता के कारण दर्शन भी अनेक हैं। दर्शन का अर्थ है ज्ञान-प्राप्ति के साधन का आध्यात्मिक दृष्टि से दर्शन अर्थात् साक्षात्कार करना। प्रत्येक दर्शन का उद्देश्य है तत्त्व-दर्शन अर्थात् सत्य का साक्षात्कार करना। समस्त दशनों को स्थूलरूप से दो भागों में विभक्त किया गया है—**आस्तिक** और **नास्तिक**। **आस्तिक** दर्शन का अर्थ है जो दर्शन वेदों की प्रामाणिकता को मानते हैं और जो वेदों की प्रामाणिकता को नहीं मानते हैं, वे '**नास्तिक**' दर्शन हैं। इस व्याख्या के अनुसार नास्तिक दर्शन तीन हैं—**चार्वाक, बौद्ध** और **जैन**, क्योंकि ये वेदों की प्रामाणिकता को नहीं मानते हैं। **न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा** और **वेदान्त** ये ६ दर्शन आस्तिक दर्शन कहे जाते हैं, क्योंकि ये वेदों की प्रामाणिकता को मानते हैं। वेदों की प्रामाणिकता को मानने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनका अन्धानुकरण किया जाय। वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हुए उनके मन्त्रों का अर्थ अपने मतानुसार करने की स्वीकृति दी गई है।

उपनिषद् **आस्तिक** तथा **नास्तिक** हर प्रकार के सिद्धान्तों के स्रोत रहे हैं, यद्यपि नास्तिक वर्ग स्रोतों की समस्त प्रामाणिकताओं का निषेध करेगा। इनमें कुछ तो **दर्शन** में परिवर्तित हो गये हैं, जब कि दूसरे नास्तिक सिद्धान्त में घुल-मिल गये हैं। कुछ सूत्र रूप में नियमित कर दिये गये और कुछ ज्यों के त्यों बने रह गये। प्रत्येक दर्शन के प्रवर्तक प्रायः इन समस्त सिद्धान्तों से पूर्णतया परिचित थे। इसलिए जब कभी किसी दर्शन में किसी अन्य या विरोधी विचारों के उल्लेख मिलें तो यह समझना चाहिए कि इन काल्पनिक सिद्धान्तों का उल्लेख इसी रूप में है न कि उनसे सम्बन्धित कोई विशेष पाठ्य-पुस्तक है। इसलिए विभिन्न दर्शनों के सूत्रसंग्रह की बात निरर्थक है, यदि विपरीत भाव से कोई प्रमाण नहीं है।

अध्याय ३२

नास्तिक-दर्शन

चार्वाक-दर्शन

यह दर्शन भौतिकवादी है। इस दर्शन के सिद्धान्त उतने ही पुराने हैं, जितना कि मानव-जगत्। इस दर्शन के अनुसार जो वस्तु प्रत्यक्ष नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त और कोई अन्य प्रमाण नहीं है। वेद प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं हैं। संसार में न कोई परमात्मा है और न स्वर्ग आदि अन्य लोक। शरीर या पंचतत्त्व से पृथक् आत्मा कोई वस्तु नहीं है। सांसारिक सुख के अतिरिक्त और कोई सुख नहीं है। इस दर्शन का उद्देश्य है कि 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' जब तक जीवे सुख से जीवे। इसके लिए जो कुछ भी करना पड़े वह सब कुछ करे। इस दर्शन के सिद्धान्तों के समर्थन के लिए कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। अन्य दार्शनिक ग्रन्थों से इस दर्शन के सिद्धान्तों का ज्ञान होता है। एक बृहस्पति इस दर्शन का प्रामाणिक आचार्य माना जाता है। **विजयनगर** के **माधव** (१३५० ई०) के **सर्वदर्शनसंग्रह** में कुछ ऐसे उद्धरण दिये गये हैं जो उसके माने जाते हैं। **स्वभाववाद, नियतिवाद** और **यदृच्छावाद** भौतिकवादी विचारों का सकारण विवेचन करते हैं।

बौद्ध-दर्शन

कपिलवस्तु के राजकुमार **गौतम** (५३५-४८५ ई० पू०) ने बौद्ध-दर्शन की स्थापना की थी। वे मनुष्यों के दुःखों को देखकर बहुत द्रवित हुए थे। मनुष्यों के दुःखों को दूर करने का साधन प्राप्त करने के लिए उन्होंने समाधि लगाई और उन्हें ज्ञान-प्राप्ति (बोध) हुई। बोध होने के कारण उनका नाम उसी समय से बुद्ध प्रचलित हो गया। उन्होंने मानवीय दुःखों को दूर करने के लिए कुछ सिद्धान्त स्थापित किए। वह कल्पना-जगत् में नहीं गये हैं। बोध-प्राप्ति से पूर्व वह अनीश्वरवादी सिद्धान्त के समर्थक थे।

बुद्ध ने जिन सिद्धान्तों की स्थापना की, वे ही बौद्ध-दर्शन के मूल सिद्धान्त हुए। जीवन दुःखमय है। इच्छा और काम से वशीभूत होकर किये गये कर्मों के कारण दुःख होता है। इस प्रकार के कर्मों में निरन्तर लिप्त होने से मनुष्य दुःख में पड़ा रहता है और कर्म-सिद्धान्त तथा पुनर्जन्म सिद्धान्त के वश में होकर बार-बार जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य काम के वश होकर कार्यों को करता है। सम्यक् (वास्तविक) ज्ञान के द्वारा ही यह ज्ञान दूर होता है। सम्यक् ज्ञान में यह ज्ञान भी सम्मिलित है कि आत्मा नहीं है और न यह जगत् ही है। आत्मा के अस्तित्व को मानने से सम्यक् ज्ञान नहीं होने पाता। आत्मा को मानने से राग और काम को स्थान मिल जाता है। पुनर्जन्म में भी आत्मा का पुनर्जन्म नहीं होता है, अपितु चरित्र का पुनर्जन्म होता है। इस संसार का भी अस्तित्व नहीं है। यह जो कुछ संसार दृष्टिगोचर होता है वह क्षणभंगुर और अस्थिर है। जब सम्यक् ज्ञान होता है तो अज्ञान नष्ट हो जाता है और उसके साथ ही इच्छा और काम भी नष्ट हो जाते हैं। जब सम्यक् ज्ञान हो जाता है तब कर्म करना भी समाप्त हो जाता है और परिणामस्वरूप दुःख का अभाव हो जाता है। दुःखों का अभाव समाधि के द्वारा ही होता है। समाधि के द्वारा दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाता है। परिणामस्वरूप जगत का और ज्ञान का भी अभाव हो जाता है। इस स्थिति को **निर्वाण** कहते हैं। निर्वाण शब्द का अर्थ है, बुझना या समाप्त होना। अतः निर्वाण उस अवस्था का नाम है, जहाँ सब चीजें समाप्त हो जाती हैं और कुछ शेष नहीं रहता है। इससे सिद्ध होता है कि वास्तविक सत्य 'शून्य' है।

जो 'बोध' के लिए प्रयत्न करता है, उसे बोधिसत्त्व कहते हैं। वह गृहस्थ या भिक्षुक कोई भी हो सकता है। उसके आचरण में विश्वहित की भावना प्रमुख होनी चाहिए। बोधिसत्त्व से बुद्ध की अवस्था को प्राप्त करने के लिए कई सीढ़ियों को पार करना होता है। उसको दान (दान देना), शील (सदाचार के नियमों का पालन), क्षान्ति (क्षमा), वीर्य (शक्ति), ध्यान (समाधि) और प्रज्ञा (ज्ञान), इन ६ पारमितों (उच्च गुणों)

में पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। भिक्षुक इन गुणों का अभ्यास अपने दैनिक जीवन में विहारों (मठों) में रहते हुए करते हैं और गृहस्थ अपने गृहों में रहते हुए स्वार्थ-त्याग तथा भक्तिभाव के द्वारा करते हैं।

बुद्ध वेदों को प्रमाण नहीं मानते थे। वह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में भी विचार नहीं किया है। उन्होंने योग की साधनाओं को विशेषतः भावना (समाधि) को स्वीकार किया है तथा ब्रह्मचर्य के अभ्यास पर विशेष बल दिया है।

बुद्ध के शिष्य विभिन्न प्रतिभा से युक्त थे। उनमें से कुछ ऐसे थे, जो विश्व के अस्तित्व को अनुभव करने के कारण शून्यतावाद को मानने को उद्यत नहीं थे। बुद्ध के उपदेशों की सूक्ष्म सत्यता तथा गम्भीर दार्शनिकता उनको बोधगम्य नहीं था। बुद्ध के शिष्यों तथा उनके अनुयायियों के इस बौद्धिक-शक्ति-भेद के कारण बौद्ध धर्म की चार शाखाएँ प्रचलित हुईं। उनके नाम हैं—**वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार** और **माध्यमिक**। बौद्ध धर्म का एक विशेष सिद्धान्त यह है कि संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है। **वैभाषिकों** का मत है कि ज्ञान और ज्ञेय दोनों सत्य हैं। **सौत्रान्तिकों** का मत है कि ज्ञान सत्य है और ज्ञेय की सत्यता अनुमान के द्वारा ज्ञात होती है। **योगाचार-मार्ग** के अनुयायियों का मत है कि ज्ञान सत्य है और इसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु सत्य नहीं है। अतएव इस शाखा को **विज्ञानवादी** भी कहते हैं। **माध्यमिकों** का मत है कि ज्ञान भी सत्य नहीं है। वे **शून्यतावाद** को मानते हैं। अतएव इस शाखा को **'शून्यतावादी'** भी कहते हैं। **वैभाषिक** शाखा के प्राचीन लेखक **संघभद्र** और **कात्यायन** हैं। **सौत्रान्तिक** शाखा का प्राचीन लेखक **कुमारलब्ध** (३०० ई०) है। यह शाखा मूल बौद्ध-ग्रन्थों पर निर्भर है। **योगाचार** शाखा के प्राचीन लेखक **मैत्रेयनाथ** और **आर्य असंग** हैं। यह शाखा योग (समाधि) और आचार (अभ्यास) पर निर्भर है। **माध्यमिक** शाखा का प्राचीन लेखक आर्य **नागार्जुन** है। इस शाखा का मत है कि बाह्य वस्तुएँ न सर्वथा सत्य हैं और न सर्वथा असत्य। इस प्रकार

यह शाखा मध्यमार्ग को अपनाने के कारण माध्यमिक नाम से प्रचलित हुई। १०० ई० के लगभग प्रमख बौद्धों ने इन चारों शाखाओं में अन्तर किया और कुछ को उच्च तथा कुछ को नीच बताया। निम्न श्रेणी की शाखाओं को **'हीनयान'** नाम दिया गया। इसमें **वैभाषिक** और **सौत्रान्तिक** इन दो शाखाओं की गणना है। इन दोनों शाखाओं के अनुयायी मध्यमवर्ग के व्यक्ति थे और वे केवल अपनी ही मुक्ति चाहते थे। उच्च श्रेणी की शाखाओं को **महायान** कहते हैं। इसमें **योगाचार** और **माध्यमिक** इन दो शाखाओं का समावेश होता है। इन दोनों शाखाओं के अनुयायी उच्चकोटि के व्यक्ति होते थे। वे अपनी मुक्ति स्वयं प्राप्त कर सकते थे। उन्हें किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं थी। वे साथ ही औरों की भी मुक्ति के लिए प्रयत्न करते थे। **'हीनयान'** मार्ग के अनुयायियों ने साहित्यिक कार्यों के लिए 'पाली' भाषा को अपनाया और **महायान** मार्ग के अनुयायियों ने साहित्यिक कार्यों के लिए 'संस्कृत' भाषा को अपनाया।

बुद्ध ने अपने पीछे कोई ग्रन्थ नहीं छोड़ा है। इस दर्शन के प्रमुख लक्षणों का ज्ञान हमें उत्तरवर्ती लेखकों के ग्रन्थों से होता है। ऐसी परिस्थिति में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि बुद्ध ने ये उपदेश दिये थे या नहीं। उदाहरण के लिए उत्तरवर्ती लेखक यह समझते हैं कि आत्मा की सत्ता का ज्ञान मनुष्य में आसक्ति, वासना तथा काम को प्रबुद्ध करता है। इसलिए आत्मा और संसार की सता का निषेध किया गया है। शून्यता परम सत्य है। उनके उपदेश और वक्तव्य पिटकों में संगृहीत हैं। ये पिटक पाली भाषा में हैं और ये बौद्ध धर्म के धर्म ग्रन्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पिटक ग्रन्थ तीन हैं—**सुत्त, विनय** और **अभिधम्म**। **सुत्तपिटक** में बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। **विनयपिटक** में बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए अनुशासन के नियम तथा दैनिक जीवन के लिए उपदेश हैं। **अभिधम्म पिटक** में दार्शनिक विवेचन हैं। इन पिटकों के लेखकों का नाम अज्ञात है। इनके संकलन का समय २४० **ई० पू०** से पूर्व माना जाता है। ये धर्मग्रन्थ संस्कृत भाषा में भी प्राप्य हैं,

परन्तु वे सभी अपूर्ण हैं। उनमें से कुछ ये हैं---**प्रतिमोक्षसूत्र, विनयपिटक दीर्घागम, मध्यमागम** आदि।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी ग्रन्थ हैं, जो कि बौद्धों के लिए प्रामाणिक हैं। उनमें से अधिकांश कथा के रूप में हैं। इस विभाग में **जातक, धम्मपद, दीपवंश** और **अवदान** आदि आते हैं। **महावस्तु** में बहुत से जातक हैं। इसका सम्बन्ध होनयान शाखा से है। **ललितविस्तर** महायान शाखा का सबसे पवित्र धर्मग्रन्थ है। इसमें बुद्ध का जीवन-चरित दिया हुआ है। इसका दूसरा नाम **वैपुल्यसूत्र** है। इसका रचनाकाल और लेखक का नाम अनिश्चित है। इसका ९वीं शताब्दी में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है। **कुमारलात** ने **सूत्रालंकार** ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम **कल्पनामण्डितक** है। इसमें जातकों और अवदानों का सङ्कलन है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है। इसी प्रकार का अन्य ग्रन्थ **आर्यशूर** की **जातकमाला** है। **सद्धर्मपुण्डरीक** में महायान शाखा के सिद्धान्तों का वर्णन सूत्रों के रूप में है। इसमें गद्यभाग शुद्ध संस्कृत में है और गाथाएँ (पद्य) प्राकृत में हैं। इसका २२३ ई० में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। यह ग्रन्थ बुद्ध की भक्ति के विकास में बहुत सहायक हुआ है। प्रज्ञापारमितों में शून्यवाद का वर्णन है। उनमें बोधिसत्त्व की पूर्णता का वर्णन है। प्रज्ञापारमितों में प्रत्येक के कई संस्करण हैं और उनमें सूत्रों की संख्या में अन्तर है। इनमें सूत्रों की संख्या ७०० से १ लाख तक है। अतएव इनके नाम हैं---**अष्टसाहस्रिकापारमित** और **शतसाहस्रिकापारमित** आदि। लंकावतारसूत्रों में बौद्ध धर्म के आदर्शवाद और शून्यवाद सिद्धान्तों का वर्णन है। **सुवर्ण-प्रभास** में आश्चर्यकारी विधियों का वर्णन है। **समाधिराज** में समाधि का वर्णन है। बोधिसत्त्व से बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए जिन १० सोपानों को पार करना होता है, उनका वर्णन **दशभूमीश्वर** ग्रन्थ में है। **गण्डव्यूह** और **तथागतगुह्यक** शून्यवाद सिद्धान्त के समर्थक हैं।

लगभग ईसवीय सन् के प्रारम्भ में बुद्ध को देवता माना जाने लगा। उनका वर्णन तायिन्, भगवा, सुगत तथा सर्वज्ञ के रूप में किया जाने लगा।

अङ्गुत्तरनिकाय, बुद्धवंश और **ललितविस्तर** बुद्ध की उपासना का समर्थन मुक्तिसाधन के रूप में करते हैं। **अश्वघोष** ने उनकी भक्ति पर बल दिया। **सद्धर्मपुण्डरीक** बुद्ध के मन्दिरों का वर्णन करता है और उनका अनुग्रह प्राप्त करने पर बल देता है। **मंजुश्री, अवलोकितेश्वर** तथा **तारा** आराध्य देवियाँ हो गयीं। इस विषय का वर्णन **अवलोकितेश्वरगुणकरण्डव्यूह, सुखावतीव्यूह, कर्मपुण्डरीक** और **अवतंसकसूत्र** में हुआ है। **आदिकर्मप्रदीप** में बौद्धधर्म के कर्मकाण्डों का वर्णन है। इन कर्मकाण्डों में आश्चर्यजनक और रहस्यात्मक कार्य भी सम्मिलित हैं।

शून्यवाद का वास्तविक सिद्धान्त यह है कि सभी वस्तुएँ शून्य हैं। जब तक इस तथ्य की अनुभूति न हो जाए, तब तक इस भौतिक संसार को ज्ञान का विकास ही समझना चाहिए। इसको **आलयविज्ञान** कहते हैं। जब तक तत्त्व-ज्ञान नहीं होता है, तब तक यही आलयविज्ञान विद्यमान रहता है। इन्द्रियों की सहायता से जो अनुभव प्राप्त होता है, उससे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे **प्रवृत्तिविज्ञान** कहते हैं। इन सिद्धान्तों को समझने के लिए बौद्ध दार्शनिक **प्रत्यक्ष** और **अनुमान** इन दो प्रमाणों को स्वीकार करते हैं।

बौद्ध-सिद्धान्तों का सबसे प्रथम सुव्यवस्थित रूप में प्रतिपादन करने वाला अश्वघोष है। उसको महायान-शाखा के सिद्धान्तों का प्रमुख संस्थापक और प्रचारक माना जाता है। **महायानश्रद्धोत्पाद** उसकी रचना मानी जाती है। यह महायान-सिद्धान्तों का पोषक दार्शनिक ग्रन्थ है। महायान शाखा के संस्थापकों में अश्वघोष के अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति बौद्ध दार्शनिक **नागार्जुन** माना जाता है। वह बौद्ध-दर्शन, जादू, गणित, ज्योतिष, वैद्यक तथा कई विद्याओं का विशेषज्ञ था। उसने बहुत से ग्रन्थ लिखे थे। उनमें से अधिकांश अब चीनी और तिब्बती भाषा में ही सुरक्षित हैं। उसने **माध्यमिकसूत्र** लिखे हैं। इनका दूसरा नाम **माध्यमिककारिका** है। इन सूत्रों की संख्या ४०० है। उसने इन सूत्रों पर स्वयं **अकुतोभय** नाम की टीका की है। इनमें महायान शाखा के सिद्धान्तों का वर्णन है। उसके अन्य ग्रन्थ ये हैं—(१) **युक्तिषष्ठिका,** (२)

शून्यतासप्तति, (३) **प्रतीत्यसमुत्पादहृदय,** (४) **महायानविंशक** (५) **विग्रह-व्यावर्तनी** (न्यायशास्त्रविषयक), (६) **धर्मसंग्रह,** (७) **सुहृल्लेख,** (८) **प्रमाणविध्वंसन** और (९) **पंचपराक्रम** (कर्मकाण्ड-विषयक) आदि। योगाचार-शाखा को ईसवीय सन् के पश्चात् महत्त्व प्राप्त हुआ। इसका श्रेय **मैत्रेय** को है। वह ४०० ई० से पूर्व हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **बोधिसत्त्वचर्या-निर्देश,** (२) **सप्तदशभूमिशास्त्र-योगचर्या** और (३) **अभिसमयालंकारकारिका**। **असङ्ग** मैत्रेय का शिष्य था। वह चतुर्थ शताब्दी ई० में हुआ था। उसने **योगाचारभूमिसूत्र** और स्वटीकासहित **महायान-सूत्रालंकारसूत्र** ये दो ग्रन्थ लिखे हैं। उसने इनके अतिरिक्त १० ग्रन्थ और लिखे हैं। वे चीनी और ति-बती भाषा में प्राप्त होते हैं। **बसुबन्धु असंग** का भाई था। वह पहले हीनयान-शाखा का अनुयायी था और उसने उस शाखा के सिद्धान्तों पर दो ग्रन्थ लिखे—**गाथासंग्रह** और **अभिधर्मकोश**। बाद में वह महायान शाखा का अनुयायी हो गया और उसने बहुत से ग्रन्थ लिखे। उन ग्रन्थों के मूल रूप नष्ट हो गए हैं। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **वादविधि,** (२) **वादमार्ग,** (३) **वादकौशल,** (४) **तर्कशास्त्र** और (५) **परमार्थसप्तति**। यह **सांख्यकारिका** का खण्डनात्मक ग्रन्थ है। दिङ्नाग वसुबन्धु का शिष्य था। वह ४०० ई० के लगभग हुआ था। वह बौद्ध-न्यायशास्त्र का संस्थापक था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **प्रमाणसमुच्चय** तथा उसकी वृत्ति (टीका), (२) **न्यायप्रवेश,** (३) **हेतुचक्र,** (४) **आलम्बनपरीक्षा** तथा उसकी वृत्ति और (५) **त्रिकालपरीक्षा** आदि। इनमें से **न्यायप्रवेश** को छोड़कर अन्य के मूल ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं। परमार्थ (४९८-५६९ ई०) ने संस्कृत में लिखे हुए बहुत से ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। **शान्तिदेव** (७वीं शताब्दी ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **शिक्षासमुच्चय,** (२) **सूत्रसमुच्चय,** और (३) **बोधिचर्यावतार**। धर्मकीर्ति (लगभग ६५० ई०) अपने समय में आस्तिक-दर्शनों का प्रबल विरोधी था। उसने बौद्ध दर्शन तथा बौद्ध न्याय-शास्त्र पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसके ग्रन्थ ये हैं—(१) **प्रमाणवार्तिककारिका** तथा उसकी वृत्ति, (२) **प्रमाणविनिश्चय,** (३) **न्यायबिन्दु,** (४) **हेतुबिन्दु-**

विवरण, (५) **तर्कन्याय**, (६) **सन्तानान्तरसिद्धि** और (७) **सम्बन्धपरीक्षा** तथा उसकी वृत्ति। इनमें से **न्यायबिन्दु** संस्कृत में उपलब्ध है। अन्य ग्रन्थ केवल अनुवाद रूप में प्राप्त हैं। **शान्तरक्षित** ने ७०० ई० के लगभग **तत्त्वसंग्रह** ग्रन्थ लिखा है। उसने इसमें अपने समय के अन्य दार्शनिक मतों की आलोचना की है। **शान्तरक्षित** के शिष्य **कर्मलशील** ने ७४९ ई० में **तत्त्वसंग्रहपंजिका** नाम से इसकी टीका की है। **कल्याणरक्षित** ९वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **सर्वज्ञसिद्धिकारिका**, (२) **बाह्यार्थ-सिद्धिकारिका**, (३) **श्रुतिपरीक्षा**, (४) **अन्यापोहविचारकारिका** और (५) **ईश्वरभंगकारिका**। **कल्याणरक्षित** के शिष्य **धर्मोत्तर** ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **न्यायबिन्दुटीका**, (२) **प्रमाणपरीक्षा**, (३) **अपोहनामप्रकरण**, (४) **परलोकसिद्धि**, (५) **क्षणभंगसिद्धि** और (६) **प्रमाणविनिश्चयटीका**। **धर्मोत्तर** का समय ८५० ई० के लगभग समझना चाहिए। **रत्नकीर्ति** १०वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **क्षणभंगसिद्धि**, (२) **अपोहसिद्धि**, (३) **स्थिरसिद्धिदूषण** और (४) **चित्राद्वैतसिद्धि**। **ज्ञानश्री** (लगभग ९५० ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **कार्यकारणभावसिद्धि**, (२) **व्याप्तिचर्चा** और (३) **प्रमाणविनिश्चयटीका**।

बौद्ध दर्शन की प्रसिद्धि मुख्यरूप से उसके आचारशास्त्रीय सिद्धान्तों के कारण हुई है। **नागार्जुन**, **असंग** और **वसुबन्धु** जैसे प्रकाण्ड विद्वानों, **दिङ्नाग** और **धर्मकीर्ति** जैसे तार्किकों तथा **कर्मलशील** जैसे लेखकों के भगीरथ प्रयत्न से बौद्ध-दर्शन एक दर्शन के रूप में सफल हो सका है। बौद्ध धर्म में प्राप्य आचारशास्त्रीय सिद्धान्त बौद्धधर्म की ही विशेषता नहीं है। ये सिद्धान्त वैदिक ग्रन्थों में भी प्राप्य हैं। इसके शून्यतावादी सिद्धान्त के कारण अन्य दर्शनों के विद्वानों ने इस दर्शन पर आक्षेप किए हैं। इसी कारण से यह दर्शन अपने जन्म-स्थान भारतवर्ष में विकसित न हो सका।

जैन धर्म

वर्धमान महावीर (५९९-५२७ ई० पू०) जैन धर्म के संस्थापक थे। उन्होंने **पार्श्वनाथ** (८०० ई० पू०) के द्वारा संस्थापित और अपने समय में

विद्यमान धर्म का सुधार किया। इस क्षेत्र में उससे पूर्व २३ सन्त हो चुके थे, उनमें सन्त **ऋषभ** सबसे प्राचीन थे और वे ही जैन धर्म के सिद्धान्तों के जन्मदाता थे।

जैन लोग जीवात्मा को प्रकृति से पृथक् मानते है। वे जीवात्मा और प्रकृति दोनों को सत्य मानते हैं। जीवात्मा अनेक हैं। ये पुनर्जन्मवाद और कर्म-सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। जीवात्मा में ज्ञान है परन्तु वह पूर्व कर्मों के कारण प्रकाशित नहीं होने पाता। यह भौतिक शरीर पूर्व कर्मों का परिणाम है। यह जीवात्मा को उन्नति करने से रोकता है। अतः शरीर को **'आवरण'** कहा जाता है। अतः शरीररूपी आवरण से छूटने का उपाय **'रत्नत्रय'** अर्थात् रत्नतुल्य तीन कार्य हैं। वे तीन कार्य हैं——(१) **सम्यग्दर्शन** (२) **सम्यग्ज्ञान** और (३) **सम्यक्चरित्र**। सम्यग्दर्शन में जैन सिद्धान्तों पर विश्वास करना भी सम्मिलित है। सम्यग्ज्ञान में जैन आचार्यों के द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं का ठीक ढंग से समझना सम्मिलित है। सम्यक्चरित्र में आत्मा को बन्धन में डालने वाले पापों से निवृत्त होना सम्मिलित है। सम्यक्चरित्र का अभ्यास करने के लिए इन व्रतों का अभ्यास करना चाहिए——**अहिंसा, सूनृत** (सत्य और मधुर-भाषण), **अस्तेय** (चोरी न करना), **ब्रह्मचर्य** और **अपरिग्रह** (किसी की किसी वस्तु को न लेना)। इस मत में अहिंसा के अभ्यास को पूर्णता तक पहुँचा दिया गया है। इस मत की दीक्षा लेने वाला अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ने की अपेक्षा आत्महत्या करना अच्छा समझता है। इस धर्म में आत्म-संयम और वैराग्य पर अधिक बल दिया गया है। इन व्रतों के अभ्यास का फल मानवीय बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो जाना है। इस मुक्त अवस्था में आत्मा सांसारिक विषय-वासनाओं से सर्वथा मुक्त रहता है। उसके दुःख के सभी कारण पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। बौद्धमत के तुल्य इस मत में आत्मा का नाश नहीं होता है, अपितु आत्मा आनन्दमय-स्वरूप को प्राप्त करता है। इस अवस्था को प्राप्त होने पर जीव को 'अर्हत्' कहते हैं। ये अर्हत् सर्वज्ञ होते हैं।

देखिए:—

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ।।

आप्तनिश्चयालङ्कार

जैन ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं और न वे वेदों को ज्ञान का आदिस्रोत मानते हैं। उनके मतानुसार तीन प्रमाण हैं—**प्रत्यक्ष, अनुमान** और **शब्द** (जैन आचार्यों के ग्रन्थ के रूप में)।

सांसारिक वस्तुओं के अस्तित्व के विषय में जैनों ने **'स्याद्वाद'** नाम का एक विचित्र सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। एक वस्तु जिसको हम विद्यमान कहते हैं, वह स्वरूप में है, परन्तु अन्य विद्यमान वस्तुओं के रूप में नहीं है। अतः उसको एक रूप में 'है' कह सकते हैं और अन्य वस्तुओं के अस्तित्व की दृष्टि से 'नहीं है' कह सकते हैं। उसको एक विशेष नाम से पुकार सकते हैं, परन्तु अन्य नामों से उसे नहीं पुकार सकते हैं। अतएव एक वस्तु को अनेक रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। अतः जैनों ने वस्तु के अस्तित्व के विषय में सात प्रकार माने हैं :—(१) वस्तु है, (२) वस्तु नहीं है, (३) वस्तु है और वस्तु नहीं है, (४) वस्तु अवर्णनीय है, (५) वस्तु है, परन्तु अवर्ण्य है, (६) वस्तु नहीं है और अवर्णनीय है और (७) वस्तु है, वस्तु नहीं है और अवर्णनीय है। सात प्रकार से वस्तु को प्रस्तुत करने के कारण इसे **सप्तभंगीनय** भी कहते हैं।

महावीर के स्वर्गवास के पश्चात् उसके अनुयायी दो विभागों में विभक्त हो गए— (१) **दिगम्बर** और (२) **श्वेताम्बर**। दिगम्बर मार्ग के अनुयायियों का यह मत है कि मोक्ष के इच्छुक को चाहिए कि वह अपनी सभी वस्तुओं का परित्याग कर दे। वस्त्र भी आवरण है, अतः उनका भी परित्याग कर दे। स्त्रियाँ मोक्ष की अधिकारिणी नहीं है। अतएव इस मार्ग के अनुयायी दिगम्बरत्व (पूर्ण नग्नत्व) का प्रचार करते थे। इस मार्ग का **निर्ग्रन्थिक** भी कहा जाता है। श्वेताम्बर मार्ग के अनुयायी श्वेताम्बर (श्वेत वस्त्र) को पहनना स्वीकार करते थे और उनके मतानुसार स्त्रियाँ भी मोक्ष की अधिकारिणी हैं।

इस धर्म के सबसे प्राचीन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार मागधी प्राकृत में किया। उनके लेख भी प्राकृत भाषा में ही संगृहीत हुए। जैनों के प्रामाणिक ग्रन्थ **सिद्धान्त** या **आगम** हैं। जैनों का सबसे प्राचीन लेखक **भद्रबाहु** था। इस नाम के दो जैन लेखक थे, एक प्राचीन और दूसरा परकालीन। उन दोनों का समय क्रमशः लगभग ४३३-३५७ ई० पू० और लगभग १२ ई० पू० माना जाता है। इनमें से एक ने दशरूपात्मक तर्कपद्धति को जन्म दिया है। उसने **दशवैकालिकासूत्र** की प्राकृत में टीका **दशवैकालिकनिर्युक्ति** नाम से की है। इसमें जैन-तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों का वर्णन है। **उमास्वाति** ने प्रथम शताब्दी ई० में **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** की रचना की। इसमें उसने तत्त्वों और उनके ज्ञान की पद्धति का वर्णन किया है। इस पर उसने स्वयं टीका भी लिखी है। **सिद्धसेन दिवाकर** (४८०-५५० ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** की टीका **न्यायावतार** और (२) जैन दर्शन विषय पर प्राकृत में **सम्मतितर्कसूत्र**। पाश्चात्य विद्वान् सिद्धसेन दिवाकर का समय ७वीं शताब्दी ई० मानते हैं। **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** पर **पूज्यपाद देवनन्दी** (५०० ई०) ने **सर्वार्थसिद्धि** नाम की एक टीका लिखी। ऐसा समझा जाता है कि **पूज्यपाद** और वैयाकरण **जिनेन्द्रबुद्धि** एक ही व्यक्ति हैं। **समन्तभद्र** ने **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** की टीका **गन्धहस्तिमहाभाष्य** नाम से की है। **कुमारिल भट्ट** (लगभग ६५०) ने इसकी आलोचना की है। अतः उसका समय ६०० ई० से पूर्व मानना चाहिए। इस टीका के प्रारम्भिक भाग को **आप्तमीमांसा** कहते हैं। अकलंक ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **सामन्तभद्र** की **आप्तमीमांसा** की टीका, (२) **न्यायाविनिश्चय,** (३) **तत्त्वार्थवार्तिकव्याख्यानालंकार,** (४) **लघीयस्त्रय,** (५) **स्वरूपसंबोधन** आदि। **कुमारिल** (लगभ ६५० ई०) ने इसका भी खण्डन किया है, अतः इसका समय ६०० ई० के लगभग मानना चाहिए। **माणिक्यनन्दी** (८०० ई०) ने प्रमाण विषय पर **परीक्षामुखसूत्र** लिखा है। **प्रभाचन्द्र** (लगभग ८२५) ई० ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **परीक्षामुखसूत्र** की टीका **प्रमेयकमलमार्तण्ड** और (२) **अकलंक** के **लघीयस्त्रय** की टीका **न्याय-**

कुमुदचन्द्रोदय। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **प्रमाणमीमांसा** तथा उसकी स्वरचित टीका और (२) **वीतरागस्तुति** (अर्हत्-की स्तुति)। हेमचन्द्र के समकालीन **देवसूरि** ने **प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार** नाम का ग्रन्थ लिखा है और इस पर स्वयं **स्वद्वादरत्नाकर** नाम की टीका लिखी है। **दर्शनशुद्धि** और **प्रमेयरत्नकोश चन्द्रप्रभा** (११०० ई०) की रचना माने जाते हैं। **हरिभद्रसूरि** १२वी शताब्दी ई० का प्रसिद्ध विद्वान् था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१)**षड्दर्शनसमुच्चय**, (२) **न्यायावतारविति**, (३) **योगबिन्दु** और (४) **धर्मबिन्दु** आदि । जैन-परम्परा का कथन है कि उसने १४०० ग्रन्थ लिखे हैं । **मल्लिषेणसूरि** ने १२९२ ई० में **हेमचन्द्र** की **वीतरागस्तुति** की टीका **स्याद्वादमंजरी** नामक ग्रन्थ में की है। इसमें उसने स्वाद्वाद की विधिपूर्वक व्याख्या की है । **राजशेखरसूरि** (१३४८ ई०) ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से ये दो ग्रन्थ मुख्य हैं—(१) **स्याद्वाद-कारिका** और (२) **श्रीधर** की **न्यायकन्दली** की टीका **पंजिका**। **गुणरत्न** ने १५वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में हरिभद्र के **षड्दर्शनसमुच्चय** की टीका की है । **यशोविजयगणि** (१६०८-१६८८ ई०) ने १०० से अधिक ग्रन्थ लिखे हैं । उनमें से प्रसिद्ध ये हैं— (१) **न्यायप्रदीप**, (२)**तर्कभाषा**, (३)**न्यायरहस्य**, (४) **न्यायामृततरंगिणी** और (५) **न्यायखण्डखाद्य** ।

हरिभद्रसूरि के **योगबिन्दु** तथा **धर्मबिन्दु** में और **सकलकीर्ति** (१४६४ ई०) के **प्रश्नोत्तरोपासकाचार** में साधारण तथा संन्यासी दोनों प्रकार के जैनों के कर्तव्यों का वर्णन है । **सकलकीर्ति** ने **तत्त्वार्थसारदीपिका** नामक ग्रन्थ भी लिखा है । इसमें उसने दिगम्बर-जैन मत पर जितने भी ग्रन्थ हैं, उनका पूरा सारभाग दिया है ।

निम्नलिखित ग्रन्थों में जीवन चरित तथा परम्परागत बातों का वर्णन है—(१) सिद्धर्षि (९०६ ई०) कृत **उपमितिभावप्रपंचकथा**, (२) **अमितगति** (१००० ई०) कृत **धर्मपरीक्षा** (३)**हेमचन्द्र** (१०८८-११७२) कृत **परिशिष्टपर्व** और **स्थविरावलीचरित**, (४) जैन दृष्टिकोण से महाभारत की कथा पर **हरिवंशपुराण** । इसके दो संस्करण हैं, एक प्राचीन और दूसरा पर-

कालीन। प्राचीन संस्करण का लेखक **जिनसेन** (७८४ ई०) हैं और दूसरे के लेखक १५वीं शताब्दी ई० के **सकलकीर्ति** और उसके शिष्य **जिनदास** हैं। (५) **जिनसेन** (९वीं शताब्दी ई०) कृत **आदिपुराण** (६) **गुणभद्र** (८९८ ई०) कृत **उत्तरपुराण**। यह आदिपुराण का ही संलग्नरूप है। (७) **रविषेण** (६६० ई०) कृत **पद्मपुराण** और (८) **शुभचन्द्र** (१५५१ ई०) कृत **पाण्डव पुराण**।

अहिंसा-सिद्धान्त के अपनाने से ही जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ। यह मत धर्म के नैतिक सिद्धान्तों पर जितना बल देता है, उतना विवेचनात्मक विषयों पर नहीं। बौद्धों की अपेक्षा जैनों ने संस्कृत साहित्य को अधिक देन दी है। जैनों के काव्य सरल और सुन्दर हैं। उन्होंने प्राकृत-भाषा के साहित्य के विकास में भी बहुत योग दिया है।

अध्याय ३३

आस्तिक-दर्शन

न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग

आस्तिक-दर्शन ६ हैं। उनके नाम हैं—**न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा** और **वेदान्त**। इन सभी दर्शनों के मूल-सिद्धान्त वैदिक-ग्रन्थों से लिए गये हैं। इन दर्शनों का विकास उपनिषदों के समय से हुआ है। अतएव इन दर्शनों का कालक्रम के अनुसार वर्णन संभव नहीं है। इनमें स्व-सिद्धान्तों का वर्णन सूत्रों के रूप में हुआ है। **वेदान्तदर्शन** और **मीमांसादर्शन** के सूत्रों के रचयिता क्रमशः **बादरायण** और **जैमिनि** हैं। **बादरायण** और **महाभारत** के लेखक **व्यास**, दोनों एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। **जैमिनि व्यास** का शिष्य माना जाता है। **सांख्यदर्शन** और **योगदर्शन** के रचयिता क्रमशः **कपिल** और **पतंजलि** हैं। यह **पतंजलि** और महाभाष्य के रचयिता वैयाकरण **पतंजलि** एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। **न्यायदर्शन** और **वैशेषिकदर्शन** के रचयिता क्रमशः **गौतम** और **कणाद** है।

इन दर्शनों में तत्त्वों का स्वमतानुसार विभिन्न रूप से विभाजन किया गया है। इन दर्शनों का मन्तव्य है कि इन तत्त्वों के ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इन तत्त्वों के ज्ञान के लिए वे प्रमाणों का स्वमतानुसार लक्षण देते हैं। इन दर्शनों के अनुसार प्रमाण २ से लेकर ८ तक हैं। प्रत्येक दर्शन में प्रमाणों की संख्या विभिन्न हैं।

न्याय और वैशेषिक-दर्शन

ये दोनों दर्शन वैज्ञानिक तर्क-पद्धति पर विशेष बल देते हैं। ऐसी तर्कपद्धति का प्रारम्भ **बृहदारण्यक** आदि उपनिषदों से हुआ है। **'न्याय'** शब्द का प्रारम्भ में अर्थ था, वेदों की न्यायोचित विधि से व्याख्या करना। न्याय शब्द से

प्रायः मीमांसा-दर्शन का अर्थ लिया जाता था। न्यायदर्शन के लिए न्याय शब्द का प्रयोग बहुत बाद में प्रारम्भ हुआ है। **वैशेषिक** नाम इस आधार पर पड़ा है कि इस दर्शन में 'विशेष' को एक पृथक् पदार्थ माना गया है। यह माना जाता है कि इस दर्शन में माने गये कुछ विशेष सिद्धान्तों को जो स्वीकार करता है, उसे **वैशेषिक** कहते हैं।[1] वैशेषिक-दर्शन का सम्बन्ध तत्त्वमीमांसा से है और न्यायदर्शन का सम्बन्ध विश्व के तथ्यों की प्रमाण-मीमांसा से है। प्रमाणमीमांसा के द्वारा तत्त्वमीमांसा से संबद्ध विषयों का विवेचन किया जाता है। अतः इसको लक्षण-विज्ञान कह सकते हैं, जिसके द्वारा अति शुद्ध रूप में लक्षणों का निर्माण होता है। दोनों दर्शनों में मनो-विज्ञान से संबद्ध विषयों का भी वर्णन है। दोनों दर्शनों का उद्देश्य है निश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति। यह मोक्ष-प्राप्ति दुःखों के पूर्ण नाश से ही हो सकती है। दुःखों का अत्यन्ताभाव तत्त्वों के ज्ञान से होता है। **वैशेषिक** दर्शन प्रत्यक्ष और **अनुमान** इन दो प्रमाणों को मानता है, किन्तु **न्यायदर्शन, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द** और **उपमान** इन चार प्रमाणों को मानता है। ये दोनों दर्शन वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, अतः उनको स्वतःप्रमाण मानते है। प्राचीन ग्रन्थों में मनुष्य और ईश्वर का सम्बन्ध तथा ईश्वर की उपासना का विवेचन नहीं हुआ है। यह विवेचन ईसवीय सन् के बाद प्रारम्भ हुआ, जब **उद्योत-कर, वाचस्पति मिश्र** तथा **उदयन** ने इन विषयों पर विस्तृत विवेचन किया। उदयन के प्रयत्न के कारण ही बाद के दार्शनिक ग्रन्थों में उपासना-सम्बन्धी विषयों को स्थान मिला है। उदयन ने **आस्तिकवाद** के लिए बहुमूल्य देन दी है। उदयन के पश्चात् न्याय और वैशेषिक के दोनों दर्शन एक ही दर्शन के रूप में वर्णन किये गये हैं। इस समय प्रमाण मीमांसा वाला अंश बहुत अधिक विकसित हुआ। इन दर्शनों का तार्किक-विवेचन इतना पूर्ण हो गया कि अन्य दर्शनों तथा साहित्य-शास्त्र आदि ने भी इस तार्किक-विवेचन की पद्धति को अपनाया।

---

१. द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे।
यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वैशेषिकं विदुः॥

वैशेषिकों ने **परमाणुवाद** के सिद्धान्त की स्थापना की और नैयायिकों ने उसे विकसित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार चक्षु से दृष्टिगोचर होने वाले सूक्ष्मतम अणु के $\frac{1}{3}$ भाग को परमाणु कहते हैं। संसार की प्रत्येक वस्तुएँ इन परमाणुओं के सम्मिश्रण से ही बनती हैं। ये परमाणु असंख्य हैं। प्रत्येक तत्त्व (भूत) के परमाणु विभिन्न होते हैं और उनका मिश्रण भी विभिन्न प्रकार से होता है। प्रत्येक वस्तु के गुण अपने आधारभूत परमाणुओं के गुणों पर ही निर्भर होते हैं। परमाणुओं में आन्तरिक उष्णता (पाक) होती है, अतः उनमें परिवर्तन होता है। वैशेषिक दर्शन का मत है कि जब किसी वस्तु को गर्म किया जाता है तो वह वस्तु विश्लेषण की अवस्था को प्राप्त करके क्रमशः परमाणु की अवस्था को प्राप्त होती है। वे ही परमाणु अपने गुणों में अन्तर करके अन्य वस्तु को उत्पन्न करते हैं। इस दर्शन के अनुसार परमाणु को पीलु कहते हैं और उष्णता का प्रभाव परमाणु पर होता है। अतः इस दर्शन के इस सिद्धान्त को **'पीलुपाकवाद'** कहते हैं। नैयायिकों का मत है कि वस्तु को गर्म करने पर समस्त वस्तु विश्लिष्ट नहीं होती है, अपितु गर्मी का प्रभाव अदृश्यरूप से परमाणुओं पर होता है और उनमें परिवर्तन होता है। परमाणुओं पर जो गर्मी का प्रभाव होता है, वह संपूर्ण वस्तु (पिठर) में दृष्टिगोचर होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार गर्मी का प्रभाव परमाणुओं और संपूर्ण वस्तु दोनों पर होता है, अतः इस सिद्धान्त को **'पिठरपाकवाद'** कहते हैं। उत्पन्न हुई वस्तुओं के विषय में इस दर्शन का मत है कि उनमें नवीन प्रयत्न होता है। अतः इस सिद्धान्त को **'आरम्भवाद'** कहते हैं।

वैशेषिकसूत्र, न्यायसूत्रों से प्राचीन हैं। वैशेषिक सूत्र सुव्यवस्थित रूप से बद्ध नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि विधिपूर्वक संकलन का यह प्रारम्भिक प्रयत्न है। इसकी शली प्राचीन है। इसमें बौद्धधर्म का उल्लेख नहीं है। अतः इसका समय ५०० ई० पू० से पूर्व मानना चाहिए। न्यायसूत्रों में वैशेषिक सूत्रों में वर्णित विषय का ही संशोधित रूप में वर्णन है। इसमें सूत्र सुव्यवस्थित रूप में हैं। इन सूत्रों से ज्ञात होता है कि वैशेषिक सूत्रों पर बौद्धों और जैनियों ने जो आक्रमण किए थे, उनका इसमें उत्तर दिया गया है और

वैशेषिक सूत्रों के मन्तव्यों का समर्थन किया गया है। अतः इन सूत्रों का समय बौद्धधर्म की उत्पत्ति के बाद ४०० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए। वैशेषिक सूत्रों के लेखक कणाद हैं। इस दर्शन का प्राचीन नाम 'योग' था। न्यायसूत्रों के लेखक गौतम हैं। इस दर्शन का प्राचीन नाम 'आन्वीक्षिकी' था।

वात्स्यायन ने **न्यायसूत्रों** पर टीका लिखी है। वात्स्यायन ने न्याय-भाष्य में अपना दूसरा नाम **पक्षिलस्वामी** दिया है। उसने **नागार्जुन** के मन्तव्यों का अपने भाष्य में खण्डन किया है और **दिङ्नाग** (४०० ई० के लगभग) ने वात्स्यायन के मन्तव्यों पर आक्षेप किए हैं। अतः वात्स्यायन का समय २०० ई० के लगभग मानना चाहिए। **भारद्वाज उद्योतकर** ने न्यायभाष्य की टीका **न्यायवार्तिक** ग्रन्थ में की है। उसका समय ६ठीं शताब्दी ई० है। **वाचस्पति-मिश्र** ने **न्यायवार्तिक** की टीका अपने ग्रन्थ **न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका** में की है। उनका समय ९वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है। उसने ८४१ ई० में **न्याय-सूचीनिबन्ध** लिखा है। न्यायसूत्रों की अनुक्रमणिका है। उसने इस ग्रन्थ के अन्त में जो समय ८९८ दिया है उसे यह समझा जा सकता है कि यह शक सम्वत् है और इसलिए ९७६ ई० है। इसके अतिरिक्त इसी युग के परवर्ती बौद्ध लेखकों ने उसका उल्लेख किया है।

प्रशस्तपाद ने अपने ग्रन्थ **पदार्थधर्मसंग्रह** में वैशैषिकसूत्रों का भाष्य (टीका) किया है। इस भाष्य का प्रसिद्ध नाम **प्रशस्तपादभाष्य** है। यह भाष्य सूत्रों को नियमित व्याख्या नहीं है, अपितु वैशेषिकदर्शन पर यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। प्रशस्तपाद का समय ४०० ई० के लगभग माना जाता है। चार प्रमुख विद्वानों ने प्रशस्तपादभाष्य की टीका की है—(१) **उदयन** (९८४ ई०) ने अपने ग्रन्थ **किरणावली** में, (२) **श्रीधर** (९९१ ई०) के **न्यायकन्दली** ग्रन्थ में, (३) **श्रीवत्स** (लगभग १०५० ई०) ने **लीलावती** ग्रन्थ में और (४) **व्योमशेखर** ने **व्योमवती** ग्रन्थ में। **लीलावती** ग्रन्थ आज-कल अप्राप्य है। कुछ विद्वानों का मत है कि **पदार्थधर्मसंग्रह** की टीकाओं

में **आत्रेयतन्त्र** भी एक टीका है जो अब विलुप्त हो चुकी है और जिसके लेखक का कोई पता नही है। **रावणभाष्य, भारद्वाजवृत्ति** और **रावण** कृत **कतन्दी** के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। इनमें से प्रथम दो ग्रन्थ तो सूत्रों पर लिखे गए भाष्य हैं और अन्तिम ग्रन्थ वैशेषिक दर्शन का एक ग्रन्थ है।

उदयन सबसे प्रथम लेखक है, जिसने न्याय और वैशेषिक दोनों दर्शनों पर लिखा है। उसने **किरणावली** के अतिरिक्त ये ग्रन्थ और लिखे हैं—(१) **वाचस्पति मिश्र** के ग्रन्थ **न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका** की टीका **तात्पर्यपरिशुद्धि**। (२) **न्यायकुसमाञ्जलि**। यह आस्तिकवाद पर सर्वोत्तम ग्रन्थ है। (३) **आत्मतत्त्वविवेक**। इसका दूसरा नाम **बौद्धधिक्कार** भी है। इसमें आत्मा के अस्तित्व का वर्णन किया गया है। (४) **न्यायपरिशिष्ट**। इसका दूसरा नाम **बोधसिद्धि** है। इसमें तर्क की पद्धति दी गई है। (५) लक्षणावली। इसमें न्याय और वैशेषिक दर्शनों के विभिन्न लक्षणों का संग्रह है। लक्षणावली ग्रन्थ ९८४ ई० में लिखा गया था। उसने न्याय और वैशेषिक दर्शनों को तथा विशेषतया आस्तिकवाद को जो अनुपम देन दी है, उसके कारण उसको न्यायाचार्य की उपाधि प्राप्त हुई थी।

कश्मीर के **जयन्तभट्ट** ने ९१० ई० में **न्यायमंजरी** नामक ग्रन्थ लिखा है। जयन्त का दूसरा नाम **वृत्तिकार** भी है। न्यायमंजरी न्यायदर्शन पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, साथ ही इसमें बहुत से न्यायसूत्रों की व्याख्या भी है। उसकी **न्यायकलिका** में विभागों की गणना है। १०वीं शताब्दी ई० में ही **भासर्वज्ञ** ने न्यायदर्शन पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **न्यायसार** लिखा है। न्यायदर्शन में चार प्रमाण माने गए हैं, परन्तु इसको यह विशेषता है कि इसमें केवल तीन प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द) माने गए हैं और उपमान को प्रमाण नहीं माना है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ लिखी गयीं। उनमें **न्यायभूषण** एक सुप्रसिद्ध टीका है। कुछ विद्वानों के अनुसार भासर्वज्ञ इस टीका का लेखक स्वयं है। कुछ लोग इसके टीकाकार केवल **भूषणकार** का उल्लेख करते हैं। तो भी यह टीका अब लुप्त हो चुकी है। **त्रिलोचन जयन्तभट्ट** का समकालीन था। वह वाचस्पति

मिश्र का गुरु था। उसने **न्यायमंजरी** नामक ग्रन्थ लिखा जो अब विलुप्त हो चुका है।

शिवादित्य (११०० ई०) ने तीन ग्रन्थ लिखा है। उनके नाम हैं—**सप्तपदार्थी, लक्षण-माला** और **हेतुखण्डन**। प्रसिद्धि है कि वह तर्क को **महा-विद्या** विधि का संस्थापक अथवा प्रवर्धक था। उसी समय **श्रीवल्लभ** ने **वैशेषिक** दर्शन पर **न्यायलीलावती** नामक एक ग्रन्थ की रचना की। १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ में **वरदराज** ने अपनी ही टीका **सारसंग्रह** के सहित **तार्किकरक्षा** नामक ग्रन्थ लिखा। लगभग उसी समय **शशधर** ने **न्यायसिद्धान्तदीप** नामक ग्रन्थ में **न्याय**शास्त्र के प्रमुख विषयों का वर्णन किया। उस समय और भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गए और जो अब विलुप्त हो गए हैं तथा जिनके नाम का पता **उदयन, कमलशील, वादिदेवसूरि** तथा अन्य लेखकों की रचनाओं के उल्लेख से चलता है। इन विद्वानों ने कुछ लेखकों का उल्लेख और भी किया है। उनके नाम ये हैं—**शंकरस्वामी, आत्रेयभाष्यकार, रत्नकोशकार, सानातनि, श्रीवत्स, प्रशस्तमति, अविधाकरण, विष्णुभट्ट, विश्वरूप, हरिहर, भाविविक्त** तथा **वादिवागीश्वर**। अन्तिम लेखक (वादिवागीश्वर) के ग्रन्थ का नाम **मानमनोहर** दिया गया है। इनमें से कुछ लेखक सम्भवतः १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे।

गंगेश (१३०० ई०) ने **तत्त्वचिन्तामणि** नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा है। उस समय तक न्याय और वैशेषिक दर्शन के ग्रन्थों में प्रमाणों की सहायता से प्रमेयों का ही विवेचन होता था। गंगेश ने इस विषय में एक नवीन धारा प्रचलित की। इसमें न्यायदर्शन की पद्धति को अपनाकर वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों की विस्तृत समीक्षा और परीक्षा की गई है। इसका विवेचन प्रमाणों पर निर्भर है। तत्त्वचिन्तामणि चार अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में एक प्रमाण का विवेचन है। तत्त्वचिन्तामणि पर बहुत-सी टीकाएँ और उपटीकाएँ है। **गंगेश** के पुत्र **वर्धमान** (लगभग १२०० ई०) ने तत्त्वचिन्ता-मणि की टीका **प्रकाश** और उदयन के ग्रन्थों की टीका **न्यायलीलावती** लिखी है। **जयदेव** (लगभग १२५० ई०) ने तत्त्वचिन्तामणि की टीका **तत्त्वचिन्तामण्या-लोक** लिखी है। अनुमान के विषय में विशेष व्युत्पत्ति के कारण उसको **पक्षधर**

मिश्र की उपाधि दी गई थी। वह एक नाट्यकार और साहित्यशास्त्री भी था। **जयदेव** के शिष्य **रुचिदत्त** (लगभग १२५० ई०) ने वर्धमान के **तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश** पर **तत्त्वचिन्तामणिप्रकाशमकरन्द** नामक टीका लिखी है। १५वीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ नैयायिक **वासुदेवसार्वभौम** बंगाल के नवद्वीप में न्याय की एक शाखा नव्यन्याय का नेता था। उसके चार सुविख्यात शिष्य थे—(१) **रघुनाथशिरोमणि**। उसका प्रसिद्ध नाम **तार्किकशिरोमणि** है। (२) **रघुनन्दन**, वह बंगाल का एक सुप्रसिद्ध वकील था। (३) **कृष्णानन्द**, वह एक तान्त्रिक था। (४) **चैतन्य**। वह वैष्णव धर्म के सुप्रसिद्ध प्रचारक थे। **रघुनाथशिरोमणि** (लगभग १५०० ई०) ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों की टीका **दीधिति** नाम से की है, उसने जिन ग्रन्थों की टीका की है, उसमें **तत्त्वचिन्तामणि** भी है। **रघुनाथशिरोमणि** के शिष्य **मथुरानाथ** (लगभग १५२० ई०) ने **गंगेश** के ग्रन्थों तथा **दीधिति** टीका की टीका की है। **जगदीश, गदाधर** और **अन्नंभट्ट** ये तीन १७वीं शताब्दी ई० के प्रमुख नैयायिक थे। **जगदीश** (लगभग १६३५ ई०) ने **दीधिति** की टीका की है। **गदाधर** की **दीधिति** और **तत्त्वचिन्तामणि** पर टीकाएँ न्याय और वैशेषिक दर्शन पर अति प्रसिद्ध ग्रन्थ हो गए हैं। **अन्नंभट्ट** ने **जयदेव** के **तत्त्वचिन्तामण्यालोक** की टीका **सिद्धाञ्जन** नाम से की है और दीधिति की टीका **सुधुद्धिमनोहरा** नाम से की है।

इस काल में तत्त्वचिन्तामणि पर जो टीकाएँ लिखी गई, उनके अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गए। **केशवमिश्र** (१३०० ई०) ने **तर्कभाषा** ग्रन्थ लिखा। **रघुनाथशिरोमणि** (लगभग १५०० ई०) ने वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों पर **पदार्थखण्डन** नामक ग्रन्थ लिखा है। **जानकीनाथ** ने १६वीं शताब्दी में न्याय और वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों पर **न्यायसिद्धान्तमंजरी** नामक ग्रन्थ लिखा है। १७वीं शताब्दी में कई लेखक हुए हैं, जिन्होंने न्याय और वैशेषिक दर्शन पर मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं। वैशेषिक सूत्रों पर **उपस्कारभाष्य** के लेखक **शंकरमिश्र** ने वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों पर **कणादरहस्य** ग्रन्थ लिखा है। **विश्वनाथ न्यायपंचानन** ने १६३४ ई० में न्याय और वैशेषिक दर्शन पर पद्य

में **कारिकावलि** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसका दूसरा नाम **भाषापरिच्छेद** है। विश्वनाथ ने ही कारिकावलि की टीका **सिद्धान्तमुक्तावलि** नाम से की है। उसने न्यायसूत्रों पर भी टीका की है। **दीधिति** के टीकाकार **जगदीश** (लगभग १६३५ ई०) ने तीन और ग्रन्थ लिखे हैं—(१) अर्थविज्ञान विषय पर **शब्द-शक्तिप्रकाशिका**, (२) न्यायवैशेषिक के सिद्धान्तों पर **तर्कामृत** और (३) **प्रशस्तपादभाष्य** की टीका **भाष्यसूक्ति**। लगभग इसी समय **लौगाक्षि भास्कर** ने **तर्ककौमुदी** नामक एक लघु ग्रन्थ लिखा है। **गदाधर** ने **उदयन** के **आत्मतत्त्व-विवेक** की टीका की है और अर्थविज्ञान विषय पर दो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं—**व्युत्पत्तिवाद** और **शक्तिवाद**। **अन्नंभट्ट** (लगभग १७०० ई०) ने **तर्कसंग्रह** नामक पुस्तक लिखी है और उसकी टीका **तर्कसंग्रहदीपिका** नाम से की है। न्याय वैशेषिक दर्शन के प्रारम्भिक छात्रों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त प्रसिद्ध हो गई है।

सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के सूक्ष्म तत्त्व वैदिक काल में भी उपलब्ध होते हैं। भगवद्-गीता जैसे प्राचीन ग्रन्थों में सांख्य शब्द का 'ज्ञान' अर्थ में प्रयोग उपलब्ध होता है। इस दर्शन के संस्थापक **कपिल** ऋषि माने जाते हैं।

इस दर्शन के अनुसार **व्यक्त** (प्रकट), **अव्यक्त** (अप्रकट) और **ज्ञ** (ज्ञाता) के ज्ञान से सांसारिक दुःखों की समाप्ति होती है। इस दर्शन के अनुसार **प्रत्यक्ष**, **अनुमान** और **शब्द** ये तीन प्रमाण हैं। यह दर्शन वैदिक कर्मकाण्ड को विशेष महत्त्व नहीं देता है। इस संसार में प्रकृति और पुरुष दोनों स्वतन्त्र तथा अविनाशी सत्ताएँ हैं। प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। ये तीनों साम्यावस्था में रहते हैं। जब इस त्रिगुण की साम्यावस्था में अन्तर पड़ता है, तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति से महत् या बुद्धि उत्पन्न होती है। महत् से अहंकार और अहंकार से ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, मन और ५ तन्मात्राएँ (५ भूतों के सूक्ष्म रूप) उत्पन्न होती हैं। ५ तन्मात्राओं से ५ स्थूल (५ तत्त्वों) की उत्पत्ति होती है। स्थूल पाँचों तत्त्व में से प्रत्येक

में आधा उस तत्त्व का अंश रहता है और आधे में शेष चार तत्त्वों का अंश समानरूप से रहता है। पाँचों तत्त्वों के इस निर्माण की विधि को **पंचीकरण** कहते हैं। वस्तु का ज्ञान अहंकार और मन की सहायता से बुद्धि में होता है। प्रकृति के तीन गुण सत्त्व, रजस् और तमस् के प्रभाव से बुद्धि, अहंकार और मन के विभिन्न कार्यों का निर्णय होता है। सृष्टि के प्रारम्भ के समय प्रकृति के एक अंश में ही परिवर्तन होता है। **प्रकृति** को **अव्यक्त** कहते हैं, और प्रकृति के २३ **विकारों** (महत्, अहंकार आदि) को **व्यक्त** कहते हैं। **पुरुष** (आत्मा) को **ज्ञ** ज्ञाता कहते हैं। आत्मा का प्रतिबिम्ब बुद्धि में पड़ता है। बुद्धि दर्पण के तुल्य कार्य करती है। बुद्धि के कार्यों को भ्रमवश आत्मा का कार्य समझ लिया जाता है। अतएव आत्मा दुःख भोगता है। व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के विशुद्ध ज्ञान से आत्मा अपनी स्वतन्त्र और निर्लिप्त स्थिति को प्राप्त होती है। आत्मा न बद्ध होती है और न मुक्त होती है। वह सदा स्वतन्त्र है। सांख्यदर्शन की विशेष त्रुटि है कि इस बात का कोई कारण नहीं बताया गया है कि त्रिगुणों में वैषम्यावस्था क्यों आती है ? पुरुष (आत्मा) और प्रकृति सदा विद्यमान रहते हैं। यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि सृष्टि किस प्रकार प्रारम्भ होती है।

कार्य के विषय में इस दर्शन का मत है कि कार्य कारण में सदा अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। कारण कार्य के रूप में प्रकट होता है। इन-दोनों मन्तव्यों में से प्रथम को **सत्कार्यवाद** कहते हैं और दूसरे को **परिणामवाद**।

यह दर्शन वेदों की प्रामाणिकता को विशेष महत्त्व नहीं देता है। महाभारत में जो सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों का वर्णन है, उससे ज्ञात होता है कि यह दर्शन प्रारम्भ में आस्तिक दर्शन था। संभवतः बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण यह दर्शन नास्तिकवाद की ओर झुका है, जैसा कि **ईश्वरकृष्ण** ने इसका वर्णन किया है। निराशावादी दृष्टिकोण, ईश्वर के अस्तित्व का निषेध, वेदों की प्रामाणिकता का खण्डन, ये बातें बौद्ध धर्म और सांख्य में समान है। यह भी सम्भव है कि आस्तिक सांख्यदर्शन के प्रभाव के कारण बौद्धधर्म का विकास हुआ।

इस दर्शन के संस्थापक **कपिल** मुनि ने इसके सिद्धान्त **आसुरि** को पढ़ाये। आसुरि का समय ६०० ई० पू० से पूर्व माना जाता है। आसुरि ने यह दर्शन **पंचशिख** को पढ़ाया। तत्पश्चात् **वार्षगण्य** ने इस दर्शन को विकसित किया। उसने **षष्ठितन्त्र** ग्रन्थ लिखा था, वह नष्ट हो गया है। इस दर्शन का सबसे प्राचीन मौलिक ग्रन्थ **तत्त्वसमास** माना जाता है। उसका लेखक अज्ञात है। **ईश्वरकृष्ण** (लगभग २५० ई०) ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के मन्तव्यों को **सांख्यकारिका** के ७२ स्मरणीय श्लोकों में निबद्ध किया है। वह और **विन्ध्यावास** एक ही व्यक्ति थे, यह अभी तक विवादास्पद ही है। बाद के लेखक इन कारिकाओं को प्रामाणिक मानते हैं। सांख्यकारिका की ये टीकाएँ हुई हैं—(१) **माठरवृत्ति**। इसका लेखक अज्ञात है। (२) **गौडपाद-भाष्य**। **गौडपाद** का परिचय अज्ञात है। (३) **वाचस्पति मिश्र** (लगभग ८५० ई०) कृत **सांख्यतत्त्वकौमुदी**। इन कारिकाओं के अतिरिक्त **कपिल** मुनि के लिखे **सांख्यसूत्र** हैं। १३०० ई० से पूर्व वे प्रामाणिक नही माने जाते थे, इससे पूर्व साख्यसूत्र क्रमबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं थे। इन सूत्रों का दूसरा नाम **सांख्यप्रवचनसूत्र** था। इनकी ये टीकाएँ हुई हैं—(१) १५वीं शताब्दी में **अनिरुद्ध-कृत सांख्यसूत्रवृत्ति** टीका, (२) **विज्ञानभिक्षु** (लगभग १५५० ई०) कृत **सांख्य-प्रवचनभाष्य**। **विज्ञानभिक्षु** ने सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों पर **सांख्यसार** नामक ग्रन्थ भी लिखा है।

योग-दर्शन

योग-दर्शन ने सांख्य सिद्धान्तों को अपनाया है और उनका संशोधन भी किया है। योग-दर्शन का मत है कि केवल व्यक्त अव्यक्त और ज्ञ के ज्ञान से ही मोक्ष नहीं हो सकता है, अतः इस दर्शन ने क्रियात्मक जीवन के लिए सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों पर आश्रित नियम बनाए हैं। प्रकृति और प्रकृति-विकारों के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त होने के लिए चित्त की वृत्तियों (मन के कार्यों) पर पूर्ण नियन्त्रण होना अत्यावश्यक है। इसको ही पारिभाषिक रूप में **'योग'** कहते हैं।[1] इस दर्शन में योग के अंगों का विस्तृत

१. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योगसूत्र १-१

वर्णन दिया गया है। योग का लक्ष्य है आत्मा को कैवल्य-प्राप्ति। मन, बुद्धि और अहंकार के कार्यों पर नियन्त्रण करने का विचार भी कठिन है और उसका अभ्यास करना कठिन है।

जिन कठिनाइयों पर ध्यान करने वाला व्यक्ति नियन्त्रण नहीं कर सकता उन्हीं के कारण ध्यान की विधि में बाधा उपस्थित हो सकती है। अतः ईश्वर-चिन्तन के लिए एक क्रमिक साधन बताया गया है इन बाधाओं को दूर करना। ईश्वर सर्वज्ञ है। जो उसकी सुरक्षा की खोज करता है उसको वह सहायता करता है। वह संसार का स्रष्टा नहीं है। **योगसूत्र** के टीकाकारों के अनुसार द्रव्य (वस्तुएँ) ईश्वर की इच्छा पर विकसित होते हैं। यह **योगसूत्रभाष्य** के रचयिता **व्यास** का कथन है। बुद्धि के व्यापारों को नियंत्रित करने के लिए आठ निर्धारित अवस्थाओं को पूर्ण करना आवश्यक है। यह **योगसूत्र** (२–२९) का मत है। नियंत्रण की विधियाँ योगाभ्यासी के औचित्यविषयक विभिन्न स्तरों की परीक्षा करती हैं। बुद्धि, अहंकार और मनस् पर पूर्ण नियन्त्रण करके ही कोई मनुष्य जो कुछ चाहे कर सकता है और पा सकता है। इस दर्शन को **सेश्वरसांख्य** कहा जाता है क्योंकि इसमें ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गई है।

इस दर्शन का सर्वप्रथम ग्रन्थ **महाभाष्य** के लेखक **पतंजलि** (१५० ई० पू०) का है। **योगसूत्रों** और **महाभाष्य** के लेखक एक ही हैं। यह बात परम्परा से सिद्ध होती है तथा **योगसूत्र** में **स्फोट** सिद्धान्त का उल्लेख भी इसमें सहायक है[1]। ये सूत्र, जो संख्या में १९३ हैं, चार भागों में विभक्त हैं। उनके नाम हैं—**समाधि, साधन, विभूति** और **कैवल्य**। योगसूत्रों की ३ टीकाएँ हैं—(१) चतुर्थ शताब्दी ई० के **व्यास** की टीका **योगसूत्रभाष्य**। इसकी टीका **वाचस्पति मिश्र** (८५० ई०) ने **तत्त्ववैशारदी** में की। (२) धारा के राजा **भोज** (१००५-१०५४) ने **राजमार्तण्ड** नाम की टीका की है और (३) **विज्ञानभिक्षु** (१५५० ई०) ने

१. योगसत्र ३—१७।

पातंजलिभाष्यवार्तिक नामक टीका की है। विज्ञानभिक्षु ने योगदर्शन के आवश्यक सिद्धान्तों पर **योगसारसंग्रह** नामक ग्रन्थ भी लिखा है।

योग-सम्बन्धी अभ्यासों को दो भागों में बाँटा गया है—**राजयोग** और **हठयोग**। राजयोग में मन की एकाग्रता का वर्णन होता है और हठयोग में शारीरिक शुद्धि के लिए उपयोगी विभिन्न अभ्यासों का वर्णन होता है, जिनके द्वारा शरीर शुद्ध होकर राजयोग के योग्य होता है। हठयोग का वर्णन **स्वात्माराम योगीन्द्र** की **हठयोगप्रदीपिका** पुस्तक में है। शरीर के विभिन्न अवयवों पर पूर्ण संयम प्राप्त करने के लिए योगासनों को बहुत महत्त्व दिया गया है। हठयोग के अनुसार हठयोग के अभ्यास से भौतिक सुखों की प्राप्ति होती है। हठयोग के अन्य ग्रन्थ हैं—**गोरक्षशतक, घेरण्डसंहिता** आदि।

सांख्य और योगदर्शन की विश्व-साहित्य को मुख्य देन ये हैं—**पंचीकरण, सत्कार्यवाद** और **परिणामवाद** के सिद्धान्त, सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का महत्त्व तथा बुद्धि और आत्मा को प्रभावित करने में इनका स्थान, प्रकृति और पुरुष (आत्मा) को स्वतन्त्र सत्ता मानते हुए उनका विशेष विवेचन, व्यावहारिक जीवन के लिए योगांगों की उपयोगिता का विशेषरूप से प्रतिपादन। योगदर्शन वेदों को प्रामाणिकता को स्वीकार करता है। इस दर्शन के अनुसार ईश्वर जगत् का हितैषी और पथप्रदर्शक है। इसमें इस बात का समाधान नहीं किया गया है कि वस्तुतः प्रकृति से सृष्टि कैसे होती है। जीवन का लक्ष्य आत्मज्ञान और कैवल्यप्राप्ति है, परन्तु इसका ईश्वर से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं है।

———

अध्याय ३४

मीमांसा-दर्शन

मीमांसा दर्शन का सम्बन्ध वेदों की व्याख्या से है। वैदिक साहित्य दो भागों में विभक्त है—**कर्मकाण्ड** और **ज्ञानकाण्ड**। **कर्मकाण्ड** में **संहिता**, **ब्राह्मण** और **आरण्यक** ग्रन्थ आते है। **ज्ञानकाण्ड** में **उपनिषद्** ग्रन्थ आते हैं। **मीमांसा**-दर्शन का सम्बन्ध वेदों के **कर्मकाण्ड** भाग से ही है, अतएव उसको **पूर्वमीमांसा** भी कहते हैं। **वेदान्तदर्शन ज्ञानकाण्ड** शब्द पर निर्भर है, अतः उसको **उत्तरमीमांसा** कहते हैं। **उत्तरमीमांसा** में उत्तर शब्द परकालीन वैदिक साहित्य अर्थात् उपनिषदों का निर्देश करता है।

पूर्वमीमांसा के आधार **ब्राह्मण** ग्रन्थ हैं। इसमें वैदिक मंत्रों की व्याख्या के लिए नियम तथा कतिपय न्याय (सिद्धान्त) बताए गए हैं। ये नियम बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं और इनका उपयोग वेदान्तदर्शन में भी हुआ है। लौकिक कठिन सन्दर्भों की व्याख्या के लिए भी इन नियमों का उपयोग किया जाता है। यह दर्शन विचारात्मक होने की अपेक्षा अधिक क्रियात्मक है। इस दर्शन में दार्शनिकता की अपेक्षा धार्मिक विचार अधिक प्रबल है। अन्य दर्शनों में वह प्रकार बताया गया है कि जीव किस प्रकार सदा के लिए मुक्त हो सकता है, परन्तु यह दर्शन बताता है कि मनुष्य-जीवन में उसके क्या अधिकार और कर्तव्य हैं।

यह दर्शन वेदों को नित्य तथा स्वतः प्रमाण मानता है। इसके अनुसार वेद किसी व्यक्तिविशेष की रचना नहीं है। वे परमात्मा की भी कृति नहीं हैं। वे नित्य हैं। इस दर्शन के प्रमुख आचार्यों ने, विशेषरूप से प्रारम्भिक समय में, वेदों की प्रामाणिकता पर विशेष रूप से बल दिया है। उन्होंने यह कार्य वैदिक धर्म को बौद्धों और जैनों के आक्रमण से बचाने के लिए किया था। इस काल में इस दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ

ये रहीं--संसार अपरिवर्त्तनशील है, इस संसार से पृथक् स्वर्ग कोई नहीं है, देवता शरीर रहित होते हैं इत्यादि। बाद में इस दर्शन में **आस्तिकवाद** को विशेष प्रश्रय दिया गया। वेदोक्त कर्मकाण्ड को करना कर्तव्य है। ये कर्म तीन प्रकार के हैं--**नित्य** (दैनिक), **नैमित्तिक** (विशेष कारण से करने योग्य) और **काम्य** (ऐच्छिक) कर्मकाण्ड की विधि का आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। यज्ञादि विधिपूर्वक करने और न करने का तदनुसार ही आत्मा पर पृथक् फल होता है। नैत्यिक कर्मों को करना अनिवार्य है, अन्यथा पाप चढ़ता है।। नैतिक कर्मों को करने से आत्मा पवित्र होती है। नैमित्तिक और काम्य कर्म सामयिक आवश्यकता तथा कर्ता की इच्छा निर्भर है। तदनुसार ही उन्हे करना चाहिए।

मीमांसा-दर्शन की दो प्रमुख शाखाएँ हैं--**भाट्ट शाखा** और **प्राभाकर शाखा**। **भाट्ट शाखा** के आचार्य प्रमाणों की सख्या ६ मानते हैं। उनके मतानुसार ६ प्रमाण ये है--**प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति** और **अनुपलब्धि**। **प्राभाकर शाखा** के आचार्य प्रमाणों की संख्या ५ मानते हैं। वे उपर्युक्त छः प्रमाणो मे से अनुपलब्धि को प्रमाण नहीं मानते हैं।

पूर्व **मीमांसा-सूत्रों** के रचयिता **जैमिनि** ऋषि है। इन सूत्रों की संख्या २७४४ है। मीमांसा-दर्शन १२ अध्यायों में विभक्त है। इस दर्शन का समय चतुर्थ शताब्दी ई० पू० समझना चाहिए। इसमे लगभग एक सहस्र प्रकरण हैं। प्रत्येक में व्याख्या के लिए विभिन्न सिद्धांत (न्याय) दिए गये हैं। इन न्यायों पर ही व्याख्या के उत्तम और प्रामाणिक सिद्धान्त निर्भर है। इन सूत्रों पर **उपवर्ष** ने **वृत्ति** (टीका) लिखी है, वह नष्ट हो गई है। **उपवर्ष** का दूसरा नाम **बोधायन** था। **शबरस्वामी** (लगभग २०० ई०) ने मीमांसासूत्रों की टीका **मीमांसासूत्राभाष्य** नाम से की है। **शबरस्वामी** ने उल्लेख किया है कि उससे **पूर्व मीमांसा-सूत्रों** का भाष्य **उपवर्ष, भर्तृमित्र, भवदास** और **हरि** आदि ने किया था। **उपवर्ष** और **शबरस्वामी** आदि ने ही मीमांसा-दर्शन दार्शनिक विषयों पर विवेचन का प्रारम्भ किया था।

शबरस्वामी के भाष्य की टीका **कुमारिल भट्ट** (६००-६६० ई०) और **प्रभाकर** (६१०-६९० ई०) ने की है। **प्रभाकर कुमारिल भट्ट** का शिष्य माना जाता है। उसने मीमांसा-दर्शन की एक नवीन शाखा स्थापित की जिसका नाम उसके नाम के आधार पर **प्राभाकर शाखा** पड़ा। **कुमारिल भट्ट** से उसका जिन बातों पर मतभेद था, उनका इस शाखा में निरूपण किया गया है। **प्रभाकर** को 'गुरु' की उपाधि प्राप्ति हुई थी, क्योंकि वेदों की व्याख्या में उसकी प्रतिभा असाधारण थी। अतएव **कुमारिल** की शाखा के मतों को **भाट्टमत** कहा गया और प्रभाकर की शाखा के मतों को **गुरुमत**। कर्मों के द्वारा उत्पन्न होने वाले संस्कारों के कारण मनुष्य सांसारिक बन्धन में आता है। दोनों शाखाओं का मत है कि जब आत्मा में कोई संस्कार नहीं रहता है, तब वह मुक्त हो जाता है। भाट्टमत के अनुसार धर्म और अधर्म का अर्थ है--कर्मों के अच्छे और बुरे परिणाम। **प्रभाकर** मत के अनुसार धर्म और अधर्म का अर्थ है--अच्छा और बुरा कार्य। इन दोनों शाखाओं के अतिरिक्त एक और शाखा **मुरारि** के नाम से प्रचलित हुई। **मुरारि** ने **कुमारिल** की ही पद्धति का अनुसरण करते हुए **शबरस्वामी** के भाष्य की टीका की है। कुछ स्थानों पर उसका **कुमारिल** से मतभेद है।

कुमारिल ने **शाबर-भाष्य** की जो टीका की है, वह ३ भागों में है--(१) **श्लोकवार्तिक**। यह मीमांसा-दर्शन के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद की श्लोकबद्ध टीका है। (२) तन्त्रवार्तिक। यह गद्य और पद्य में है। यह मीमांसा-दर्शन के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद से प्रारम्भ होकर तृतीय अध्याय के अन्त तक की टीका है। (३) **टुप्टीका**। वह शेष भाग की टीका है। परकालीन लेखकों ने जो उद्धरण दिए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि **कुमारिल भट्ट** ने **मीमांसासूत्रभाष्य** की एक टीका **बृहट्टीका** नाम से की थी। **शाबर-भाष्य** पर **प्रभाकर** की टीका दो भागों में है--(१) **बृहती**। इसका दूसरा नाम **निबन्ध** है। (२) **लघ्वी**। इसका दूसरा नाम **विवरण** है। **मुरारि मिश्र** (लगभग १२०० ई०) ने **शाबर-भाष्य** पर जो

जो टीका की है, उसका नाम है **त्रिपादनीतिनयन**। उसका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **अंगत्वनिरुक्ति** है।

मण्डनमिश्र (६१५-६९५ ई०) **कुमारिल भट्ट** का समकालीन था। वह एक सुविख्यात मीमांसक और वेदान्ती था। उसके परिचय के विषय में कई सन्देहास्पद विवरण उपलब्ध होते है। **भट्ट उम्वेक, विश्वरूप** और **सुरे वर** उसी के नाम माने जाते हैं और उसको शंकराचार्य का सम्बन्धी बताया जाता है। उसने मीमांसा-दर्शन पर तीन ग्रन्थ लिखे हैं—**विधिविवेक, भावनाविवेक** और **मीमांसानुक्रमणिका**। न्याय, सांख्य और योगदर्शन पर विभिन्न ग्रन्थों के रचयिता **वाचस्पति मिश्र** ने **विधिविवेक** की टीका **न्यायकणिका** लिखी है। मीमांसा-दर्शन से संबद्ध प्रश्नों पर विचार करते समय वाचस्पति मिश्र ने मण्डन मिश्र के मन्तव्यों का अनुसरण किया है।

कुमारिल के **श्लोकवार्तिक** को ये तीन टीकाएँ हुई हैं—(१) **भट्ट उम्वक** (६४०-७२५ ई०) कृत **तात्पर्यदीपिका** (२) **सुचरित मिश्र** (१०००-११०० ई०) कृत **काशिका** और (३) **पार्थसारथि मिश्र** (१०५०-११२० ई०) कृत **न्यायरत्नाकर**। कुछ विद्वान् **भवभूति** और **उम्वेक** को एक ही व्यक्ति मानते हैं। अन्य विद्वान् इस विचार से सहमत नहीं हैं। **तन्त्रवार्तिक** की ये तीन टीकाएं हुई हैं—(१) **सोमेश्वर** (लगभग १२०० ई०) कृत **न्यायसुधा**। इस टीका का दूसरा नाम है **राणक**। (२) **नारायणीय** के लेखक **नारायणभट्ट** (लगभग १६०० ई०) कृत **निबन्धन** और (३) **अन्नंभट्ट** (लगभग १७०० ई०) कृत **सुबोधनी**। **अन्नंभट्ट** ने **न्यायसुधा** की टीका **राणकोजीवनी** नाम से की **है टुप्टीका** की दो टीकाएँ हुई हैं—(१) **पार्थसारथि मिश्र** (१०५०-११२० ई०) कृत **तन्त्ररत्न** और (२) **वेंकटमखिन्** कृत **वार्तिकाभरण**। वह **गोविन्द दीक्षित** (लगभग १६०० ई०) का पुत्र था। उसका दूसरा नाम **वेंकट दीक्षित** था।

वाचस्पति मिश्र (लगभग ८५० ई०) ने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **तत्त्वविन्दु** लिखकर मीमांसा-दर्शन को बहुत बड़ी देन दी है। **पार्थसारथि मिश्र** (१०५०-११२० ई०) ने **कुमारिल** के **श्लोकवार्तिक** और **टुप्टीका** पर टीका लिखने

के अतिरिक्त मीमांसा-दर्शन पर सर्वाङ्गपूर्ण तथा व्यापक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **शास्त्रदीपिका** लिखा है। इसमें उसने कुमारिल के मत का अनुसरण किया है। इसके अतिरिक्त उसने एक बहुत उपयोगी ग्रन्थ **न्यायरत्नमाला** लिखा है। इसमें उसने मीमांसा-दर्शन के विशेष महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर भाट्टशाखा और प्राभाकर शाखा में जो मतभेद हैं, उनका स्पष्टीकरण किया है। **शास्त्र-दीपिका** पर ये पाँच टीकाएँ लिखी गई हैं—(१) **सोमनाथकृत मयूखमालिका**, (२) **अप्पयदीक्षित** (लगभग १६०० ई०) कृत **मयूखावली**, (३) **शंकरभट्ट** (लगभग १६०० ई०) कृत **प्रकाश**, (४) **निर्णयसिंधु** के लेखक **कमलाकर भट्ट** (लगभग १६१२ ई०) कृत **आलोक** और (५) **राजचूड़ामणि दीक्षित** (१६२० ई०) कृत **कर्पूरवार्तिका**। **रामानुजाचार्य** (लगभग १७५० ई०) ने **न्यायरत्नमाला** की टीका **नायकरत्न** नाम से की है। **न्यायसुधा** के लेखक **सोमेश्वर** (लगभग १२०० ई०) ने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **तन्त्रसार** लिखा है।

प्रभाकर के ग्रन्थों पर टीका करनेवाला सर्वप्रथम व्यक्ति **शालिकनाथ** (६५०-७३० ई०) है। उसने चार ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **प्रभाकर** को **'निबन्ध'** टीका की टीका **ऋजुविमलपंचिका** और (२) **दीपशिखापंचिका**। यह संभवतः प्रभाकर की विवरण टीका की टीका है। (३) **शबरस्वामी** के भाष्य की टीका **मीमांसासूत्रभाष्यपरिशिष्ट** और (४) **प्रकरणपंचिका**। यह मीमांसा-दर्शन की प्राभाकर शाखा की प्रसिद्ध पुस्तिका है। शबरस्वामी के भाष्य पर **क्षीरसमुद्रवासि मिश्र** ने **भाष्यदीप** नामक टीका की है। वह संभवतः प्राभाकर मत का अनुयायी था। **भवनाथ** (१०५०-११५० ई०) ने अपने ग्रन्थ **नयविवेक** में प्रभाकर के मतानुसार मीमांसा-दर्शन के विभिन्न अधिकरणों की व्याख्या की है।

विजयनगर के सायण के अग्रज **माधव** (१२९७-१३८६ ई०) ने पद्यबद्ध **जैमिनीन्यायमाला** ग्रन्थ लिखा है। उसने स्वयं इसकी टीका गद्य में की है। इसमें मीमांसा-दर्शन के विषयों का स्पष्टीकरण है : **अप्पय-दीक्षित** (लगभग १६०० ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **विधिरसायन**। उसने स्वयं इसकी टीका **सुखोपजीवनी** लिखी है। (२) **चित्रपट**। (३)

तन्त्र-सिद्धान्तदीपिका। यह मीमांसा-सूत्रों पर एक अपूर्ण टीका है। (४) **उपक्रमपराक्रम** और (५) **वादनक्षत्रमाला** आदि। **भट्टोजिदीक्षित** (लगभग १६३० ई०) ने **तन्त्रसिद्धान्त** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने मीमांसा के सिद्धान्तों का विवेचन किया है। इस ग्रन्थ में उसने **अप्पयदीक्षित** को अपना गुरु बताया है। **राजचूड़ामणि दीक्षित** (लगभग १६२० ई०) ने अपने ग्रन्थ **तन्त्रशिखामणि** में मीमांसा-सूत्रों की व्याख्या की है। उसने **संकर्षमुक्तावलि** ग्रन्थ भी लिखा है। **विश्वगुणादर्श** के लेखक **वेंकटाध्वरिन्** (लगभग १६५० ई०) ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं—**न्यायपद्म, मीमांसामकरन्द** और **विधित्रयपरित्राण**। लगभग इसी समय **विश्वेश्वरसूरि** ने **भट्टचिन्तामणि** ग्रन्थ लिखा है। **विश्वेश्वरसूरि** का दूसरा नाम **गागाभट्ट** था। **आपदेव** ने मीमांसा-दर्शन पर एक प्रसिद्ध पुस्तिका **मीमांसान्यायप्रकाश** लिखी है। उसका स्वर्गवास १६६५ ई० में हुआ था। इसी प्रकार के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ **तर्ककौमुदी** के लेखक **लौगाक्षिभास्कर** का लिखा हुआ **अर्थसंग्रह** है। **आपदेव** के समकालीन **खण्डदेव** ने चार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। उनके नाम हैं—**भाट्टदीपिका, भाट्टरहस्य, फलैकत्ववाद** और **मीमांसाकौस्तुभ**। इनमें आस्तिकवाद का भी भाव व्याप्त है। **मीमांसा-कौस्तुभ** में मीमांसा-सूत्रों का विवेचन है। **अन्नंभट्ट** (लगभग १७०० ई०) ने **राणक-भावनाकारिकाविवरण** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने **सोमेश्वर** की **राणक** टीका में दिए स्मरणीय श्लोकों का स्पष्टीकरण किया है। **पार्थसारथि मिश्र** की **न्यायरत्नमाला** के टीकाकार **रामानुजाचार्य** (लगभग १७५० ई०) ने प्रभाकर के मतानुसार मीमांसा-सूत्रों की एक चालू टीका **तन्त्ररहस्य** लिखी है। यह पाँच अध्यायों में है और अपूर्ण है। **सिद्धान्तकौमुदी** की **बालमनोरमा** टीका के लेखक **वासुदेवाध्वरिन्** (लगभग १७५० ई०) ने मीमांसा-सूत्रों की टीका **अध्वरमीमांसाकुतूहलवृत्ति** नाम से की है। १९वीं शताब्दी ई० में **कृष्ण-ताताचार्य** ने भाट्टसार ग्रन्थ लिखा है। इसमें भाट्ट शाखा के मन्तव्यों का सरल रूप में स्पष्टीकरण किया गया है।

अध्याय ३५

आस्तिक दर्शन और धार्मिक दर्शन

वेदान्त दर्शन

वेदान्त दर्शन उपनिषदों पर आश्रित है। उपनिषद् वैदिक साहित्य के ज्ञानकाण्ड के प्रतिनिधि हैं। अतएव इसको वेदान्त या उत्तरमीमांसा कहते हैं। इस दर्शन में आत्मा के स्वरूप का वर्णन होता है तथा उसका जीवात्मा और प्रकृति से क्या सम्बन्ध है, इसका भी विवेचन किया जाता है। अतएव इस दर्शन को ब्रह्ममीमांसा भी कहते हैं।

उपनिषदों में जो वाक्य आते हैं, वे अनेक प्रकार के हैं। उनमें से कुछ ऐसे वाक्य हैं, जिनमें ईश्वर, जीव और प्रकृति को भिन्न माना गया है और उनकी विशेषताओं का पृथक् निरूपण किया गया है ऐसे वाक्यों को **'भेदश्रुति'** कहते हैं। कुछ ऐसे वाक्य हैं, जिनमें यह वर्णन किया गया है कि ऊपर से पृथक् दिखाई देने वाले तत्त्व में भी आन्तरिक एकता विद्यमान रहती है। इस प्रकार अनेकत्व में भी एकत्व रहता है। ऐसे वाक्यों को **अभेदश्रुति** कहते हैं इनके अतिरिक्त कुछ और वाक्य हैं, जिनको **'घटकश्रुति'** कहते हैं। ये ऐसे वाक्य हैं, जो भेदश्रुति और अभेदश्रुति में पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि उपनिषदों में किसी एक सिद्धान्त का समन्वित रूप से प्रतिपादन नहीं किया गया है। अतएव वेदान्तदर्शन के कई मत हैं और सभी उपनिषदों की शिक्षाओं पर आश्रित हैं।

इस दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन वेदान्तसूत्रों में है। इनको **ब्रह्मसूत्र** भी कहते हैं। ये चार अध्यायों में हैं। यह माना जाता है कि **संकर्षणकाण्ड** के सूत्र चार अध्यायों में विद्यमान थे। ये सूत्र मीमांसा-सूत्रों के अन्त में निबद्ध थे और उनके बाद ब्रह्मसूत्र थे। संकर्षणकाण्ड में उन देवताओं का वर्णन था,

जिनकी यज्ञादि के द्वारा पूजा का वर्णन मीमांसा-सूत्रों में किया गया था। ये सूत्र **जमिनि** के बनाए हुए थे। ये अब नष्ट हो चुके हैं। ब्रह्मसूत्रों के रचयिता **बादरायण** मुनि हैं। कुछ विद्वान् **बादरायण** और **पराशर** के पुत्र **व्यास** को एक ही व्यक्ति मानते हैं। अन्य विद्वान् इन दोनों की एकता को स्वीकार नहीं करते हैं। इन सूत्रों का रचनाकाल ५०० ई० पू० माना जाता है। इसमें चार अध्याय हैं--(१) **समन्वयाध्याय**। इसके अनुसार उपनिषदें ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं। (२) **अविरोधाध्याय**। इसमें अन्य दर्शनों के मन्तव्यों का खण्डन किया गया है। (३) **साधनाध्याय**। इसमें मोक्ष के साधनों का वर्णन है। **फलाध्याय**। (४) इसमें उपर्युक्त साधनों के परिणामों का वर्णन है।

वेदान्तदर्शन की कई शाखाएँ **भगवद्गीता** पर निर्भर हैं। भगवद्गीता में इन विषयों का वर्णन है--ईश्वर, उसकी अनेकरूपता, ईश्वर और जीव का सम्बन्ध, ईश्वरोपासना के विभिन्न प्रकार, प्रकृति का स्वरूप, प्रकृति का ईश्वर और जीव से सम्बन्ध, जीवात्मा के मोक्षप्राप्ति के साधनों का वर्णन तथा जीव के पूर्ण और सुखी होने के साधनों का वर्णन। जीव को सुखी होने और मोक्ष-प्राप्ति के लिए तीन मार्ग हैं—**ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग** और **भक्तिमार्ग**। ज्ञानमार्ग के अनुसार तत्त्वज्ञान की प्राप्ति से पूर्वकृत कर्मों के फल का नाश हो जाता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्ममार्ग के अनुसार निष्काम भाव से कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। भक्तिमार्ग के अनुसार ईश्वर की वास्तविक भक्ति से जीव मोक्ष को प्राप्त होता है। भगवद्गीता में ईश्वरार्पण पर विशेष बल दिया गया है। भगवद्गीता आस्तिकवाद का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भारतीय साहित्य का रत्न है। इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यह शिक्षा देना है कि मनष्य परिणाम की चिन्ता न करके अपने कर्तव्य को करे।

वेदान्तदर्शन के विभिन्न मत जिन ग्रन्थों पर आधारित हैं, वे हैं---**उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र** और **भगवद्गीता**। प्रायः सभी मतों ने इन तीनों ग्रन्थों की टीकाएँ की हैं और उनमें अपने मन्तव्यों की पुष्टि की है। प्रत्येक मत ने यह प्रयत्न किया है कि वह **रामायण, महाभारत** और कुछ अंश तक पुराणों के उद्धरण

देकर अपने सिद्धान्तों और व्याख्याओं की पुष्टि करे। कुछ दार्शनिक और धार्मिक मत उपनिषद् आदि तीनों ग्रन्थों के अतिरिक्त आगम-ग्रन्थों पर भी निर्भर हैं और कुछ मत सर्वथा आगमग्रन्थों पर ही निर्भर हैं।

आगमों को कुछ स्थानों पर तन्त्र भी कहते हैं। इनमें यह वर्णन किया गया है कि किस प्रकार देव-विशेष की पूजा करनी चाहिए और इष्टदेव के अनुसार ही किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए। आगमग्रन्थों का उदय ब्राह्मणग्रन्थों के प्रभाव से हुआ होगा। जो व्यक्ति कर्ममार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग को अपनाने वाले हैं, उन्होंने ब्राह्मणग्रन्थों के प्रभाव से आगमग्रन्थों को जन्म दिया होगा। कुछ आगमग्रन्थ महाभारत से बहुत पूर्व बन चुके थे, क्योंकि महाभारत में आगमों का उल्लेख मिलता है। इन आगमों में जीवन के लक्ष्य और देव-पूजा के विषय में जो बातें दी गई हैं, वे कितने ही स्थानों पर वैदिक परम्परा के विरुद्ध हैं और कई स्थानों पर उसके अनुकूल हैं। कुछ आगमग्रन्थों को संहिताग्रन्थ कहा जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उनका सम्बन्ध वैदिकग्रन्थों से है। उनमें मुख्य रूप से चार बातों का वर्णन होता है—ज्ञान, योग (ध्यान), क्रिया (कर्म) और चर्या (दिनचर्या)। सभी आगमग्रन्थों का मत है कि संसार सत्य है, ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीनों उसमें विद्यमान हैं। ईश्वर संसार का स्वामी है। विभिन्न देवताओं को मान्यता देने के आधार पर आगमग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—**वैष्णव आगम, शैव आगम और शाक्त आगम**।

बोधायन ने ब्रह्मसूत्रों का भाष्य (वृत्ति) कृतकोटि नाम से किया है। बोधायन का दूसरा नाम **उपवर्ष** था। उसने ही मीमांसासूत्रों का भाष्य किया था। उसका समय ईसा से पूर्व मानना चाहिए। **ब्रह्मनन्दी** ने छान्दोग्योपनिषद् की टीका **'वाक्य'** नाम से की है। ब्रह्मनन्दी का दूसरा प्रसिद्ध नाम टङ्क था। **द्रमिडाचार्य** ने 'वाक्य' भाष्य की टीका की है। वे सभी लेखक शंकराचार्य (६३२-६६४ ई०) से बहुत पहले हुए थे। इन लेखकों के ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं। परकालीन लेखकों ने इनके ग्रन्थों से जो उद्धरण दिए हैं, उनसे इन ग्रन्थों की सत्ता ज्ञात होती है।

वेदान्त की प्रमुख शाखाएँ ये हैं—**द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैत, और शुद्धाद्वैत**। वेदान्त की सामान्य शाखाएँ ये हैं—**निम्बार्क, भास्कर, यादवप्रकाश** तथा **चैतन्य और शिवाद्वैत**।

द्वैतमत

यह मत उपनिषदों की भेद श्रुति पर अवलम्बित है। इस मत के प्रतिपादक ग्रन्थों में अभेद श्रुतियों और घटकश्रुतियों की इस प्रकार व्याख्या की गई है कि वे द्वैतमत के समर्थक हों। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति ये तीनों नित्य और स्वतन्त्र सत्ता हैं। जीवों में परस्पर भेद है और प्रकृति में भी आन्तरिक भेद है। परमात्मा विष्णु है। उसका शरीर अप्राकृत (प्रकृति-निर्मित नहीं) है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है। उसकी इच्छा से ही प्रकृति जगत् के रूप में परिवर्तित होती है। जीवों में लक्ष्मी सर्वश्रेष्ठ है। वह विष्णु की पत्नी है। जीवों में वही नित्य है, अविनाशी है। अन्य जीव बद्ध ह। जीवात्मा का परिमाण परमाणु के बराबर है। जीव दो प्रकार के हैं—**पुरुष और स्त्री**। यह पुरुष और स्त्री का अन्तर मोक्षावस्था में भी बना रहता है। परमात्मा और जीवात्मा का सेव्य-सेवक-भाव सम्बन्ध है। निर्धारित नियमों के अनुसार प्रत्येक जोव का कर्तव्य है कि वह परमात्मा विष्णु की उपासना करे। उसकी उपासना से उसका अनुग्रह प्राप्त होता है। भगवद्गीता में जो मार्ग बताए गए हैं, उनमें से भक्तिमार्ग ही इस मत में अपनाया गया है। इस मत के अनुसार तीन प्रमाण हैं—**प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द**। वेद नित्य और स्वतः प्रमाण हैं। वैष्णव आगम प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। पुराण भी बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

इस मत के संस्थापक **आनन्दतीर्थ** थे। उनका वास्तविक नाम **वासुदेव** था। उनके आध्यात्मिक गुरु **अच्युतप्रेक्षाचार्य** थे। उन्होंने **अद्वैतसिद्धान्त** का खण्डन करके द्वैतमत की स्थापना की। उनके चार शिष्य थे—**पद्मनाभतीर्थ, नरहरितीर्थ, माधवतीर्थ और अक्षोभ्यतीर्थ**। उनका समय ११११९ ई० से ११९८ ई० माना जाता है। उनका यह समय अशुद्ध ज्ञात

होता है। उनका वास्तविक समय ११९९ ई० से १२७७ ई० तक है।[1] संन्यास की अवस्था में उनका नाम **आनन्दतीर्थ** था। उनकी उपाधियाँ थीं—**पूर्णप्रज्ञ, मध्यमन्दार** और **मध्व**। यह माना जाता है कि उन्होंने ३७ ग्रन्थ लिखे थे। इनमें से अधिकांश द्वैतमत के समर्थक थ। इन ग्रन्थों में मुख्य उपनिषदों पर उनकी टीकाएँ भी सम्मिलित हैं। उन्होंने ये मुख्य ग्रन्थ लिखे हैं—(१) ब्रह्मसूत्रों पर **ब्रह्मसूत्रभाष्य** नामक टीका, (२) ब्रह्मसूत्रों पर एक संक्षिप्त टीका **ब्रह्मसूत्राणुभाष्य**, (३) ब्रह्मसूत्रों में से कठिन सूत्रों पर **ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान** टीका। इस टीका का प्रचलित नाम **अनुव्याख्यान** है। (४) भगवद्गीता की टीका **भगवद्गीताभाष्य**, (५) **भगवद्गीतातात्पर्यनिर्णय**। इसमें भगवद्गीता के उपदेशों का वास्तविक अभिप्राय प्रकट किया गया है। उनके अन्य प्रमुख ग्रन्थ ये हैं—(६) **ऋग्भाष्य**, (७) **तत्त्वविवेक**, (८) **तत्त्वसंख्यान**, (९) **तत्त्वोद्योत**, (१०) **प्रपंचमिथ्यात्वखण्डन**, (११) **प्रमाण-लक्षण**, (१२) **महाभारततात्पर्य निर्णय**, (१३) **भागवतपुराण** की टीका **भागवतव्याख्या** और (१४) **विष्णुतत्त्व निर्णय**।

द्वैतमत में **मध्व** के पश्चात् **जयतीर्थ** का नाम आता है। वह अक्षोभ्यतीर्थ का शिष्य था। उसका समय १४वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। उसने मध्व के प्रायः सभी ग्रन्थों की टीका की है। यदि उसकी महत्त्वपूर्ण टीकाएँ न होतीं तो द्वैतमत दार्शनिक दृष्टि से सारहीन हो जाता। मध्व के ग्रन्थों पर उसने जो टीकाएँ की हैं, उनमें से मुख्य ये हैं—(१) **ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान** की टीका **न्यायसुधा**, (२) **प्रपंचमिथ्यात्वखण्डन** की टीका **पंचिका**, (३) **ब्रह्मसूत्रभाष्य** की टीका **तत्त्वप्रकाशिका** और (४) **भगवद्गीताभाष्य** की टीका **प्रमेयदीपिका**। उसने दो स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखें हैं—**प्रमाणपद्धति** और **वादावली**। वादावली में अद्वैतवादियों के माया-सिद्धान्त का खण्डन किया गया है।

जयतीर्थ के बाद प्रमुख लेखक **व्यासयति** (लगभग १३०० ई०) हुआ है। उसने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **न्यायामृत** लिखा है। इसमें उसने **तत्त्वदीपिका**

१. Gollected Works of R. G Bhandarkar भाग ४, पृष्ठ ८३।

में प्रकट किए गए चित्सुख के विचारों का खण्डन किया है। **मधुसूधन सरस्वती** ने अपने ग्रंथ **अद्वैतसिद्धि** में **न्यायामृत** का खण्डन किया है और **रामतीर्थ** ने अपने ग्रन्थ **तरंगिणी** में **अद्वैतसिद्धि** का खण्डन करके द्वैतमत की पुष्टि की है। **व्यासयति** ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों की भी टीका की है। उसने **जयतीर्थ** के **प्रपंचमिथ्यात्त्वखण्डनपंचिका** की टीका **भावप्रकाशिका** की है। **जयतीर्थ** के **ब्रह्मसूत्रभाष्यतत्त्वप्रकाशिका** की टीका **तात्पर्यचन्द्रिका** की है। **राघवेन्द्रयति** ने जयतीर्थ आदि के ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण टीका की है। उसने जयतीर्थ की **तत्त्वप्रकाशिका** की टीका **भावदीपिका** नाम से की है और जयतीर्थ की ही **न्यायसुधा** की टीका **परिमल** नाम से की है। उसने **भगवद्गीता** पर एक स्वतन्त्र टीका **गीतार्थसंग्रह** नाम से की है। उसने **मध्व** के **ब्रह्मसूत्रभाष्य** की टीका **तन्त्रदीपिका** नाम से की है। उसकी **न्यायमुक्तावली** द्वैतमत का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। द्वैतमत के अन्य मुख्य लेखक **वादिराज**, **विजयीन्द्र** और **श्रीनिवासतीर्थ** हैं।

अद्वैतमत

इस मत के अनुसार केवल ब्रह्म की ही सत्ता है। यह संसार जो कि सत् दिखाई पड़ता है, वस्तुतः सत् नहीं है। यदि यह सत् होता तो पहले भी ऐसा रहा होता और भविष्य में भी इसी प्रकार बना रहता। जो वस्तु किसी क्षण में उत्पन्न होती है और दूसरे किसी क्षण में नष्ट हो जाती है, उसे सत् नहीं कह सकते हैं। यह संसार परिवर्तनशील है। इसका आदि और अन्त है। मरु-मरीचिका की तरह यह सत् दृष्टिगोचर होता है। यह संसार जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वह माया के कारण ही दिखाई पड़ता है। माया आदिकाल से ब्रह्म को घेरे हुए है। यह माया तीन गुणों से युक्त है—सत्त्व, रजस् और तमस्। माया को न सत् कह सकते हैं और न असत्, वह अनिर्वचनीय है। यह माया असत् है, क्योंकि इसका विनाश माना जाता है। इस माया को अज्ञान, अविद्या और मोह नाम से पुकारा जाता है। इसके दो स्वरूप हैं। एक स्वरूप में सत्त्व अंश प्रधान रहता है और दूसरे स्वरूप में सत्व अंश गौण रहता है। प्रथम स्वरूप में इसको माया कहते हैं और द्वितीय स्वरूप में इसको अविद्या

कहते हैं। ब्रह्म माया में प्रतिबिम्बित होता है और संसार के तुल्य दृष्टिगोचर होता है। जब माया में सत्व अंश की प्रधानता रहती है और उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो वह 'ईश्वर' कहा जाता है। और जब माया में सत्व अंश गौण रहता है और उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो उसे जीवात्मा और संसार कहते हैं। अतएव वही ब्रह्म देवता, जीवात्मा और संसार के रूप में प्रकट होता है। यह भी माना जाता है कि अन्तःकरण माया से उत्पन्न होता है और जब अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है, तब वह जीवात्मा कहा जाता है। माया से उत्पन्न अन्तःकरण अनेक हैं, अतः जीवात्मा भी अनेक हैं।

माया के इस आवरण के करण ब्रह्म का वास्तविक रूप अज्ञात रहता है, अतएव यह संसार सत् प्रतीत होता है। ब्रह्म सत्, चित् और आनन्दमय है। सत्, चित् और आनन्द ये ब्रह्म के विशेषण नहीं हैं। ब्रह्म स्वयं सत्, चित् और आनन्दरूप है। ब्रह्म निर्गुण है।

अद्वैतमत अद्वैत की अनुभूति तक संसार का अस्तित्व स्वीकार करता है। अतएव अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित ब्रह्म जीवात्मा के रूप में विद्यमान रहता है और उसमें कतिपय गुण भी विद्यमान रहते हैं। माया में प्रतिबिम्बित ब्रह्म देवताओं के रूप में विद्यमान रहता है और उन देवों में अनेक गुणों की सत्ता रहती है। अतएव जीवात्मा के लिए आवश्यक है कि वह देवों की उपासना करे। देवों की उपासना तथा निष्काम भाव से नैत्यिक कर्म करने से जीवों का चित्त या अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और उसमें सत्व, रजस् और तमस् का प्रभाव नहीं रहता है। तब वह निर्गुण हो जाता है और उस पर माया का कुछ भी प्रभाव नहीं रहता। तब मायारहित शुद्ध ब्रह्म ही शेष रहता है। उस समय जीवात्मा का अस्तित्व नहीं रहता है, क्योंकि वह अविद्या या अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र है। इस प्रकार ब्रह्म और जीवात्मा में एकत्व की स्थापना की जाती है। यही तत्त्व (वास्तविकता) है, जिसकी शिक्षा उपनिषदें देती हैं। इस एकत्व के कारण ही इस शाखा को अद्वैत मत कहा

जाता है। इस अद्वैत का अनुभव जीवित अवस्था में भी किया जा सकता है और इस अवस्था को 'जीवन्मुक्ति' कहते हैं। देहावसान होने पर जो वास्तविक मुक्ति होती है, उसे विदेहमुक्ति कहते हैं। वास्तविक रूप से जो अनुभूति होती है, उसे पारमार्थिक कहते हैं और जो इससे पूर्व अवस्था में अनुभूति होती है, उसे व्यावहारिक कहते हैं। व्यावहारिक अवस्था में जीव को धर्मशास्त्रों और मीमांसा शास्त्र में निर्दिष्ट कर्म करना अनिवार्य है। इस अवस्था में यह मत मीमांसा के भट्टमत को स्वीकार करता है और उसके द्वारा स्वीकृत ६ प्रमाणों को भी स्वीकार करता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए ज्ञानमार्ग को अपनाना चाहिए। माया के इस सिद्धान्त के कारण यह मत विवर्तवाद को अपनाता है।

इस मत के प्राचीन लेखकों में **भर्तृप्रपंच** और **गौडपाद** ये प्रामाणिक आचार्य माने गए हैं। भर्तृप्रपंच का कोई ग्रन्थ प्राप्य नहीं है। गौडपाद (५२०-६२० ई०) **शंकराचार्य** के गुरु **गोविन्दभगवत्पाद** (५६०-६५० ई०) का गुरु माना जाता है। उसने **माण्डूक्यकारिका** लिखी है। उसमें उसने **माण्डूक्योपनिषद्** के अभिप्राय को स्पष्ट किया है।

मण्डन मिश्र (६१५-६९५ ई०) **कुमारिल भट्ट** का समकालीन था। वह एक प्रसिद्ध मीमांसक और वेदान्ती था। उसने वेदान्त विषय पर तीन प्रमुख ग्रन्थ लिखे हैं--(१) **ब्रह्मसिद्धि**, (२) **स्फोटसिद्धि** और (३) **विभ्रमविवेक**। उसने ब्रह्म सिद्धि में अद्वैतमतानुसार वेदान्तदर्शन के विषयों को स्पष्ट किया है। उसने **स्फोटसिद्धि** में **भर्तृहरि** के **शब्दाद्वैतवाद** (स्फोटवाद) का समर्थन किया है। **विभ्रमविवेक** में प्रमाणमीमांसा है। **वाचस्पति मिश्र** (८५० ई०) ने बड़े सम्मान के साथ उसके अद्वैत-विषयक विचारों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। यह माना जाता है कि एक शास्त्रार्थ में शंकराचार्य ने उसे हराया था और वह संन्यासी हो गए, अपना नाम **सुरेश्वर** रक्खा तथा शंकराचार्य के मत के अनुयायी हो गए। कुछ विद्वान् मण्डन मिश्र और सुरेश्वर की एकता को स्वीकार नहीं करते हैं।

शंकराचार्य का जन्म ९३२ ई० में **मालाबार** में **कालदि** नामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने **गौडपाद** के शिष्य **गोविन्दभगवत्पाद** से वेदान्तदर्शन-पढ़ा

था । यह बहुत ही छोटी आयु में संन्यासी हो गए । भारतवर्ष में इधर-उधर बहुत घूमे और अपने मत का प्रचार करते रहे। उनका स्वर्गवास ३२ वर्ष की छोटी आयु में हो गया।

वे आगम-ग्रंथों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करते थ, क्योंकि उनमें कुछ ऐसे सिद्धान्तों और विचारों का समन्वय है, जो कि वेदों के मत के विरुद्ध है। उन्होंने ये मुख्य ग्रन्थ लिखे हैं—(१) ब्रह्मसूत्रों का भाष्य **ब्रह्मसूत्रभाष्य** नाम से, (२) भगवद्गीता का भाष्य **भगवद्गीताभाष्य** नाम से और (३) प्रमुख उपनिषदों का भाष्य । उन्होंने इनके अतिरिक्त कितने ही बड़े और छोटे ग्रन्थ लिखे हैं । इन ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य है, अद्वैत मत का समर्थन और प्रतिपादन । उनमें से प्रमुख ग्रन्थ ये हैं—**आत्मबोध, दशश्लोकी, अपरोक्षानुभूति, प्रपंचसार, उपदेशसाहस्री, विवेचूडामणि, प्रश्नोत्तररत्नमालिका** और **विष्णुसहस्रनामभाष्य** आदि ।

सुरेश्वर ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**बृहदारण्यकोपनिषद्वार्तिक** और **नैष्कर्म्यसिद्धि** । कुछ विद्वान् **सुरेश्वर** और **मण्डनमिश्र** को एक ही व्यक्ति मानते हैं। उसका समय ६२० ई० से ७०० ई० माना जाता है। **सुरेश्वर** के साथ में **शंकराचार्य** के चार शिष्य थे । **पद्मपाद** ने **शंकराचार्य** कृत **ब्रह्मसूत्रभाष्य** की टीका की है । **तोटक श्रुतिसारसमुद्धरण** का लेखक है । **शंकर** द्वारा कहे गये अविद्या-सिद्धान्तों पर एक छन्दोबद्ध ग्रन्थ है । अद्वैत पर **हस्तामलकाचार्य** ने **विवेकमंजरी** नामक ग्रन्थ लिखा है । **शंकराचार्य** के **ब्रह्मसूत्रभाष्य** की ये पाँच टीकाएँ हुई हैं—(१) **शंकराचार्य** के शिष्य **पद्मपाद** (६२५-७०५ ई०) कृत पंचपादिका टीका (२) वाचस्पति मिश्र (८५० ई०) कृत **भामती टीका**, (३) **अनुभूतिस्वरूपाचार्य** (लगभग १००० ई०) कृत **प्रकृतार्थविवरण** टीका, (४) **आनन्दगिरि** (लगभग १२५० ई०) कृत **न्यायनिर्णय** टीका और (५) **चित्सुख** (लगभग १२२५ ई०) कृत **भाष्यभावप्रकाशिका** टीका । **शंकराचार्य** के **भगवद्गीता** और **उपनिषद्भाष्य** की टीका **आनन्दगिरि** (लगभग १२५० ई०) ने की है । **वाचस्पति मिश्र** ने **मण्डनमिश्र** की **ब्रह्मसिद्धि** की टीका अपने ग्रन्थ **तत्त्वसमीक्षा** में की है। वह ग्रन्थ अब अप्राप्य है ।

विमुक्तात्मा की **इष्टसिद्धि** अद्वैत विषय पर एक खण्डनात्मक ग्रन्थ है। इसकी शैली बहुत क्लिष्ट है। **विमुक्तात्मा** का समय ८५० ई० और १०५० ई० के मध्य में माना जाता है। **सर्वज्ञात्मा** (लगभग ९०० ई०) ने अपने ग्रन्थ **संक्षेपशारीरिक** में **शंकराचार्य** के **ब्रह्मसूत्रभाष्य** का सारांश दिया है। **सर्वज्ञात्मा** के और दो ग्रन्थ हैं—**प्रमाणलक्षण** और **पंचप्रक्रिया**। **प्रकाशात्मा** (लगभग १२०० ई०) ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**पद्मपाद** की **पंचपादिक** की टीका **पंचपादिका-विवरण** और (२) **ब्रह्मसूत्रों** की टीका **न्यायसंग्रह**। इसी समय **नैषधीयचरित** के सुप्रसिद्ध लेखक **श्रीहर्ष** ने **खण्डनखण्डखाद्य** नामक ग्रन्थ लिखा है। यह खंडनात्मक ग्रन्थ है। इसमें अद्वैतमत की पुष्टि और नैयायिकों के मत का खण्डन किया गया है। **वाचस्पति मिश्र** की भामती टीका **अमलानन्द** (१२२५ ई०) ने अपने ग्रन्थ **कल्पतरु** में की है। **चित्सुख** (लगभग १२२५ ई०) ने **शंकराचार्य** के **ब्रह्मसूत्रभाष्य** की टीका के अतिरिक्त **खण्डनखण्डखाद्य**, **ब्रह्मसिद्धि** और **नैष्कर्म्यसिद्धि** की भी टीका की है। इसके अतिरिक्त उसने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **तत्त्वदीपिका** लिखा है। **व्यासयति** (लगभग १३०० ई०) ने **न्यायामृत** में इसी **तत्त्वदीपिका** का खण्डन किया है। **विद्यारण्य विजयनगर** के **माधव** (१२९७-१३८६ ई०) का दूसरा नाम था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—**विवरणप्रमेयसंग्रह, पंचदशी, जीवन्मुक्तिविवेक** और **वैयासिकन्यायमाला**। **वैयासिकन्यायमाला** ग्रन्थ का कुछ अंश **विद्यारण्य** ने लिखा है और कुछ अंश **भारतीतीर्थ** ने। **सदानन्द** ने १५वीं शताब्दी में अद्वैत विषय पर एक बहुमूल्य ग्रन्थ **वेदान्तसार** लिखा है। **धर्मराजाध्वरिन्** ने १६वीं शताब्दी में **अद्वैतपरिभाषा** ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम **वेदान्तपरिभाषा** है। यह अद्वैत-तत्त्वमीमांसा विषय पर बहुत सुन्दर पुस्तक है। सांख्य और योग दर्शन पर विभिन्न ग्रन्थों के लेखक **विज्ञानभिक्षु** (१५५० ई०) ने ब्रह्मसूत्रों पर **विज्ञानामृत** नाम की टीका लिखी है। **मधुसूदनसरस्वती** (लगभग १६०० ई०) ने **अद्वैतसिद्धि** ग्रन्थ लिखा है। इसमें अद्वैतमत की पुष्टि और **व्यासयति** के **न्यायामृत** का खण्डन किया है। **मधुसूदन सरस्वती** के अन्य ग्रन्थ ये हैं—(१) **शंकराचार्य** की **दशश्लोकी** की टीका **सिद्धान्तबिन्दु** (२) **भगवद्गीता** की टीका **गूढार्थदीपिका** और (३)

प्रस्थानभेद । **अप्पयदीक्षित** (१५५२-१६२४ ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **सिद्धान्तलेशसंग्रह** । इसमें अद्वैतमत के सिद्धान्तों का संकलन है । (२) ब्रह्मसूत्रों की टीका **न्यायरक्षामणि** । (३) **अमलानन्द** के **कल्पतरु** की टीका **परिमल** और (४) अद्वैत-सिद्धान्त विषय **न्यायमंजरी** ग्रन्थ । **अप्पयदीक्षित** के शिष्य **भट्टोजि दीक्षित** ने अद्वैत मत के सिद्धान्तों पर **तत्त्वकौस्तुभ** नामक ग्रन्थ लिखा है । **अन्नंभट्ट** (लगभग १७०० ई०) ने ब्रह्मसूत्रों की टीका **मिताक्षरा** नाम से की है ।

विशिष्टाद्वैत

इस मत के अनुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन सत्ताएँ हैं । इसमें **भेद, अभेद** और **घटक** श्रुतियों को प्रामाणिक माना गया है । ये वाक्य यह सिद्ध करते हैं कि वास्तविक सत्ता केवल ब्रह्म है । **चित्** (जीव) और **अचित्** (अचेतन जीव) उसके शरीर या प्रकार हैं । ये प्रकार परस्पर भिन्न हैं । ये चिदचित् ब्रह्म के विशेषण हैं । परन्तु ये ब्रह्म से भिन्न हैं । ब्रह्म चिदचिद् विशिष्ट है । इस मत में ब्रह्म को एक मानते हुए भी उसे चिदचिद्विशिष्ट कहा जाता है, अतः इसे विशिष्टाद्वैत कहते हैं ।[1] यह संसार सत् है । जीव और प्रकृति अनेक हैं । जीव का परिमाण परमाणु के बराबर होता है । जीव और प्रकृति ब्रह्म के शरीर है । जीव और प्रकृति का अस्तित्व ईश्वर के लिए है । अतएव जीव और प्रकृति को शेष कहते हैं तथा ब्रह्म को शेषी । यह शेषी शेष के ऊपर उसी प्रकार नियन्त्रण रखता है, जिस प्रकार आत्मा शरीर पर ।[2] जीव तीन प्रकार के हैं—**बद्ध, मुक्त,** और **नित्य** । **विष्णु,** उसकी प्रिया **लक्ष्मी, आदिशेष** और **गरुड़** आदि नित्य जीवों में हैं अन्य जीव बद्ध या मुक्त की कोटि में आते हैं । भगवद्गीता

---

१. अशेषचिदचितप्रकारं ब्रह्मैक्यमेव तत्त्वम् । तत्र प्रकारप्रकारिणोः प्रकाराणां च मिथोऽत्यन्तभेदेऽपि विशिष्टैक्यादिविवक्षयैकत्वव्यपदेशः, तदितरनिषेधश्च । वेदान्तदेशिक कृत न्यायसिद्धांजन, अध्याय १ ।

२. परगतातिशयाधानेच्छया उपादेयत्वमेव यस्य स्वरूपं स शेषः, परः शेषी । रामानुजकृत वेदार्थसंग्रह, पृष्ठ २३४-२३५; (वृन्दावन संस्करण) ।

में बताए गए तीन मार्गों में से यह मत **भक्तिमार्ग** और **आत्मसमर्पण** (प्रपत्ति) को स्वीकार करता है। अपने कर्तव्यों को करने से जीव विशुद्ध हो जाता है और ज्ञानयोग का अधिकारी होता है। इस मत के अनुसार वास्तविक ज्ञान यह होना चाहिए कि जीव प्रकृति से पृथक् है और वह ब्रह्म का अंशमात्र है। इस प्रकार की अनुभूति से जीव भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है। **यम, नियम, ध्यान** आदि के द्वारा भक्तिमार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। इस मत के अनुसार सफलता ईश्वर को आत्मार्पण करने से होती है। जो इस मार्ग के अधिकारी नहीं हैं, वे भी ईश्वर को अपने आप को अर्पण करके ही सफलता पा सकते हैं। अतएव आत्मनिक्षेप मोक्ष का सरलतम और सुनिश्चित प्रकार है। मोक्ष की स्थिति में जीवों की पारस्परिक भिन्नता समाप्त हो जाती है और वहाँ पर '**चिदनेकत्व** के नाश के द्वारा **चिदेकत्व** की ही सत्ता रहती है'। उस अवस्था में अहंभाव का नाश हो जाता है। मोक्षावस्था आनन्दानुभूति की अवस्था है। उसमें मुक्तजीव अन्य मुक्तात्माओं के साथ विचरण करता है। जीवात्मा परमात्मा की सेवा में आनन्द का अनुभव करता है। लक्ष्मी के साथ विष्णु ब्रह्म माने गए हैं। विष्णु और लक्ष्मी एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते हैं। वे दिव्य दम्पती हैं। इस मत के अनुयायियों में से कुछ का मत है कि लक्ष्मी विष्णु की प्रिया है और वह एक सामान्य जीव है। विष्णु का शरीर अप्राकृत (अभौतिक) है।

इस मत के अनुसार तीन प्रमाण हैं—**प्रत्यक्ष, अनुमान** और **शब्द**। यह मत **उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र** और **भगवद्गीता** के अतिरिक्त वैष्णव आगमों को भी प्रामाणिक मानता है। वैष्णव आगम दो प्रकार के हैं—**पांचरात्र** और **वैखानस**। इन आगमों का कथन है कि ब्रह्म विभिन्न स्थानों पर विभिन्न पाँच रूप में रहता है—(१) वैकुण्ठ में '**परा**' रूप में, (२) क्षीरसागर में '**व्यूह**' रूप में, (३) अवतार में '**विभव**' रूप में, (४) जीवात्मा और प्रकृति के अन्दर '**अन्तर्यामी**' परमात्मा के रूप में और (५) पूजा के योग्य मूर्तियों में '**अर्चा**' रूप में। **पांचरात्र** आगामों में इन विषयों का वर्णन है—इस मत के अनुयायियों के लिए जीवन-यापन की विधि, गृहों और मन्दिरों में मूर्तियों और प्रतीकों की

पूजा की विधि, दैनिक पंच-कर्तव्यों को करना और तदनुसार उपाधि प्राप्त करना। दैनिक पंच-कर्तव्य ये हैं—(१) **अभिगमन** अर्थात् देव-मन्दिर में जाना और वहाँ पर मन, वचन तथा कर्म से ईश्वर की ओर एकाग्रता, (२) **उपादान** अर्थात् देव-पूजा के लिए सामान एकत्र करना, (३) **इज्या** अर्थात् ईश्वर-पूजा, (४) **स्वाध्याय** अर्थात् वेदों का पठन या वैदिक मन्त्रों का उच्चारण और (५) **योग** अर्थात् ईश्वर-चिन्तन। दैनिक कर्तव्यों को करते हुए भी नैतिक तथा धार्मिक नियमों का पालन करना आवश्यक है। इस मत के लिए पांचरात्र आगम वेदों के समान ही प्रामाणिक हैं। इस मत के प्रमुख आचार्यों ने यह सिद्ध किया है कि वैष्णव आगमों की शिक्षाएँ वेदों की शिक्षाओं के विपरीत नहीं हैं। विष्णु के एक अवतार **अनिरुद्ध** ने इन सिद्धान्तों की सर्वप्रथम शिक्षा दी थी और वे शिक्षाएँ **नारद, सनक** और **शाण्डिल्य** आदि को प्रकट की गई थीं। अतएव वैष्णव आगमों को **'भगवच्छास्त्र'** कहा जाता है। महाभारत के नारायणीय अध्याय में पांचरात्र आगमों की प्रामाणिकता सिद्ध की गई है। इन सिद्धान्तों के आधार-ग्रन्थ **भगवद्गीता, भागवत, नारदसूत्र** और **शाण्डिल्य सूत्र** हैं। पांचरात्रों के तुल्य वैखानस आगम भी प्रामाणिक हैं। इन आगमों का वैखानस नाम इसलिए पड़ा कि **विखनस्** अर्थात् ब्रह्मा ने इनका उपदेश **अत्रि, मरीचि, काश्यप** और **भृगु** को दिया और इन चारों में से प्रत्येक ने इन सिद्धन्तों को पृथक्-पृथक् ग्रन्थ के रूप में प्रगट किया है। इनमें से प्रत्येक को संहिता कहा जाता है जैसे **अत्रिसंहिता**। यह माना जाता है कि पांचरात्र आगम की १०८ संहिताएँ थीं। आजकल इनमें से कुछ ही संहिताएँ प्राप्त हैं। इनमें **पौष्कर, सात्वत** और **जयाख्य** संहिताएँ मुख्य हैं। इनसे ही सम्बद्ध **ईश्वर, पाद्म** और **पारमेश्वर** आदि संहिताएँ हैं।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त यह मत **'दिव्यप्रबन्ध'** को भी प्रामाणिक ग्रन्थ मानता है। ये ग्रन्थ तामिल भाषा में ४ सहस्र श्लोकों से युक्त हैं। ये ग्रन्थ विशुद्धाद्वैत मत के प्रतिपादक माने जाते हैं। ये ग्रन्थ **आलवार** नामक सन्तों की रचनाएँ हैं। ये ग्रन्थ वेदों के तुल्य ही प्रामाणिक माने जाते हैं।

इस मत के सबसे प्राचीन लेखक **टंक** (इनका दूसरा नाम **ब्रह्मनन्दी** है), **द्रमिड** और **गुहदेव** आदि हैं। **ब्रह्मसूत्रों** पर वृत्तिकार **उपवर्ष** भी, जिनका दूसरा नाम **बोधायन** है, इस मत के प्रामाणिक आचार्य माने जाते हैं। इन लेखकों के विषय में विशेष कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनके पश्चात् **आलवार** आते हैं। उनके पश्चात् **नाथमुनि** (८२४-९२४ ई०) आते हैं। उनका पूरा नाम **रंगनाथ-मुनि** था उन्होंने इस मत के प्रतिपादक दो ग्रन्थ लिखे—**न्यायतत्त्व** और **योगरहस्य**। ये ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं। परकालीन लेखकों ने इन ग्रन्थों से उद्धरण दिए हैं। उनसे इन ग्रन्थों का ज्ञान होता है। उनका पौत्र **यामुन** था। उसका जन्म ९१६ ई० में हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **स्तोत्ररत्न**, (२) **चतुश्श्लोकी**, (३) **आगमप्रामाण्य**—इसमें उसने पांचरात्र आगमों की प्रामाणिकता का मण्डन किया है। (४) **सिद्धित्रय**—इसमें तीन ग्रन्थ हैं—**आत्मसिद्धि, ईश्वरसिद्धि** और **संवित्सिद्धि** (५) **गीतार्थसंग्रह**—और (६) **महापुरुषनिर्णय**।

रामानुज का जन्म १०३७ ई० में **कांची** के समीप **श्रीपेरुम्बुदुर** में हुआ था। उन्होंने कांची में **यादवप्रकाश** से अद्वैतवेदान्त का अध्ययन किया। बाद में वे **यामुन** के एक शिष्य **श्रीपूर्ण** के शिष्य हुए। उन्होंने सन्यास ग्रहण किया और देश भर में **विशिष्टाद्वैत** मत का प्रचार प्रारम्भ किया। उन्होंने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **ब्रह्मसूत्रों** की टीका **श्रीभाष्य**, (२) **वेदान्तसार**, (३) **वेदान्तदीप**, (४) **भगवद्गीताभाष्य**, (५) **वेदार्थसंग्रह**, इसमें संक्षेप में वेदों का अभिप्राय वर्णन किया गया है, (६) **गद्यत्रय** और (७) **नित्य**। इसमें ईश्वर-पूजा की विधि का वर्णन है। **वेदान्तसार** और **वेदान्तदीप** ये ब्रह्मसूत्रों की सक्षिप्त टीकाएँ हैं। **श्रीभाष्य** की ये टीकाएँ हुई हैं—**मेघनादारिकृत नवप्रकाशिका** और **भाष्यभाव-बोधन**, (२) **वरदनारायण-भट्टारक कृत न्यायसुदर्शन**, (३) **सुदर्शन-सूरिकृत श्रुतप्रकाशिका** और **श्रुतप्रदीपिका**, (४) **वेदान्तदेशिक** (१२६८—१३६९) कृत **तत्त्वटीका** और (५) **रंगरामानुज मुनि** (लगभग १६०० ई०) कृत **मूलभावप्रकाशिका**। **वरदनारायण-भट्टारक** और **मेघनादारि** का समय १२००

ई० के लगभग माना जाता है। **सुदर्शनसूरि** १३वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में हुए थे।

श्रीवत्सांक के पुत्र **पराशर भट्ट** (लगभग ११०० ई०) ने खण्डनात्मक **तत्त्वरत्नाकर** ग्रन्थ लिखा है। वह अब नष्ट हो गया है। उसने **विष्णुसहस्रनाम** की टीका **भगवद्गुणदर्पण** नाम से की है। **मेघनादारि** का **नयद्युमणि विशिष्टाद्वैत** मत का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। **वरदनारायण भट्टारक** का **प्रज्ञापरित्राण** भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। **वरदाचार्य** (लगभग १२७० ई०) ने चार छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **प्रपन्नपारिजात**, (२) **प्रमेयमाला**, (३) **तत्त्वनिर्णय**, (४) **तत्त्वसार**। **श्रुतप्रकाशिका** के लेखक **सुदर्शनसूरि** ने दो और ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **रामानुज** के **वेदार्थसंग्रह** की टीका **तात्पर्यदीपिका** और (२) **भागवत** की टीका **शुकपक्षीय**। **वेदान्तदेशिक** के गुरु **आत्रेय रामानुज** का जन्म १३वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में हुआ था। उसने विशिष्टाद्वैत के समर्थन में **न्यायकुलिश** ग्रन्थ लिखा है।

वेदान्तदेशिक ने लगभग ११८ ग्रन्थ लिखे है। उनमें से लगभग १५ नष्ट हो गए हैं। इनमें से ४० से अधिक तामिल भाषा में हैं और ३५ के लगभग काव्य, गीतिकाव्य और कर्मकाण्ड आदि विषयों पर हैं। इनमें से प्रमुख स्वतन्त्र ग्रन्थ ये हैं—(१) **तत्त्वमुक्ताकलाप** तथा उस पर अपनी टीका **सर्वार्थसिद्धि** (२) **शतदूषणी**। यह अद्वैतवाद की आलोचना है। (३) **सच्चरित्ररक्षा**, (४) **निक्षेप-रक्षा**, (५) **पाञ्चरात्ररक्षा**, (६) **न्यायपरिशुद्धि** (७) **न्यायसिद्धाञ्जन**, (८) **मीमांसा-पादुका** और (९) **अधिकरणसारावलि**। उसके मुख्य टीका ग्रन्थ ये हैं—(१) **आस्तिकवाद** के समर्थन में **मीमांसासूत्रों** की टीका **सेश्वरमीमांसा**, (२) **रामानुज** के **भगवद्-गीताभाष्य** की टीका **तात्पर्यचन्द्रिका**, (३) **श्रीभाष्य** की टीका **तत्त्वटीका**, (४) **ईशा-वास्योपनिषद्-भाष्य**, (५) **यामुन** के **गीतार्थसंग्रह** की टीका **गीतार्थसंग्रहरक्षा** और (६) **रामानुज** के **गद्यत्रय** की टीका **रहस्यरक्षा**। इन ग्रन्थों में उसकी वैज्ञानिक विषयों के विवेचन में मौलिकता और प्रखर तार्किकता का परिज्ञान

होता है। विशिष्टाद्वैत मत में **रामानुज** के बाद वह ही सबसे प्रामाणिक आचार्य माना जाता है। उसके पुत्र **वरदाचार्य** ने उसकी **मीमांसापादुका** की टीका की है।

अप्पयदीक्षित (लगभग १६०० ई०) ने विशिष्टाद्वैतमत का अनुसरण करते हुए ब्रह्मसूत्रों की टीका **नयमयूखमालिका** नाम से की है। **महाचार्य** (लगभग १६०० ई०) **अप्पयदीक्षित** का समकालीन था। उसने **वेदान्त-देशिक** की **शतदूषणी** की टीका **चण्डमारुत** नाम से की। उसने ६ खण्डनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं--(१) **अद्वैतविद्याविजय,** (२) **गुरूपसत्तिविजय,** (३) **परिकर-विजय** (४) **पाराशर्य-विजय** (५) **ब्रह्मविद्याविजय** और (६) **सद्विद्याविजय**। लगभग इसी समय **रंगरामानुज मुनि** हुआ था। उसको मुख्य उपनिषदों पर भाष्य करने के कारण **उपनिषद्भाष्यकार** की उपाधि प्राप्त हुई थी। उसने दो टीकाएँ लिखी हैं--(१) **वेदान्तदेशिक** के **न्यायसिद्धाञ्जन** की टीका और (२) **सुदर्शनसूरि** की **श्रुतप्रकाशिका** की टीका **भावप्रकाशिका**। **विषयवाक्यदीपिका** उसका एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। इनमें उपनिषदों के कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्यों की व्याख्या है। **महाचार्य** के शिष्य **श्रीनिवासाचार्य** ने **यतीन्द्रमतदीपिका** ग्रंथ में विशिष्टाद्वैत मत के सिद्धान्तों का वर्णन किया है।

शुद्धाद्वैत-मत

इस मत के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार का है। वह संसार का कर्त्ता, धर्ता और संहर्ता है। सत्, चित् और आनन्द उसके गुण हैं। वह एक और अनिर्वचनीय है, वह जीवात्मा में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है। वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। वह पूर्ण है। उसे पुरुषोत्तम कहा जाता है। वह आनन्दमय है। इन रूपों में वह सगुण है। उसमें साधारण मानवीय कोई गुण नहीं हैं, अतः उसे निर्गुण कहा जाता है। जीव वास्तविक हैं। वे ब्रह्म के एक अंश हैं। वे ब्रह्मरूपी अग्नि के कण के तुल्य हैं। जीवात्मा परमाणु-तुल्य होता है। जीव ब्रह्म के अंश हैं, अतः वे ब्रह्म से पृथक् नहीं हैं। वे आनन्दमय ब्रह्म भी हैं। अतः जीव और ब्रह्म एक

ही हैं। जीव और ब्रह्म में जो अन्तर दिखाई देता है, वह वास्तविक नहीं है, अपितु वह अन्तर ब्रह्म की इच्छा के कारण है। यह अन्तर अद्वैत मत के तुल्य माया के कारण नहीं है। अतः इस मत में माया को सत्ता न होने से इसे शुद्धाद्वैतमत कहा जाता है। ब्रह्म अपनी स्वतन्त्र इच्छा से जीवों को अपने शरीर के तुल्य दिव्य शरीर प्रदान करता है, जिससे वे ब्रह्म के साथ सदा क्रीड़ा किया करें। ईश्वर और जीव का सम्बन्ध नायक-नायिकाभाव (पति-पत्नीभाव) सम्बन्ध है। भक्ति और आत्म-समर्पण से ब्रह्म का अनुग्रह प्राप्त होता है। इस मत में ब्रह्म की पूजा कृष्ण के रूप में होती है। उसके नाम **गोपीजनवल्लभ** और **श्रीगोवर्धननाथ** जी या **श्रीनाथ** जी हैं। देखिए :—

जानीत परमं तत्त्वं यशोदोत्सङ्गलालितम्।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधाः॥

ब्रह्मसूत्रानुभाष्य ४-४-२२

इस मत में गुरु को देवतुल्य माना जाता है और उसकी देवतुल्य पूजा की जाती है। यह मत **वेद, भगवद्गीता** और **उपनिषद्** तथा **भागवत** को प्रामाणिक ग्रन्थ मानता है। जीवात्मा भागवत के निम्नलिखित सात प्रकार के अर्थों को जानने से मुक्त होता है। **भागवत के** सात ज्ञातव्य अर्थ ये हैं—**शाखा, स्कन्ध, प्रकरण, अध्याय, वाक्य, पद और अक्षर।**

वल्लभाचार्य (१४७३-१५३१ ई०) इस मत के संस्थापक हैं। उन्होंने **ब्रह्मसूत्रों** की टीका **अणुभाष्य** नाम से की है। उन्होंने इस भाष्य को अपूर्ण छोड़ दिया था। उनके पुत्र **विट्ठलनाथ** जी ने उसे पूर्ण किया। **वल्लभाचार्य** ने **भागवत** की **सुबोधिनी** टीका लिखी है। उन्होंने १६ छोटे ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें उन्होंने शुद्धाद्वैतमत के सिद्धान्तों और शिक्षाओं का संक्षिप्त विवेचन किया है। **वल्लभाचार्य** के शिष्य **पुरुषोत्तम** ने **अणुभाष्य** की टीका **भाष्यप्रकाश** नाम से की है और **भाष्यप्रकाश** की टीका **गोपेश्वर** ने **रश्मि** नाम से **की है। पुरुषोत्तम** ने शुद्धाद्वैतमत के दार्शनिक मन्तव्यों पर एक स्वतन्त्र **ग्रन्थ वेदान्ताधिकरणमाला** लिखा है। **श्रीजयगोपाल** ने **तैत्तिरीयोपनिषद् की**

टीका लिखी है। **कृष्णचन्द्र** ने ब्रह्मसूत्रों की टीका **भावप्रकाशिका** नाम से की है।

निम्बार्कमत

इस मत की स्थापना १२वीं शताब्दी ई० में **निम्बार्क** ने की थी। इस मत के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों है। संसार ब्रह्म की अभिव्यक्ति मात्र है। संसार ब्रह्म से अभिन्न और पृथक् दोनों है। संसार में जीव और प्रकृति दोनों का संग्रह है। इस प्रकार यह मत अद्वैत और द्वैत दोनों मानने के कारण द्वैताद्वैत मत कहा जाता है। जीव, जो कि ब्रह्म के नियन्त्रण में हैं, मुक्तावस्था में भी उससे अभिन्न और पृथक् दोनों रूपों में रहते हैं। ब्रह्म के वास्तविक रूप के साथ तादात्म्य प्राप्त करने को **मोक्ष** कहते हैं। मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान और आत्म-समर्पण से होती है। इस मत के अनुसार ब्रह्म की उपासना **कृष्ण** और **राधा** के रूप में की जाती है। इस मत को **सनक-सम्प्रदाय** भी कहते हैं।

निम्बार्क ने **ब्रह्मसूत्रों** की टीका **वेदान्तपारिजातसौरभ** नाम से की है। **निम्बार्क** के शिष्य **श्रीनिवास** ने इस **वेदान्तपारिजातसौरभ** की टीका की है। **निम्बार्क** ने द्वैताद्वैत मत पर **दशश्लोकी** ग्रन्थ भी लिखा है। **केशवाचार्य**—(लगभग १६०० ई०) का दूसरा नाम **केशव कश्मीरी** था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **ब्रह्मसूत्रों** की टीका **कौस्तुभप्रभा**, (२) **भगवद्गीता** की टीका **तत्त्वप्रकाशिका**, (३) मुख्य उपनिषदों की टीका और (४) **विष्णुसहस्रनाम** आदि की टीका।

भास्करमत

भास्कर, शंकर (६३२-६६४ ई०) का उत्तरवर्ती तथा **वाचस्पति मिश्र** (८५० ई०) का पूर्ववर्ती है। अतः उसका समय ८०० ई० के लगभग है। उसका मत है कि ब्रह्म विशुद्ध गुणों से युक्त है। साथ ही वह उपाधि के कारण बद्ध और मुक्त दोनों है। दुर्गुणों से पूर्ण संसार के रूप में परिवर्तित

होता है, अतः बद्ध है और स्वतः मुक्त है। ब्रह्म में वास्तविक रूप से एकत्व और अनेकत्व रहता है। कारणावस्था में ब्रह्म एक रहता है और कार्यावस्था में वह अनेक हो जाता है। जीव ब्रह्म से अभिन्न है, परन्तु उपाधि के कारण वह उससे भिन्न भी है। ब्रह्म जीवों के अनुभवों को अनुभव करता है। भास्कर ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग दोनों को सम्मिलित रूप से स्वीकार करते हैं। भास्कर ने ब्रह्मसूत्रों का भाष्य किया है। इस मत का दूसरा नाम **त्रिदण्डिमत** भी है।

यादवप्रकाश मत

यादवप्रकाश ११वी शताब्दी ई० में हुआ था। वह **अद्वैतमतावलम्बी** था। वह **कांची** में रहता था। उसने **रामानुज** को वेदान्त पढ़ाया था। बाद में रामानुज से उसका शास्त्रार्थ हुआ। यह कहा जाता है कि रामानुज ने उसको पराजित कर दिया और वह रामानुज का शिष्य हो गया तथा विशिष्टाद्वैत मत का अनुयायी हो गया। उसके मतानुसार ब्रह्म जंगम और स्थावर जगत् के रूप में परिवर्तित होता है। परिणामस्वरूप ब्रह्म बहुत-सी अशुद्धियों का स्थान हो जाता है, परन्तु वह शुद्ध स्वरूप में रहता है। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि यादवप्रकाश ने ब्रह्मसूत्रों की टीका की है या नहीं। उसकी भगवद्गीता पर टीका नष्ट हो गई है। जान पड़ता है कि स्वाभाविक-भेदाभेदवाद को अपनाने मे उसके ऊपर **भर्तृप्रपंच** और **आश्मरथ्य** का प्रभाव पड़ा है। भेदज्ञान सांसारिक बन्धन में लाता है किन्तु मोक्ष का सम्बन्ध भेद-अभेद के ज्ञान से है। **भास्कर** की नाईं **यादव प्रकाश ज्ञानकर्मसमुच्चय** का समर्थन करता है। ये दो ग्रन्थ उसकी कृति माने जाते हैं—(१) **वैजयन्तीकोश** और (२) **यतिधर्मसमुच्चय**। इसमें यतियों के कर्तव्यों का वर्णन है।

चैतन्य-मत

चैतन्य का नाम बंगाल में वैष्णवधर्म के प्रचार के साथ संबद्ध है। इनका प्रारम्भिक नाम **विश्वम्भर** था। इनका जन्म १४८५ ई० में हुआ था। उनके शारीरिक सौन्दर्य से उनका नाम **गौर** या **गौरांग** पड़ा। १५०९ ई० में वे

संन्यासी हो गए और उन्होंने अपना नाम **श्रीकृष्ण चैतन्य** रक्खा। इनका स्वर्गवास १५३३ ई० हुआ। इनके मतानुसार भक्ति का स्थान ज्ञान और योग दोनों के ऊपर है। कृष्ण और राधा की पूजा के समय जो भक्तिभाव उत्पन्न होता है, उसे इस मत के अनुसार रस माना जाता है। **भागवत** पर **श्रीधर** की टीका से **चैतन्य** बहुत प्रभावित हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मत के सिद्धान्तों का निर्माण **जयदेव** के **गीतगोविन्द** और विशिष्टाद्वैत मत के भक्ति-मार्ग के आधार पर हुआ है।

चैतन्य ने अपने उपदेशों के समर्थन के लिए कोई साहित्यिक रचना नहीं छोड़ी है। शिक्षाष्टक का रचयिता चैतन्य को माना जाता है। इसमें चैतन्यमत की शिक्षाओं का संग्रह है। **सनातनगोस्वामी**, **चैतन्य** के शिष्यों में से एक था। उसने दो ग्रन्थ लिखे हैं—(१) भागवत की टीका **वैष्णवतोषिणी** और (२) **बृहद्भागवतामृत**। **रूपगोस्वामी**, **सनातनगोस्वामी** का छोटा भाई और **चैतन्य** का शिष्य था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) अपने बड़े भाई के **बृहद्भागवतामृत** के अनुकरण पर **लघुभागवतामृत** और (२) **भक्तिरस** पर **भक्तिरसामृतसिन्धु**। उसने इनके अतिरिक्त और बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। वे अलंकार, सुभाषितावली, गीतिकाव्य और नाटक आदि के अन्तर्गत आते हैं। **जीवगोस्वामी** ने **भागवतसंदर्भ** में रहस्यात्मक और तत्त्वमीमांसात्मक सिद्धान्तों का वर्णन किया है। **गोपालभट्ट** ने कर्मकाण्ड और धार्मिक कृत्यों के विषय में **हरिभक्तिविलास** ग्रन्थ लिखा है। **कृष्णदास कविराज** ने **सनातन गोस्वामी**, **रूपगोस्वामी** और **जीवगोस्वामी** के जीवन के विषय में **चैतन्यचरितामृत**, **प्रेमविलास** और **गोविन्दलीलामृत** ग्रन्थ लिखे हैं। **बलदेव विद्याभूषण** ने १८वीं शताब्दी ई० में इस मत के मन्तव्यों को लक्ष्य में रखते हुए ब्रह्मसूत्रों की टीका **गोविन्दभाष्य** नाम से की है।

शिवाद्वैत-मत

शिवाद्वैत-मत का कथन है कि शिव सर्वोच्च देवता है। इसके अतिरिक्त यह मत विशिष्टाद्वैतमत के ही अनुकूल है। **श्रीकण्ठ** इस मत के सबसे

प्राचीन आचार्य माने जाते हैं। इस मत का विकास शैवमत के विकास के साथ घनिष्ट रूप से संबद्ध है। ऐसा ज्ञात होता है कि श्रीकण्ठ ने यह प्रयत्न किया कि शैवधर्म को उपनिषदों के सिद्धान्तों से संबद्ध किया जाय। **श्रीकण्ठ** का समय और निश्चित परिचय अज्ञात है। **श्रीकण्ठ** ने **ब्रह्मसूत्रों** का भाष्य किया है। वह भाष्य **श्रीकण्ठभाष्य** ही कहा जाता है। वह शैव आगमों को वेदों के तुल्य ही प्रामाणिक मानता है। उसने इस मत के तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है—(१) **पति** (शिव), (२) **पशु** (जीव) और (३) **पाश** (बन्धन)। **अप्पयदीक्षित** (लगभग १६०० ई०) ने इस मत को बहुत बड़ी देन दी है। उसने **श्रीकण्ठभाष्य** की टीका **शिवार्कमणिदीपिका** नाम से की है। उसने **भारततात्पर्यसंग्रह** ग्रन्थ लिखा है। इसमें महाभारत का संक्षेप दिया है और महाभारत की इस प्रकार व्याख्या की है कि वह शैवमत का समर्थक सिद्ध हो। इसी प्रकार **रामायणतात्पर्य-संग्रह** में रामायण की शैवमतानुकूल व्याख्या की है। उसके शिवाद्वैत-मत के समर्थक अन्य ग्रन्थ ये हैं—**रत्नत्रयपरीक्षा, शिवतत्त्वविवेकिनीमाला, शिवाद्वैतनिर्णय, तत्त्वसिद्धान्तव्याख्या** और **नयमणिमाला**।

शैवमत की धार्मिक शाखाएं, पाशुपत, शैव, कश्मीरी शैवमत और शाक्तमत

कुछ ऐसे भी धार्मिक समुदाय हैं, जो कि सर्वथा आगम-ग्रन्थों पर ही निर्भर हैं। **पाशुपत, शैव** और **कश्मीरी शैवमत** शैव आगमों पर निर्भर हैं। शक्ति-सम्प्रदाय शाक्त आगमों पर निर्भर है। शैव आगमों की संख्या २८ मानी जाती है और शाक्त आगमों की संख्या ७७। ये दोनों आगम घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। शैव-आगम शिव को सर्वोत्तम पूज्य देवता मानते हैं और शाक्त-आगम शक्ति को विश्व की माता मानते हैं। दोनों आगमों का पृथक् साहित्य है और दोनों में पारस्परिक प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। चारों सम्प्रदायों में से प्रत्येक में बहुत कुछ बातें समान पाई जाती हैं।

पाशुपत

इस शाखा का दूसरा नाम **नकुलीशपाशुपत** शाखा है। शिव स्वामी हैं और उसके अतिरिक्त अन्य सभी पशु हैं। ईसवीय सन् के प्रारम्भ में **लकुलीश** या **नकुलीश** ने इस मत के सिद्धान्तों का प्रचार किया था। बहुत सम्भव है कि वह **लकुट** या **लगुड** लिये रहता था जिसका अर्थ होता है 'गदा'। यह सम्प्रदाय ५ सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। उनके नाम हैं—कार्य, कारण, योग, विधि तथा दुखान्त। शिव निरपेक्षरूप से कार्य करते हैं। इसलिए उन्हें संसार की रचना के लिए आत्माओं के कर्म की भी आवश्यकता नहीं होती। पाँचों सिद्धान्त प्रत्यक्ष करने योग्य हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए चिन्तन, आत्म-समर्पण तथा अन्य साधन हैं। सांसारिक दुखों से परे किसी सर्वश्रेष्ठ शक्ति की प्राप्ति का नाम मोक्ष है। **नकुलिश** ने **शिवसूत्रों** की रचना की है। **पाशुपत सूत्र** और **हरदत्ताचार्य** के ग्रन्थ इस शाखा के प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। **सर्वदर्शनसंग्रह** (लगभग १४०० ई०) में **हरदत्ताचार्य** का उल्लेख आता है। **न्यायसार** के लेखक **भासर्वज्ञ** (९०० ई०) ने **गणकारिका** नामक ग्रन्थ लिखा।

शैव

यह शाखा शैव आगमों पर निर्भर है। इन आगमों के **कामिक, कारण, सुप्रभेद** और **वातुल** ये बहुत अधिक प्रामाणिक आगम माने जाते हैं। शिव सर्वोत्तम देवता हैं। बुद्ध जीव ६ सिद्धान्तों के ज्ञान से मोक्ष पा सकते हैं। वे ६ सिद्धान्त ये हैं—(१) **पति** (स्वामी, शिव), (२) **विद्या** (तत्त्वज्ञान), (३) **अविद्या**, (४) **पशु** (जीव), (५) **पाश** (बन्धन, जैसे कर्म, माया आदि) और (६) **कारण** (शिव की भक्ति, जिसके द्वारा बन्धन से मुक्त होते हैं)। जीव को भक्ति का मार्ग अपनाना चाहिए। इस संप्रदाय में सांख्य और योग के सिद्धान्तों का अनुसरण किया गया है। **श्रीकण्ठ** का **ब्रह्मसूत्रभाष्य** यद्यपि वेदान्तविषयक है, तथापि इस सम्प्रदाय का समर्थक समझना चाहिए। धारा के राजा **भोज** (१००५-१०५४ ई०) का **तत्त्वप्रकाश** और **रामकण्ठ** (११५०

ई०) तथा **अघोर शिव** (११५० ई० लगभग) के ग्रन्थ इस शाखा के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

तामिल प्रदेश में इस शाखा को शैव सिद्धान्त कहते हैं। वहाँ पर यह शाखा शैव आचार्यों के द्वारा तामिल भाषा में लिखित विस्तृत साहित्य पर निर्भर है।

कापालिक, कालामुख और **लिंगायत** आदि शाखाएँ **पाशुपत** और **शैव** शाखा की शाखाएँ हैं या उनसे संबद्ध हैं।

कश्मीरी शैवमत

कश्मीर में शैवमत का दो प्रकार से विकास हुआ है एक **स्पन्द** शाखा और दूसरी **प्रत्यभिज्ञा** शाखा। ये दोनों शाखाएं शैव आगमों पर निर्भर हैं। स्पन्द शाखा का मत है कि शिव जगत् का कर्ता है। वह जगत् का उपादान कारण नहीं है और न उसे उपादान कारण की आवश्यकता है। जगत् सत्य है। वह जगत् की उत्पत्ति से किसी प्रकार भी प्रभावित नहीं होता है। मोक्ष प्राप्ति के साधन **शाम्भव** और **आणव** आदि हैं।[1] प्रत्यभिज्ञा शाखा का भी इन विषयों पर यही मत है। साथ ही प्रत्यभिज्ञा शाखा का मत है कि जीव यद्यपि परस्पर पृथक् हैं, परन्तु वे शिव से पृथक् नहीं हैं। इस तथ्य की अनुभूति इस ज्ञान से होती है कि 'मैं ईश्वर हूं, मैं ईश्वर से पृथक् नहीं हूँ'। इसी ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतएव इस शाखा का नाम प्रत्यभिज्ञा (पहचानना) पड़ा है। जो जीव माया के आवरण से ढके हुए हैं, उनके हृदय में यह ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। इस अंश में इस शाखा का झुकाव अद्वैतमत की ओर है।

स्पन्द शाखा के सिद्धान्त **वसुगुप्त** (८५० ई०) को प्रकट हुए थे। उसने इन सिद्धान्तों को शिव सूत्रों के रूप में **कल्लट** को पढ़ाया। इस मत पर

१- K. C. Pandey: Abhinavagupta, An Historical and Philosophical study. पृष्ठ ६७।

वसुगुप्त का ग्रन्थ **स्पन्दकारिका** है। **कल्लट** ने इसकी टीका **स्पन्दसर्वस्व** नाम से की है। **उत्पलदेव** (लगभग १००० ई०) की **स्पन्दप्रदीपिका** और **क्षेमराज** (लगभग १००० ई०) का **स्पन्दनिर्णय** इस शाखा के मुख्य ग्रन्थ हैं।

सोमानन्द (लगभग ८५० ई०) ने **शिवदृष्टि** ग्रन्थ में सर्वप्रथम प्रत्यभिज्ञा मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। **उत्पलदेव** ने **ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकारिका** ग्रन्थ लिखा है और उस पर स्वयं वृत्ति (टीका) भी लिखी है। यह **उत्पलदेव** **स्पन्दशाखा** के **उत्पलदेव** से भिन्न है। यह १०वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में हुआ था। उसने अपनी टीका सहित **ईश्वरसिद्धि** तथा अन्य ग्रन्थ लिखे हैं। **ध्वन्यालोकलोचन** का रचयिता **अभिनवगुप्त** **प्रत्यभिज्ञामत** का सर्वश्रेष्ठ आचार्य है। उसके ग्रन्थों से तान्त्रिक साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। उसके लिखे हुए ग्रन्थ ये हैं— **बोधपंचदशिका, मालिनीविजयवार्तिक, परात्रिंशिकाविवरण, तन्त्रालोक** और **तन्त्रसार** आदि। उसने शैवमत के दृष्टिकोण से भगवद्गीता की टीका **भगवद्गीतार्थसंग्रह** लिखी है। उसने **परमार्थसार** में शैवमत के दृष्टिकोण से सांख्यदर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन किया है। उसने **उत्पलदेव** की **ईश्वरप्रत्याभिज्ञाकारिका** की टीका **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी** में की है और उसको **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति** की टीका **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी** में की है। उसको **अनुत्तराष्टिका, परमार्थद्वादशिका, परमार्थचर्चा** और **महोपदेशविंशतिका** में शैवमत का प्रतिपादन है। उसने **सोमानन्द** की **शिवदृष्टि** की टीका **शिवदृष्ट्यालोचन** नाम से की है और **प्रकीर्णकविवरण** में धर्म के दार्शनिक और वैयाकरण रूप की व्याख्या की है। उसके अन्य ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं और उनका ज्ञान केवल उद्धरणों से होता है।

शाक्तमत

शाक्तमत शक्ति की पूजा को स्वीकार करता है। इस शाखा में **नाद** की शक्ति, मनुष्य शरीर में नाड़ियों की सत्ता, पद्मतुल्य षट्चक्रों की सत्ता

पर बल दिया गया है। इस मत में योग के रहस्यात्मक रूपों, यन्त्रों की आश्चर्यजनक शक्ति और मुद्राओं (अंगुलियों के द्वारा संकेतों) पर विश्वास किया जाता है। इस मत में **शक्तिसूत्र** और **शाक्त आगम** सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। इस मत में ये आगम ग्रन्थ हैं—५ **शुभागम,** ६४ **कौलागम** और ८ **मिश्र आगम**। यह माना जाता है कि एक **परशुराम** ने **परशुरामकल्पसूत्र** ग्रन्थ लिखा है। इसमें **श्रीविद्या** (सरस्वती) की पूजा का वर्णन है। **ललितात्रिशतीभाष्य** और **शंकरकृत सौन्दर्यलहरी** शक्ति की पूजा का समर्थन करते हैं। **भास्कराचार्य** (लगभग १००० ई०) ने **शिवसूत्रों** की टीका **शिवसूत्रवार्तिक** नाम से की है और **वरिवस्या-प्रकाश** ग्रन्थ लिखा है। इस शाखा के प्रमुख ग्रन्थों में से मुख्य ग्रन्थ ये हैं—**तन्त्रराज, ब्रह्मानन्दकृत शाक्तानन्दतरंगिणी कृष्णानन्दकृत तन्त्रसार** और **पुण्यानन्दकृत कामकला**। यह शाखा अन्य शैव मतों की अपेक्षा अधिक वैदिक ग्रन्थों से सम्बद्ध है। **शैव मत की पाशुपत** और **कापालिक** आदि शाखाओं पर **शाक्तमत** का बहुत प्रभाव पड़ा है और उन्होंने देवताओं के लिए पशुबलि और नर-बलि जैसे घृणित कर्म भी प्रारम्भ किए। शाक्तमत ने बौद्ध-धर्म को भी प्रभावित किया है और फलस्वरूप बौद्धों ने तान्त्रिक अन्यासों को अपनाया है।

दर्शनों का इतिहास

प्राचीन भारत में दर्शनों का इतिहास लिखने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। दर्शनों में जो समानताएँ प्राप्त होती थीं, उनके आधार पर विभिन्न दर्शनों को संग्रह करने के प्रयत्न अवश्य हुए हैं। **सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंग्रह** ग्रन्थ का लेखक **शंकराचार्य** को माना जाता है। बौद्ध दार्शनिक **शान्तरक्षित** ने ८वीं शताब्दी ई० में **तत्त्वसंग्रह** ग्रन्थ लिखा है। इसकी टीका उसके शिष्य **कमलशील** ने की है। **हरिभद्रसूरि** (१२०० ई०) ने **षड्दर्शनसमुच्चय** लिखा है। **विजयनगर** के **सायण** के पुत्र **माधव** ने १४०० ई० के लगभग

सर्वदर्शनसंग्रह ग्रन्थ लिखा है । एक अज्ञात लेखक का एक ग्रन्थ **सर्वमतसंग्रह** है । **नारायण भट्ट** (लगभग १६०० ई०) ने **मानमेयोदय** ग्रन्थ में विभिन्न दर्शनों में प्राप्य मान (प्रमाण) और मेय (प्रमेय) का विस्तृत वर्णन दिया है । **महामहोपाध्यायलक्ष्मीपुरम् श्रीनिवासाचार्य** ने १९२५ ई० में **मानमेयोदय-रहस्यश्लोकवार्तिक** ग्रन्थ लिखा है ।

अध्याय ३६

उपसंहार

पूर्व अध्यायों में दिए हुए विवरण से स्पष्ट है कि साहित्य का ऐसा कोई भी अंग नहो है, जिसका विवेचन और विश्लेषण संस्कृत में न हुआ हो। साहित्यिक भाषा के रूप में संस्कृत की लोकप्रियता का यही मुख्य कारण है। बौद्धों और जैनों ने ईसा से पूर्व संवत् में यह प्रयत्न किया कि संस्कृत को इस स्थान से च्युत किया जाय, परन्तु उनके सब प्रयत्न निष्फल रहे और अन्त में उन्हें साहित्यिक कार्यों के लिए संस्कृत को अपनाना पड़ा।

जैसा कि संस्कृत नाम से स्पष्ट है कि यह भाषा वैयाकरणों के द्वारा इतनी अधिक परिमार्जित और परिष्कृत की गई कि वह पूर्णता को प्राप्त हो गई और कोई भी भाषा उच्चारण, भाषा, शब्द-कोष और वाक्यविन्यास आदि किसी भी दृष्टि से इसकी समानता नहीं कर सकती थी। अतएव इसे **दैवी वाक्** या **देवभाषा** नाम दिया गया। भारतवर्ष की सभी भाषाएं, विना किसी अपवाद के संस्कृत के साहचर्य से समुन्नत हुई हैं।

भारत की साहित्यिक भाषा के रूप में सस्कृत का महत्त्व और अधिक है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का समस्त वाङ्मय संस्कृत में ही उल्लिखित है। भारतवर्ष का महत्त्व मुख्य रूप से उसकी सांस्कृतिक परम्परा के कारण ही है। भारतवर्ष की सीमा के बाहर के देशों ने भी आवश्यकता और कठिनाई के समय भारतवर्ष से ही प्रोत्साहन और पथप्रदर्शन प्राप्त किया है।

सस्कृत भाषा में लिखे हुए साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में किस प्रकार भारतवर्ष ने सभी दिशाओं में उन्नति की थी और किस प्रकार भारतीय संस्कृति अभ्युन्नत दशा में थी। भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों का वर्णन संस्कृत में प्राप्त होता है। भौतिक उन्नति की अपेक्षा आत्मिक उन्नति को अधिक महत्त्व दिया जाता था और दैनिक जीवन में

भी उसका अभ्यास किया जाता था। भारतीय विचारकों की दृष्टि में आत्मा का महत्त्व और उसकी पवित्रता की ओर ध्यान सदा रहा है। भौतिक उन्नति आत्मिक उन्नति के सहायक के रूप में स्वीकृत थी। अतएव अहिंसा और सहनशीलता के अभ्यास पर विशेष बल दिया जाता था। जीवन भर के परीक्षणों के पश्चात् भारतीयों ने कर्म-सिद्धान्त और पुनर्जन्मवाद में आस्था रक्खी और इनका सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन किया। आशावाद की दृढ़ भावना ने भारतीयों को यह शक्ति प्रदान की है कि वे जीवन की सभी प्रकार की कठिनाइयों को सहन करने का साहस रखते हैं। यह भारतवर्ष की प्रमुख विशेषता है। यह शक्ति हिन्दू धर्म और उसके सिद्धान्तों को अपने व्यवहार में लाने का प्रभाव है। भारतवर्ष में धर्म और दर्शन अविच्छिन्न रूप से साथ रहे हैं। भारतीय दर्शन जिन तथ्यों का वर्णन करते हैं, उनको ही ग्राह्य समझ कर भारतीय उनको व्यवहार में लाते हैं।

विश्व-साहित्य भारतीय साहित्य का बहुत ऋणी है। **शिक्षा, व्याकरण** और **संगीत** के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि जिस समय विश्व के अन्य समस्त देश अन्धकार के गर्त में लीन थे, उस समय भारतवर्ष के ऋषि ध्वनि, ध्वनियों के उच्चारणस्थान और उनके विभेदों को बहुत गम्भीरता के साथ जानते थे। अतएव **मैकडानल** ने लिखा है कि "भारत में संस्कृत भाषा के वैयाकरण ही विश्व के सर्वप्रथम विद्वान् हैं, जिन्होंने शब्दों की निष्पत्ति पर ध्यान दिया, धातु और प्रत्यय के अन्तर को समझा, प्रत्ययों का कार्य निश्चित किया और एक ऐसा विशुद्ध और सर्वाङ्ग पूर्ण व्याकरण-शास्त्र उपस्थित किया, जो कि विश्व में अनुपम है।"[1] आयुर्वेद और गणित ज्योतिष के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय उन्नति की है। दार्शनिक विवेचन और विश्लेषण में जो सफलता प्राप्त की है, उससे भारतवर्ष सदा गौरवान्वित रहेगा। आतंकवाद, जन्मसिद्ध राजत्व और प्रजातन्त्रवाद के गुण-दोष का

१. Macdonell : India's Past पृष्ठ १३६.

अनुभवों के द्वारा अध्ययन किया गया और राज्य-संचालन के लिए यह सर्वोत्तम प्रकार माना गया कि प्रजातन्त्र सरकार हो और उसका मुख्य राजकोय-परम्परागत राजा हो। भौतिकवाद के विकास के दुष्परिणामों का ज्ञान भारतीयों को था। **मत्स्यपुराण** में वर्णन आता है कि राक्षस आकाश से निरपराध स्त्रियों और बच्चों पर आक्रमण करते थे। यह ज्ञात नहीं है कि वे अपने अस्त्र और शस्त्र किस प्रकार बनाते थे। वैज्ञानिक विषयों में मुख्यतया औजारों का उपयोग होता था। यह संम्भव है कि जिन वैज्ञानिकों ने अस्त्रों और शस्त्रों का आविष्कार किया था, उन्होंने ही इनका दुरुपयोग होते देखा और भावी जगत् को विनाश से बचाने की सद्भावना से प्रेरित होकर उन अस्त्रों और शस्त्रों को नष्ट कर दिया।

आधुनिक काल में जब से यूनानी, यवन और यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने भारतवर्ष पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया, तब से भारतवर्ष का सांस्कृतिक महत्त्व क्रमशः क्षीण होता गया। सभी विदेशियों ने भारत के सांस्कृतिक महत्त्व को नष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया, परन्तु उनके सभी प्रयत्न निष्फल रहे। उन्होंने यह भी प्रयत्न किया कि भारत के प्राचीन गौरव को महत्त्व न दिया जाय। आधुनिक काल में पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत प्रस्तुत किया है कि भारतवर्ष में जो कुछ भी अच्छाई है वह यूनानियों के द्वारा ही प्राप्त हुई है। उन्होंने बिना किसी प्रमाण और आधार के यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि साहित्य के सभी विभागों में ही नहीं अपितु सभी उत्तम बातों में बौद्ध लोग ही अग्रगामी रहे हैं। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि बौद्ध लोग बहुत समय तक हिन्दू ही थे और कुछ काल बाद उन्होंने हिन्दूधर्म में प्राप्त कुछ मंतव्यों को लेकर हिन्दूधर्म के विरुद्ध एक नवीन धर्म प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में इस धर्म को सफलता प्राप्त हुई, क्योंकि गौतम बुद्ध और उनके अनुयायियों ने साधारण जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया और वे लोग उनसे विवाद या तर्क करने में असमर्थ थे। जब **कुमारिल, शंकर और उदयन** जैसे उद्भट विद्वानों ने उनके सिद्धान्तों पर आक्रमण किए, तब उनकी सफलता समाप्त होने लगी। पाश्चात्य विद्वानों

ने इस विषय में यह कहना प्रारम्भ किया कि जब इन विद्वानों और इनके अनयायियों ने बौद्धों के विरुद्ध धार्मिक विद्रोह प्रारम्भ कर दिया तब बौद्धोंने तिब्बत और चीन में अपनी सुरक्षा के लिए आश्रय लिया। किन्तु तथ्य इसके सर्वथा विपरीत है। जब बौद्ध लोग प्रकट रूप से हिन्दुओं से शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो गए, तब प्रकट रूप से पराजय से बचने के लिए और अपने धर्म को पूर्णतया नष्ट होने से बचाने के लिए तिब्बत और चीन में भाग गए। ये ही पाश्चात्य विद्वान् हैं जिन्होंने यह मन्तव्य स्थापित किया कि आर्य लोग बाहर से भारतवर्ष में आये हैं। इस मत को बहुत से भारतीय विद्वानों ने बिना विरोध और विवाद के सत्य मानकर स्वीकार कर लिया है।

ऐतिहासिक महत्त्व की लिखित सामग्री के अभाव का अनुचित लाभ उठाकर पाश्चात्य विद्वानों ने ऐतिहासिक घटनाओं को भी असत्य बताया है और भारतीय परम्परा के द्वारा जो तिथियाँ या काल स्वीकृत हैं. उनको काल्पनिक माना है। उनके ये निर्णय सत्यता से बहुत दूर हैं। भारतीयों ने कुछ चीजों को ग्रन्थ के रूप में रखना उचित समझा और कुछ बातों को केवल स्मृति में रक्खा। **रामायण** और **महाभारत** में जो घटनाएँ उल्लिखित हैं वे सत्य हैं। परम्परा के अनुसार **महाभारत** का समय ३१०० ई० पू० है यह समय विवादास्पद नहीं है। लिखित साहित्य की अपेक्षा किसी जाति की स्मरणशक्ति अधिक विश्वसनीय और पुष्ट होती है। सम्पूर्ण देश त्रुटि नहीं कर सकता है। पाश्चात्य विद्वानों ने जो एक स्तर स्थापित किया है, उससे इन तथ्यों की माप भले ही न हो सके, परन्तु इस आधार पर इन तथ्यों को असत्य नहीं कह सकते हैं। भारत का एक विचित्र प्रकार रहा है कि किस प्रकार वे भावी पीढ़ी के लिए प्राचीन सामग्री सुरक्षित रखते हैं।

भारतवर्ष में जो सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर भारत का इतिहास नवीन ढंग से लिखा जाना चाहिए तभी भारतवर्ष का गौरवमय अतीत ठीक ढंग से समझा जा सकता है। अतीत को जाने बिना भविष्य

का निर्माण नहीं किया जा सकता है। अतएव मैक्समूलर ने कहा है कि "विश्व का सम्पूर्ण अतीत का इतिहास उसके लिए अन्धकारमय होगा, जो यह नहीं जानता कि उससे पूर्ववर्ती लोगों ने उसके लिए क्या किया है। परिणामस्वरूप आगामी पीढ़ी के लिए वह भी किसी प्रकार का कोई शुभ कार्य नहीं करेगा।"[१] यह अत्यन्त अनुचित है कि वर्तमान युग की चकाचौंध से अन्धे होकर हम अपने अतीत गौरव की हँसी करें। संसार में कोई भी देश अपने अतीत गौरव की निन्दा करके तथा दूसरों के द्वारा उच्चरित अपनी हीनावस्था का वर्णन करके कभी उन्नत नहीं हो सकता है।[२] भारतवर्ष को अपनी मर्यादा और अपने व्यक्तित्व को स्थापित करना है। संस्कृत साहित्य के अध्ययन के बिना भारतवर्ष का सांस्कृतिक महत्त्व स्थापित नहीं हो सकता है। **मैक्समूलर** ने संस्कृत के महत्व और भारतवर्ष के गौरव पर जो अपने विचार प्रकट किए हैं उनका यहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। उसने अपने ग्रन्थ 'भारतवर्ष हमें क्या शिक्षा दे सकता है' में लिखा है—"वर्तमान समय का कोई भी ज्वलन्त प्रश्न लीजिए, जैसे—लोकप्रिय शिक्षा, उच्च शिक्षा, विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व, नियमों का विधानीकरण, अर्थ-विनिमय, दीनरक्षा-नियम और सके अतिरिक्त किसी बात की शिक्षा देनी हो या प्रयत्न करना हो, कोई चीज देखनी हो या पढ़नी हो तो भारतवर्ष के भण्डार को देखो। वैसा भण्डार कहीं नहीं है। वह तुम्हारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा, वही संस्कृत जिसका अध्ययन प्रारम्भ में कठिन और अनुपयोगी प्रतीत होता है, यदि उसका ही अभ्यास कुछ समय करें तो वह तुम्हारे सम्मुख विशाल साहित्य उपस्थित करेगा, जो अज्ञात और अप्रकट है। वह उसके गूढ़ विचारों में अन्तरदृष्टि-पात के लिए प्रेरणा देगा, जैसे गूढ़ विचार उससे पूर्व कभी सुने भी न हों

१. Maxmuller: What can Indian teach us. पृष्ठ १७

२. पंडित बलदेव उपाध्याय : वेदभाष्यभूमिकासंग्रह की भूमिका, पृष्ठ ३ और ४

और वह ऐसी शिक्षा देगा, जो कि मनुष्यमात्र के अन्तःकरण पर अपना प्रभाव डाल सके और उसकी सद्भावना प्राप्त कर सके।"[१] "अपने विशेष अध्ययन के लिए मानवीय बुद्धि का चाहे कोई भी क्षेत्र चुनो, चाहे वह भाषा हो, धर्म हो, पौराणिक कथा साहित्य हो, दर्शन हो, रीति-रिवाज हो आदिकालीन कला या विज्ञान हो, प्रत्येक स्थान पर तुम्हें भारतवर्ष में जाना होगा। चाहे इच्छापूर्वक जाओ या अनिच्छापूर्वक, जाना अवश्य पड़ेगा। क्योंकि मानवसृष्टि की कुछ अति बहुमूल्य और अनुपयोगी सामग्री केवल भारतवर्ष में ही सुरक्षित है। अन्यत्र कहीं नहीं।"[२] पाश्चात्य विद्वानों ने जो महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किए हैं भले ही दूसरे दृष्टिकोण से किए हों, उनके लिए भारतवर्ष को उनका अतिकृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उन अनुसन्धानों के बिना भारतवर्ष का महत्त्व सदा के लिए अन्धकार में ही लुप्त रहता।

---

१. Maxmuller: What can Indian teach us. पृष्ठ १३-१४

२. Maxmuller: What can Indian teach us. पृष्ठ १५

परिशिष्ट

रामायण पर आश्रित ग्रन्थ

वाल्मीकि को आदिकवि माना जाता है। विषय-चयन तथा लेखन-शैली में उन्होंने परवर्ती कवियों का पथ-प्रदर्शन किया। उनके गौरव का कारण है राम को काव्य का नायक चुनना। उन्होंने स्वयं इस प्रकार के चयन का समर्थन किया।

देखिए :—न ह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवादृते ।

रामायण—उत्तर० ९८-१८

उत्तरवर्ती लेखकों द्वारा वाल्मीकि की प्रशस्ति में लाई गई निम्नलिखित सूक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

१. अहो, सकलकविसार्थसाधारणी खल्वियं वाल्मीकीया सुभाषितनीवी ।

अनर्घराघव—प्रस्तावना

२. मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः

रामायणचम्पू १-८

३. स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः ।
ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः ।

रामायणमंजरी

४. लंकापतेः संकुचितं यशोयत्
यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो
न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ।।

विक्रमाङ्कदेवचरित १-२७

५. मुख्यमुनीनामिव तं कवीनां
नमामि येनागमकोविदेन ।
स्वकाव्यदेवायतनेऽधिदेवो
प्रतिष्ठिता राघवकीर्तिमूर्तिः ।।

सुरथोत्सव १-३०

रामायण पर आश्रित मुख्य ग्रन्थों की सूची

क्रमसंख्या	ग्रन्थ का नाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
१.	अभिषेकनाटक	भास	नाटक	२०० ई० पू०
२.	प्रतिमानाटक	,,	,,	,,
३.	यज्ञफल	,,	,,	,,
४.	रघुवंश	कालिदास	काव्य	५० ई० पू०
५.	कुन्दमाला	दिङ्नाग	नाटक	२०० ई०
६.	सेतुबन्ध	प्रवरसेन	काव्य	४०० ,,
७.	जानकीहरण	कुमारदास	,,	५२० ,,
८.	रावणवध	भट्टि	,,	६५० ,,
९.	आश्चर्यचूडामणि	शक्तिभद्र	नाटक	७०० ,,
१०.	रामाभ्युदय	यशोवर्मन्	,,	,,
११.	उत्तररामचरित	भवभूति	,,	,,
१२.	महावीरचरित	,,	,,	,,
१३.	स्वप्नदशानन	भीमत	,,	८०० ,,
१४.	अनर्घराघव	मुरारि	,,	९०० ,,
१५.	बालरामायण	राजशेखर	,,	,,
१६.	रामचरित	अभिनन्द	काव्य	,,
१७.	रामायणचम्पू	भोज	चम्पू	१०५० ,,
१८.	महानाटक	हनुमान	नाटक	,,
१९.	कनकजानकी	क्षेमेन्द्र	नाटक	१०५० ,,
२०.	रामायणमञ्जरी	,,	काव्य	,, ,,
२१.	रामपालचरित	सन्ध्याकरनन्दिन्	,,	११५० ,,
२२.	प्रसन्नराघव	जयदेव	नाटक	१२७० ,,
२३.	उन्मत्तराघव	भास्कर	,,	१३५० ,,
२४.	,,	विरूपाक्ष	,,	,, ,,

क्रमसंख्या	ग्रन्थ का नाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
२५.	रघुनाथाभ्युदय	वामनभट्टबाण	काव्य	१४२० ,,
२६.	आनन्दराघव	राजचूडामणि दीक्षित	नाटक	१६२० ,,
२७.	अद्भुतदर्पण	महादेव	,,	१६५० ,,
२८.	जानकीपरिणय	चक्रकवि	काव्य	,, ,,
२९.	उत्तरचम्पू	वेङ्कटाध्वरि	चम्पू	,, ,,
३०.	जानकीपरिणय	रामभद्र दीक्षित	नाटक	१७०० ,,
३१.	रामकथा	वासुदेव	काव्य	,, ,,

महाभारत पर आश्रित ग्रन्थ

रामायण के तुल्य महाभारत भी श्रेण्यकाल के कवियों के लिए लोकप्रिय रहा है। उन्होंने महाभारत की मुख्य कथा तथा उसके अन्तर्गत अन्य कथाओं का उपयोग किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थों के लिए महाभारत से कथानक लिया है। महाभारत स्वयं भी इस प्रकार की भविष्यवाणी करता है।

१. सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः॥

महाभारत—आदि० १-१०८

२. इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः॥

महाभारत—आदि० २-३८६

३. अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम्॥
इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः॥

महाभारत—आदि० २-३८६-३६०

बाण और दण्डी ने व्यास और उनके महाकाव्य की अतिशय प्रशस्ति की है तथा अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

देखिए :—नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥

हर्षचरित—प्रस्तावना श्लोक ३

मर्त्ययन्त्रेषु चतन्यं महाभारतविद्यया।
अपयामास तत्पूर्वं यस्तस्मै मुनये नमः॥

अवन्तिसुन्दरी—प्रस्तावना श्लोक ३

महाभारत की मूल कथा और अन्तर्कथाओं पर आश्रित मुख्य ग्रन्थों की सूची

क्रमसंख्या	ग्रन्थनाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
१.	दूतघटोत्कच	भास	नाटक	२०० ई० पू०
२.	दूतवाक्य	,,	,,	,,
३.	कर्णभार	,,	,,	,,
४.	मध्यमव्यायोग	,,	,,	,,
५.	पञ्चरात्र	,,	,,	,,
६.	उरुभङ्ग	,,	,,	,,
७.	अभिज्ञानशाकुन्तल	कालिदास	,,	५० ई० पू०
८.	किरातार्जुनीय	भारवि	काव्य	५८० ई०
९.	वेणीसंहार	भट्टनारायण	नाटक	६५० ,,
१०.	शिशुपालवध	माघ	काव्य	७०० ,,
११.	सुभद्राधनंजय	कुलशेखरवर्मन्	नाटक	७५० ,,
१२.	कीचकवध	नीतिवर्मन्	काव्य	९०० ,,
१३.	बालभारत	राजशेखर	नाटक	,, ,,
१४.	नैषधानन्द	क्षेमीश्वर	,,	,, ,,
१५.	नलचम्पू	त्रिविक्रमभट्ट	चम्पू	,, ,,
१६.	भारतमंजरी	क्षेमेन्द्र	काव्य	१०५० ,,
१७.	चित्रभारत	,,	नाटक	,, ,,
१८.	धनंजयव्यायोग	कांचनपंडित	,,	,, ,,
१९.	नैषधीयचरित	श्रीहर्ष	काव्य	११५० ,,
२०.	नलविलास	रामचन्द्र	नाटक	,, ,,
२१.	निर्भयभीम	,,	,,	,, ,,
२२.	हरकेलिनाटक	विग्रहराजदेव विशालदेव	,,	,, ,,
२३.	किरातार्जुनीय	वत्सराज	,,	१२०० ,,

क्रमसंख्या	ग्रन्थ नाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
२४.	सहृदयानन्द	कृष्णानन्द	काव्य	१२०० ई०
२५.	बालभारत	अमरचन्द्र	,,	१२५० ,,
२६.	पाण्डवचरित	देवप्रभ सूरि	,,	,, ,,
२७.	बालभारत	अगस्त्य	,,	१३०० ,,
२८.	पार्थपराक्रम	प्रहलादन	नाटक	,, ,,
२९.	भीमपराक्रम	मोक्षादित्य	,,	,, ,,
३०.	सौगन्धिकाहरण	विश्वनाथ	,,	१३५० ,,
३१.	नलाभ्युदय	वामनभट्टबाण	काव्य	१४०० ,,
३२.	नलोदय	वासुदेव	,,	१४५० ,,
३३.	युधिष्ठिराभ्युदय	,,	,,	,, ,,
३४.	भारतचम्पू	अन्नतभट्ट	चम्पू	१५५० ,,
३५.	भैमीपरिणय	श्रीनिवास दीक्षित	नाटक	,, ,,
३६.	सुभद्राधनंजय	गुरुराम	,,	१६०० ,,
३७.	पाञ्चालीस्वयंवरचम्पू	नारायणभट्ट	चम्पू	,, ,,
३८.	भारतचम्पू	राजचूडामणि दीक्षित	,,	१६२० ,,
३९.	द्रौपदीपरिणयचम्पू	चक्रकवि	,,	१६५० ,,
४०.	नलचरित	नीलकण्ठ दीक्षित	नाटक	,, ,,
४१.	सुभद्रापरिणय	नल्लाकवि	,,	१७०० ,,

अनुक्रमणिका

अ

अकलङ्क ३६६
अगस्तिमत ३५१
अगस्त्य १३१, १७६
अग्निपुराण ८६, ६४, २८५
अग्निवेश ३३७
अग्निवेशगृह्यसूत्र ४८
अघोर शिव ४१२
अङ्गत्वनिरुक्ति ३८७
अङ्गविज्जा ३२६
अङ्गिरा ३५
अच्युत ३२६
अच्युतरायाभ्युदय १३३, २७७
अच्युतशतक १५१
अजयपाल ३२०
अणुभाष्य ४०६
अत्रिसंहिता ४०२
अथर्ववेद १५, १६, २०, २३, २८, ३६ ३७, ४३, ५०, ३२३
अथर्व परिशिष्ट ४६
अद्भुतदर्पण २६७
अद्भुत ब्राह्मण ३७
अद्भुतसागर ३२६
अद्भुतसीतारामस्तोत्र १५३
अद्वैतपरिभाषा ३६६
अद्वैतमत ३६६
अद्वैतविद्याविजय ४०५
अद्वैतसिद्धि ३६५, ३६६
अधिकरणसारावलि ४०४
अध्वर्यु ३६
अध्वरमीमांसाकुतूहलवृत्ति ३८६
अनंगरंग ३४४
अनंगहर्षमात्राराज २५७
अनन्तरचित १६४
अनन्तभट्ट १८४
अनन्तशर्मा १७६
अनर्घराघव २५८
अनहिलवाद १२४, १२६
अनिरुद्ध ३८१
अनुक्रमणिका ५०
अनुत्तराष्टिका ४१३
अनुदात्त १६
अनुभूतिस्वरूपाचार्य ३१४, ३६८
अनुमानवाद २८४
अनुवाकानुक्रमणी ५०
अनुस्तोत्रसूत्र ४६

अनूपसूत्र ४६
अनेकार्थकोश ३२०
अनेकार्थशब्दकोश ३२१
अनेकार्थसंग्रह ३२०
अनेकार्थसमुच्चय ३२०
अन्नंभट्ट ३०७, ३७८, ३८७
अन्नपूर्णादिशक १४६
अन्नपूर्णाष्टक १४६
अन्यापदेशशतक १६०
अन्यापोहविचारकारिका ३६६
अन्योक्तिमुक्तालता १६०
अन्योक्तिशतक १६०
अपरार्क ३३४
अपरार्कयाज्ञवल्कीयधर्मशास्त्रनिबन्ध ३३४
अपरोक्षानुभूति ३६८
अपोहनामप्रकरण ३६६
अपोहसिद्धि ३६६
अप्पयदीक्षित ७२, ८४, १३१, ३०७, ३८८
अब्राहम रोगर १३
अभयचन्द्र ३१२
अभयदेव १२६
अभयनन्दी ३१२
अभिज्ञानशाकुन्तल १३
अभिधम्म ३६२
अभिधम्मपिटक ३६२
अभिधर्मकोश ३६५
अभिधानचिन्तामणि ३२०
अभिधानरत्नमाला ३२०
अभिनन्द १२२
अभिनयदर्पण ३४४
अभिनवकालिदास १८२, २६६
अभिनवगुप्त १२३, १४४, २७१, २८२, २८३, २८५, २८६
अभिनवभारती २७१
अभिलषितार्थचिन्तामणि १६२, ३५१
अभिसमयालंकारकारिका ३६५
अभिसारिकावंचितक २४६
अभिसारिकाबन्धितक २४६
अमरकोश १००, ३२०
अमरचन्द्र १२६
अमरसिंह १००, ३२०
अमरुक १४५
अमरुकशतक १४५
अमलानन्द ३६६
अमितगति १५७, २७०
अमृतकटक ७२
अमृततरंगकाव्य १२४
अमृतलहरी १५२
अमृतानन्द ११०
अमृतानन्द योगी २६६
अमृतोदय २७०
अमोघवृत्ति ३१२

अय्य २६७
अय्याभाण २६७
अरिसिंह १२६
अर्जुनचरितमहाकाव्य २८६
अर्जुनमिश्र ८४
अर्जुनरावणीय ११५
अर्णवर्णन १२८
अर्थशास्त्र ३३६, ३४७, ३४८
अर्थसंग्रह ३८६
अलंकार २८६
अलंकारकर्णाभरण २६८
अलंकारकौस्तुभ २६८
अलंकारचूडामणि २६४, २६८
अलंकारतिलक २६६
अलंकाररत्नाकर २६६
अलकारवाद २८२
अलंकारशेखर २६८
अलंकारसर्वस्व २६४
अलंकारसारसंग्रह २८८, २६६
अलंकारानुसारिणी २६६
अलक २६४
अलबेरुनी १२
अल्लट २६४
अल्लराज २६६
अवतंसकसूत्र ३६४
अवदान ३६२
अवदानकल्पलता १६२
अवदानशतक १६२
अवन्तिसुन्दरीकथा १७३, १७४
अवन्तिसुन्दरीकथासार १७४
अवलोक २६३
अवलोकितेश्वरगुणकरण्डव्यूह ३६४
अविमारक २२५
अशोक ८, ६, १२
अशोकस्तम्भ ११२
अश्वघोष ६, १०२, १०४, १०५, ११०, १११
अश्वमेध ३४, ५५
अश्वचिकित्सा ३४२
अश्ववैद्यक ३४२
अश्वशास्त्र ३४२
अश्वायुर्वेद ३४२
अश्विनीकुमार ३४१
अष्टमहाश्रीचत्यस्तोत्र १४८
अष्टसाहस्त्रिकापारमित ३६३
अष्टांगसंग्रह ३४०
अष्टांगहृदय ३४०
अष्टाध्यायी २, ४५, २०३, ३०४
असंग ३६५
असितदेवल ३२३
अहोबल ७२

आ,

आख्यातचन्द्रिका ३२१
आगमप्रमाण्य ४०३

आढ्यराज १६७
आत्मतत्त्वविवेक ३७६
आत्मबोध ३६८
आत्मसिद्धि ४०३
आत्रेय ३३७
आत्रेय पुनर्वसु ३३६
आत्रेयभाष्यकार ३७७
आत्रेयतंत्र ३७६
आत्रेय रामानुज ३६६
आत्रेय शिक्षा ५०
आदिकर्मप्रदीप ३६४
आदित्यप्रतापसिद्धान्त ३२४
आदिपुराण ६३, ३७१
आनन्द १६५
आनन्दकन्दचम्पू १८४
आनन्दगिरि ३६८
आनन्दतीर्थ २८, ८४, ६२, १५१, ३६३
आनन्दमन्दाकिनी १५२
आनन्दराघव नाटक २६७
आनन्दवर्धन ५६, ६०, १४५, २८३
आनन्दरङ्गचम्पू २७८
आनन्दसागरस्तव १५३
आनन्दसुन्दरी २६८
आन्ध्र १०
आन्ध्रभृत्यवंश ११४
आन्वीक्षिकी ३७५
आपदेव ३८६
आपस्तम्ब ३४, ४८
आपस्तम्बगृह्यसूत्र ४८
आपस्तम्बधर्मसूत्र ३३२
आप्तमीमांसा ३६६
आयुर्वेद ३३६
आरण्यक १६, २०, २७, ५०
आरण्यकग्रन्थ ३८, ३६
आरण्यगान १५
आर्य २३
आर्यभट्ट ७८, १०२, ३२४, ३२७
आर्यभटीय ३२७
आर्यशूर १६२, ३६३
आर्यसिद्धान्त ३२४
आर्यासप्तशती १६३
आर्षानुक्रमणी ५०
आर्षेयकल्प ४६
आर्षेयब्राह्मण ३७, ५०
आलम्बनपरीक्षा ३६५
आलवार ४०२
आलोक ३८८
आश्चर्यचूडामणि २५०
आश्वलायन ३३, ३८, ४८
आश्वलायन श्रौतसूत्र ४८, ४६
आसुरि ३८१

इ

इण्डिशे स्प्रूखे १६४

इन्दुराज २८९
इन्द्रदत्त ३०४
इम्मदिप्रौढदेवराय ३४३
इरुगप्पदण्डनाथ ३२१
इलाहाबाद ११२
इलियड ६३, ७३
इष्टसिद्धि ३९९

ई

ईत्सिङ्ग १२, ३०६, ३४०
ईशावास्योपनिषद्भाष्य ४०४
ईशोपनिषद् ३४, ४१, ४२
ईश्वरकृष्ण ३८१
ईश्वरदत्त २४३
ईश्वरगीता ९३
ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका ४१३
ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी ४१३
ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी ४१३
ईश्वरभंगकारिका ३६६
ईश्वरसिद्धि ४०३, ४१३

उ

उग्रभूति ३१३
उज्ज्वलनीलमणि २९७
उणादिकोश ३२१
उणादिसूत्र ३०५, ३०९
उत्तरचम्पू १८५
उत्तरपुराण ३७१
उत्तरमीमांसा ३८४
उत्तररामचरित २०७, २०८, २५१ २५४
उत्पल २७६
उत्पलदेव ४१३
उत्पलिनी ३१९
उत्प्रेक्षावल्लभ १३३
उदय २८
उदयन ३७३, ३७५, ३७७
उदयसुन्दरीकथा १८३
उदात्त १६
उदात्तराघव २५७
उद्दण्ड १३०, १४३
उद्धवसन्देश १४३
उद्गाता ३६
उद्भट २८५, २८८
उद्भटालंकार २८८
उद्योत ३०७
उद्योतकर ३७३
उद्योतन ३०७
उन्मत्तराघव २१६, २६५
उन्मादवासवदत्त २५१
उपक्रमपराक्रम ३८९
उपग्रन्थसूत्र ४९
उपदेशशतक १६०
उपदेशसाहस्री ३९८
उपनिषद् १६, २१, २७, ३९, ४०
उपनिषद्ब्राह्मण ३७, ३८

उपनिषद्भाष्य ३९८
उपमितिभावप्रपंचकथा ६, २००, ३७०
उपरागक्रियाकर्म ३२९
उपवनविनोद ३५१
उपवर्ष ३८५
उपस्कारभाष्य ३७८
उभयाभिसारिका २४३
उमास्वाति ३६९
उव्वट २८

ऊ

ऊरुभंग २२३

ऋ

ऋक्प्रतिशाख्य ४४, ३१७
ऋग्भाष्य ३९४
ऋग्विधान ५०
ऋग्वेद १३, १५, १६, १८, १९, २० २१, २३, २८, ३३, ३४, ३६, ४० ४३, ५०
ऋग्वेदसंहिता ३८
ऋजुविमलपंचिका ३८८
ऋतुसंग्रह ४९
ऋतुसंहार ११४, १४४
ऋषभदत्त ११२

ए

एकाक्षरकोश ३२१
एकावलि २९९
एच० टी० कोलब्रुक १२

ऐ

ऐकपदिक ४६
ऐतरेयब्राह्मण ३६, ३८
ऐतरेयारण्यक ३८
एतरेयोपनिषद् ४०, ४२
ऐहोल १००

ओ

ओडयदेव १७९
ओडसी ७३

औ

औचित्यवाद २८४
औचित्यविचारचर्चा १२३, २९४

क

कठोपनिषद् ४०, ४२
कणाद ३७२
कणादरहस्य ३७८
कतन्दी ३७६
कथाकौतुक १९५
कथार्णव १९५
कथासरित्सागर १८७, १९१, ३०४
कनकजानकी २६२
कनकधारास्तव १४९
कनकलेखाकल्याण २६६
कनकसेन वादिराज १२३, २७६
कनिष्क ११२

कन्दर्पचिन्तामणि ३४४
कन्नड़ १०
कपिल ३७२, ३८१
कप्पणाभ्युदय १२१, १३७
कमलशील ३७७
कमलाकरभट्ट ३३५, ३८८
कमलिनीकलहंसनाटक २६७
कम्बोज ५, ८२
करणकुतूहल ३२९
करुणालहरी १५२
कर्णभार २२३
कर्णसुन्दरी २६२, २७६
कर्णीसुत ३५१
कर्णोत्तम ३२९
कर्पूरचरित २६३
कर्पूरमंजरी २१७, २६०
कर्पूरवर्तिका ३८८
कर्मकाण्ड २६
कर्मपुण्डरीक ३६४
कर्मप्रदीप ४९
कर्मशील ३६६
कलाप ३१३
कलापरिच्छेद १७७
कलाविलास १५८
कलिङ्गगण्यसूरि १६३
कलिविडम्बन १५९
कल्प ४४
कल्पतरु ३९९
कल्पद्रुम ३२१
कल्पनामण्डितक ३६३
कल्पसूत्र ४७, ४८
कल्पानुपदसूत्र ४९
कल्याणमन्दिरस्तोत्र १४८
कल्याणमल्ल ३४३
कल्याणरक्षित ३६६
कल्याणसौगन्धिक २६८
कल्लट ४१२
कल्हण १२५, १३२, १३७, २७६
कविकण्ठाभरण २९४
कविकर्णपुत्र २९८
कविकर्णपूर २७०
कविकल्पद्रुम ३१४
कवितार्किक २६७
कविपुत्र २१८
कविरहस्य १२३
कविराज १२२, १२६
कवीन्द्रवचनसमुच्चय १६२
कंसवध २६६
कांचनाचार्य २६२
काठकगृह्यसूत्र ४८
काठकसंहिता ३४
काण्व ३४, ३६
कातन्त्र ३१३
कातन्त्रशाखा ३१३

कात्यायन २, ४४, ४६, ५०, ३१६
कात्यायनश्रौतसूत्र ४६
कात्यायनश्राद्धकल्प ४६
कादम्बरी १६७, १६८, १६६
कादम्बरीकथासार १२२
कादम्बरीकल्याण २६५
कानजित ३२७
कापिष्ठलकठसंहिता ३४
कामकला ४१४
कामदेव १२६
कामधेनु ३१४
कामन्दक ३४६
कामशास्त्र ३४३
कामसूत्र ११३, ११४, १३६, ३०१, ३४३
कारकरचना ३०५
कारिका ४६
कारिकावलि ३७६
कार्यकारणभावसिद्धि ३६६
कालमाधवीय ३३५
कालापसंहिता ३४
कालाशोक ६६
कालिकापुराण ६४
कालिदास ६६, १००, १०४, १०५. २०८, २८४
काव्यकौतुक २६०
काव्यकौतुकविवरण २६०
काव्यदर्पण २६८
काव्यप्रकाश २६४
काव्यनिर्णय २६३
काव्यमीमांसा २६२
काव्यादर्श १७४, २८५
काव्यानुशासन २६३, २६४
काव्यालंकार २६२
काव्यालंकारसूत्र २८६
काशिका ३०६, ३८७
काशिकाविवरणपंजिका ३०६
काशिकावृत्ति ११६
काशीपतिकविराज २६६
काश्यप ३१२, ३३७
काश्यपसंहिता ३४०
किरणावली ३७५
किरातार्जुनीय ११७, २६३·
कीचकवध १२१
कीर्तिकौमुदी १८३, २७७
कीलहार्न १३
कुट्टिनीमत १५७
कुन्तक २८२, २६०, २६१
कुन्तल २६१
कुन्तलेश्वरदौत्य २२८
कुन्दमाला ५६, २४४
कुमारगुप्त १०२
कुमारदास ६६, ११६, १३७, २८५
कुमारपाल १२६

कुमारपालचरित १२६
कुमारलब्ध ३६१
कुमारलात ३६३
कुमारसंभव १०२, १०६, १०८, १०९
कुमारसंभवचम्पू १८५
कुमारिलभट्ट ८२, १५६, ३६९, ३८६, ३८७
कुमुद्वतीप्रकरण २४२
कुम्भकर्ण ३४६
कुवलयानन्द २९७
कुवलयाश्वचरित २९७
कुलशेखर १४९
कुलशेखर वर्मन् २५८
कुल्लूकभट्ट ३३३
कुश ५५
कुसुमदेव १५९
कूर्मपुराण ८९, ९३
कृतकोटि ३९२
कृष्णकर्णामृत १५१
कृष्णचन्द्र ४०७
कृष्णचरित १७९
कृष्णताताचार्य ३८९
कृष्णदास कविराज ४०९
कृष्णद्वैपायन ७३
कृष्णभट्ट २९९
कृष्णमित्र २६९
कृष्णमिश्र २६९
कृष्णयजुर्वेद १५, २१, २८, ३४, ३७, ४३, ५०
कृष्णविलास १३२
कृष्णवेद ८१
कृष्णलीलातरंगिणी १५३
कृष्णलीलांशुक १२४, १५१, ३१५
कृष्णानन्द १२८, ३७८ ४१४
कृष्णाभ्युदय २६८
कृष्णावधूत घटिकाशत २६८
केदारभट्ट ३१८
केनोपनिषद् ३७, ४१, ४२
केशवदैवज्ञ ३२१
केशवमिश्र २९८, ३७८
केशवस्वामी ३२०
केशवाचार्य ४०७
कैयट ३०७
कोकसन्देश १४३
कोकिलसन्देश १४३
कोक्कन ३४३
कोदण्डमण्डन ३४७
कौटिल्य ३४८
कौतुकरत्नाकर २६७
कौतुकसर्वस्व २६८
कौथुम ३७
कौमार ३१३
कौमुदीमहोत्सव २४७, २७५
कौमुदीमित्रानन्द २६२

कौशिकसूत्र ४९
कौषीतकिब्राह्मण ३६, ३८
कौषीतक्यारण्यक ३८
कौषीतक्युपनिषद् ४०, ४२
कौस्तुभप्रभा ४०७
क्रमदीश्वर ३१४
क्रम पाठ १७
क्षणभंगसिद्धि ३६६
क्षत्रचूडामणि १७९
क्षीरसमुद्रवासिमिश्र ३८८
क्षीरस्वामी ३०९
क्षुत्रसूत्र ४९
क्षेमंकर १९३
क्षेमराज ४१३
क्षेमेन्द्र १२३, १५७, १८७, १९१ ३१८
क्षेमीश्वर २६१

ख

खण्डखाद्यक ३२८
खण्डदेव ३८९
खण्डनखण्डखाद्य १२८, ३९९
खादिरगृह्यसूत्र ४९

ग

गङ्गादास ३१८
गङ्गादासप्रतापविलास २६६, २७८
गङ्गादेवी १३१, २७७
गङ्गाधर २६६, २७८
गङ्गालहरी १५२
गङ्गावंशानुचरित १८३, २७८
गङ्गावतरण १३४
गङ्गास्तव १५१
गंगेश ३७७
गणकारिका ४११
गणपति शास्त्री २१९
गणितसारसंग्रह ३२८
गण्डव्यूह ३६३
गण्डिस्तोत्रगाथा १४८
गदाधर ३७८
गद्यचिन्तामणि १७९
गद्यत्रय ४०३
गन्धर्वप्रार्थनाष्टक १५२
गन्धहस्तिमहाभाष्य ३६९
गरुडदण्डक १५१
गरुडपुराण ८९
गर्ग ३२३
गागाभट्ट ३८९
गार्गीसंहिता ३२३
गार्ग्य ४५
गाथासंग्रह ३६५
गान्धर्ववेद ३३६, ३४४
गीतगोविन्द १४६
गीतार्थसंग्रह ३९५, ४०३
गीतार्थसंग्रहरक्षा ४०४
गुजराती ८

गुण ३४२
गुणचन्द्र ३४४
गुणभद्र ३७१
गुणरत्न ३७०
गुणवाद २८४
गुणाढ्य १२३, १८७, ३१३
गुमानि कवि १६०
गुरुराम २६६
गुरूपसत्तिविजय ४०५
गुहदेव ४०३
गूढार्थदीपिका ३९९
गृहचारनिबन्धन ३२८
गृहचारनिबन्धनसंग्रह ३२८
गृह्यसूत्र ४७, ४८
ग्रासमान १३
ग्रिम १३
गेटे १३
गोकुलनाथ २६६, २७०
गोनर्दीय ३४३
गोपथब्राह्मण ३७, ३८
गोपालकेलिक्रीडा २६९
गोपालभट्ट ४०९
गोपीचन्द्र ३१५
गोपीचन्द्रिका ३१५
गोपीनाथचक्रवर्ती २६८
गोपेश्वर ४०६
गोभिल ४९
गोभिलगृह्यसूत्र ४८, ४९
गोभिलपुत्र ४९
गोरक्षशतक ३८३
गोलदीपिका ३२९
गोवर्धन १६३
गोविन्ददीक्षित ३४६
गोविन्दभाष्य ४०९
गोविन्दराज ७२
गोविन्दलीलामृत ४०९
गोविन्दाभिषेक १२४
गौडपाद ३८१, ३९७
गौडपादभाष्य ३८१
गोडवहो १२०, १७७
गौडाभिनन्द १२२
गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति १२८
गौतम ३३२, ३७२
ग्रहनिर्णय ३२९
ग्रामगान १५

घ

घटकर्पर १४३
घटकर्परकाव्य १४४
घनपाठ १७
घनश्याम २६८
घेरण्डसंहिता ३८३

च

चक्रकवि १३४, १८५
चक्रपाणिदत्त ३४१

चण्डकवि १२८
चण्डकौशिक २६१
चण्डमारुत ४०५
चण्डीशतक १४८, १६७
चण्डेश्वर ३२५, ३४६
चतुरदामोदर ३४७
चतुर्दण्डिप्रकाशिका ३४७
चतुर्वर्गचिन्तामणि ३३५
चतुर्वर्गसंग्रह १५७
चतुश्श्लोकी १५०, ४०३
चदण्डक्षत्रप्रबन्ध १६४
चन्द्र ३१६
चन्द्रकलानाटिका २६७
चन्द्रगुप्त ११, ७६, ११३
चन्द्रगोमी ३११
चन्द्रदूत १४४
चन्द्रप्रभचरित १२६, २७७
चन्द्रप्रभसूरि १२६
चन्द्रप्रभा ३७०
चन्द्रलेखा २६७
चन्द्रालोक २६६
चमत्कारचन्द्रिका २६६
चरक ६, ३४, ३३६
चरकसंहिता ३०६, ३३६
चरणव्यूह ४६
चलितराम २६१
चाणक्य ३४८
चाणक्यशतक १५६
चातुरध्यायिका ४५
चान्द्रव्याकरण ३११
चारायण ३४३
चारायणीय ५०
चारुचर्या १५७
चारुदत्त २२५
चारुमती १६७
चार्ल्स विल्किन्स १३
चिकित्साकलिका ३४१
चिकित्सामृत ३४१
चिकित्सासार ३४१
चित्सुख ३६८, ३६६
चित्रचम्पू १८५, २७८
चित्रपट ३८८
चित्रभारत २६२
चित्रमीमांसा २६७
चित्रमीमांसाखण्डन २६८
चित्राद्वैतसिद्धि ३६६
चिदम्बर १२२, १३३, १८४
चिन्तामणि ३३५
चैतन्य ३१५, ३७८, ३६३, ४०८
चैतन्यचन्द्रोदय २७०
चैतन्यचरितामृत ४०६
चैतन्यमत ४०८
चैतन्यामृत ३१५
चौरपंचाशिका १४६

छ

छन्द ४४, ४६
छन्दःशास्त्र ३१७
छन्दःसूत्र ४६, ९७, ३१७
छन्दोऽनुक्रमणी ५०
छन्दोऽनुशासन ३१८
छन्दोमंजरी ३१८
छन्दोविचिति १५६, १७७, ३१८
छान्दोग्य ४९
छान्दोग्य उपनिषद् ३७, ३८, ४२
छान्दोग्य ब्राह्मण ३७

ज

जगज्ज्योतिर्मल्ल २६६, ३४७
जगदीश २६८, ३७८
जगदूचरित १२९, २७७
जगद्देव ३२६
जगन्नाथ १५२, १५९, १६४, २६९
जटापाठ १७
जनमेजय ७५
जनाश्रय १५६, ३१८
जम्भालदत्त १९३
जय ७५
जयतीर्थ ३९४
जयदत्त ३४२
जयदेव १४६, २६३, २९६ ३१७, ३४३
जयदेवछन्द ३१७
जयधर ३१३
जयन्तभट्ट ३७६
जयन्तविजय १२९, २७७
जयमङ्गल ३४३
जयरथ १२८
जयवल्लभ १६३
जयसिंह १२६
जयसिंहसूरि २६४
जयादित्य ३०६
जयापोड २८६
जल्हण १२५
जातक ३६३
जातकमाला १९२, ३६३
जानकीनाथ ३७८
जानकीपरिणय १३४, २६७
जानकीहरण ११६, २८५
जाम्बवतीविजय ९७
जिनदास ३७१
जिनमहावीर ३१२
जिनसेन १४२, ३७१
जिनेन्द्रबुद्धि २८७, ३०६
जिनेन्द्रसरस्वती ३०९
जीमूतवाहन ३३४
जीवकचिन्तामणि १७९
जीवगोस्वामी २९७, ३१५, ४०९
जीवनानन्द २७०
जीवन्धरचम्पू १८१

जीवन्मुक्तिविवेक ३९९
जूनागढ़ ११२
जूमरनन्दी ३१४
जेन्दावेस्ता १८, ३०, ३१
जैन पार्श्वदेव ३४६
जैनराजतरंगिणी १३२
जैनेन्द्रशाखा ३१२
जैमिनि ४९, ७६, ३७२
जैमिनीयन्यायमाला ३८८
जैमिनीयब्राह्मण ३८
जैयट ३०७
जोनराज १३२
जोन्स, विलियम १२
जौमरशाखा ३१४
ज्ञानकाण्ड २६
ज्ञानश्री ३६६
ज्ञाननिधि २५२
ज्येष्ठकलश १२४
ज्योतिरीश्वर २६५, ३४३
ज्योतिर्विदाभरण १००, ३२४
ज्योतिष ४४, ४६
ज्योतिषवेदांग ४७
ज्योतिषसारोद्धार ३२६

ट

टंक ४०३
टालब्वायज ह्वीलर ६५
पूटीका ३८६

ड

डमरुक २६८

त

तत्त्वकौस्तुभ ४००
तत्त्वचिन्तामणि ३७७
तत्त्वाचिन्तामणिप्रकाशमकरन्द ३७८
तत्त्वचिन्तामण्यालोक ३७७
तत्त्वटीका ४०३, ४०४
तत्त्वदीपिका ३९९
तत्त्वनिर्णय ४०४
तत्त्वप्रकाश ४११
तत्त्वप्रकाशिका ३९४, ४०७
तत्त्वबिन्दु ३८७
तत्त्वबोधिनी ३०९
तत्त्वमुक्ताकलाप ४०४
तत्त्वरत्नाकर ४०४
तत्त्वविवेक ३९४
तत्त्ववैशारदी ३८२
तत्त्वसंख्यान ३९४
तत्त्वसंग्रह ३६६, ४१४
तत्त्वसंग्रहपंजिका ३६६
तत्त्वसमास ३८१
तत्त्वसमीक्षा ३९८
तत्त्वसार ४०४
तत्त्वसिद्धान्तव्याख्या ४१०
तत्त्वार्थवार्तिकव्याख्यानालंकार ३६९
तत्त्वार्थसारदीपिका ३७०

तत्त्वार्थाधिगमसूत्र ३६६
तत्त्वोक्तिकोश २६२
तत्त्वोद्योत ३६४
तथागतगुह्यक ३६३
तन्त्र ३२५
तन्त्रदीपिका ३६५
तन्त्ररत्न ३८७
तन्त्ररहस्य ३८६
तन्त्रराज ४१४
तन्त्रवार्तिक ३८६, ३८७
तन्त्रशिखामणि ३८६
तन्त्रसार ३८८, ४१३, ४१४
तन्त्रसिद्धान्त ३८६
तन्त्रसिद्धान्तदीपिका ३८६
तन्त्राख्यायिका १६६
तन्त्रालोक ४१३
तपतीसंवरण २५८
तरंगदत्त २६१
तरंगवती १६७
तरंगिणी ३६५
तरला ३१६
तर्ककौमुदी ३७६
तर्कन्याय ३६६
तर्कभाषा ३७८
तर्कशास्त्र ३६५
तर्कसंग्रह ३७६
तर्कसंग्रहदीपिका ३७६
तर्कामृत ३७६
तलवकारब्राह्मण ३७
तलवकारशाखा ३७
ताजिका ३२६
ताण्ड्य ३७
ताण्ड्यब्राह्मण ३७, ४६
ताण्डलक्षणसूत्र ४६
तात्पर्यचन्द्रिका ३६५, ४०४
तात्पर्यदीपिका ३८७, ४०४
तात्पर्यपरिशुद्धि ३७६
तापसवत्सराज २५७
तारानाथ ३२१
तार्किकरक्षा ३७७
तार्किकशिरोमणि ३७८
तिथिनिर्णय ३३५
तिरुमलाम्बा १८४, २७८
तिलकमंजरी १७८, ३५०
तिसट ३४१
तुलसीदास ७१
तैत्तिरीयप्रातिशाख्यसूत्र ४४
तैत्तिरीयब्राह्मण ३७, ३८
तैत्तिरीयसंहिता ३४, ३७, ५०
तैत्तिरीयारण्यक ३८
तैत्तिरीयोपनिषद् ४०, ४१, ४२
तोटक ३६८
त्यागराज १५३
त्रयोदशत्रिवेन्द्रमनाटकानि २१६

त्रिकाण्डशेष ३२१
त्रिकालपरीक्षा ३६५
त्रिदण्डिमत ४०८
त्रिपादनीतिनयन ३८७
त्रिपिटक ११५
त्रिपुरदाह २६३
त्रिपुरवध २६३
त्रिपुरविजय २१६
त्रिलोचन ३७६
त्रिविक्रम भट्ट १८०, १८२, ३१६
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित १२६, २०१
त्रिशती ३२८
त्रैलोक्यमल्ल १२४
त्र्यम्बकमखिन् ७२

द

दक ३४३
दक्षिणामूर्त्यष्टक १४६
दण्डी ११, ११५, १७२, २८०, २८२, २८५
दन्तिल ३४४
दमयन्तीकथा १८०
दयानन्द २८
दयापाल ३१२
दर्पदलन १५८
दशनशुद्धि ३७०
दशकुमारचरित १७५, २८५
दशगीतिकासूत्र ३२७
दशभूमीश्वर ३६३
दशमुखवध ११४
दशरथजातक ६३
दशरूपक २६३
दशरूपावलोक २६१
दशवैकालिकनिर्युक्ति ३६६
दशवैकालिकसूत्र ३६६
दशश्लोकी ३६८, ४०७
दशावतारचरित १२३
दानकेलिकौमुदी २६६
दामक २४४
दामोदर गुप्त १५७
दामोदर मिश्र ३१८
दिङ्नाग ५६, १०१, २४४
दिव्यावदानशतक १६२
दीधिति ३७८
दीपंकर ३४२
दीपवंश ३६३
दीपशिखापंचिका ३८८
दीर्घागम ३६३
दुःखभंजन ३१८
दुर्गसिंह ३१३
दुर्घटवृत्ति ३०७
दुर्लभराज ३२६
दूतघटोत्कच २२३
दूतवाक्य २२२

दूताङ्गद २७१
दूरविनीत १८९
दृढबल ३३९
दृष्टान्तशतक १५९
देवण्णभट्ट ३२५
देवताध्याय ब्राह्मण ३७
देवतानुक्रमणी ५०
देवनन्दी ३०६, ३१२
देवनागरी १०
देवप्रभसूरि १२९
देवराज २६८, २७८
देवविमलगणि १३५, २७८
देवसूरि ३७०
देवीचन्द्रगुप्त २४६
देवीचरित २८९
देवीभागवतपुराण ९४
देवीशतक १५०
देवेन्द्रसूरि ३१३
देशीनाममाला ३२१
दैवतकाण्ड ४६
दवीवाक् १
द्या द्विवेद १५९
द्रमिड ४०३
द्रमिडाचार्य ३९२
द्राह्यायणश्रौतसूत्र ४९
द्रौपदीपरिणयचम्पू १८५
द्वात्रिंशत्यूत्तलिका १९३
द्वादशसाहस्री ३४४
द्वादशस्तोत्र १५१
द्व्याश्रयकाव्य १२६
द्विरूपकोश ३२१
द्वैतमत ३५५
द्वैतसिद्धि ३५७

ध

धनंजय १२२, २९३
धनंजयविजय २६२
धनपाल १७८, ३२१, ३५०
धनिक २६१, २९३
धनुर्वेद ३३६
धन्वन्तरि निघंटु ३४२
धम्मपद ३६३
धर्मकीर्ति ३०७
धर्मदास ३०१
धर्मनाथ १२१
धर्मपरीक्षा १५७, २७०
धर्मबिन्दु ३७०
धर्मरत्न ३३४
धर्मराजाध्वरिन् ३९९
धर्मविजयनाटक २७०
धर्मशर्माभ्युदय १२१
धर्मशास्त्र ३०३, ३४७
धर्मसंग्रह ३६५
धर्मसूत्र ४७, ४८, ३३२
धर्माकूत ७२

धर्माभ्युदय २७१
धर्मोत्तर ३६६
धातुपाठ ३१४
धातुवृत्ति ३०६
धीरनाग १०२, २४४
धूर्तनर्तक २६८
धूर्तविटसंवाद २४३
धूर्तसमागम २६५
धोयी १४२
ध्वनिवाद २८२
ध्वनि-सिद्धान्त २८३
ध्वन्यालोक ६०, २८६
ध्वन्यलोकालोचन २८६

न

नंजराजयशोभूषण २६६
नकुल ३४२
नकुलीश ४११
नन्दिकेश्वर ३४४
नयचन्द्र १२६
नयद्युमणि ४०४
नयप्रकाशिका ४०३
नयमणिमाला ४१०
नयमयूखमालिका ४०५
नयविवेक ३८८
नरपतिजयचर्यास्वरोदय ३२६
नरसिंह २६५, २६८
नरसिंह कवि २६६
नरसिंहचरित २६८
नरसिंहराजविजय २६७
नरहरि ३४२
नरेन्द्र ३१४
नर्तननिर्णय ३४६
नलचम्पू १८०
नलचरित २६७
नलविलास २६२
नलाभ्युदय १३२, १७६
नलोदय १३०
नल्ल कवि २६७
नवग्रहचरित २६८
नवनाटिका २६८
नवरत्नपरीक्षा ३५१
नवसाहसांकचरित १२३, २७६
नागानन्द २०७, २४८, २४६
नागार्जुन ३४१, ३०८, ३१६, ३२५, ३२८, ३४१
नागेशभट्ट ३०७, ३०८, ३११
नाटकमीमांसा २६६
नाटकलक्षणरत्नकोश २६६
नाट्यदर्पण ३४४
नाट्यवेदागम ३४४
नाट्यशास्त्र २८१, २८४, २८५, ३४४
नाढ्यार्णव ३४४
नाथमुनि ४०३

नानार्थरत्नमाला ३२०, ३२१
नानार्थशब्दरत्न ३६
नानार्थार्णवसंक्षेप ३२०
नान्यदेव ३४६
नाममाला ३१६, ३२०
नाममालिका ३२०
नामलिंगानुशासन ३२०
नामसंग्रहमाला ३२१
नायकरत्न ३८८
नारद २८४, ३२३, ३४६
नारदपुराण ६१
नारदसूत्र ४०२
नारदस्मृति ३२४
नारायण २००, ३४२, ३५१
नारायणतीर्थ १५३
नारायणभट्ट १५२, १८४, ३०७, ४१५
नारायणविलास २६५
नारायणीयम् १५२, ३०७
नावनीतक ३४०
निक्षेपरक्षा ४०४
निघण्टु ४६
निघण्टुशेष ३२०
निघण्टुसमय ३२०
निचुल ३१६
नित्य ४०३
नित्यनाथ ३४१
निदानसूत्र ४६, ४६, ३१७
निपाताव्ययोपसर्ग ३०६
निबन्धन ३८७
निम्बार्क ४०७
निम्बार्कमत ४०७
निरुक्त २८, ४४, ४६, ३१६
निर्णयसिन्धु ३३५
निर्भयभीम २६२
नीतिद्विषष्ठिका १५६
नीति काशिका ३४६
नीतिमंजरी १५६
नीतिरत्नाकर ३४६
नीतिवाक्यामृत ३४६
नीतिशतक १५६
नीतिसार ३४६
नीलकण्ठ ८४, १३४, २६८, ३२६, ३३५
नीलकण्ठदीक्षित १५३, १५६, १८५, २६७
नीलकण्ठविजयचम्पू १८५
नीलकण्ठसोमयाजिन् ३२६
नीलमतपुराण ६५
नेमिदूत १४२
नेमिनिर्वाण १२५
नैगमकाण्ड ४६
नैघण्टकाण्ड ४६
नैषधानन्द २६१

नषधीयचरित १२७
नैष्कर्म्यसिद्धि ३९८
न्यायकणिका ३८७
न्यायकन्दली ३७०, ३७५
न्यायकलिका ३७६
न्यायकुमुदचन्द्रोदय ३७०
न्यायकुलिश ४०४
न्यायकुसुमाञ्जलि ३७६
न्यायखण्डखाद्य ३७०
न्यायतत्त्व ४०३
न्यायदर्शन ३७२
न्यायनिर्णय ३९८
न्यायपद्म ३८९
न्यायपरिशिष्ट ३७६
न्यायपरिशुद्धि ४०४
न्यायप्रदीप ३७०
न्यायप्रवेश ३६५
न्यायबिन्दु ३६५
न्यायबिन्दुटीका ३६६
न्यायभूषण ३७६
न्यायमंजरी ३७६, ४००
न्यायमयूखमालिका ४०५
न्यायमुक्तावली ३९५
न्यायरक्षामणि ४००
न्यायरत्नमाला ३८८
न्यायरत्नाकर ३८७
न्यायरहस्य ३७०
न्यायलीलावती ३७७
न्यायवार्तिक ३७५
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका ३७५
न्यायविनिश्चय ३६९
न्यायसंग्रह ३९९
न्यायसार ३७६
न्यायसिद्धाञ्जन ४०४
न्यायसिद्धान्तप्रदीप ३७७
न्यायसिद्धान्तमंजरी ३७८
न्यायसुदर्शन ४०३
न्यायसुधा ३८७, ३९४
न्यायसूचीनिबन्ध ३७५
न्यायसूत्र ३७५
न्यायामृत ३९४
न्यायामृततरंगिणी ३७०
न्यायावतार ३६९
न्यायावतारविवृति ३७०
न्यास ३१३
न्यासकार २८७

प

पंचतन्त्र ७, १९७, १९९
पंचदण्डक्षत्रप्रबन्ध १९४
पंचदशी ३५१, ३९९
पंचपराक्रम ३६५
पंचपादिका ३९८
पंचपादिकाविवरण ३९९
पंचप्रक्रिया ३९९

पंचरात्र २२२
पंचवस्तु ३१२
पंचविधसूत्र ४५
पंचविंशब्राह्मण ३७, ३८
पंचविंशसूत्र ४५
पंचशिख ३८१
पंचसायक ३४३
पंचसिद्धान्तिका ३२३, ३२४
पंचस्तव १५०
पंचाशिका १९७
पंचाख्यान २००
पंचाख्यानोद्धार २००
पंचिका ३९४
पंजिका ३७०
पक्षधर मिश्र ३७७
पक्षिलस्वामी ३७४
पतंजलि २, ४, ३४, ४५, ९७, १६६, २०३, ३७२
पतंजलिचरित १३५
पथ्यापथ्यनिघण्टु ३४२
पदपाठ १७
पदमंजरी ३०७
पद्धति ४९
पदानुक्रमणी ५०
पदार्थखण्डन ३७८
पदार्थधर्मसंग्रह ३७५
पद्मगुप्त ९९, १२३, २७६
पद्मनाभभट्ट ३१५
पद्मपाद ३९८
पद्मपुराण ८९, ९२, ३७१
पद्मप्राभृतक २४२
पद्मकादम्बरी १२३
पद्मचूड़ामणि ११५
पद्यामृततरंगिणी १६४
पद्यावली १६४
परमलघुमंजूषा ३०९
परमार्थ ३६५
परमार्थचर्चा ४१३
परमार्थद्वादशिका ४१३
परमार्थसप्तति ३६५
परमार्थसार ४१३
परमेश्वर ३२९
परलोकसिद्धि ३६६
परशुरामकल्पसूत्र ४१४
परात्रिंशिकाविवरण ४१३
पराशर ८९, ९१, ३२३
पराशरभट्ट १५०, ४०४
पराशरस्मृति ३३४
परिकरविजय ४०५
परिभाषेन्दुशेखर ३०९
परिमल ९९, १२३, ३९५, ४००
परिमलकालिदास १२३
परिशिष्ट ४९, ५०
परिशिष्टपर्व २०१, २७०

परीक्षामुखसूत्र ३६९
पवनदूत १४३
पांचरात्ररक्षा ४०४
पाचककेवली ३२६
पाणिनि १, २, ३, ४, ५, ७४५, ९७, २०३
पाणिनिवादनक्षत्रमाला ३०७
पाण्डवचरित १२९
पाण्डवपुराण ३७१
पाण्डवानन्द २६१
पाण्डवाभ्युदय २७१
पातञ्जलिभाष्यवार्तिक ३८३
पातञ्जलयोगदर्शन ३०६
पातालविजय ९७
पादताडितक २४७
पादुकासहस्र १५१
पायगुण्डवैद्यनाथ ३०९
पारसीप्रकाश ३२१, ३२९
पारस्करगृह्यसूत्र ४९
पाराशरीयविजय ३६६
पाराशर्य-विजय ४०५
पारिजातमंजरी २६४
पारिजातहरण १२६
पारिजातहरणचम्पू १८४
पार्थपराक्रम २६४
पार्थसारथिमिश्र ३८७
पार्वतीपरिणय २६६
पाशुपतशाखा ४११
पार्श्वदेव ३४६
पार्श्वनाथ १४२
पार्श्वाभ्युदय १४२
पिंगल ४६, ९७, ३१७
पिंगलनाग ९७, ३१७
पितृमेधसूत्र ४९
पुण्डरीकविट्ठल ३४६
पुण्यानन्द ४१४
पुराण ६, ११, ३०, ३१, ८७
पुरुषपरीक्षा १९५
पुरुषोत्तम ४०६
पुरुषोत्तमदेव ३२१
पुलुमायी ११२
पुष्करसादि ४५
पुष्पदन्त १४९
पुष्पदूषितक २६१
पुष्पबाणविलास १४५
पुष्पसूत्र ४५
पूर्णसरस्वती १४३
पूर्वमीमांसा ३८४
पृथुयशाः ३२६
पृथ्वीराजविजय १२८, २७७
पेड्डभट्ट १६४
पैतामहसिद्धान्त ३२३
पैथागोरस ३२७
पैप्पलाद ३५

पैयालच्चि ३२१
पोतयार्य १६४
पैल ७६
पौलिशसिद्धान्त ३२४
पौष्करसादि ३२३
प्रकरणपंचिका ३८८
प्रकाश ३७७, ३८८
प्रकाशात्मा ३९९
प्रकीर्णकविवरण ४१३
प्रकृतार्थविवरण ३९८
प्रक्रियाकौमुदी ३०७
प्रक्रियासंग्रह ३१२
प्रक्रियासर्वस्व ३०७
प्रचण्डपाण्डव २६१
प्रज्ञापरित्राण ४०४
प्रतापरुद्रदेव ३३५
प्रतापरुद्रियकल्याण २६४
प्रतापरुद्रिययशोभूषण २९९
प्रतिज्ञाचाणक्य २६०
प्रतिज्ञायौगन्धरायण २२३
प्रतिमानाटक २२२
प्रतिमोक्षसूत्र ३६३
प्रतिहारेन्दुराज २८९
प्रतीत्यसमुत्पादहृदय ३६५
प्रत्यभिज्ञामत ४१३
प्रत्यभिज्ञावाद २८९
प्रदीप ३०७
प्रद्युम्नानन्द २६७
प्रद्युम्नाभ्युदय २६४
प्रपंचमिथ्यात्वखण्डन ३९४
प्रपंचसार ३९८
प्रपन्नपारिजात ४०४
प्रबन्धकोष २७८
प्रबन्धचिन्तामणि २७८, ३०१
प्रबुद्धरौहिणेय २६४
प्रबोधचन्द्रिका ३१५
प्रबोधचन्द्रोदय २६९, २७८
प्रभाकरशाखा ३८५
प्रभाचन्द्र ३६९
प्रभावक १२९
प्रभावकचरित १२९
प्रभावती २९७
प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार ३७०
प्रमाणपद्धति ३९४
प्रमाणपरीक्षा ३६६
प्रमाणमीमांसा ३७०
प्रमाणलक्षण ३९४, ३९९
प्रमाणवार्तिकटीका ३६५
प्रमाणवार्तिककारिका ३६५
प्रमाणविध्वंसन ३६५
प्रमाणविनिश्चय ३६५
प्रमाणविनिश्चयटीका ३६६
प्रमाणसमुच्चय ३६५
प्रमेयकमलमार्तण्ड ३६९

प्रमेयदीपिका ३९४
प्रमेयमाला ४०४
प्रमेयरत्नकोश ३७०
प्रयोग ७, ४९
प्रवरसेन ११४, ११५, १३७
प्रशस्तपाद ३७५
प्रशस्तपादभाष्य ३७५, ३७९
प्रश्नमाला २९९
प्रश्नोत्तरमालिका ३९८
प्रश्नोपनिषद् ४१, ४२
प्रसंगरत्नावलि १६४
प्रसन्नराघव २६३
प्रस्थानभेद ४००
प्रहलादन २६४
प्राकृत ३, ७, १०
प्राकृतकल्पद्रुम ३१६
प्राकृतकामधेनु ३१६
प्राकृतछन्दसूत्र ३१८
प्राकृतप्रकाश २८८, ३१५
प्राकृतप्रकाशवृत्ति ३१५
प्राकृतरूपावतार ३१६
प्राकृतलक्षण ३१६
प्राकृतवज्जालग्गम १६३
प्राकृतव्याकरणसूत्र ३१६
प्राकृतशब्दानुशासन ३१६
प्राकृतसर्वस्व ३१६
प्राकृतसूत्रवृत्ति ३१६
प्राज्यभट्ट १३२
प्रातिशाख्य ४४
प्रातिशाख्यसूत्र ४५
प्रार्थनाष्टक १५२
प्रायश्चित्तसूत्र ४९
प्रासादमण्डन ३५०
प्रियदर्शिका २४८
प्रेमविलास ४०९
प्रेमाभिराम २१६
प्रौढब्राह्मण ३७
प्रौढमनोरमा ३०८

फ

फलितज्योतिष ३२४
फलैकत्ववाद ३८९
फाह्यान १२
फिट्सूत्र ३०९
फ्रांसिस बॉप १३
फ्लीट १११

ब

बनारस ८
बलदेव विद्याभूषण ४०९
बल्लालसेन १९४, ३०१, ३२६
बाक्षलि ३२८
बाट्लिक १६४
बाण ८२, ९४, ११५, १६७, २७५
बाणेश्वर १८५, २७८

बादरायण ३७२
बाभ्रव्य ३४३
बालक्रीडा ३३३
बालचन्द्र सूरि १२६
बालचरित २२३
बालबोधिनी ३१३
बालंभट्ट ३३४
बालंभट्टि ३३४
बालभारत १२६, १३१, १७६, २६०
बालमनोरमा ३०६
बालमार्तण्डविजय २६८, २७८
बालरामपंचानन ३१५
बालरामभरत ३४७
बालरामवर्मा ३४७
बालरामायण २६०
बालबोध २१२
बालिवध २१७
बाष्कल ३३
बाहुदन्तक ३४७
बाह्यार्थसिद्धकारिका ३६६
बिल्वमंगल १२४, १५१
बिल्हण ७, १२४, १३७, २६२, २७६
बिहार ८
बीजगणित २६७
बुद्धचरित १०४, ११
बुद्धघोष ११५
बुद्धभट्ट ३५१
बुधभूषण १६४ ;
बुधस्वामी १८७
बृहदारण्यकोपनिषद् ३७, ४०, ४१,
बृहदारण्यकोपनिषद्वार्तिक ३६८
बृहती ३८६
बृहच्छब्देन्दुशेखर ३०८
बृहज्जातक ३२५
बृहट्टीका ३८६
बृहत्कथा १८७, १६१
बृहत्कथामंजरी १२३, १८७, १६१
बृहत्कथाश्लोकसंग्रह १८७, १६१
बृहत्संहिता ३१८, ३२५
बृहत्सर्वानुक्रमणी ५०
बृहद्देवता ५०
बृहद्देशी ३४५
बृहद्धर्मपुराण ६५
बृहद्भागवतामृत ४०६
बृहद्विवाहफल ३२५
बृहद्वृत्ति ३१३
बृहन्नारदीयपुराण ६१
बृहस्पति ३४७
बृहस्पतिस्मृति ३३४
बोधपंचदशिका ४१३
बोधसिद्धि ३७६
बोधायन ४८, १०२, २४३. ३८५

बोधायनपितृमेधसूत्र ४९
बोधायनश्रौतसूत्र २९५
बोधिचर्यावतार १५६, ३६५
बोधिसत्त्वचर्यानिर्देश ३६५
बोधिसत्त्वावदानकल्पलता १९२
बोपदेव ३१४
बोपदेवशाखा ३१४
बौधायनधर्मसूत्र ३३२
बौद्धदर्शन ३२३
ब्यूलर १३, १११
ब्रह्मगुप्त ३२८
ब्रह्मनन्दो ३९२
ब्रह्मपुराण ८९
ब्रह्मविद्याविजय ४०५
ब्रह्मवैवर्तपुराण ८९, ९२
ब्रह्मसिद्धि ३९७
ब्रह्मसूत्र ३९१
ब्रह्मसूत्रभाष्य ३९४, ३९८
ब्रह्मसूत्राणभाष्य ३९४
ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यानटीका ३९४
ब्रह्मा ३६, ३४४
ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त ३२८
ब्रह्माण्डपुराण ८९, ९२,
ब्रह्मानन्द ४१४
ब्राह्मण १६, २०, २७, ५०
ब्राह्मण-ग्रन्थ ३६
ब्राह्मणसर्वस्व ३३५

भ

भक्तामरस्तोत्र १४८
भक्तिरसामृतासिन्धु ४०९
भगवदज्जुक २४३
भगवद्गीता ३९१
भगवद्गीतातात्पर्यनिर्णय ३९४
भगवद्गीताभाष्य ३९४, ३९८, ४०३
भगवद्गीतार्थसंग्रह ४१३
भगवद्गुणदर्पण ४०४
भगवन्तभास्कर ३३५
भट्टउम्बेक ३८७
भट्टचिन्तामणि ३८९
भट्टतौत २८९
भट्टनायक २८५, २९१
भट्ट नारायण २५०
भट्टभास्कर २८
भट्टमल ३२१
भट्टशिवस्वामी १२१
भट्टारहरिचन्द ११, १६७
भट्टि ११८
भट्टोजिदीक्षित ३०८, ३३५, ३८९
भट्टोत्पल ३२५
भद्रबाहु ३६९
भयभंजन ३२६
भरत २८४, ३८९
भरतटीका २८५

भरत २८४, ३४४
भरतटीका २८५
भरतस्वामी २८
भरतार्णव ३४४
भरद्वाज ४५
भर्तृप्रपंच ३९७
भर्तृमित्र ३८५
भर्तृमेण्ठ ११४
भर्तृहरि १३, ११८, १४५, २७५, २८०, ३५९
भर्तृहरिनिर्वेद २६६
भल्लट १६०
भल्लटशतक १६०
भवदास ३८५
भवनाथ ३८८
भवभूति ११, १२०, २५१, २८५
भविष्यपुराण ८९, ९०, ९३
भविष्योत्तरपुराण ९३
भागवत ४०२
भागवतचम्पू १८२, १८४
भागवतपुराण ९१, ९२
भागवतव्याख्या ३९४
भागवतसंदर्भ ४०९
भाट्टदीपिका ३८९
भाट्टरहस्य ३८९
भाट्टशाखा ३८५
भाट्टसार ३८९
भानुदत्त २९७
भामती टीका ३९८
भामह २२४, २८२, २८६, २८८
भामहालंकार २८६, २८८
भामहालंकारविवरण २८८
भामिनीविलास १५९
भारतचम्पू १८४, १८५
भारततात्पर्यसंग्रह ४१०
भारतमंजरी १२३
भारतसंहिता ७६
भारतीतीर्थ ३९९
भारद्वाजवृत्ति ३७६
भारवि ११७, १३७
भावदीपिका ३९५
भावनापुरुषोत्तम २७०
भावनाविवेक ३८७
भावप्रकाश ३४१
भावप्रकाशन २१४, २९६
भावप्रकाशिका ३९५, ४०५, ४०७
भावमिश्र ३४१
भाषापरिच्छेद ३७९
भाष्यदीप ३८८
भाष्यप्रकाश ४०६
भाष्यभावप्रकाशिका ३९८
भाष्यभावबोधन ४०३
भाष्यसक्ति ३७९

भास २१८
भासर्वज्ञ ३७६
भास्कर २१६, २६५. ३२४, ३९३, ४०७
भास्करमत ४०७
भास्कराचार्य ३२८
भास्वती ३२९
भिक्षाटनकाव्य १३३
भीम ११५
भीमक ११५
भीमट २५९
भीम-विक्रम २६४
भुवनाभ्युदय २७६, २९१
भूदेव शुक्ल २७०
भूषण ७२
भूषणबाण १७२
भृंगसन्देश १४३
भेल ३३७
भेलसंहिता ३४०
भैमरथी १६६
भैमीपरिणय २६६
भैरवानन्द २६५
भोज ९९, १२२, १६७, १८२, २८२ ३१४, ३१५, ३४२, ३४४, ३७२
भोजप्रबन्ध १९४, ३०१

म

मंख १२५, १३७, ३०१
मंखक १२५
मंजीर २९१
मंजूषा ३०९
मणिक २६५
मण्डन ३५०
मण्डनभाष्य ३१४
मण्डन मिश्र ३११, ३८७, ३९७, ३९८
मत्तविलास २७५
मत्तविलासप्रहसन २१६, २४३, २४७, २७५
मत्स्यपुराण ८९, ९३
मथुरा ८
मथुरादास २६८
मथुरानाथ ३७८
मथुराविजय १३१, २७७
मदन २६४
मदनगोपालविलास २६७
मदनपाल ३४२
मदनपारिजात ३३५
मदनविनोदनिघण्टु ३४२
मदनसंजीवन २६८
मदालसाचम्पू १८१
मधुमथनविजय १२०
मधुसूदन सरस्वती १५२, ३९५, ३९९
मध्यमव्यायोग २२३

मध्यमागम ३६३
मध्यसिद्धान्तकौमदी ३०८
मध्व ३६४
मनुस्मृति १३, ३३३
मनोदूत १४४
मनोरमा ३१५
मनोरमावत्सराज २६१
मनोवती १६७
मन्त्रपाठ ४८
मन्त्रब्राह्मण ४८
मन्त्ररहस्याध्याय ५०
मन्दसोर ११४
मन्दारमरन्दचम्पू १८५
मन्मथोन्मथन २६८
मम्म २७६
मम्मट २६५
मयमत ३५०
मयूखमालिका ३८८
मयूखावलि ३८८
मलयालम १०
मल्लिकामरुत २६५
मल्लिनाथ ११६
मल्लिषेणसूरि ३७०
मशककल्पसूत्र ४६
महाचार्य ४०५
महादेव २६७
महादेव वेदान्ती ३२१
महानाटक २५६
महानारायणीयोपनिषद् ४०, ४१, ४२
महापुरुषनिर्णय ४०३
महावीर ८
महाभारत ६, ११, ३०, ३१, ३२, ६७, ७३, ७७, ११७
महाभारततात्पर्यनिर्णय ८४, ३६४
महाभारततात्पर्यसग्रह ८४
महाभाष्य ६७, १६६, ३०५
महाभाष्यदीपिका ३०६
महाभाष्यप्रदीप ३०६
महाभाष्यप्रदोपोद्योत ३०६
महाभास्करीय ३२८
महायान ३६२
महायानविशक ३६५
महायानश्रद्धोत्पाद ३६४
महायानसूत्रालंकारसूत्र ३६५
महावस्तु ३६३
महावीर ८, ३६६
महावीरचरित २५१, २५२
महावीराचार्य ३२८
महिमभट्ट २६०
महिम्नस्तव १४६
महीदास २८
महीधर २८
महेन्द्रविक्रमन् २१६, २४३, २४७, २७५

महेश्वर ३२०
महेश्वरतीर्थ ७२
महोपदेशविंशतिका ४१३
मयूर १४८
मागधी ८
माघ ११६, १३७
माठरवृत्ति ३८१
माणिक्यनन्दी ३६६
माण्डूकेय ३३
माण्डूक्यकारिका ३६७
माण्डूक्योपनिषद् ४१, ४२
मातंग ३४५
मातंगलीला ३४२
मातृगुप्त ११४, २६१
माधव २८, २६६, ३०६, ३८८, ४१४
माधवकार ३४१
माधवभट्ट २८
माधवाचार्य ६४
माधवानलकथा १६५
माधवीयधातुवृत्ति ३०६
माध्यन्दिन ३४, ३६
माध्यमिक ३६२
माध्यमिककारिका ३६४
माध्यमिकसूत्र ३६४
मानतुंग १४८
मानमेयोदय ४१५
मानमेयोदयरहस्यश्लोकवार्तिक ४१५
मानवगृह्यसूत्र ४८
मानवधर्मशास्त्र ३३३
मानवशुल्वसूत्र ४८
मानवश्राद्धकल्प ४६
मानवश्रौतसूत्र ४८
मानसार ३५०
मानसोल्लास ३४६
मायुराज २५७, २६१
मारिया स्टुअर्ट १४२
मार्कण्डेय ३१६
मार्कण्डेयपुराण ८६, ६३
मालजित् ३२६
मालतीमाधव २५१, २५२
मालविकाग्निमित्र १०६, २२७, २२८
मालिनीविजयवार्तिक ४१३
मिताक्षरा ३३३, ४००
मित्रमिश्र ३३५
मिल्हण ३४१
मीनराज ३२५
मीमांसाकौस्तुभ ३८६
मीमांसादर्शन २६, ३७२, ३८४
मीमांसानुक्रमणिका ३८७
मीमांसान्यायप्रकाश ३८६
मीमांसापादुका ४०४
मीमांसामकरन्द ३८६

मीमांसासूत्रभाष्य ३८५
मीमांसासूत्रभाष्यपरिशिष्ट ३८८
मुकुटताडितक १६८
मुकुन्दमाला १४६
मुकुन्दमुक्तावली १५२
मुकुन्दानन्द २६६
मुग्धबोध ३१४
मुग्धोपदेश १५८
मुठुस्वामी दीक्षित १५३
मुण्डकोपनिषद् ४१, ४२
मुदितमदालसा २६६
मुद्राराक्षस २४५
मुद्राराक्षसपूर्वसंकथानक १७६
मुद्रितकुमुदचन्द्र २६२, २७६
मुरारि २५८
मूक १४६
मूकपचशती १४६
मूलदेव ३५१
मूलभावप्रकाशिका ४०३
मृगांकलेखनाटिका २६८
मृच्छकटिक २३८
मेगस्थनीज १२, ७६
मेघदूत १००, १०६, ११४, १४०
मेघनादारि ४०३
मेघप्रतिसन्देश १४३
मेघप्रभाचार्य २७१
मेघविजय २००, ३१३
मेघविजयगणि १२२, १३५
मेघसन्देश १४०
मेण्ठ ११, ११४
मेदिनीकर ३२१
मेधातिथि ३३३
मेधाविरुद्र २८५
मेधावी २८५, २८७
मेरुतुङ्ग २७८, ३०१
मैकडानल ४६
मैक्समूलर १३, २४, १११
मैत्रायणीयोपनिषद् ४१, ४२
मैत्रायणी संहिता ३४
मैत्रेय ३६५
मैत्रेयनाथ ३६१
मोक्षादित्य २६४
मोहपराजय २६६, २७७
मोहमुद्गर १५७

य

यजुर्वेद १५, १६, २३, ३४, ३६
यजुर्वेदसंहिता ३८
यजुर्वेदानुक्रमणी ५०
यज्ञनारायण १३३, २७८
यज्ञनारायण दीक्षित २६६
यज्ञपाल २६६
यज्ञफल २२५
यतिधर्मसमुच्चय ४०८
यतीन्द्रमतदीपिका ४०५

यमलाष्टकतन्त्र ३४५
यवनजातक ३२४, ३२५
यशश्चन्द्र २६२, २७६
यशस्तिलक १८१
यशोधर ३४३
यशोधराचरित १२३, २७६
यशोधर्मराजचरित १८२
यशोवर्मन् ११२
यशोवर्मा २५१
यशोविजयगणि ३७०
याकोबी ६३
याज्ञवल्क्य ३७, ४५
याज्ञवल्क्यस्मृति ३३३
याज्ञिकोपनिषद् ४०
यात्रावन्ध १८४
यादवप्रकाश ३२०, ३९३, ४०३
यादवप्रकाशमत ४०८
यादवराघवीय १३५
यादवाभ्युदय १३१
यामुन १५०, ४०३
यास्क २८, ४५, ४६, ३१९
युक्तिकल्पतरु ३४९
युक्तिषष्ठिका ३६४
युधिष्ठिरविजय १३०
येस्पर्सन १३
योगदर्शन ३७२, ३८१
योगविन्दु ३७०
योगमंजरी ३४२
योगयात्रा ३२५
योगरहस्य ४०३
योगवासिष्ठ ९४
योगशास्त्र १५८, ३४१
योगसार ३४१
योगसारसंग्रह ३८३
योगसूत्र ३८२
योगसूत्रभाष्य ३८२
योगाचार ३६२
योगाचारभूमिसूत्र ३६५

र

रंगनाथ मुनि ४०३
रंगरामानुज मुनि ४०३
रघुनन्दन ३३५, ३७८
रघुनाथचरित १३२, १७९
रघुनाथभूपविजय १३४
रघुनाथविलास २६६, २७८
रघुनाथशिरोमणि ३७८
रघुनाथाभ्युदय १३४, २७८
रघुवंश १०६, १०७, १०८
रघुविलासमहाकाव्य २९७
रघुवीरगद्य १५१
रतिमंजरी ३४३
रतिरत्नप्रदीपिका ३४३
रतिरहस्य ३४३
रत्नकीर्ति ३६६

रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित २७०
रत्नत्रयपरीक्षा ४१०
रत्नपरीक्षा ३५१
रत्नाकर १२१, १३७, १५०
रत्नकोशकार ३७७
रत्नावलीनाटिका २१७, २४८
रत्नाहरण २८७
रत्नेश्वरप्रसादन २६७
रविदास १३१
रमलरहस्य ३२६
रविपति २१६
रविवर्मा २६४
रविषेण ३७१
रश्मि ४०६
रसकलिका २९३
रसगंगाधर २९८
रसतरंगिणी २९७
रसमंजरी २९७
रसरत्नप्रदीपिका २९६
रसरत्नसमुच्चय ३४१, ३५२
रसरत्नाकर ३४१
रसवती ३१४
रसवाद २८४
रससदनभाण २६८
रससम्प्रदाय २८०
रसानुभव २८१
रसार्णव ३५२
रसार्णवसुधाकर २९७
रसिकरंजन १३३
रसेश्वरसिद्धान्त ३४२
रहस्यरक्षा ४०४
राक्षसकाव्य १४५
रागमंजरी ३४६
रागमाला ३४६
राघवनैषधीय १३५
राघवपाण्डवयादवीय १३३
राघवपाण्डवीय १२२, १२६
राघवेन्द्रयति ३९५
राजचूड़ामणि दीक्षित १३४, १८५, १६७, २९८, ३८८
राजतरंगिणी १२५, १३२
राजनाथ १२०
राजनाथ तृतीय १३२, २७७
राजनाथ द्वितीय १३२, २७७
राजनिघण्टु ३४२
राजनीतिसमुच्चय १५६
राजमार्तण्ड ३२६, ३८२
राजमृगांक ३२८
राजविबोध ३४७
राजशेखर १६२, १७७, २१७, २५९, २७८, २८५
राजशेखरसूरि ३७०
राजसूय ३४
राजावलिपताका १३२

रॉठ १३
राणक ३८७
राणकभावनाकारिकाणविवर ३५१
राणकोजीवनी ३८७
राणायनीय ४६
राधाकान्तदेव ३२१
राम २६८
रामकण्ठ ४११
रामकृष्ण २६६
रामचन्द्र १२२, १३३, २६२, ३०७, ३४४
रामचन्द्राश्रम ३१४
रामचरित १२२
रामचरितमानस ७१
रामतर्कवागीश ३१४, ३१६
रामतीर्थ ३६५
रामपाणिवाद ३१५
रामपाल १२५
रामपालचरित १२५, २७७
रामबाणस्तव १५३
रामभद्रदीक्षित १३५, १५३, २६७
रामभद्रमुनि २६४
रामभद्रम्बा १३४, २७८
रामभुजंगस्तोत्र १४६
रामवर्मन् २६८
रामवर्मयशोभूषण २६६
रामशर्मा २८७
रामशास्त्री १४३
रामानुज ६१, १५०
रामानुजचम्पू १८४
रामानुजाचार्य १८३, ३८८
रामाभ्युदय २५१, २७१
रामामात्य ३४६
रामायण ६, ६, ११, ३०, ३१, ३२, ५२, ५४, ६५, ६६, ६७
रामायणचम्पू १८२
रामायणतत्त्वदीपिका ७२
रामायणतात्पर्यसंग्रह ७२, ४१०
रामायणमंजरी १२३
रामाराम १४४
रामिल १६६
रायभट्ट १४७
रावणभावनाकारिकाविवरण ३८६
रावणभाष्य ३७६
रावणवध ११४, ११८, ११६
रावणार्जुनीय ११५
राशिगोलस्फुटनीति ३२६
राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य १३३, २७८
रीतिवाद २८४
रुक्मिणीकल्याण १३४
रुक्मिणीपरिणय २६८
रुक्मिणीहरण २१६, २६३
रुग्विनिश्चय ३४१
रुचक २६४

रुचिदत्त ३४०
रुद्रकवि १३३, २७८, २८५
रुद्रट २६४
रुद्रदामन् ११२, १६६
रुद्रदास २६७
रुद्रभट्ट २८२
रुय्यक २९४
रूपगोस्वामी १४३, १५२, १६४, २६६, २९७, ३१५, ४०९
रूपमाला ३०७
रूपसिद्धि ३१२
रूपावतार ३०७
रेटर डियन क्रिसोस्टन ७९
रोमक सिद्धान्त ३२३

ल

लंकावतार सूत्र ३२७
लंकेश्वर ३१६
लक्षणमाला ३७७
लक्षणावलि ३७६
लक्ष्मणसेन ३२६
लक्ष्मीधर ३१६
लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्र १४९
लक्ष्मीपुरम् श्रीनिवासाचार्य ४१५
लक्ष्मीलहरी १५२
लक्ष्मीव्याख्यान ३३४
लक्ष्मीसहस्र १५३
लघीयस्त्रय ३६९
लघुजातक ३२५
लघुभागवतामृत ४०९
लघुभास्करीय ३२८
लघुमंजूषा ३०९
लघुशब्देन्दुशेखर ३०८
लघुसिद्धान्तकौमुदी ३०८
लघ्वर्हन्नीति ३४९
लघ्वी ३८६
लटकमेलक २६२
ललितमाधव २६६
ललितविग्रहराजनाटक २६३
ललितविस्तर ३६३
ललितात्रिंशतीभाष्य ३७४
लल्ल ३२४
लव ५५
लिंगपुराण ८९, ९३
लिंगानुशासन ३०५
लिंगानुशासनवृत्ति ३०८
लिखित ३००
लिपि ९
लीलावती ३२९, ३७५
लेखनकला ९
लैसेन ६५
लोकनाथभट्ट २६८
लोलम्बराज १३२. ३४१
लोल्लट २९०
लौगाक्षिभास्कर ३७९, ३८९

व

वंगसेन ३४१
वंशब्राह्मण ३७
वक्रोक्तिजीवित २६१
वक्रोक्ति पंचाशिका १५०
वक्रोक्तिवाद २६०
वत्सभट्टि १००, १०५, ११४
वत्सराज २१६, २६३
वरदनारायण भट्टारक ४०३
वरदराज ३०८, ३३५
वरदराजस्तव १५२
वरदाचार्य २६८
वरदाभ्युदयचम्पू १८५
वरदाम्बिकापरिणयचम्पू १८४, २६८
वररुचि २, ४५, ६७, १६७, २८८, ३०५, ३१५
वररुचिकाव्य ३०५
वररुचिसग्रह ३०५
वराहपुराण ८६, ६२
वराहमिहिर १००, ३१८
वरिवस्याप्रकाश ३७४
वर्णमाला ६
वर्णव्यवस्था २३
वर्धमान ३४२, ३७७
वल्लभदेव १५६, १६४, १६३
वल्लभाचार्य ४०६
वव्याश्रयकाव्य २७६
वसन्ततिलकभाण २६८
वसन्तविलास १२६
वसिष्ठ ४५
वसुगुप्त ४१२
वसुबन्धु ३६५
वसुरात ३०६
वाकर १३
वाक्पति १२०, १७७
वाक्य ३६२
वाक्यपदीय ११८, ३०६, ३१०
वाक्भटालंकार २६७
वाग्भट्ट १२५, २६६, ३४०
वाग्भटालंकार २६६
वाग्वल्लभ ३१८
वाचस्पति ३१६
वाचस्पतिमिश्र ३७३, ३८१, ३६७
वाचस्पत्य ३२१
वाजपेय ३४
वाजसनेयिप्रातिशाख्य ३०५
वाजसनयिप्रातिशाख्यसूत्र ४४
वाजसनेयिश्रौतसूत्र ३०५
वाजसनेयी सहिता ३४, ४१
वाणीभूषण ३१८
वात्स्यायन ११३, ११४, १३६, ३४३
वादकौशल ३६५
वादनक्षत्रमाला ३८६
वादमार्ग ३६५

वादविधि ३६५
वादिदेवसूरि ३६७
वादावली ३६४
वादिराज ३६५
वादूल ४८
वामन १४५, २५०, २८०, २८६, ३०६
वामनभट्टबाण १३२, १४३, १७६ २१६, २६६, २७८, ३२१
वामनपुराण ८६, ६३
वायुपुराण ८६, ६३, ६४
वायुशास्त्र ३२७
वार्तिक २७५
वार्तिकाभरण ३८७
वार्षगण्य ३८१
वाल्मीकि ११, ३२, ३४, ३१६
वाल्मीकिसूत्र ३१६
वाल्मीकिहृदय ७२
वासवदत्ता १६६, १७७
वासिष्ठधर्मसूत्र ३३२
वासुदेव १३०, १३७, १४३, ३६३
वासुदेवदीक्षित ३०६
वासुदेवरथ १८३, २७८
वासुदेव सार्वभौम ३७८
वासुदेवाध्वरिन् ३८६
वास्तुमण्डन ३५०
विक्रमकवि १४२
विक्रमांकदेवचरित १२४, २७६
विक्रमादित्य १००, १०१, ११२ ३१६
विक्रमार्कचरित १६३
विक्रमोदय १६४
विक्रमोर्वशीय १०२, १०३, १०६ २०८, २२७, २२६, २८४
विग्रहराजदेव विशालदेव २६३
विग्रहव्यावर्तनी ३६५
विजयश्री २६४
विजया १७४
विजयीन्द्र ३६५
विज्ञानभिक्षु ३८१, ३८२, ३६६
विज्ञानामृत ३६६
विज्ञानेश्वर ३३३
विट्ठलनाथ ४०६
वितानसूत्र ४६
विदग्धमाधव २६६
विदग्धमुखमण्डन ३०१
विद्धसालभंजिका २६०
विद्याधर २६६
विद्यानाथ २६४, २६६
विद्यापति १६५
विद्यापरिणय २७०
विद्याभूषण २६७
विद्यामाधवीय ३२४
विद्यारण्य ३४६, ३५१, ३६६

विप्रजनवलल्भ ३२६
विद्वजनवलल्भ ३२६
विधित्रयपरित्राण ३८६
विधिरसायन ३८८
विधिविवेक ३८७
विनय ३६२
विनयपिटक ३६२
विनयप्रभ १४४
विनियोगसंग्रह ४६
विन्ध्यावास ३८१
विभ्रमविवेक ३६७
विमलसरस्वती ३०७
विमुक्तात्मा ३६६
विरूपाक्ष २६५
विलियम जोन्स १२
विवरणप्रमेयसंग्रह ३६६
विवेकचूड़ामणि ३६८
विवेकमंजरी ३६८
विशाखदत्त १७६, २४५
विशिष्टाद्वैत ४००
विश्वगुणादर्शचम्पू १८५, २७८
विश्वनाथ २१६, २६५, २६८, २६७, ३७८
विश्वप्रकाश ३२०
विश्वरूप ३३३, ३८७
विश्वेश्वर २६८, २६७, ३८६
विश्वेश्वरसूरि ३८६
विषमबरणलीला २८६
विषयवाक्यदीपिका ४०५
विष्णुगुप्त ३४६
विष्णुतत्त्वनिर्णय ३६४
विष्णुत्राता १४३
विष्णुदास १४४
विष्णुधर्मसूत्र ३३२
विष्णुधर्मोत्तर पुराण ३५०
विष्णुपादादिकेशान्तवर्णन १४६
विष्णुपुराण ८६, ६१
विष्णुवर्धन ११२
विष्णुसहस्रनामभाष्य ३६८
वीणावासवदत्त २४४
वीतरागस्तुति ३७०
वीरकम्परायचरित १३१
वीरचरित १६४
वीरचिन्तामणि ३४७
वीरनन्दी १२६
वीरनारायणचरित १७६
वीरभद्र ३४४
वीरमित्रोदय ३३५
वीरविजय २६६
वीरसेन ११३
वीरेश्वर १६०
वृक्षायुर्वेद ३४२
वृत्तरत्नाकर ३१८
वृत्तरत्नावली ३१८

वृत्ति २९४, २८५
वृत्तिवार्तिक २९७, २९८
वृद्धगर्ग ३२३
वृद्धगार्गीसंहिता ३२३
वृद्धचाणक्य १५६
वृद्धजीवक ३४०
वृद्धजीवकीय ३४०
वृद्धभरत ३४४
वृद्धयवन जातक ३२५
वृद्धवासिष्ठसंहिता ३२४
वृन्द ३४१
वृषभानुजा २६८
वेकटनाथ १३१
वेकटमखिन् ३४७
वेंकटमाधव २८
वेंकटाध्वरी १२२, १३४, १३७, १५३, १६०, १८५, २६७
वेणीसंहार २०७, २५०
वेतालपंचविंशतिका १९३, १९४
वेद ११, २९, ३१
वेदकवि २७०
वेदांग ४४, ४९
वेदांगराय ३२१
वेदान्तदर्शन ३७२
वेदान्तदीप ४०३
वेदान्तदेशिक १३१, १४३, १५१, १५८, २७०, ४०३, ४०४
वेदान्तपरिभाषा ३९९
वेदान्तपारिजातसौरभ ४०७
वेदान्तसार ३९९, ४०३
वेदान्ताधिकरणमाला ४०६
वेदार्थप्रकाश २८
वेदार्थसंग्रह ४०३
वेबर १३, ६३, ६६, १७२
वेमभूपाल २९७, ३४६
वेमभूपालचरित १७९, २७८
वैकुण्ठगद्य १५०
वैखानस ४८
वैजयन्ती ३२०
वैजयन्तीकोश ४०८
वैतानश्रौतसूत्र ४९
वैदिककाल १
वैद्यजीवन ३४१
वैद्यनाथदीक्षित ३३५
वैपुल्यसूत्र ३६३
वैभाषिक ३६२
वैयाकरणभूषणसार ३०८
वैयाकरणमतोन्मज्जन ३०८
वैयासिक्यन्यायमाला ३९९
वैराग्यपंचक १५८
वैराग्यशतक १५६, १५९
वैशम्पायन ७६
वैशेषिकदर्शन ३७२
वैशेषिकसूत्र ३७४

वैष्णवतोषणी ४०६
वोपदेव ६२
व्यक्तिविवेक २६२
व्यवहारनिर्णय ३३५
व्याकरण ४४, ४५
व्याडि ३०५, ३१६
व्याप्तिचर्चा ३६६
व्यास ३२, ४५, ७३, ७६
व्यासगीता ६३
व्यासदास १२३
व्यासयति ३६४
व्यासशिक्षा ४५
व्यासश्रीरामदेव २७१
व्युत्पत्तिवाद ३७६
व्योमवती ३७५
व्योमशेखर ३७५

श

शंकर २६६
शंकरभट्ट ३५०
शंकरमिश्र ३७८
शंकरस्वामी ३७७
शंकराचार्य ८२, ६०, ६१, १४८, १५६
शंकुक २७६, २८१, २८५, २६१
शंख ३००
शंखधरकविराज २६२
शंभ १६०,१६४
शकवर्धन २८७
शक्तिभद्र २५०
शक्तिवाद ३७६
शतदूषणी ४०४
शतपथब्राह्मण ३६, ३८, ३२०
शतश्लोकी ३४१
शतसाहस्रिकापारमित ३६३
शतसाहस्री ३४४
शतानन्द १२२, २६२, ३२६
शबरस्वामी ३०६, ३८५
शब्दकल्पद्रुम ३२१
शब्दकोष ३१६
शब्दकौस्तुभ ३०८
शब्दचन्द्रिका ३१३, ३२१
शब्दप्रदीप ३४२
शब्दभेदप्रकाश ३२०
शब्दरत्नाकर ३२१
शब्दव्यापारविचार २६४
शब्दशक्तिप्रकाशिका ३७६
शब्दानुशासन ३१२, ३१६,
शब्दार्णव ३१६
शम्भलोमत १५७
शरणदेव ३०७
शरणागतिगद्य १५०
शरद्वतीपुत्रप्रकरण २१८
शरवर्मा ३१३
शर्ववर्मा ३१३

शशधर ३७७
शशिवंशमहाकाव्य १२३
शांख्यायन ३३, ३६, ४८
शांख्यायनश्रौतसूत्र ३१७
शाकटायन ४५, ३१२
शाकटायनशाखा ३१२
शाकल ३३
शाकल्य ४५
शाकुन्तल १०६, २०८, २२७, २३०
शाक्तमत ४१३
शाक्तानंदतरंगिणी ४१४
शाण्डिल्यसूत्र ४०२
शातकर्णीहरण १६७
शान्तनवाचार्य ३०९
शान्तनु ३०९
शान्तरक्षित ३६६, ४१४
शान्तिदेव १५६, ३६५
शान्तिविलास १५९
शन्तिशतक १५८
शाबरभाष्य ३८६
शाम्भव्य ४८
शारदातनय २१४, २८२, २९६
शारदातिलक २६८
शारद्वतीपुत्रप्रकरण २४२
शारिपुत्रप्रकरण २४२
शार्ङ्गदेव ३४६
शार्ङ्गधर १६३, ३४७
शार्ङ्गधरपद्धति १६३
शार्ङ्गधरसंहिता ३४१
शालिकनाथ ३८८
शालिवाहनकथा १९४
शालिहोत्र ३४२
शाश्वत ३२०
शास्त्रदीपिका ३८८
शिगभूपाल २९७
शिक्षा ४४, ४५
शिक्षासमुच्चय ३६५
शिखरिणीमाला ४१०
शिल्परत्न ३५०
शिल्हण १५८
शिवदत्त १६४
शिवदास १९३, १९४
शिवदृष्टि ४१३
शिवदृष्ट्यालोचन ४१३
शिवपुराण ८९, ९३
शिवभुजंगस्तोत्र १४९
शिवलीलार्णव १३४
शिवसूत्र ४११
शिवसूत्रवार्तिक ३७४
शिवस्वामी १२१, १३७
शिवादित्य ३७७
शिवाद्वैत ३९३
शिवाद्वैतनिर्णय ४१०

शिवाद्वैतमत ४०६
शिवानन्दलहरी १४६
शिवार्कमणिदीपिका ४१०
शिवोत्कर्षमंजरी १५३
शिशुपालवध ११६
शिष्यधीवृद्धितन्त्र ३२४
शीलर १४२
शीलाभट्टारिका १७१
शुक ७६
शुकपक्षीय ४०४
शुकसप्तति १६४
शुक्रनीतिसार ३४६
शुक्लयजुर्वेद १५, २८, ३४, ३६, ४३
शुभंकर ३१२
शुभचन्द्र ३७१
शुद्धाद्वैतमत ३६७
शुल्वसूत्र ४७, ४८
शूद्रक २०८, २१८, २३८,
शून्यतासप्तति ३६५
शृंगारकल्लोल १४५, २६७
शृंगारतिलक १४५, २६७
शृंगारप्रकाश १७७, २६४
शृंगारभूषणभाण २१६, २६६
शृंगारमजरी २६८
शृंगारवैराग्यतरंगिणी १५८
शृंगारशतक १४५
शृंगारसर्वस्व २६७
शृंगारसर्वस्वभाण २६७
शृंगारसुधाकर २६८
शेषकृष्ण १८४, २६६
शैलाली ८६
शौनक ४४, ४८, ४६, ७६
शौरसेनी ८
श्यामलादण्डक १४८
श्यामशास्त्री १५३
श्यामिलक २४७
श्राद्धकल्पसूत्र ४६
श्रीकण्ठ ४०६
श्रीकण्ठचरित १२५, १३७, २७६, ३०१
श्रीकण्ठभाष्य ४१०
श्रीकुमार ३५०
श्रीगुणरत्नकोश १५१
श्रीचिह्नकाव्य १२४, ३१५
श्रीजयगोपाल ४०६
श्रीदामचरित २६८
श्रीदामन् २४१
श्रीधर ३२८, ३७०
श्रीधरदास १६३
श्रीनिवास ४०७
श्रीनिवासचम्पू १८५
श्रीनिवासतीर्थ ३६५
श्रीनिवासाचार्य ४०५
श्रीपूर्ण ४०३

श्रीभाष्य ४०३
श्रीरगगद्य १५०
श्रीरंगराजस्तव १५१
श्रीराम ७२
श्रीवत्स ३७५, ३७७
श्रीवत्सांक १५०
श्रीवर १३२, १६४
श्रीवल्लभ ३७७
श्रीवर्मल ११६
श्रीवीरकवि १६५
श्रीहर्ष १२७, ३६६
श्रुतप्रकाशिका ४०३
श्रुतप्रदीपका ४०३
श्रुतबाध ३१८
श्रुति ६, १७
श्रुतिपरीक्षा ३६६
श्रुतिसारसमुद्धरण ३६८
श्रेण्यकाल १, २
श्रेण्य भाषा २
श्रौतसूत्र ४७, ४८, ४६
श्लेगल १२
श्लोकवार्तिक ३८६
श्लोकसग्रह १६१
श्वेताश्वतरोपनिषद् ४०, ४१, ४२

ष

षड्गुरुशिष्य २८
षड्दर्शनसमुच्चय ३७०, ४१४
षड्भाषाचन्द्रिका ३१६
षड्विंशब्राह्मण ३७
षड्रागचन्द्रिका ३४६
षण्मुखकल्प ३५१
षष्टितन्त्र ३८१

स

संकर्षकाण्ड ३५२
संकर्षमुक्तावलि ३८६
संकल्पसूर्योदय २७०
संक्षिप्तसार ३१४
संक्षेपरामायण ५६, ५८
संक्षेपशारीरिक ३६६
संगीतचिन्तामणि ३४६
सगीतदर्पण ३४७
संगीतदामोदर ३४७
संगीतपारिजात ३४७
संगीतमकरन्द ३४६
सगीतरत्नाकर ३४६
संगीतराज ३४६
संगीतसमयसार ३४६
संगीतसार ३४६
संगीतसार संग्रह ३४७
संगीतसुधा ३४६
संगीतसुधाकर ३४६
संग्रह ३०५
संघभद्र ३२५
संध्याकरनन्दी १२५, २७७

संवितसिद्धि ४०३
संसारावर्त ३१६
संस्कृत १, ७, १०
संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति २०२
संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ २०६
संस्कृत नाटकों के भेद २१५
संहिता ३२५
संहितापाठ १७
सकलकीर्ति १६४, ३७०, ३७१
सच्चरित्ररक्षा ४०४
सत्यहरिश्चन्द्र २६२
सत्याषाढहिरण्यकेशी ४८
सदानन्द ३६६
सदाशिव ३४४
सदाशिवमखिन् २६६
सद्धर्मपुण्डरीक ३६३
सद्विद्याविजय ४०५
सदुक्तिकर्णामृत १५८, १६३
सनत्कुमारवास्तुशास्त्र ३५०
सनातनगोस्वामी ४०६
सन्तानान्तरसिद्धि ३६६
सन्द्रकोट्टस ७६
सप्तदशभूमिशास्त्रयोगचर्या ३६५
सप्तपदार्थी ३७७
सप्तसन्धानमहाकाव्य १३५
सभारंजनशतक १५८
समन्तभद्र ३६६
समरपुंगवदीक्षित १८४
समयमातृका १५८
समरांगणसूत्रधार ३५०
समाधिराज ३६३
समुद्रगुप्त ११२
समुद्रमन्थन २१६, २६३
सम्बन्धपरीक्षा ३६६
सम्मतितर्कसत्र ३६६
सरस्वतीकण्ठाभरण २६४, ३०७
सरस्वतीविलास ३३५
सरस्वतीहृदयालंकारहार ३४६
सर्वज्ञनारायण ८४
सर्वज्ञमित्र १४८
सर्वज्ञसिद्धिकारिका ३६६
सर्वज्ञात्मा ३६६
सर्वदर्शनसंग्रह ४११
सर्वदेवविलास १८५, २७८
सर्वमतसंग्रह ४१५
सर्वमेध ३४
सर्वविनोद २६८
सर्ववेदान्तसिद्धान्त ४१४
सर्वानन्द १२६
सर्वानुक्रमणी ५०
सर्वार्थसिद्धि ४०४
सहृदयलीला २६६
सहृदयानन्द १२८
सांख्यकारिका ३८१

सांख्यतत्वकौमुदी ३८१
सांख्यदर्शन ३७२
सांख्यप्रवचनभाष्य ३८१
सांख्यप्रवचनसूत्र ३८१
सांख्यसार ३८१
सांख्यसूत्र ३८१
सांख्यसूत्रवृत्ति ३८१
सागरनन्दी २९९
सातवाहन ११४
सानातनि ३७७
सानप्रातिशाख्य ४४
सामन्तभद्र ३६९
सामराजदीक्षित २६७
सामविधानब्राह्मण ३७
सामवेद १५, १९, २०, २१, २३, २८ ३६, ३७, ४३, ५०
सामुद्रिकतिलक ३२६
सामुद्रिकशास्त्र ३२६
सायण २८, २९, १६३
सारसंग्रह ३७७
सारस्वतप्रक्रिया ३१४
सारस्वतशाखा ३१३
सालुवाभ्युदय १३२, २७७
साहसांकचरित १२८
साहित्यकौमुदी २९७
साहित्यचिन्तामणि २९७
साहित्यदर्पण २९७
साहित्यमीमांसा २९६
साहित्यरत्नाकर १३४, २७८
सिंहराज २८५
सिंहासनद्वात्रिंशिका १९३
सिद्धसेन दिवाकर १४८,३६९
सिद्धर्षि ६, २००, २७०
सिद्धांजन २७८
सिद्धान्तकौमुदी ३०८
सिद्धान्तचन्द्रिका ३१४
सिद्धान्तदर्पण ३२९
सिद्धान्तबिन्दु ३९९
सिद्धान्तमुक्तावलि ३७९
सिद्धान्तलेशसंग्रह ४००
सिद्धान्तशिरोमणि ३२८
सिद्धित्रय ४०३
सिद्धियोग ३४१
सुकुमारकवि १३२
सुकृतसंकीर्तन १२९, २७७
सुखानन्द ३४२
सुखावतीव्यूह ३६४
सुखोपजीवनी ३८८
सुचरितमिश्र ३८७
सुत्त ३६२
सुत्तपिटक ३६२
सुदर्शन ११२
सुदर्शनसूरि ४०३
सुधालहरी १५२

सुन्दरपाण्डय १५६
सुपद्मपंजिका २८३
सुप्रभातस्तोत्र १४८
सुबन्धु ८२, १७७
सुबोधिनी ३८७, ४०६
सुब्रह्मण्य २५२
सुभट २७१
सुभद्राधनंजय २५२, २६७
सुभद्रापरिणय २६७, २७१
सुभद्राहरण २६६
सुभाषितकौस्तुभ १६०
सुभाषितनीवि १५८
सुभाषितरत्नभाण्डागार १६४
सुभाषितरत्नसन्दोह १५७
सुभाषितसुधानिधि १६३
सुभाषितहारावलि १६४
सुभाषितावलि १६४
सुमनोत्तरा १६६
सुमन्तु ७६
सुरथोत्सव १२६, २७७
सुरपाल ३४२
सुरेश्वर ३४६, ३८७, ३६७, ३६८
सुवर्णप्रभास ३६३
सुवेल ११५
सुवृत्ततिलक ३१८
सुश्रुत ३४०
सुश्रुतसंहिता ३४०
सुषुद्धिमनोहरा ३७८
सुहृल्लेख ३६५
सूक्त ६
सूक्तानुक्रमणी ५०
सूक्तिमुक्तावली १६३
सूक्तिरत्नहार १६३
सूक्तिवारिधि १६४
सूतसंहिता ६४
सूत्रसमुच्चय ३६५
सूत्रालंकार १६३, ३६३
सूर्यशतक १४८
सूर्यसिद्धान्त ३२४
सेतुबन्ध ११४,
सेनक ४५
सेश्वरमीमांसा ४०४
सोड्ढल १८३
सोमदेव १८१, १८७, १६१, २६३
सोमदेवसूरि ३४६
सोमनाथ ३४७, ३८८
सोमपालविजय ११४
सोमपालविलास १२५
सोमप्रभ १५८
सोमानन्द ४१३
सोमेश्वर १६२, ३४६, ३५१, ३८७
सोमेश्वरदेव १२६, १८३
सौगन्धिकाहरण २१६, २६५
सौति ७६

सौन्दरनन्द १०४, ११०
सौन्दर्यलहरी १४६
सौपद्मपंजिका ३१५
सौपद्मव्याकरण ३१५
सौपद्मशाखा ३१५
सौमिल १६७, २१८
सौरपुराण ६३
स्कन्दस्वामी २८
स्कन्दपुराण ८६, ६४
स्तोत्ररत्न १५०, ४०३
स्तोत्रावलि १५०
स्थविरावलीचरित ३७०
स्थिरसिद्धिदूषण ३६६
स्पन्दकारिका ४१३
स्पन्दनिर्णय ४१३
स्पन्दप्रदीपिका ४१३
स्पन्दसर्वस्व ४१३
स्फूर्जिध्वज ३२५
स्फोटवाद ३०६, ३११
स्फोटसिद्धान्त २५६, २७६
स्फोटसिद्धि ३११, ३६७
स्फोटायन ३१०
स्मृति ६
स्मृतिकल्पतरु ३३४
स्मृतिचन्द्रिका ३३५
स्मृतिमुक्ताफल ३३५
स्मृतिरत्नाकर ३३५
स्मृतिसंग्रह ३३५
स्याद्वादकारिका ३७०
स्याद्वादमंजरी ३७०
स्याद्वादरत्नाकर ३७०
स्रग्धरास्तोत्र १४८
स्वप्नचिन्तामणि ३२६
स्वप्नदशानन २६०
स्वप्नवासवदत्तम् २१८, २१६. २२४
स्वरमेलककलानिधि ३४६
स्वरित १६
स्वरूपसंबोधन ३६६
स्वल्पविवाहफल ३२५
स्वात्माराम योगीन्द्र ३८३

ह

हंसदूत १४३
हंससन्देश १४३
हठयोगप्रदीपिका ३८३
हनुमन्नाटक २५६
हनुमान २५६
हम्मीरमदमर्दन २६४
हम्मीरमहाकाव्य १२६
हयग्रीववध ११४
हरकेलिनाटक २६३
हरगौरीविवाह २६६
हरचरितचिन्तामणि १२८
हरदत्त ३०७
हरदत्तसूरि १२२, १३५

हरविजय १२१, १३७, १५०, २८६
हरविलास २६१
हरि ३८५
हरिकवि १६४
हरिचन्द्र १२१, १८१
हरिदत्त ३२८
हरिदीक्षित ३०८
हरिनामामृत ३१५
हरिपाल ३४६
हरिभक्तिविलास ४०६
हरिभद्रसूरि ३७०, ४१४
हरिभास्कर १६४
हरिलीला ६२
हरिवंश ७३, ८३
हरिवंशपुराण ३७०
हरिविलास १३२
हरिषेण १६६
हरिस्वामी २८
हरिहर २६६
हर्ष २८५
हर्षकीर्ति ३१४
हर्षकीर्तिसूरि ३२६
हर्षचरित १६७, १६८, २७५
हर्षचरितटीका २६७
हर्षदेव २४८
हर्षवर्धन २४८, ३०६
हलायुध १२३, ३२०
हस्तामलकाचार्य ३६८
हस्तिपक ११४
हारावली ३२१
हारीत ३३७
हारीतधर्मसूत्र ३३२
हाल १४६
हास्यचूड़ामणि २६३
हास्यार्णव २६८
हितोपदेश ७, १६७, २००
हिन्दी ८
हिरण्यकेशी ३४
हीनयान ३६२
होरसौभाग्य १३५
हृदयदर्पण २६१
हेतुखण्डन ३७७
हेतुचक्र ३६५
हेतुबिन्दुविवरण ३६६
हेर्डर १३
हेमचन्द्र १२६, १५८, १६४, २०१, २७६, ३१३, ३१६, ३४६, ३७०
हेमलघुन्यास ३१३
हेमाद्रि ३३५
हेराक्लिस ७६
होरा ३२५
होता ३६
होमर ६३
होराशास्त्र ३२६
होराषट्पंचाशिका ३२६
ह्वेनसांग ६, १२